

THE
HISTORY OF RAJPUTANA

VOLUME V,

PART I.

राजपूताने का इतिहास

पाँचवीं जिल्द,

पहला भाग



THE
HISTORY OF RAJPUTANA

VOLUME V, PART I.

HISTORY OF THE BIKANER STATE

PART I.

BY

MAHĀMAHOPĀDHYĀYA RĀI BAHĀDUR
SĀHITYA-VĀCHASPATI

Dr. Gaurishankar Hirachand Ojha, D. Litt., (Hony.)

PRINTED AT THE VEDIC YANTRALAYA,
AJMER.

(All Rights Reserved.)

First Edition. } 1939 A. D. { *Price Rs. 6.*

PUBLISHED BY

Mahamahopadhyaya Rai Bahadur Sahitya-Vachaspati

Dr. Gaurishankar Hirachand Ojha, D. Litt.,

Ajmer.



This book is obtainable from:—

- (i) The Author, Ajmer.
- (ii) Vyas & Sons, Booksellers,
Ajmer.

राजपूताने का इतिहास

पांचवीं जिल्द, पहला भाग

बीकानेर राज्य का इतिहास

प्रथम खंड

ग्रन्थकर्ता

महामहोपाध्याय रायबहादुर साहित्य-वाचस्पति
डॉक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डी० लिट्० (ऑनरेरी)

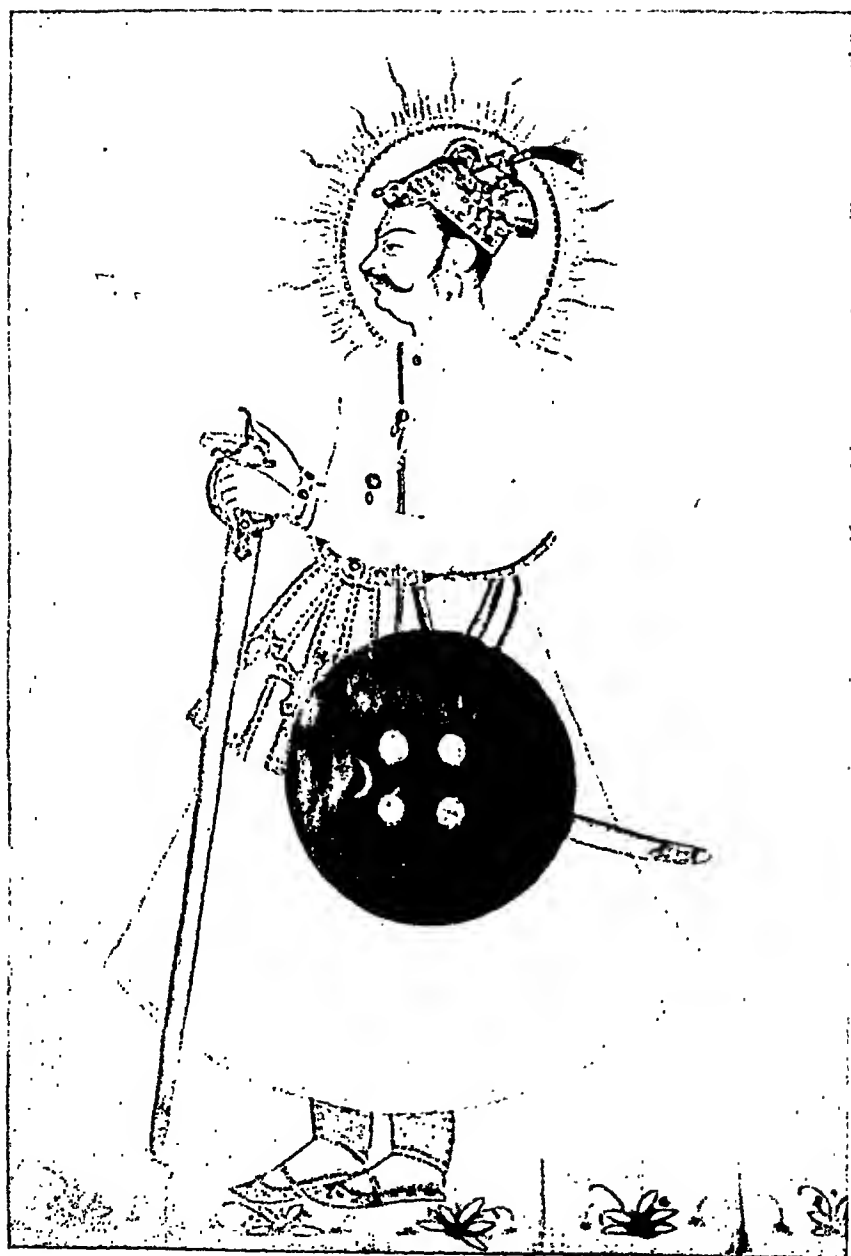
बाबू चांदमल चंडक के प्रबंध से
वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर में छपा

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण }

वि० सं० १९६६

{ मूल्य रु० ६



राव वीका

परम पितृभक्त
अदम्य साहसी
बीकानेर राज्य के संस्थापक
वीरवर राव बीका
की
पवित्र स्मृति को
सादर समर्पित

भूमिका

इतिहास के द्वारा हमें किसी देश अथवा जाति की अतीत कालीन संस्कृति और उसके उत्थान एवं पतन के क्रमिक विकास का ज्ञान होता है। इतिहास सभ्यता और उन्नति का द्योतक तथा पूर्वजों की कीर्ति का अमर स्तंभ है। वह अतीत का आभास देकर वर्तमान का निर्माण और भविष्य का पथ-प्रदर्शन करता है। जिस देश अथवा जाति में जितनी अधिक जागृति है, उसका इतिहास भी उतना ही अधिक उन्नत एवं पूर्ण होना चाहिए। थोड़े शब्दों में कह सकते हैं कि इतिहास जीवन और जागृति का प्रमाण है।

विशाल महाद्वीप एशिया के दक्षिणी भाग में स्थित भारतवर्ष सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से संसार के इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस देश ने प्राचीन काल में कितनी ही जातियों का उदय और अन्त देखा है। इसके वक्त्रस्थल पर कितने ही राष्ट्र बने और बिगड़ चुके हैं। राजपूताना इसी देश का एक प्रसिद्ध प्रदेश है, जिसका इतिहास की दृष्टि से अपना अलग स्थान है। इसे हम भारत की वीरभूमि कहें तो अयुक्त न होगा। कर्नल टॉड के शब्दों में “राजस्थान में कोई छोट्टा-सा राज्य भी ऐसा नहीं है, जिसमें ‘थर्मापिली’ जैसी रणभूमि न हो और न कोई ऐसा नगर है, जहाँ ‘लियोनिडास’ जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो।” यहाँ की भूमि का अणु-अणु वीरों के रक्त से सिंचित है और अपने प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाता है। यहाँ का इतिहास जिस प्रशंसनीय वीरता, अनुकरणीय आत्मोत्सर्ग, पवित्र त्याग और आदर्श स्वातंत्र्य-प्रेम की शिक्षा देता है, वैसा अन्य किसी स्थान का नहीं। यह वस्तुतः खेद का विषय है कि परिस्थिति वश अथवा राजपूताने के निवासियों में इतिहास-प्रेम की कमी होने के कारण यहाँ का इतिहास पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं रह सका, जिससे बहुधा प्राचीन शृङ्खलाबद्ध इतिहास बहुत कम मिलता है।

एक समय था, जब भारतवासी अपने देश के इतिहास के प्रति उदासीन रहते थे। सत्य वृत्त के अभाव में सुनी-सुनाई अतिरंजित कहानियां ही इतिहास का स्थान लिये हुए थीं, पर गत शताब्दी में इस दिशा में विशेष उन्नति हुई है। 'राजस्थान' का विस्मृत गौरव प्रकाश में लाने का श्रेय कर्नल टॉड को ही है। उसके बहुमूल्य ग्रन्थ 'राजस्थान' के द्वारा क्रमशः यूरोप एवं भारत के अनेक विद्वानों का ध्यान राजपूताने की ओर आकृष्ट हुआ। उनके अनवरत उद्योग, अपूर्व अध्यवसाय तथा विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धानों के फलस्वरूप इस वीर-भूमि का प्राचीन गौरव-पूर्ण इतिहास, जो पहले अन्धाकारावृत था अब बहुत कुछ प्रकाश में आ गया और आता जाता है। शनैः-शनैः लोगों की रुचि भी इतिहास की ओर बढ़ती जा रही है। फलतः आज हमारे साहित्य की श्री-वृद्धि करने के लिए छोटे-बड़े कई इतिहास-ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनके द्वारा ज्ञान-वृद्धि के साथ-साथ हमें अपने पूर्वजों के वीरतापूर्ण कार्यों, रहन-सहन, आचार-विचार और रीति-रिवाज आदि का परिचय मिलता है।

राजपूताने में इस समय सब मिलाकर छोटी-बड़ी इक्कीस रियासतें हैं। इनमें से सात प्रमुख रियासतों का इतिहास कर्नल टॉड के ग्रन्थ में आया है। मेवाड़ के सीसोदियों के पश्चात् राजपूताने में रणवंका राठोड़ों का गौरवपूर्ण स्थान है। अब भी उनका राज्य राजपूताने के एक बड़े भाग में फैला हुआ है। वर्तमान राठोड़ों का मूल पुरुष राव सीहा कन्नौज की तरफ से वि० सं० की १४ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इधर आया और उसके वंशजों ने पीछे से धीरे-धीरे इधर अपना राज्य स्थापित किया। उसके वंशधर राव जोधा ने राठोड़ राज्य को दृढ़ किया और जोधपुर बसाया, जिससे उस राज्य का नाम जोधपुर हुआ। बीकानेर राज्य का संस्थापक राव जोधा का पुत्र बीका था, जो आदर्श पितृभक्त होने के साथ ही अत्यन्त वीर, नीतिज्ञ और कुशल शासक था। उसने अपने पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर जोधपुर राज्य से अपना स्वत्व त्याग दिया और उत्तर की तरफ जाकर अपने लिए जंगल देश विजय किया। अपने बाहुबल से जिस विशाल

राज्य की स्थापना उसने की, उसका गौरव अब तक अक्षुण्ण बना हुआ है और उसके वंशधर अब तक उसके स्वामी हैं ।

यह राज्य राजपूताने के उस भाग में बसा हुआ है, जहां रेगिस्तान अधिक है और पानी की बहुधा कमी रहती है । यही कारण है कि प्राचीन-काल में विदेशियों का ध्यान इस ओर कम ही गया और उन्होंने इसे विजय करने में विशेष उत्साह न दिखलाया । मरहटों के प्रभुत्व का काल राजपूताने के लिए बड़े संकट का समय था । मरहटों के आतंक से राजपूताना के कितने ही राज्य भयभीत रहते थे और उन्हें उनके आक्रमणों से बचने के लिए धन आदि की उनकी मांगें सदा पूरी करनी पड़ती थीं, परन्तु अपनी अनुकूल प्राकृतिक बनावट के कारण बीकानेर राज्य मरहटों के आक्रमण से सदा बचा रहा और यहां के शासकों को कभी उन्हें चौथ (खिराज) आदि कर देना न पड़ा । उन्होंने मुसलमान बादशाहों को कभी खिराज न दिया और इस समय भी अंग्रेज सरकार उनसे किसी प्रकार का खिराज नहीं लेती, जब कि भारत के अधिकांश राज्यों को प्रतिवर्ष निश्चित रकम देनी पड़ती है ।

मुगल शासकों ने इस राज्य को विजय करने की अपेक्षा यहां के शासकों से मेल रखना ही अच्छा समझा । उनके साथ का बीकानेर के राजाओं का मैत्री-सम्बन्ध बड़े ऊंचे दर्जे का था, जो उन (मुगलों) के पतन तक वैसा ही बना रहा । अंग्रेजों का अधिकार भारतवर्ष में स्थापित होने पर बीकानेर के शासकों ने इस प्रबल शक्ति से मेल करना उचित समझ उनसे सन्धि करली, जिसका पालन अब तक होता है ।

यह राज्य सदा से उन्नतिशील रहा है । वैसे तो पिछली कई पीढ़ियों से ही यहां उन्नति के लक्षण दृष्टिगोचर होते रहे हैं, पर वर्तमान बीकानेर नरेश के राज्यारम्भ से ही इस राज्य में जो परिवर्तन एवं उन्नति हुई है वह विशेष उल्लेखनीय है । इनके उद्योग से नहरों का प्रबन्ध होकर बीकानेर राज्य का बहुतसा उत्तर-पश्चिमी भाग सरसज हो गया है । जगत्प्रसिद्ध 'गंगा नहर' के निर्माण को हम बीकानेर राज्य के वर्तमान

इतिहास की एक युगान्तरकारिणी घटना और महाराजा साहब का भगीरथ प्रयत्न कह सकते हैं। इसके द्वारा राज्य को आर्थिक लाभ होने के साथ ही प्रजा की स्थिति में भी बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। पहले बीकानेर राज्य में गमनागमन के मार्ग सुगम न थे। सफ़र ऊंटों-द्वारा होता था, जिसमें ख़तरा विशेष था और समय भी अधिक लगता था। अब राज्य के प्रायः प्रत्येक प्रधान भाग में रेलवे लाइन बन गई है और मोटरें तो हर जगह आती जाती हैं। फलतः आवागमन में बड़ी सुविधा हो गई है, जिससे राज्य की बहुत कुछ व्यापारिक, आर्थिक और राजनैतिक उन्नति हुई है।

इस उन्नतिशील राज्य का इतिहास विलक्षण क्रांति और वीरों के त्याग एवं बलिदान की गाथाओं से पूर्ण है, जिनके बल पर भारतवासी आज भी अपना मस्तक उन्नत कर सकते हैं। अंग्रेज़ों के भारत में आने के पूर्व यहां का कोई क्रमबद्ध इतिहास न था। आज से लगभग सौ से अधिक वर्ष पूर्व कर्नल जेम्स टॉड ने 'राजस्थान' नामक बृहद् ग्रन्थ लिखा, जिसमें इस राज्य का संक्षिप्त इतिहास दिया है; पर उसमें कितनी ही घटनाएं सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखी होने से सत्य की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। जोनाथन स्कॉट, बोइलो, विलियम फ्रैंकलिन, एलिफ़न्स्टन, हर्वर्ट कॉस्पटन, जॉर्ज टॉमस आदि विदेशी विद्वानों ने यथाप्रसंग अपने ग्रन्थों में बीकानेर राज्य का कुछ परिचय दिया है, पर उससे किसी घटना विशेष पर ही प्रकाश पड़ता है। हाँ, पाउलेट और अर्स्किन के गैज़ेटियरों से यहां के इतिहास का अच्छा परिचय मिलता है।

बीकानेर के नरेशों में अधिकांश स्वयं विद्वान् और विद्याप्रेमी हुए हैं। उनके रचे हुए अनेक ग्रन्थ अब भी उपलब्ध हैं और उनके आश्रय में बने हुए संस्कृत और भाषा के ग्रन्थों का मैंने इतना बृहद् संग्रह बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय में देखा कि मैं मुग्ध हो गया। इस संग्रह के कई ग्रन्थों में संवत् सहित बीकानेर के राजाओं से सम्बद्ध ऐतिहासिक वृत्त दिये हैं, जो इतिहास के लिए बहुमूल्य हैं। इनमें बीटू ख़्जा-रचित 'राव जैतसी रड़ छन्द' (भाषा) तथा 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं

काव्यम्' (संस्कृत) प्राचीनता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। पहले में राव बीका से लगाकर राव जैतसी और दूसरे में राव बीका से महाराजा रायसिंह तक की घटनाओं का वर्णन है।

इस राज्य की सब से पहली क्रमवद्ध ख्यात महाराजा रत्नसिंह के आदेशानुसार उसके समय में सिंढायच दयालदास ने लिखी थी जिसमें राव बीका से लेकर महाराजा सरदारसिंह के राज्यारोहण तक का सविस्तर इतिहास दिया गया है। दयालदास बड़ा योग्य और विद्वान् व्यक्ति था। उसे इतिहास से बहुत प्रेम था। उसने बड़े परिश्रम से पुरानी वंशावलियों, पट्टे, बहियों, शाही फ़रमानों और राजकीय पत्र-व्यवहारों आदि के आधार पर अपनी ख्यात की रचना की, जिससे यह बीकानेर के इतिहास की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। इसमें कई फ़ारसी फ़रमानों की नागरी अक्षरों में प्रतिलिपि तथा अंग्रेज़ी मुरासिलों के अनुवाद भी दिये हैं। दयालदास का लिखा हुआ दूसरा तद्विषयक ग्रन्थ 'आर्याख्यान कल्पद्रुम' है। यह निर्विवाद है कि इन दोनों ग्रन्थों को लिखते समय दयालदास ने बहुत छान-बीन की, पर बीकानेर के राजाओं के स्मारक एवं अन्य संस्कृत लेखों का उपयोग उसने बिलकुल न किया, जिससे कहीं-कहीं संवतों में ग़लती रह गई है। 'देश दर्पण', 'जोधपुर राज्य की बृहद् ख्यात' और कविराजा वांकीदास के 'ऐतिहासिक बातें' नामक ग्रन्थों में भी बीकानेर राज्य का बहुत कुछ इतिहास मिलता है। इनमें कहीं-कहीं विभिन्नता पाई जाती है, जो स्वाभाविक ही है, क्योंकि ख्यातों आदि में उनके लेखकों के आश्रयदाताओं का ही अधिक प्रशंसात्मक वर्णन रहता है। बीदावतों की ख्यात में भी बीकानेर राज्य का इतिहास है, पर इसमें बीदावतों का ही वर्णन अधिक विस्तार से लिखा गया है और कहीं-कहीं कई बातों का अनुचित श्रेय भी उन्हीं को दिया है।

बाहर के लेखकों में मुहणोत नैणसी की ख्यात दयालदास की ख्यात आदि से अधिक प्राचीन है और वह इतिहास-क्षेत्र में अधिकांश प्रामाणिक मानी जाती है, पर उसमें बीकानेर के पहले नरेशों का कुछ विस्तृत वर्णन

और शेष महाराजा गजसिंह तक के केवल नाम, राज्यारोहण और मृत्यु के संवत् तथा उनकी राणियों और पुत्रों के नाम ही मिलते हैं, जिनमें से बहुतसा अंश पीछे से बढ़ाया गया है। महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास-कृत 'वीर विनोद' नामक बृहद् ग्रन्थ में शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों, फ़रमानों, फ़ारसी-तवारीखों आदि से सहायता ली गई है, जिससे उसकी उपयोगिता स्पष्ट है। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने बीकानेर के कुछ राजाओं के जीवन चरित्र लिखे थे जो अलग-अलग प्रकाशित हुए हैं। मुंशी सोहनलाल के 'तवारीख बीकानेर' और कुंवर कन्हैयाजू के 'बीकानेर राज्य का इतिहास' में बीकानेर के राजाओं का वर्तमान समय तक का इतिहास दिया है, जो संक्षिप्त होते हुए भी उपयोगी है। उर्दू भाषा में लिखे हुए पिछले इतिहासों में उपयोगिता की दृष्टि से 'वक्ताये राजपूताना' का उल्लेख किया जा सकता है।

फ़ारसी तवारीखों में भी बीकानेर राज्य का इतिहास यथा-प्रसंग आया है, परन्तु उनमें कहीं-कहीं जातीय एवं धार्मिक पक्षपात की मात्रा देख पड़ती है। तारीख़ फ़िरिश्ता, अकबरनामा, मुंतख़बुत्तवारीख़, जहांगीरनामा बादशाहनामा, मन्शासिरे आलमगीरी, औरंगज़ेबनामा आदि फ़ारसी-ग्रन्थों में यथा-प्रसंग बीकानेर के महाराजाओं का हाल दर्ज है। इस सम्बन्ध में शाही फ़रमानों और निशानों का उल्लेख, जो मेरे देखने में आये हैं और जिनकी संख्या ८३ है, आवश्यक है। इनसे कितनी ही ऐसी घटनाओं का पता चलता है, जिनका ख्याती अथवा फ़ारसी तवारीखों में उल्लेख तक नहीं है। बीकानेर के इतिहास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

अंग्रेज़ी भाषा की अन्य पुस्तकों में एचिसन की 'ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनदज़' तथा मुंशी ज्वालासहाय की 'लॉयल राजपूताना' से क्रमशः अंग्रेज़ सरकार के साथ की बीकानेर के राजाओं की संधियों और सद्द के समय किये गये उनके वीरता-पूर्ण कार्यों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। स्वर्गीय डॉक्टर टेसिटोरी ने थोड़े समय में ही इस राज्य में भ्रमणकर जो-जो प्राचीन वस्तुएं संग्रह कीं और जो-जो शिलालेख पढ़े, वे भी इस राज्य

के इतिहास के लिए बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

किसी भी राज्य का प्रामाणिक इतिहास लिखने में वहां के प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों और सिक्कों से सब से अधिक सहायता मिलती है, परन्तु खेद का विषय है कि यही साधन यहां सब से कम उपलब्ध हुए। शिलालेखों में यहां अधिकांश मृत्यु स्मारक लेख ही मिले हैं, जिनसे मृत्यु संवत् ज्ञात होने के अतिरिक्त और कुछ भी ऐतिहासिक वृत्त नहीं जान पड़ता। राज्य भर में कुछ छोटी प्रशस्तियां तो मिलीं, किन्तु बीकानेर-दुर्ग के एक पार्श्व में लगी हुई महाराजा रायसिंह की विशाल प्रशस्ति जैसी अन्य कोई प्रशस्ति यहां नहीं मिली। संभवतः इस अभाव का कारण यहां पत्थरों की कमी हो। ताम्रपत्र और सिक्के भी यहां से कम ही मिले हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में, जो दो भागों में समाप्त होगा, बीकानेर राज्य के संक्षिप्त भौगोलिक परिचय के अतिरिक्त, राव बीका से लेकर वर्तमान समय तक के बीकानेर के राजाओं का विस्तृत और सरदारों आदि का संक्षिप्त इतिहास है। राव बीका से पूर्व का इस प्रदेश का जो इतिहास शोध से ज्ञात हुआ, वह भी संक्षिप्त रूप से प्रारंभ में लिखा गया है। इसकी रचना में मैंने शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों, ख्यातों, प्राचीन वंशावलियों, संस्कृत, फ़ारसी, मराठी और अंग्रेज़ी पुस्तकों, शाही फ़रमानों तथा राजकीय पत्र-व्यवहारों का पूरा-पूरा उपयोग किया है। मेरा विश्वास है कि इसके द्वारा बीकानेर राज्य का प्राचीन गौरव प्रकाश में आयेगा और यहां का वास्तविक इतिहास पाठकों को ज्ञात होगा।

यह इतिहास सर्वांगपूर्ण है, यह तो मैं कहने का साहस नहीं कर सकता, पर इसमें आधुनिक शोध को पूरा-पूरा स्थान देने का भरसक प्रयत्न किया गया है। जिन व्यक्तियों आदि के नाम प्रसंगवशात् इतिहास में आये, उनका जहां तक पता लगा आवश्यकतानुसार कहीं संक्षेप में और कहीं विस्तार से परिचय (टिप्पण में) दिया गया है। अनीराय सिंहदलन जैसे प्रसिद्ध वीर व्यक्ति का, जिसका इतिहास में अन्यत्र विशद वर्णन आने की संभावना नहीं है, परिचय कुछ अधिक विस्तार से दिया गया है।

भूल मनुष्य-मात्र से होती है और मैं भी इस नियम का अपवाद नहीं हूँ। फिर इस समय मेरी वृद्धावस्था है और नेत्रों की शक्ति भी पहले जैसी नहीं रही है, जिससे, संभव है, कुछ स्थलों पर त्रुटियाँ रह गई हों। आशा है, उदार पाठक उनके लिए मुझे क्षमा करेंगे और जो त्रुटियाँ उनकी दृष्टि में आवें उनसे मुझे सूचित करेंगे तो दूसरी आवृत्ति में उचित सुधार किया जा सकेगा।

अन्त में मैं वर्तमान वीकानेर-नरेश मेजर जेनरल राजराजेश्वर नरेन्द्र शिरोमणि महाराजाधिराज श्रीमान् महाराजा सर गंगासिंहजी साहब बहादुर की उदारता एवं इतिहासप्रेम की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। वस्तुतः यह आपकी ही उदारतापूर्ण सहायता का फल है कि यह इतिहास अपने वर्तमान रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। श्रीमान् महाराजा साहब ने न केवल शाही फ़रमानों एवं निशानों के अनुवाद मुझे भिजवाने की कृपा की, बल्कि वीकानेर बुलाकर बृहद् राजकीय पुस्तकालय का भी पूरा-पूरा उपयोग करने का मुझे अवसर प्रदान किया। इससे मुझे प्रस्तुत इतिहास तैयार करने में बड़ी सहायता मिली और कई एक इतिहास सम्बन्धी नये और महत्वपूर्ण वृत्त ज्ञात हुए, जिनका अन्यत्र पता लगना अति कठिन था। इस उदारता के लिए मैं श्रीमानों का बहुत आभारी हूँ।

मैं उन ग्रन्थकर्ताओं का, जिनके ग्रन्थों से इस पुस्तक के लिखने में मुझे सहायता मिली है, अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। उनके नाम यथाप्रसंग टिप्पण में दे दिये गये हैं। विस्तृत पुस्तक सूची दूसरे भाग के अंत में दी जायगी। इस पुस्तक के प्रणयन में मुझे अपने पुत्र प्रो० रामेश्वर ओझा, एम० ए० तथा निजी इतिहास-विभाग के कार्यकर्ता चिरंजीलाल व्यास एवं नाथूलाल व्यास से पर्याप्त सहायता मिली है, अतएव इनका नामोल्लेख भी करना आवश्यक है।

अजमेर,
जन्माष्टमी
वि० सं० १९६४ }

गौरीशंकर हाराचन्द ओझा

विषय-सूची



पहला अध्याय

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

विषय				पृष्ठांक
राज्य का नाम	१
स्थान और क्षेत्रफल	४
सीमा	४
पर्वतश्रेणियां	४
ज़मीन की बनावट	५
नदियां	५
नहरें	६
भीलें	८
जलवायु	९
कुएं	१०
घर्षा	११
भूमि और पैदावार	११
फल	१३
जंगल	१३
घास	१४
जंगली जानवर और पशुपक्षी	१४
खानें	१५
किले	१७

विषय	पृष्ठांक
रेल्वे ...	१७
सड़कें ...	१८
जनसंख्या ...	१८
धर्म ...	१८
जातियां ...	२१
पेशा ...	२२
पोशाक ...	२३
भाषा ...	२३
लिपि ...	२४
दस्तकारी ...	२४
व्यापार ...	२४
त्योहार ...	२५
मेले ...	२५
डाकखाने ...	२६
तारघर ...	२७
टेलीफोन ...	२७
विजली ...	२७
शिक्षा ...	२७
अस्पताल ...	२६
ज़िले ...	३०
लेजिस्लेटिव असेम्बली ...	३२
ज़र्मोदार सभा ...	३२
म्यूनीसिपैलिटी ...	३३
पंचायतें ...	३३
ज़िला सभायें ...	३३
महकमा तामीर ...	३३

विषय

पृष्ठांक

सहयोग संस्थायें	३४
न्याय	३४
खालसा, जागीर और शासन	३६
सेना	३७
आय-व्यय	३७
सिक्के	३८
तोपों की सलामी	४१
प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान	४२
बीकानेर	४२
नाल	४६
कोड़मदेसर	४०
गजनेर	४१
श्रीकोलायतजी	४२
देशणोक	४२
पलाणा	४३
वासी-चरसिंहसर	४३
रासी(रायसी)सर	४३
जेगला	४४
पारवा	४४
जांगलू	४४
मोरखाना	४६
कंवलीसर	४८
पांचू	४८
भादला	४६
साखंडा	४६
अणखीसर	४६

विषय	पृष्ठांक
सारंगसर ...	५६
छापर ...	५६
सुजानगढ़ ...	६०
चरखी ...	६१
सालासर ...	६१
रतनगढ़ ...	६२
चूरू ...	६२
सरदारशहर ...	६२
रिणी ...	६३
राजगढ़ ...	६३
ददेवा ...	६३
नौहर ...	६४
हनुमानगढ़ ...	६४
गंगानगर ...	६७
लाखासर ...	६७
सुरतगढ़ ...	६८

दूसरा अध्याय

राठोड़ों से पूर्व का प्राचीन इतिहास

जोहिये ...	६६
चौहान ...	७०
सांखले (परमार) ...	७२
भाटी ...	७३
जाट ...	७४

तीसरा अध्याय

राव बीका से पूर्व के राठोड़ों का संक्षिप्त परिचय

विषय

पृष्ठांक

राठोड़ शब्द की उत्पत्ति	७५
राठोड़ वंश की प्राचीनता	७५
दक्षिण में राठोड़ों का प्रताप	७६
राठोड़ वंश की अन्य शाखाएं	७८
जयचन्द और राठोड़	७६
वर्तमान राठोड़ों के मूल पुरुष राव सीहा			
से राव जोधा तक का संक्षिप्त परिचय	८०
राव जोधा की संतति	८२

चौथा अध्याय

राव बीका से राव जैतसी तक

राव बीका	६०
जन्म	६०
बीका का जांगल देश विजय करना	६०
शेखा की पुत्री से बीका का विवाह	६२
भाटियों से युद्ध	६४
गढ़ तथा बीकानेर नगर की स्थापना	६५
राणा ऊदा का बीकानेर जाना	६६
जाटों से युद्ध	६७
राजपूतों तथा मुसलमानों से युद्ध	१००
बीदा को छापूर द्रोणपुर मिलना	१०१
कांधल का मारा जाना	१०३
बीका की कांधल के बैर में सारंगखां पर चढ़ाई	१०४
जोधा का बीका को पूजनीय चीजें देने का वचन देना				१०४

विषय	पृष्ठांक
बीका की जोधपुर पर चढ़ाई ...	१०५
बीका का घरसिंह को अजमेर की कैद से छुड़ाना ...	१०७
बीका का खंडेले पर आक्रमण ...	१०७
बीका की रेवाड़ी पर चढ़ाई ...	१०८
बीका की मृत्यु ...	१०८
बीका की संतति ...	१०९
राव बीका का व्यक्तित्व ...	११०
राव नरा ...	१११
राव लूणकर्ण ...	११२
जन्म तथा राज्याभिषेक ...	११२
दद्रेवा पर चढ़ाई ...	११२
फतहपुर पर चढ़ाई ...	११३
चायलवाड़े पर चढ़ाई ...	११४
नागोर के खान की बीकानेर पर चढ़ाई ...	११४
महाराणा रायमल की पुत्री से विवाह ...	११४
जैसलमेर पर चढ़ाई ...	११५
नागोर के खान की सहायता के लिए जाना ...	११६
नारनोल पर चढ़ाई और लूणकर्ण का मारा जाना ...	११७
संतति ...	११६
राव लूणकर्ण का व्यक्तित्व ...	१२०
राव जैतसिंह ...	१२२
जन्म ...	१२२
बीदावत कल्याणमल का बीकानेर पर चढ़ आना ...	१२३
द्रोणपुर पर चढ़ाई ...	१२३
सिंहाणकोट के जोहियों पर आक्रमण ...	१२४
फछवाहा सांगा की सहायता करना ...	१२४

विषय	पृष्ठांक
जोधपुर के राव गांगा की सहायता करना ...	१२६
कामरां से युद्ध ...	१२६
राव मालदेव की बीकानेर पर चढ़ाई और जैतसिंह का मारा जाना	१३२
सन्तति ...	१३६
राव जैतसी का व्यक्तित्व ...	१३७

पाँचवाँ अध्याय

Most 9. ~~✓~~ राव कल्याणमल से महाराजा सूरसिंह तक

राव कल्याणमल (कल्याणसिंह) ...	१३६
जन्म ...	१३६
कल्याणमल का सिरसा में रहना ...	१३६
शेरशाह की राव मालदेव पर चढ़ाई ...	१४०
रावत किशनसिंह का बीकानेर पर अधिकार करना	१४४
राव मालदेव का भागना और शेरशाह का जोधपुर पर अधिकार	१४४
शेरशाह का कल्याणमल को बीकानेर का राज्य देना	१४६
कल्याणमल के भाई ठाकुरसी का भटनेर लेना ...	१४७
ठाकुरसी की अन्य विजय ...	१४८
कल्याणमल का जयमल की सहायतार्थ सेना भेजना	१४८
हजीख़ां की सहायतार्थ सेना भेजना ...	१५२
खानख़ाना बैरामख़ां का बीकानेर में आकर रहना ...	१५३
बादशाह की सेना की भटनेर पर चढ़ाई	
और ठाकुरसी का मारा जाना ...	१५४
बादशाह का बाघा को भटनेर देना ...	१५४
कल्याणमल का नागौर में बादशाह के पास जाना ...	१५५
कल्याणमल की मृत्यु ...	१५६
सन्तति ...	१५६

विषय	पृष्ठांक
पृथ्वीराज	१५७
राव कल्याणमल का व्यक्तित्व	१६१
महाराजा रायसिंह	१६२
जन्म और गद्दीनशीनी	१६२
अकबर का रायसिंह को जोधपुर देना	१६४
रायसिंह की इब्राहीम हुसेन मिर्जा पर चढ़ाई	१६७
रायसिंह का बादशाह के साथ गुजरात को जाना	१६६
बादशाह का रायसिंह को चन्द्रसेन पर भेजना	१७०
बादशाह का रायसिंह को देवड़ा सुरताण पर भेजना	१७२
रायसिंह का काबुल पर जाना	१७४
रायसिंह का राव सुरताण से आधी सिरोही लेना	१७६
रायसिंह का बलूचियों पर भेजा जाना	१७७
रायसिंह की लाहौर में नियुक्ति	१७८
काश्मीर में रायसिंह के चाचा शृंग का काम आना	१७८
रायसिंह का नया क़िला बनवाना	१७९
रायसिंह के भाई अमरा का विद्रोही होना	१८०
रायसिंह का खानखाना की सहायतार्थ भेजा जाना	१८१
रायसिंह के जामाता वीरभद्र की मृत्यु	१८२
रायसिंह का दक्षिण में जाना	१८३
अकबर का रायसिंह को जूनागढ़ का प्रदेश आदि देना	१८४
अकबर की रायसिंह से अप्रसन्नता तथा बाद में उसे फिर सोरठ देकर दक्षिण भेजना	१८४
दुलपत का भांगकर बीकानेर जाना	१८६
अकबर का रायसिंह को नागौर आदि परगने देना	१८६
रायसिंह की नासिक में नियुक्ति	१८६
रायसिंह का आंतरी में रहना	१८७

विषय

पृष्ठांक

रायसिंह का बादशाह की नाराज़गी दूर होने पर दरबार में जाना	१८८
रायसिंह की सलीम के साथ मेवाड़ की चढ़ाई के लिए नियुक्ति	१८८
रायसिंह को परगना शम्साबाद मिलना	१८९
बादशाह की बीमारी पर रायसिंह का बुलवाया जाना	
तथा बादशाह की मृत्यु	१८९
रायसिंह के मनसब में वृद्धि	१९०
रायसिंह का बादशाह की आज्ञा के बिना बीकानेर जाना	१९०
शाही सेना-द्वारा दलपत की पराजय	१९१
रायसिंह का शाही सेवा में उपस्थित होना	१९२
दलपत का खानजहाँ की शरण में जाना	१९२
ख्यातें और रायसिंह	१९३
रायसिंह की मृत्यु	१९४
विवाह तथा सन्तति	१९६
रायसिंह का शाही सम्मान	१९७
रायसिंह की दानशीलता और विद्यानुराग	२०१
महाराजा रायसिंह का व्यक्तित्व	२०३
४ महाराजा दलपतसिंह	२०४
जन्म	२०४
जहांगीर का दलपतसिंह को टीका देना	२०६
दलपतसिंह का पटना भेजा जाना	२०६
दलपतसिंह का चूडेहर में गढ़ बनवाने का असफल प्रयत्न	२०७
दलपतसिंह का सूरसिंह की जागीर ज़ब्त करना	२०८
जहांगीर का सूरसिंह को बीकानेर का मनसब देना	२०८
दलपतसिंह का हारना और कैद होना	२०९
जहांगीर-द्वारा दलपतसिंह का मरवाया जाना	२०९
ख्यातें और दलपतसिंह की मृत्यु	२१०

विषय	पृष्ठांक
महाराजा सूरसिंह	२११
जन्म और गद्दीनशीनी	२११
कर्मचन्द्र के पुत्रों को मरवाना	२११
पिता के साथ विश्वासघात करनेवालों को मरवाना	२१२
सूरसिंह का खुर्रम पर भेजा जाना	२१३
सूरसिंह के मनसब में वृद्धि	२१४
सूरसिंह का काबुल भेजा जाना	२१५
सूरसिंह का ओरछे पर जाना	२१६
सूरसिंह का खानजहां पर भेजा जाना	२१८
सूरसिंह का खानजहां पर दूसरी बार भेजा जाना	२१९
सूरसिंह का जैसलमेर में राजकुमारी न व्याहने की प्रतिज्ञा करना	२२०
सूरसिंह और उसके नाम के शाही फ़रमान	२२०
सूरसिंह की मृत्यु	२२७
संतति	२२८

छठा अध्याय

महाराजा कर्णसिंह से महाराजा सुजानसिंह तक

महाराजा कर्णसिंह	२२९
जन्म और गद्दीनशीनी	२२९
कर्णसिंह को मनसब मिलना	२२९
कर्णसिंह का बादशाह को एक हाथी भेंट करना	२३०
कर्णसिंह का फ़तहख़ां पर भेजा जाना	२३०
कर्णसिंह और पेरेंडे की चढ़ाई	२३३
कर्णसिंह का विक्रमाजित का पीछा करना	२३६
कर्णसिंह का शाहजी पर भेजा जाना	२३७
कर्णसिंह का अमरसिंह पर फ़ौज भेजना	२३८

विषय	पृष्ठांक
कर्णसिंह की पूगल पर चढ़ाई ...	२४०
पूगल का बंटवारा करना ...	२४१
कर्णसिंह के मनसब में वृद्धि ...	२४१
कर्णसिंह की जवारी पर चढ़ाई ...	२४१
कर्णसिंह की दक्षिण में नियुक्ति ...	२४२
कर्णसिंह का चांदा के ज़मींदार पर भेजा जाना ...	२४४
कर्णसिंह को जंगलधर बादशाह का खिताब मिलना	२४४
बादशाह का कर्णसिंह को औरंगाबाद भेजना	
तथा उसकी जागीर अनूपसिंह को देना ...	२४७
मृत्यु ...	२४६
राणियां तथा संतति ...	२५०
महाराजा कर्णसिंह का व्यक्तित्व ...	२५१
महाराजा अनूपसिंह ...	२५३
जन्म और गद्दीनशीनी ...	२५३
अनूपसिंह का दक्षिण में भेजा जाना ...	२५४
अनूपसिंह को बादशाह की तरफ़ से महाराजा का खिताब मिलना	२५६
महाराजा राजसिंह का हाथी, घोड़े और सिरोपाव भेजना	२५६
अनूपसिंह का दिलेरखां के साथ दक्षिण में रहना ...	२५६
अनूपसिंह की औरंगाबाद में नियुक्ति ...	२६०
आदुणी के विद्रोहियों का दमन करना ...	२६०
भाटियों पर विजय और अनूपगढ़ का निर्माण ...	२६०
खारबारा का अन्तर-कलह ...	२६२
महाराजा अनूपसिंह का जोधपुर का राज्य अजीतसिंह को	
दिलाने के लिए बादशाह से निवेदन करना ...	२६३
बनमालीदास को मरवाना ...	२६३
अनूपसिंह का मोरोपन्त पर भेजा जाना ...	२६५

विषय	पृष्ठांक
धीजापुर की चढ़ाई और अनूपसिंह ...	२६६
औरंगज़ेब की गोलकुंडे पर चढ़ाई ...	२६६
ख्यात और गोलकुंडे की चढ़ाई ...	२७१
अनूपसिंह की आदूणी में नियुक्ति ...	२७२
विवाह और सन्तति ...	२७२
अनूपसिंह की मृत्यु ...	२७३
महाराजा के भाइयों की वीरता ...	२७४
केसरीसिंह ...	२७४
पद्मसिंह ...	२७५
मोहनसिंह ...	२७८
अनूपसिंह का विद्यानुराग ...	२८०
महाराजा अनूपसिंह का व्यक्तित्व ...	२८८
महाराजा स्वरूपसिंह ...	२९१
जन्म, गद्दीनशीनी तथा दक्षिण में नियुक्ति ...	२९१
स्वरूपसिंह की माता का कई मुसाहबों को मरवाना ...	२९२
ललित का सुजानसिंह से मिल जाना ...	२९३
स्वरूपसिंह की मृत्यु ...	२९३
महाराजा सुजानसिंह ...	२९४
जन्म और गद्दीनशीनी ...	२९४
सुजानसिंह का दक्षिण जाना ...	२९४
अजीतसिंह की बीकानेर पर चढ़ाई ...	२९४
महाराजा सुजानसिंह का धरसलपुर विजय करना ...	२९७
सुजानसिंह का डूंगरपुर में विवाह करना ...	२९७
तथा लौटते समय उदयपुर ठहरना ...	२९७
मुगल साम्राज्य की परिस्थिति और ...	
सुजानसिंह का स्वयं शाही सेवा में न जाना ...	२९७

विषय	पृष्ठांक
महाराजा अजीतसिंह का महाराजा सुजानसिंह	
को पकड़ने का प्रयत्न करना ...	२९६
विद्रोही भट्टियों को दबाना ...	२९६
सुजानसिंह और उसके पुत्र जोरावरसिंह में मनमुटाव होना	३००
जोरावरसिंह का जैमलसर के भाटियों पर जाना ...	३००
बख्तसिंह को नागौर मिलना ...	३०१
बख्तसिंह की बीकानेर पर चढ़ाई ...	३०२
बीकानेर पर फिर अधिकार करने का	
बख्तसिंह का विफल षड्यन्त्र ...	३०३
विवाह तथा सन्तति ...	३०५
सुजानसिंह की मृत्यु ...	३०५

सातवाँ अध्याय

महाराजा जोरावरसिंह से महाराजा प्रतापसिंह तक

महाराजा जोरावरसिंह ...	३०७
जन्म तथा गद्दीनशीनी ...	३०७
बीकानेर के इलाक़े से जोधपुर के थाने उठाना ...	३०७
बख्तसिंह तथा जोरावरसिंह में मेल का सूत्रपात ...	३०७
चूरू के ठाकुर को निकालना ...	३०८
भाटी सूरसिंह की पुत्री से विवाह तथा पलू के राव को दंड देना	३०८
अभयसिंह की बीकानेर पर चढ़ाई ...	३०६
जोधियों से भटनेर लेना ...	३१०
अभयसिंह की बीकानेर पर दूसरी चढ़ाई ...	३११
जोरावरसिंह का जयसिंह से मिलना ...	३१६
साईदासोतों का दमन करना ...	३१६
जोरावरसिंह का चूरू पर अधिकार करना ...	३१७

विषय	पृष्ठांक
जयसिंह पर बख्तसिंह की चढ़ाई ...	३१८
जोरावरसिंह का जयपुर जाना ...	३१९
जोरावरसिंह का हिसार पर अधिकार करने का विचार करना	३१९
जोरावरसिंह का चांदी की तुला करना तथा सिरह पर अधिकार करना ...	३२०
गूजरमल की सहायता तथा चंगोई, हिसार, फ़तेहाबाद पर अधिकार करना ...	३२०
मृत्यु ...	३२०
महाराजा जोरावरसिंह का व्यक्तित्व ...	३२१
महाराजा गजसिंह ...	३२२
गजसिंह को गद्दी मिलना ...	३२२
जोधपुर की सहायता से अमरसिंह की बीकानेर पर चढ़ाई	३२३
उपद्रवी बीदावतों को मरवाना ...	३२६
गजसिंह का बख्तसिंह की सहायता को जाना ...	३२६
बीकानपुर पर गजसिंह का अधिकार होना ...	३२७
भीमसिंह का आकर क्षमाप्रार्थी होना ...	३२८
वीकमपुर पर रावल अखसिंह का अधिकार होना ...	३२८
बख्तसिंह की सहायता को जाना ...	३२९
अमरसिंह से रिणी छुड़ाना ...	३३०
बख्तसिंह की सहायतार्थ जाना ...	३३१
दूसरी बार बख्तसिंह की सहायता करना ...	३३१
बख्तसिंह को जोधपुर का राज्य दिलाना ...	३३२
गजसिंह का जैसलमेर में विवाह ...	३३३
शेखावतों का दमन करना ...	३३३
बख्तसिंह की सहायता को जाना ...	३३४
बादशाह की तरफ़ से गजसिंह को हिसार का परगना मिलना	३३४

विषय	पृष्ठांक
यशसिंह की मृत्यु	३३४
बादशाह की तरफ से गजसिंह को मनसब मिलना ...	३३५
विजयसिंह की सहायतार्थ जाना	३३७
विजयसिंह का बीकानेर पहुंचना तथा वहां से गजसिंह के साथ जयपुर जाना	३३६
जयपुर के माधोसिंह का विजयसिंह पर चूक करने का निष्फल प्रयत्न	३४१
विजयसिंह को जोधपुर वापस मिलना	३४१
सांखू के ठाकुर को कैद करना	३४२
विद्रोही सरदारों का दमन करना	३४२
बीकानेर में दुर्भिक्ष पड़ना	३४२
नारणोतों, बीदावतों आदि को अधीन करना	३४३
विद्रोही लालसिंह को अधीन करना	३४३
रावतसर पर चढ़ाई	३४४
भट्टियों की सहायतार्थ सेना भेजना	३४४
बादशाह का सिरसा में जाना	३४५
नौहर के गढ़ का निर्माण	३४५
जोधपुर को आर्थिक सहायता देना	३४५
बीदावतों पर कर लगाना	३४५
विजयसिंह की सहायतार्थ खीवसर जाना	३४६
महाजन की जागीर भीमसिंह के पुत्रों में बांटना ...	३४६
भट्टी हुसेन पर सेना भेजना	३४७
अनूपगढ़ तथा मौजगढ़ पर चढ़ाई	३४७
पूगल के रावल और रावतसर के रावत को दंड देना	३४८
जोहियों और दाउद-पुत्रों से लड़ाई	३४८
कुछ सरदारों से नाराजगी होना	३४९

विषय	पृष्ठांक
वक्तावरसिंह को पुनः दीवान बनाना	३५०
राजगढ़ बसाने का निश्चय तथा अजीतपुर के ठाकुर को दंड देना	३५०
विजयसिंह के जाटों से मिल जाने के कारण माधोसिंह का पक्ष ग्रहण करने का निश्चय	३५०
माधोसिंह की सहायतार्थ सेना भेजना एवं उसके स्वर्गवास होने पर मेढ़ते जाना	३५१
सिरसा और फ़तेहाबाद पर सेना भेजना तथा पौत्री का विवाह	३५१
गोडवाड़ के सम्बन्ध में गजसिंह का समझौते का प्रयत्न	३५२
विद्रोही ठाकुरों पर सेना भेजना	३५४
भट्टियों का फिर विद्रोह करना	३५५
राजसिंह के विद्रोह में वक्तावरसिंह की गुप्त सहायता	३५५
वक्तावरसिंह की मृत्यु पर उसके पुत्र का दीवान होना	३५६
कुंवर राजसिंह का जोधपुर जाकर रहना	३५७
पुरोहित गोवर्धनदास का नागौर दिलाने के लिए गजसिंह को लिखना	३५७
गजसिंह का राजसिंह को बुलाकर कैद करवाना	३५७
विवाह और सन्तति	३५८
मृत्यु	३५८
महाराजा गजसिंह का व्यक्तित्व	३५९
महाराजा राजसिंह	३६१
जन्म तथा गद्दीनशीनी	३६१
महाराजा के भाई सुलतानसिंह आदि का धीकानेर छोड़कर जाना	३६१
महाराजा का देहांत	३६२
महाराजा प्रतापसिंह	३६४
टॉड और प्रतापसिंह	३६४

चित्र-सूची

संख्या	नाम	पृष्ठाङ्क
१	राव बीका	समर्पण पत्र के सामने
२	गंग नहर	७
३	कोट दरवाज़ा, बीकानेर	४२
४	श्री लक्ष्मीनारायणजी का मंदिर, बीकानेर	४३
५	बीकानेर का क़िला और सूर सागर	४४
६	अनूप महल	४५
७	कर्ण महल	४६
८	लालगढ़ महल	४७
९	कोड़मदेसर	५०
१०	हूंगरनिवास महल, गजनेर	५१
११	करणीजी का मंदिर, देशणोक	५२
१२	बीकानेर नगर का दृश्य	६६
१३	राव जैतसी	१२२
१४	महाराजा रायसिंह	१६२
१५	महाराजा कर्णसिंह	२२६
१६	महाराजा गजसिंह	३२२



राजपूताने का इतिहास

पांचवीं जिल्द, पहला भाग

बीकानेर राज्य का इतिहास

पहला अध्याय

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

बीकानेर राज्य का पुराना नाम 'जांगलदेश' था। इसके उत्तर में कुरु और मद्र देश थे, इसलिए महाभारत में जांगल नाम कहीं अकेला और कहीं कुरु और मद्र देशों के साथ जुड़ा हुआ मिलता है। महाभारत में बहुधा ऐसे देशों के नाम समास में दिये हुए पाये जाते

(१) जांगलदेश के लक्षण ये बतलाये गये हैं—

जिस देश में जल और घास कम होती हो, वायु और धूप की प्रबलता हो और अन्न आदि बहुत होता हो उसको जांगल देश जानना चाहिये (स्वल्पोदकतृणो यस्तु प्रवातः प्रचुरातपः । स ज्ञेयो जांगलो देशो बहुधान्यादिसंयुतः ॥)

(राजदण्डकल्पद्रुम, काण्ड २, पृ० ५२६) ।

भावप्रकाश में लिखा है—जहां आकाश स्वच्छ और उन्नत हो, जल और वृक्षों की कमी हो और शमी (खेजड़ा), कैर, बिल्व, आक, पीलु और बैर के वृक्ष हों उसको जांगल देश कहते हैं (आकाशशुभ्रउच्चश्च स्वल्पपानीयपादपः । शमीकरीरविल्वार्कपीलुर्कैर्धुसंकुलः ॥ देशो वातालो जांगलः स्मृतः)

(वही; पृ० ५२६) ।

इन लक्षणों से सामान्य रूप से राजपूताना के बालूवाले प्रदेश का नाम 'जांगलदेश' होना अनुमान किया जा सकता है ।

(२) कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णाकाः ।

हैं, जो परस्पर मिले हुए होते हैं, जैसे 'कुरुपांचालाः', 'माद्रेयजांगलाः', 'कुरुजांगलाः' आदि। इनका आशय यही है कि कुरु देश से मिला हुआ 'पांचाल देश,' मद्र देश से मिला हुआ 'जांगल देश' कुरु देश से मिला हुआ 'जांगल देश' आदि। वीकानेर के राजा जांगल देश के स्वामी होने के कारण अब तक 'जंगलधर बादशाह' कहलाते हैं, जैसा कि उनके राज्यचिह्न के लेख से पाया जाता है^१।

(महाभारत; भीष्मपर्व, अध्याय ६, श्लोक १६—कुंभकोणं संस्करण)।

पैत्र्यं राज्यं महाराज कुरुवस्ते स जाङ्गलाः ॥

(वही; उद्योगपर्व, अध्याय १४, श्लो० ७)।

(१ और २) तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः ॥

(वही; भीष्मपर्व, अ० ६, श्लो० ३६)।

(३) तीर्थ यात्रामनुक्रामन्प्राप्तोऽस्मि कुरुजांगलान् ॥

(वही; वनपर्व, अ० १०, श्लो० ११)।

ततः कुरुश्रेष्ठमुपैत्य पौराः प्रदक्षिणं चक्रुरदीनसत्त्वाः ।

तं ब्राह्मणाश्चाभ्यवदन्प्रसन्ना मुख्याश्च सर्वे कुरुजाङ्गलानाम् ॥

स चापि तानभ्यवदत्प्रसन्नः सहैव तैर्भातृभिर्धर्मराजः ।

तस्थौ च तत्राधिपतिर्महात्मा दृष्ट्वा जनौघं कुरुजाङ्गलानाम् ॥

(वही; वनपर्व, अ० २३, श्लो० १-६)।

(४) मद्र देश—पंजाब का वह हिस्सा, जो चनाब और सतलज नदियों के बीच में है ।

(इंडियन ऐंटिकेरी; जि० ४०, पृ० २८)।

इस समय वीकानेर राज्य (जांगल) का उत्तरी हिस्सा मद्र देश से नहीं मिलता, परन्तु संभव है कि प्राचीनकाल में या तो मद्र देश की सीमा दक्षिण में अधिक दूर तक हो या जांगल की उत्तरी सीमा उत्तर में मद्र देश से जा मिलती हो ।

(५) वीकानेर राज्य के राज्यचिह्न में 'जय जंगलधर बादशाह' लिखा रहता है ।

राठोड़ों के अधिकार से पूर्व बीकानेर का दक्षिणी हिस्सा, जो वर्तमान जोधपुर राज्य के उत्तर में है, 'जांगलू' नाम से प्रसिद्ध था, वह सांखले परमारों के अधीन था और उसका मुख्य नगर 'जांगलू' कहलाता था तथा अब तक वह स्थान उसी नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीनकाल में जांगल देश की सीमा के अन्तर्गत सारा बीकानेर राज्य और उसके दक्षिण के जोधपुर राज्य का बहुत कुछ अंश था। मध्यकाल में उस देश की राजधानी 'अहिच्छत्रपुर' थी, जिसको इस समय 'नागौर' कहते हैं और जो

(१) अहिच्छत्रपुर नाम के एक से अधिक नगरों का होना हिन्दुस्तान में पाया जाता है। उत्तरी पांचाल देश की राजधानी अहिच्छत्र थी, जिसका वर्णन चीनी यात्री ह्वेन्त्संग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सी-यु-की' में किया है (बील; बुद्धिस्ट रेकर्ड्स ऑफ़ दि वेस्टर्न वर्ल्ड; जि० १, पृ० २००)। जैन लेखक जांगलदेश की राजधानी अहिच्छत्र बतलाते हैं (इ० ऐं०; जि० ४०, पृ० २८)। कर्नेल टॉड-के गुरु-यति-ज्ञानचन्द्र के संग्रह (मांडज, मेवाद) में मुझे एक सूची २५ देशों तथा उनकी राजधानियों की मिली, जिसमें भी जांगलदेश की राजधानी अहिच्छत्र लिखी है। भैरवमल्ल के शिलालेख में सिंधुदेश में अहिच्छत्रपुर नामक नगर का होना लिखा है (एपि० इ०; जि० ३, पृ० २३५)। इसी तरह और भी अहिच्छत्र नाम के नगरों का उल्लेख मिलता है (बंबई गैज़ेटियर; जि० १, भा० २, पृ० ५६०, टिप्पण ११)।

(२) जोधपुर राज्य के नागौर नगर को जांगलदेश की राजधानी अहिच्छत्रपुर मानने का पहला कारण तो यह है कि नागौर 'नागपुर' का प्राकृत रूप है। नागपुर का अर्थ—'नाग का नगर' और अहिच्छत्रपुर का अर्थ—'नाग है छत्र जिस नगर का'—है। 'नाग' और 'अहि' दोनों एक ही आशय (सांप) के सूचक हैं। संस्कृत-लेखक नामों का उल्लेख करने में उनके पर्याय शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से करते हैं। पुराणों में विशेषकर हस्तिनापुर नाम मिलता है, परन्तु भागवत में उसके स्थान में 'गजसाह्वयपुर' (भागवत, १। ८। ४५; ४। ३१। ३०; १०। ५७। ८) या 'गजाह्वय-पुर' (भागवत, १। ६। ४८; १। १५। ३८) नाम भी है। महाभारत में हस्तिनापुर के लिए 'नागसाह्वयपुर' (७। १। ८; १४। ६५। २०) और 'नागपुर' ५। १४७। ५। नामों का प्रयोग मिलता है, क्योंकि हस्ती, नाग और गज तीनों एक ही अर्थ के सूचक हैं। दूसरा कारण यह है कि चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ (ई० स० ११७० ता० ५ फरवरी) के बीजोत्थां (उदयपुर राज्य) के चट्टान पर के लेख में चौहान राजा सामंत का अहिच्छत्रपुर में राज करना लिखा है (विप्र-

अब जोधपुर राज्य के अन्तर्गत है। जांगलदेश के उत्तरी भाग पर राठोड़ों का अधिकार होने के बाद जब से उसकी राजधानी बीकानेर स्थिर हुई तब से उक्त राज्य को बीकानेर राज्य कहने लगे।

बीकानेर राज्य राजपूताने के सब से उत्तरी हिस्से में $27^{\circ} 12'$ और $30^{\circ} 12'$ उत्तर अक्षांश और $72^{\circ} 12'$ से $74^{\circ} 41'$ पूर्व देशांतर के बीच फैला हुआ है। इसका कुल क्षेत्रफल २३३१७ स्थान और क्षेत्रफल वर्ग मील है।

बीकानेर राज्य के उत्तर में पंजाब का फ़ीरोजपुर ज़िला, उत्तर-पूर्व में हिसार ज़िला और उत्तर पश्चिम में भावलपुर राज्य; दक्षिण में जोधपुर; दक्षिण पूर्व में जयपुर और दक्षिण पश्चिम में जैसलमेर राज्य; पूर्व में हिसार और लोहार के परगने तथा पश्चिम में भावलपुर राज्य है। इसकी सबसे अधिक लम्बाई खक्ख़ा (Khakhhan) से साकंडा तक और चौड़ाई रामपुरा से बल्लर के कुछ आगे तक बराबर अर्थात् लगभग २०८ मील है।

इस राज्य में केवल सुजानगढ़ को छोड़कर और कहीं पर्वत-श्रेणियां नहीं हैं। ये पर्वत-श्रेणियां दक्षिण में जोधपुर और जयपुर की सीमाओं के निकट स्थित हैं। इनमें से मुख्य पर्वत-श्रेणियां गोपालपुरा के पास की पहाड़ी समुद्र की सतह से

श्रीवत्सगोत्रेभूदहिच्छत्रपुरे पुरा । सामंतोनंतसामंतः पूर्णतल्ले नृपस्ततः) ॥ (श्लोक १२) । पृथ्वीराजविजयमहाकाव्य से पाया जाता है—'वासुदेव (सामंत का पूर्वज) शिकार को गया जहां एक विद्याधर की कृपा से शाकंभरी (सांभर) की भील उसको नज़र आई (सर्ग ४) ।' इससे पाया जाता है कि सांभर की भील चौहानों की मूल राजधानी अहिच्छत्रपुर से बहुत दूर न थी, ऐसी दशा में नागौर ही अहिच्छत्रपुर हो सकता है।

(१) पाउलेट ने क्षेत्रफल २३५०० (पा० गै०; पृ० ६१) और अर्सकिन ने २३३११ (बीकानेर राज्य का गैज़ेटियर; पृ० ३०६) वर्गमील दिया है। इस अन्तर का कारण यह है कि गुंजाल का हिस्सा दो मील मुरब्बा और दक्षिण के तीन गांवों के बदले में दो नवीन गांव बीकानेर राज्य में मिला जाने से वर्ग मील की संख्या बढ़ गई है।

१६५१ फुट ऊंची है अर्थात् आसपास की समतल भूमि से इसकी ऊंचाई केवल ६०० फुट के करीब ही है।

राज्य का दक्षिणी और पूर्वीभाग वागड़^१ नाम की विशाल मरुभूमि का और कुछ उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी भाग भारत की मरुभूमि का अंश है।

जमीन की बनावट

राज्य का केवल उत्तरपूर्वी भाग ही उपजाऊ है। राज्य का अधिकांश हिस्सा रेत के टीलों से भरा है, जो २० फुट से लेकर कहीं-कहीं सौ फुट तक ऊंचे हो जाते हैं। यह कहा जा सकता है कि एक प्रकार से यहां की भूमि सूखी और किसी प्रकार ऊजड़ ही है। वर्षा ऋतु में घास उग आने पर यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य देखने योग्य होता है। एलफिन्स्टन ने, जो ई० स० १८०८ में काबुल जाते समय इस राज्य से गुजरा था, लिखा है—“राजधानी (बीकानेर) से थोड़ी दूर पर ही भूमि का ऐसा सूखा भाग मिलता है जैसा कि अरेबिया के सबसे ऊजड़ हिस्सों में। लेकिन बरसात में या ठीक उसके बाद ही इसकी फाया पलट हो जाती है। यहां कि भूमि उस समय उत्तम हरी घास से ढककर एक विशाल चरागाह बनजाती है।”

यहां पर सालभर बहनेवाली नदी एक भी नहीं है। केवल दो नदियां ऐसी हैं, जो वर्षा ऋतु में बीकानेर राज्य में प्रवेशकर इसके कुछ हिस्सों में जल पहुंचाती हैं।

काटली—यह वास्तव में जयपुर राज्य की सीमा में बहती है। उक्त राज्य के खंडेला के पास की पहाड़ियों से निकलकर उत्तर की तरफ शेखावाटी में लगभग साठ मील तक बहती हुई यह नदी बीकानेर राज्य में प्रवेश करती है। अच्छी वर्षा होने पर यह राजगढ़ तहसील के दक्षिणी हिस्से में १० से १६ मील (वर्षा न्यून या अधिक होने के अनुसार) तक बहकर रेतीले प्रदेश में लुप्त हो जाती है।

(१) ‘वागड़’ शब्द गुजराती भाषा के ‘वगड़ा’ से मिलता हुआ है, जिसका अर्थ ‘जंगल’ अर्थात् कम आबादीवाला प्रदेश होता है। अब भी डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्य तथा कच्छ का एक भाग ‘वागड़’ कहलाता है।

घग्गर (हाकड़ा)—इसका उद्गम-स्थान सिरमोर राज्य के अन्तर्गत हिमालय पर्वत के नीचे का ढलुआ भाग है। पटियाला राज्य और हिसार जिले में बहकर यह टीबी के निकट बीकानेर राज्य में प्रवेश करती है। यह प्राचीन काल में इस राज्य के उत्तरी भाग में बहती हुई सिन्धु (Indus) नदी से जा मिलती थी^१, पर अब यह वर्षा ऋतु को छोड़कर सदा सूखी रहती है और इस समय भी यह हनुमानगढ़ के पश्चिम एक दो मील से अधिक आगे नहीं जाती।

जब सदर्न पंजाब रेल्वे के जरवाल नामक स्टेशन के पास बांध बांधकर इस नदी से एक नहर निकाली गई तो बीकानेर राज्य में इसका पानी आना बन्द हो गया। राज्य-द्वारा इसकी कई बार शिकायत होने पर ई० स० १८६६ में अंग्रेज़ सरकार और राज्य के सम्मिलित खर्च से धनूर झील के निकट ओट्टू (Otu) नामक स्थान में बांध बांधकर उससे दोनों तरफ़ नहरें ले जाने का प्रबन्ध हुआ। ये नहरें ई० स० १८६७ में बनकर सम्पूर्ण हुई। बीकानेर की सीमा के भीतर उत्तर एवं दक्षिण की तरफ़ की नहरों की लम्बाई ५३½ मील है। इन नहरों के बनवाने में कुल छः लाख रुपये खर्च हुए, जिसमें से लगभग आधा बीकानेर राज्य को देना पड़ा। अधिकांश पानी अंग्रेज़ी अमलदारी में ले लिये जाने से राज्य के भीतर की सिंचाई का औसत कम रहा। फिर भी बार-बार लिखा-पढ़ी होने के फल-स्वरूप ई० स० १९३१ में राज्य की पहले से अधिक अर्थात् ७११२ एकड़ भूमि घग्गर नहर-द्वारा सिंची गई थी।

राजपूताने के राज्यों में केवल बीकानेर में ही नहरों-द्वारा सिंचाई का प्रबन्ध किया गया है। घग्गर (हाकड़ा) की नहर नहरें का उल्लेख ऊपर आ चुका है।

पश्चिमी यमुना नहर—पहले इस नहर का एक अंश 'फ़ीरोजशाह

(-१-) इसके प्राचीन सूखे मार्ग का अब भी पता चलता है। पहले यह राज्य में प्रवेश करने के बाद सूरतगढ़, अनूपगढ़ आदि स्थानों के पास से होती हुई भावलपुर राज्य के मिनचिनाबाद इलाके से गुज़रकर सिन्धु से जा मिलती थी।

गंग नहर



नहर' के नाम से प्रसिद्ध था, जिससे बीकानेर राज्य में २० मील तक सिंचाई का कार्य होता था। बीच में इस राज्य में इस नहर का पानी आना बन्द कर दिया गया। बहुत प्रयत्न करने के बाद भाद्रा तहसील की ४६० एकड़ भूमि इससे सींची जाने की अनुमति पंजाब सरकार ने दी है।

गंग नहर—कई वर्षों की लिखा पढ़ी के बाद पंजाब, भावलपुर और बीकानेर राज्यों के बीच सतलज नदी से नहर काटकर बीकानेर राज्य में लेजाने के सम्बन्ध में ई० स० १९२० ता० ४ सितम्बर (वि० सं० १९७७ भाद्रपद वदि ६) को एक इक्तरारनामा हुआ, जिसके अनुसार नहर बनकर सम्पूर्ण होने पर ई० स० १९२७ ता० २६ अक्टोबर (वि० सं० १९८४ कार्तिक सुदि १) को भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड इर्विन-द्वारा बड़े समारोह के साथ इसका उद्घाटन करवाया गया।

गंगनहर फ़ीरोजपुर कैंटोन्मेंट के पास सतलज से निकाली गई है और पंजाब में होती हुई खख्खं के पास यह बीकानेर राज्य में प्रवेश करती है। राज्य में प्रवेश करने के बाद शिवपुर, गंगानगर, जोरावरपुर, पद्मपुर, रायसिंहनगर और सरूपसर के पास होती हुई यह अनूपगढ़ तक आई है तथा इसकी शाखा-प्रशाखाएं पश्चिमी भाग में दूर-दूर तक फैली हुई हैं। मुख्य नहर की लम्बाई फ़ीरोजपुर से शिवपुर तक ८५ मील है और राज्य के भीतर की प्रमुख नहर तथा इसकी शाखा-प्रशाखाओं की कुल लम्बाई ५६६ मील है। इसके बनवाने में राज्य के लगभग ३ करोड़ रुपये खर्च हुए हैं। आरम्भ की पांच मील की लम्बाई को छोड़कर शिवपुर तक (८० मील) यह नहर सीमेंट से पक्की बनी हुई है। सीमेंट से पक्की बनी हुई इतनी लम्बी नहर संसार में दूसरी कोई नहीं है। ई० स० १९३०-३१ में खरीफ़ और रबी की सम्मिलित फ़सलों में ३५१२४७ एकड़ भूमि इसके द्वारा सींची गई थी। इसके बन जाने से राज्य का कितना एक उत्तरी प्रदेश उपजाऊ हो गया है, जिससे राज्य की आय में भी पर्याप्त वृद्धि हो गई है। वर्तमान नरेश महाराजा सर गंगासिंहजी का यह भगीरथ प्रयत्न राज्य के लिए बड़ा लाभदायक हुआ है, क्योंकि इससे प्रजा का हित होने के साथ

ही राज्य की प्रति वर्ष अनुमान तीस लाख रुपये खर्च निकालकर आय बढ़ी है। नहर-द्वारा सींची जानेवाली पड़त भूमि का मालिकाना हक आदि बँचने की आय अनुमान साढ़े पाँच करोड़ रुपये कूँती गई है, जिसमें से ई० स० १९३१ तक ढाई करोड़ से कुछ अधिक रुपये वसूल हो चुके हैं।

बीकानेर राज्य में बढ़ी भील कोई नहीं है। मीठे और खारे पानी
भीलें की छोटी छोटी भीलें नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—गजनेर—बीकानेर से २० मील दक्षिण-पश्चिम में यह मीठे पानी की भील उल्लेखनीय है। इसमें पश्चिम के ऊँचाईवाले प्रदेश से आया हुआ वर्षा का पानी जमा होता है और इसकी लंबाई चौड़ाई क्रमशः $\frac{1}{2}$ और $\frac{1}{4}$ मील है। इसका जल रोगोत्पादक है। ऐसा प्रसिद्ध है कि महाराजा गजसिंह के समय जोधपुरवालों की चढ़ाई होने पर उस (गजसिंह) ने इसमें विष डलवा दिया था, जिसका प्रभाव अब तक विद्यमान है और लगातार कुछ दिनों तक इसका जल सेवन करने से लोग बीमार पड़ जाते हैं। इसके पास ही महाराजा साहब के भव्य महल, मनोहर-उद्यान और शिकार की ओदियां (Shooting Boxes) बनी हुई हैं। यहां भड़-तीतर आदि पक्षियों की शिकार अधिकता से होती है। इस तालाब से कुछ दूर दूसरा बांध बांधा गया है, जिसमें से आवश्यकता होने पर जल इस भील में लेने की व्यवस्था की गई है।

२—कोलायत—गजनेर से १० मील दक्षिण-पश्चिम में कोलायत नामक पवित्र स्थान में एक और छोटी भील है, जो पुष्कर के समान पवित्र मानी जाती है। यह भी वर्षा के जल पर निर्भर है और कम वर्षा होने पर सूख भी जाती है। इसके किनारों पर मंदिर, धर्मशालाएं और पक्के घाट बने हुए हैं। यहां पर कपिलेश्वर मुनि का आश्रम था ऐसा माना जाता है और इसी से इसका माहात्म्य अधिक बढ़ गया है। कार्तिकी पूर्णिमा के अवसर पर होनेवाले मेले में नेपाल आदि दूर दूर के स्थानों के यात्री यहां आते हैं।

३—छापर—सुजानगढ़ ज़िले की इस खारे पानी की भील से पहले नामक बनाया जाता था, जो अंग्रेज़ सरकार के साथ के ई० स० १८७६

(वि० सं० १६३५) के इक्क़ारनामे के अनुसार अब बंद कर दिया गया है। यह लगभग छः मील लम्बी और दो मील चौड़ी भील है, परन्तु इसकी गहराई इतनी कम है कि उष्णकाल के प्रारम्भ में ही बहुत कुछ सूख जाती है।

४—लूणकरणसर—राजधानी से पचास मील उत्तर-पूर्व में खारे पानी की यह दूसरी भील है। यहां भी पहले नमक बनता था, पर अब बंद है।

इनके अतिरिक्त दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में मढ़ गांव के पास एक तालाब थोड़े समय पूर्व ही बनाया गया है, जिससे ५५० एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकती है। पिलाप गांव के पास भी नया तालाब बनाया गया है, जो गंगसरोवर कहलाता है। इस भील से कई हज़ार बीघा ज़मीन की सिंचाई होती है और वहां वर्तमान महाराजा साहय के नाम पर गंगापुरा नमक नवीन गांव बस गया है। कोड़मदेसर के तालाब का बांध नये सिरे से ऊंचा बनाया गया है और उसमें दो जगहों से जल लाने की नई व्यवस्था की गई है तथा वहां सुन्दर महल भी है।

यहां की जल-वायु सूखी, परन्तु अधिकतर आरोग्यप्रद है। गर्मी में अधिक गर्मी और सर्दी में अधिक सर्दी पड़ना यहां की विशेषता है।

जल-वायु

इसी कारण मई, जून और जुलाई मास में यहां 'लू' (गर्म हवा) बहुत ज़ोरों से चलती है, जिससे रेत के टीले उड़-उड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर लग जाते हैं। उन दिनों सूर्य की धूप इतनी असह्य हो जाती है कि यहां के देशवासी भी दोपहर को घर से बाहर निकलते हुए भय खाते हैं। कभी-कभी गर्मी बहुत बढ़ने पर लोगों की अकाल मृत्यु भी हो जाती है। बहुधा लोग घरों के नीचे के भाग में तहखाने बनवा लेते हैं, जो ठंडे रहते हैं और गर्मी की विशेषता होने पर वे उनमें चले जाते हैं। कड़ी ज़मीन की अपेक्षा रेत शीघ्रता से ठंडा हो जाता है, इसलिए गर्मी के दिनों में भी रात के समय यहां ठंडक रहती है।

शीतकाल में यहां इतनी सर्दी पड़ती है कि पेड़ और पौधे बहुधा

पाले के कारण नष्ट हो जाते हैं। ई० स० १८०८ के नवम्बर (वि० सं० १८६५ मार्गशीर्ष) मास में जब मॉनस्टुअर्ट एलिफन्स्टन काबुल जाता हुआ इधर से होकर गुज़रा था, उस समय सर्दी के कारण उसका बहुत नुक़सान हुआ। केवल एक दिन में नाथूसर में उसके तीस सिपाही बीमार पड़ गये और बीकानेर में एक सप्ताह में ४० आदमी अकाल मृत्यु के शिकार हुए। इसी प्रकार लेफ्टिनेंट बोइलो (Boileau) ने, जो ई० स० १८३५ (वि० सं० १८६१-६२) में यहां आया था, शीतकाल में कड़ी सर्दी का अनुभव किया। उसने देखा कि फ़रवरी मास में भी तालावों की सतह पर वरफ़ जम गई थी और उसके ख़ेमे के बर्तनों का पानी भी जम गया था। मई में उसने तथा उसके साथियों ने कड़ी गर्मी का अनुभव किया, परन्तु इस अवस्था में भी उसके साथ का एक भी आदमी बीमार न पड़ा।

उष्णकाल में बीकानेर राज्य में गर्मी कभी-कभी १२३° डिग्री तक पहुंच जाती है और सर्दी में ३१° डिग्री तक घट जाती है।

बीकानेर में रेगिस्तान की अधिकता होने से कुएं और छोटे-छोटे तालावों का महत्व बहुत अधिक है। जहां कहीं कुआं खोदने की सुविधा हुई अथवा पानी जमा होने का स्थान मिला, आरम्भ में वहां पर ही बस्ती बस गई। यही कारण है कि बीकानेर के अधिकांश स्थानों के नामों के साथ 'सर' जुड़ा हुआ मिलता है, जैसे कोड़मदेसर, नौरंगदेसर, लूणकरणसर आदि। इससे आशय यही है कि उन स्थानों में कुएं अथवा तालाव हैं। कुओं के महत्व का एक कारण यह भी है कि पहले जब भी इस देश पर आक्रमण होता था, तो आक्रमणकारी कुओं के स्थानों पर अपना अधिकार जमाने का सर्व-प्रथम प्रयत्न करते थे। अधिकतर कुएं यहां ३०० या उससे अधिक फुट गहरे हैं, जिनका पानी बहुधा सुखादु और स्वास्थ्यकर है। डाक्टर मूर को नाटवा नामक गांव में कुआं खुदवाते समय ४०० फुट नीचे पानी मिला था। कुछ स्थानों में कुएं बहुत कम गहरे अर्थात् २० फुट गहरे हैं। जयपुर राज्य की सीमा की तरफ़ पानी बहुधा अच्छा और आरोग्यप्रद मिलता है।

जैसलमेर को छोड़कर राजपूताने के अन्य राज्यों की अपेक्षा बीकानेर राज्य में सब से कम वर्षा होती है, जिसका कारण राज्य में पहाड़ों का अभाव है। ई० स० १६१२-१३ से लगा-
वर्षा कर १६३१-३२ के बीच राज्य की वर्षा का औसत १० इंच से कुछ अधिक रहा है। सब से अधिक जलवृष्टि बीकानेर के पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी भागों में भाद्रा, चूरु और सुजानगढ़ के आस-पास होती है। यहां का औसत १३ और १४ इंच के बीच है। इनके निकटवर्ती नौहर, राजगढ़, रतनगढ़ आदि स्थानों में औसत ११ और १२ इंच के बीच रहता है। राजधानी तथा राज्य के मध्यवर्ती भाग में वर्षा का औसत १० और ११ इंच के बीच है। सुदूर पश्चिमी हिस्से में अनूपगढ़ के आस-पास वर्षा सब से कम होती है। अधिक से अधिक यहां वर्षा ७ और ८ इंच के बीच होती है। शेष स्थानों में औसत ६ और १० इंच के बीच है। ई० स० १६१२ और १६३२ के बीच सब से अधिक वर्षा ई० स० १६१६-१७ में सुजानगढ़ में करीब ५० इंच और सब से कम वर्षा ई० स० १६१७-१८ में अनूपगढ़ में आधे इंच से कुछ अधिक हुई थी।

वर्षाकाल में बीकानेर राज्य का प्राकृतिक सौन्दर्य बढ़ जाता है। पानी बरस जाने पर अधिकांश स्थानों में हरियाली हो जाती है, जो देखते ही बनती है।

राज्य का अधिकांश हिस्सा अर्बली पर्वत के उत्तर और उत्तर-पश्चिम में फैली हुई अनुपजाऊ तथा जलविहीन मरुभूमि का ही एक अंश है। इसी प्रकार दक्षिणी, मध्यवर्ती एवं पश्चिमीय
भूमि और पैदावार भाग रेतीली भूमि का मैदान है, जिसके बीच में जगह-जगह रेत के टीले हैं, जो कहीं-कहीं बहुत ऊंचे हो गये हैं। राजधानी के दक्षिण-पश्चिम में मगरा नाम की पथरीली भूमि है जहां अच्छी वर्षा हो जाने पर किसी प्रकार अच्छी पैदावार हो जाती है। इसके उत्तर अर्थात् अनूपगढ़ के दक्षिण-पश्चिम में एक विशाल भू-भाग है, जिसे 'चितरंग' कहते हैं। कुदरती क्षार बहुतायत से होने के कारण यह भूमि भी खेती के

योग्य नहीं है। फिर भी यहां सजी और लाणा के पौधे अधिकता से होते हैं। घग्गर से परे राज्य का सब से उपजाऊ भाग मिलता है, क्योंकि उधर की भूमि क्रमशः उत्तर की तरफ अधिक समतल और कम रेतीली होती गई है। अनूपगढ़ और सूरतगढ़ के उत्तर की भूमि एक प्रकार की चिकनी मिट्टी की बनी है, जिसको लोग 'वर्गी' कहते हैं। 'काठी' भूमि हनुमानगढ़ के ऊपरी भाग से हितार तक फैली हुई है। इसका रंग कुछ पीलापन लिये हुए है और जल सोखने में अच्छी होने के कारण ठीक सिंचाई होने पर यहां उत्तम पैदावार हो सकती है। नौहर और भाद्रा तहसीलों की भूमि काफ़ी समतल और उपजाऊ है। राज्य के पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में मुख्य रेगिस्तान है।

राज्य के अधिकांश भागों में केवल एक ही फ़सल खरीफ़ की होती है और मुख्यतः बाजरा, मोठ, जवार, तिल और कुछ रुई की खेती की जाती है। रबी की फ़सल अर्थात् गेहूं, जौ, चना, सरसों आदि की पैदावार पहले सूरतगढ़ निज़ामत के उत्तरी और रिणी निज़ामत के पूर्वी भागों में ही सीमित थी, परन्तु अब हाकड़ा तथा गंगनहर के आ जाने से उधर दोनों फ़सलें होने लगी हैं। नहर से सींची जानेवाली भूमि में पंजाब की भांति गन्ना, रुई, गेहूं, मक्का आदि भी अब पैदा होने लगे हैं।

खरीफ़ की फ़सल यहां प्रमुख गिनी जाती है, क्योंकि अन्न इत्यादि के लिए लोग इसी पर निर्भर रहते हैं और इस फ़सल का औसत भी रबी की फ़सल से कई गुना अधिक है। यहां के गांव एक दूसरे से काफ़ी दूरी पर बसने के कारण एक बार खरीफ़ की फ़सल न होने से विशेष नुक़सान नहीं होता, जब तक कि उसके पहले भी लगातार कई बार क़हत न पड़ चुका हो।

बाजरा यहां की मुख्य पैदावार है, जो यहां बहुतायत से और अच्छी जात का होता है। इसके बाद मोठ है। गेहूं सुजानगढ़ के आस पास वर्षा के जल से तर होजानेवाली 'नाली' में और नहरों के क्षेत्रों में

होता है। कई स्थानों में कपास और सन की खेती होती है और भाद्रा, सुजानगढ़ तथा राजगढ़ की तहसीलों में हलकी जात का तमाखू भी पैदा होता है।

यहां के प्रमुख फल मतीरा (तरबूज) और ककड़ी हैं। मतीरा यहां अच्छी जाति का और बहुतायत से होता है तथा मौसिम के समय जानवरों तक को खिलाया जाता है। बड़े मतीरे तो वृत्त में ३ या ४ फुट तक के होते हैं। अब नहरों के आ जाने से जल की सुविधा हो जाने के कारण नारंगी, नींबू, अनार, अमरुद, केले आदि फल भी पैदा होने लगे हैं। शाकों में मूली, गाजर, प्याज आदि सरसता से उत्पन्न किये जाते हैं।

बीकानेर राज्य में कोई सघन जंगल नहीं है और जल की कमी के कारण पेड़ भी यहां कम हैं। साधारणतया यहां 'खेजड़ा' (शमी) के वृक्ष बहुतायत से होते हैं। उसकी फलियां, छाल तथा पत्तियां चीपाये खाते हैं। भीषण अकाल पड़ने पर कभी-कभी यहां के निर्धन लोग भी उन्हें खाते हैं। 'जाल' के वृक्षों की भी यहां विशेषता है, जो हनुमानगढ़ और सूरतगढ़ की तरफ बहुतायत से होते हैं। सूदसर और कई अन्य जगहों में नीम, शीशम तथा पीपल के पेड़ भी मिलते हैं। राजधानी में भी बेर और नीम आदि के पेड़ हैं। रेत के टीलों पर बबूल के पेड़ पाये जाते हैं, जिनका हनुमानगढ़ के पास घग्गर नदी के सूखे स्थल में करीब दस मील लम्बा और दो से चार मील तक चौड़ा एक विशाल जंगल है। रतनगढ़ आदि के आस-पास रोड़ड़ा के वृक्ष हैं। इसकी लकड़ी अच्छी होती है और पक्के मकानों के बनाने में काम में आती है।

छोटी जाति के पौधों में फोग, बूई, आक आदि का नाम लिया जा सकता है, जो स्वतः ही उग आते हैं। इनकी लकड़ी जलाने तथा भोंपड़ियां बनाने के काम में आती है। तहसील सूरतगढ़ एवं अनोपगढ़ में एक और पौधा अपने-आप उग आता है, जिसको 'सज्जी' कहते हैं। इसको

जलाकर अर्क निकालने से सजी बनती है। उससे निकला हुआ सोड़ा निम्न श्रेणी का होता है।

थोड़ी सी वर्षा हो जाने पर भी यहां घास अच्छी उग आती है। हनुमानगढ़ एवं सूरतगढ़ में घास अच्छी, बड़ी और कई प्रकार की होती है, जिनको 'सेवण', 'धामन' आदि कहते हैं।

घास

सुजानगढ़ में 'गंठील' घास अधिक होती है। राज्य भर में, प्रधानतया दक्षिणी भाग में, 'भुरट' नाम की चिपटनेवाली घास बहुतायत से उत्पन्न होती है। इसी 'भुरट' नाम की घास की अधिकता के कारण पिछली फ़ारसी तबारीखों आदि में कहीं कहीं वीकानेर के नरेशों को 'भुरटिया' भी लिखा मिलता है। इसका कारण यह है कि बादशाह औरंगज़ेब महाराजा कर्णसिंह से नाराज़ था, जिससे वह उसे 'भुरटिया' कहा करता था। अतएव यह शब्द कुछ समय तक वीकानेर के राजाओं के लिए प्रचलित हो गया था। अकाल के दिनों में लोग इसके बीजों को पीसकर उनसे रोटी बनाते हैं। राज्य में और भी कई प्रकार की घास होती है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। वर्षा-ऋतु में तरह-तरह की घास उग आने के कारण ही वीकानेर के प्राकृतिक सौन्दर्य में अभिवृद्धि हो जाती है।

इस राज्य में पहाड़ और जंगल न होने के कारण शेर, चीते, रॉल्ड आदि भयङ्कर जन्तु तो नहीं हैं, पर जरख, रोम्ह (नीलगाय) आदि प्रायः मिल जाते हैं। राज्य भर में घास अच्छी होती है, जंगली जानवर और पशु पक्षी जिससे गाय, बैल, भैंस, घोड़े, ऊंट, भेड़, बकरी आदि चौपाये सब जगह अधिकता से पाले जाते हैं। ऊंट यहां का बड़े काम का जानवर है और सवारी, बोझा ढोने, जल लाने, हल चलाने आदि का कार्य उससे लिया जाता है। जंगली पशुओं में अनूपगढ़ और रायसिंह-नगर के तहसीलों में कभी-कभी गोरखर (जंगली गधा) भी मिल जाते हैं। हिरन यहां बहुतायत से पाये जाते हैं। छापरा, सुजानगढ़, सूरतगढ़ और हनुमानगढ़ तहसीलों में अथवा जहां कहीं भी पानी सुलभ है, वहां इनकी

ही जगह होते हैं और काले उपरोक्त स्थानों में । इनका शिकार राज्य की ओर से वर्जित होने के कारण ही इनकी तादाद दिन-दिन जा रही है । घग्गर के बहाव तथा गजनेर के पास दोनों जातियों के और चीतल भी मिलते हैं । बीकानेर राज्य में सूअर और भेड़िये जाते हैं, जो कभी-कभी बहुत हानि पहुंचाते हैं । भेड़िये को मारनेव राज्य की तरफ से इनाम भी दिया जाता है । छोटे जानवरों में खरगोश, सांप आदि अधिक संख्या में हैं ।

पक्षियों में भूरे रंग के तीतर, गोडावण (Bustard), (Sand-grouse) आदि पाये जाते हैं । इनके अतिरिक्त बड़ी (Imperial Sand-grouse), बटेर (Quail), चाय (Snipe) तिलोर (Houbara) आदि पक्षी भी मिल जाते हैं । सर्दी के मौ कोलायत और गजनेर के तालाबों में दूर-दूर से जंगली बतखें आ हैं । तहसील हनुमानगढ़ में नाली के किनारे कुंज (क्रॉच) आ प्रकार के पक्षी होते हैं, जिनका शिकार किया जाता है ।

प्रायः समस्त देश कच्छ की खाड़ी से उड़कर आनेवाले डीलों से भरा हुआ है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है । यहां पा

का अभाव है तथापि कोलायत और गज खानें
रेतीली सतह के नीचे से पत्थरों के बड़े-बड़े

चूने के कंकड़ तथा कई प्रकार की मिट्टी मिल जाती है, जो मकान के काम में आती है । मीठा चूना भी रियासत के बहुत से भागों में जाता है । इसके लिए सरदारशहर, जामसर आदि स्थान उल्लेख तथा यह राजधानी के आस-पास भी मिलता है । यह वहां मिल एक प्रकार की चिकनी मिट्टी को जलाकर बनाया जाता है । दक्षिण के मड़ और पलाना नामक गांव में तथा गजनेर के पास मुल्तानी मि जाती है । इसकी उत्पत्ति यहां लगभग १००० टन है, जिसमें से पंजाब आदि स्थानों में बिक्री के लिए भेज दी जाती है । लोग इसे

धोने के काम में लाते हैं। पंजाब में इसके सुन्दर वर्तन आदि भी बनते हैं। कहते हैं कि एक शताब्दी पूर्व कच्छ की औरतें अपने सौन्दर्यकी वृद्धि के लिए कभी कभी इसे खाया करती थीं। राजधानी से १४ मील दक्षिण-पश्चिम में पलाना में कोयला निकाला जाता है। ई० स० १८६६ (वि० सं० १६५३) में वहां एक कुआं खोदते समय इस खान का पता लगा था और ई० स० १८६८ (वि० सं० १६५५) में यहां से कोयला निकालने का कार्य प्रारम्भ हुआ। तब से इस व्यवसाय की उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती रही है। यहां का कोयला हलकी जाति का होता है और प्रधानतया राज्य के 'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट' द्वारा काम में लिया जाता है तथा कुछ पंजाब को भी भेजा जाता है। इस खान से लगभग २५० मनुष्यों की जीविका चलती है।

राजधानी से ४२ मील पूर्वोत्तर में दुलमेरा नामक स्थान के निकट लालरंग का अत्युत्तम पत्थर पाया जाता है, जिसके मुलायम होने के कारण इसपर खुदाई का काम अच्छा होता है। राज्य के लालगढ़ नामक भव्य महल, 'विक्टोरिया मेमोरियल क्लब' आदि कई भवनों तथा शहर के भीतर के श्रीमंतों के कई सुन्दर मकानों का निर्माण इसी पत्थर से हुआ है। यह पत्थर भावलपुर, भटिंडा आदि स्थानों को भी भेजा जाता है। सुजानगढ़ तहसील में भी एक प्रकार का पत्थर निकलता है, परन्तु उतना अच्छा न होने के कारण वह केवल स्थानीय व्यवहार में ही आता है।

महाराजा गजसिंह के राजत्वकाल (ई० स० १७५३=वि० सं० १८१०) में बीदासर के निकट दड़ीवा गांव में तांबे की खान का पता चला था, जिसकी खुदाई उसी समय आरम्भ कर दी गई थी, परन्तु यह खान लाभदायक सिद्ध न होने के कारण बाद में बन्द कर दी गई।

(१) टॉड ने दो तांबे की खानों का राज्य में पता चलना लिखा है। एक बीरमसर में तथा दूसरी बीदासर में। इनमें से पहली लाभदायक न होने से और दूसरी तीस वर्ष में खत्म हो जाने पर बन्द कर दी गई।

बीकानेर और हनुमानगढ़ यहां के प्रधान किले हैं । इनके अति-
रिक्त राज्य में और भी कई जगह छोटे-छोटे किले
किले
(गढ़) हैं ।

राज्य के सुदूर उत्तरी भाग में बड़े नाप की 'सदर्न पंजाब रेल्वे'
केवल तीन मील तक बीकानेर राज्य की सीमा में होकर निकली है। जोधपुर
रेल्वे
और बीकानेर के बीच ई० स० १८६१ (वि० सं०
१६४८) के दिसम्बर मास में अंग्रेज़ सरकार के
साथ किये गये इक्तरारनामे के अनुसार छोटे नाप की रेल बनाकर खोली
गई थी । ई० स० १६२४ (वि० सं० १६८१) से बीकानेर स्टेट रेल्वे जोधपुर
स्टेट रेल्वे से अलग हो गई है । जोधपुर स्टेट रेल्वे के स्टेशन मेड़ता रोड'
से उत्तर में चीलो जंक्शन से बीकानेर स्टेट रेल्वे शुरू होती है और यह चीलो
जंक्शन से बीकानेर, दुलमेरा, सूरतगढ़ और हनुमानगढ़ होती हुई भटिंडा
तक चली गई है । इसकी कुल लम्बाई लगभग २५० मील है, जिसमें से
क़रीब ३३ मील पंजाब की सीमा में पड़ती है । हनुमानगढ़ जंक्शन से एक
शाखा गंगानगर, रायसिंहनगर और सरूपसर होती हुई सूरतगढ़ को गई
है । सरूपसर से एक टुकड़ा अनूपगढ़ को गया है । इस हिस्से की रेल
की लंबाई लगभग १६३ मील है । बीकानेर से दूसरी लंबी लाइन रतनगढ़,
मूरु और सादुलपुर होकर हिसार तक गई है । रतनगढ़ से एक शाखा
सुजानगढ़ तक जाकर जोधपुर स्टेट रेल्वे से मिल गई है एवं रतनगढ़
से दूसरी शाखा सरदारशहर तक गई है । हनुमानगढ़ से एक शाखा
नौहर और भाद्रा होती हुई सादुलपुर में हिसार जानेवाली लाइन से मिली
है । इस लाइन की लंबाई लगभग १११ मील है । बीकानेर से एक
शाखा गजनेर होकर श्रीकोलायतजी तक बनवा दी गई है । बीकानेर राज्य
के भीतर छोटे नाप की रेल्वे लाइन की कुल लंबाई लगभग ८२० मील है ।
इस समय सादुलपुर से रेवाड़ी तक १२५ मील लंबी रेल्वे-लाइन निकालने

(१) फुलेरा जंक्शन से कुचामन रोड तक बी० बी० एण्ड० सी० आई० और
वहां से मेड़ता रोड तक जोधपुर स्टेट रेल्वे है ।

का राज्य का और भी विचार है। रेल-गाड़ियां बनाने और उनकी मरम्मत के लिए राजधानी बीकानेर में एक बड़ा कारखाना है, जिसमें १००० आदमी काम करते हैं।

राजधानी के आस-पास और शहर से गजनेर तथा उसके आगे श्रीकोलायतजी के समीप एवं शिववाड़ी व देवीकुंड तक पक्की सड़कें बनी हुई हैं। कच्ची सड़कें बहुधा राज्य भर में सर्वत्र हैं, जो चौमासे को छोड़कर अन्य मौसमों में मोटर तथा अन्य गाड़ियों की आमद-रफ्त के लिए काम देती हैं।

सड़कें

इस राज्य में मनुष्य गणना अब तक छः बार हुई है। यहां की जन-संख्या ई० स० १८८१ में ५०६०२१; ई० स० १८९१ में ८३१६५५; ई० स० १९०१ में ५८४६२७; ई० स० १९११ में ७००६८३; ई० स० १९२१ में ६५६६८५ और ई० स० १९३१ में ६३६२१८ थी, जिसमें ५०११५३ मर्द और ४३५०६५ औरतें थीं। इस हिसाब से प्रत्येक वर्ग मील पर ४१ मनुष्यों की आबादी का औसत आता है।

जनसंख्या

यहां मुख्यतः वैदिक (ब्राह्मण), जैन, सिक्ख और इस्लाम धर्म के माननेवालों की संख्या अधिक है। ईसाई, आर्यसमाजी और पारसी धर्म के अनुयायी भी यहां थोड़े बहुत हैं। वैदिक धर्म के माननेवालों में शैव, वैष्णव, शाक्त आदि अनेक भेद हैं, जिनमें से यहां वैष्णवों की संख्या अधिक है। जैन धर्म में श्वेताम्बर, दिगम्बर और थानकवासी (ढूंढ़िया) आदि भेद हैं, जिनमें थानकवासियों की संख्या ज्यादा है। इस्लाम धर्म के अनुयायियों के दो भेद शिया और सुन्नी हैं। इनमें से इस राज्य में सुन्नियों की संख्या अधिक है। मुसलमानों में अधिकांश राजपूतों के वंशज हैं, जो मुसलमान हो गये हैं और उनके यहां अब तक कई हिन्दू रीति-रिवाज प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त

धर्म

(१) इस वर्ष में जन-संख्या में इतनी कमी होने का कारण ई० स० १८९१-१९०० (वि० सं० १९५६) का भीषण अकाल था।

यहां अलखगिरि^१ नाम का नवीन मत भी प्रचलित है तथा बिसनोई^२ नाम का दूसरा मत भी हिन्दुओं में विद्यमान है।

(१) यह धर्म लालगिरि नाम के एक चमार व्यक्ति ने चलाया था, जो बीकानेर राज्य के सुलखनिया स्थान का रहनेवाला था। पांच वर्ष की अवस्था में इसे एक नागा ने लेजाकर धोखे से अपना चेला बना लिया था। पन्द्रह वर्ष बाद लौटने पर जब उसे उसके नीच जाति के होने का प्रमाण मिला तो उसने लालगिरि का परित्याग कर दिया। ई० स० १८३० (वि० सं० १८८७) में लालगिरि बीकानेर आया और वह किले के पश्चिमी फाटक के पास कुटी बनाकर चारह वर्ष तक वहां रहा। महाराजा रत्नसिंह के तीर्थ यात्रा के लिए जाने पर वह भी उसके साथ गया। वहां से लौटने पर उसने अपनी जन्म-भूमि में एक अच्छा कुआं खुदवाया और उसके बाद बीकानेर में आकर 'अलख' की उपासना का प्रचार करने लगा। कुछ ही दिनों में उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। उसका प्रधान शिष्य लच्छीराम था, जिसने बीकानेर में 'अलख-सागर' नाम का कुआं बनवाया। उपासना के सम्बन्ध में महाराजा की आज्ञा न मानने के कारण लालगिरि राज्य से निकाल दिया गया, तब वह जयपुर जाकर रहने लगा और उसके शिष्य उसकी आज्ञानुसार भगवा वस्त्र पहनने लगे। महाराजा सरदारसिंह ने जब इस धर्म का प्रचार बहुत बढ़ता देखा तो उसने इसके माननेवालों को राज्य से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी, जिसपर बहुतों ने इस मत का परित्याग कर दिया, परन्तु लच्छीराम दृढ़ रहा। ई० स० १८६६-६७ (वि० सं० १९२३) में लच्छीराम के पुत्र मानमल के मंत्री पद पर नियुक्त होने पर इस धर्म का फिर जोर बढ़ा और लालगिरि भी बीकानेर लौटकर स्वतन्त्रता के साथ इसका प्रचार करने लगा। अलखगिरि मत के अनुयायी बहुधा साधु के वेष में रहते और भिक्षा से जीवन निर्वाह करते हैं, परन्तु कई गृहस्थ भी हैं। ये जैन तीर्थंकरों की उपासना तो नहीं करते पर अपना धर्म उससे मिलता-जुलता होने के कारण अपने को जैनों की श्राला मानते और जैन तीर्थंकरों का आदर करते हैं।

(२) बिसनोई मत के प्रवर्तक जांभा नामक सिद्ध का वि० सं० ११०८ (ई० स० १४५१) में पीपासर में जन्म होना माना जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि उसको जंगल में गुरु गोरखनाथ मिला, जिससे उसको सिद्धि प्राप्त हुई। वह परमार जाति का राजपूत था। उसने अकाल के समय बहुतसे जाटों आदि का अन्न देकर पोषण किया। उसने बीस तथा नव (उन्तीस) बातों की अपने अनुयायियों को शिक्षा दी, जिससे वे 'बिसनोई' कहलाने लगे।

उसके शिष्य सिद्धान्तरूप से उसकी बतलाई हुई बीस और नव (उन्तीस)

ई० स० १६३१ (वि० सं० १६८७) की मनुष्यगणना के अनुसार भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों की संख्या नीचे लिखे अनुसार है—

हिन्दू ७६४३२६, इनमें ब्राह्मण धर्म को माननेवाले ७२१६२६, आर्य (आर्यसमाजी) ३१२५, ब्राह्मो और देवसमाजी ३३, सिक्ख ४०४६६

बातों को मानते हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं—

रजस्वला होने पर स्त्री पांच दिन तक अलग रहे ।

प्रसव होने पर पुरुष स्त्री से एक मास तक दूर रहे और स्त्री आग, जल आदि को न छुए ।

परस्त्री-गमन और लालच न करे ।

रसोई अपने हाथ की वनाई हुई खावे और जल छानकर पिये ।

कूठ कभी न बोले । चोरी न करे । हरा वृत्त न काटे । किसी प्रकार की जीव हिंसा न करे । मद्य न पिये और नशामात्र न करे ।

अमावास्या का व्रत रखे । विष्णु की भक्ति करे । प्रतिदिन अग्नि में घी डालकर हवन करे । पांच समय ईश्वर का स्मरण करे और संध्या समय आरती करे । मीठ से रंगा हुआ वस्त्र न पहने आदि ।

उसके उपदेशों का फल यह हुआ कि जाटों के अतिरिक्त इतर जातिधर्म के बहुत से लोग भी आकर उसके अनुयायी होने लगे । गुरु नानक की भांति उसने भी हिन्दू और मुसलमानों में ऐक्य स्थापित करने के लिए मुसलमानी धर्म की कुछ बातें अपने यहां जारी कीं, यथा—

मरने पर शव को गाढ़ा जावे ।

सारा सिर मुंडावे और चोटी न रखे ।

मुंह पर दाढ़ी रखे ।

जांभा की मृत्यु वि० सं० १५८३ (ई० स० १५२६) में होना बतलाते हैं । बीकानेर राज्य के तालवे गांव में उसकी मृत्यु होने पर रेत के धोरे में (जहां वह रहता था) उसके शव को गाढ़ा गया । उस जगह उसकी स्मृति में एक मंदिर बना है और प्रति वर्ष फाल्गुन वदि १३ के आस-पास वहां मेला होता है, जिसमें दूर-दूर से बिसनोई आकर सम्मिलित होते हैं । वे लोग वहां हवन करते हैं और अपनी जाति के भगदों को भी वहीं मिटाते हैं । बीकानेर राज्य के अतिरिक्त जोधपुर, उदयपुर आदि राज्यों में भी बिसनोई रहते हैं और उनमें विधवा स्त्री का पुनर्विवाह भी होता है ।

और जैन २८७७३ हैं। मुसलमान १४१५७८, ईसाई २६८ और पारसी १६ हैं।

हिन्दुओं में ब्राह्मण, राजपूत, महाजन, खत्री, कायस्थ, जाट, चारण, भाट, सुनार, दरोगा, दर्जी, लुहार, खाती (बढ़ई), कुम्हार, तेली, माली, नाई, धोबी, गूजर, अहीर, वैरागी, गोसांई, स्वामी, जातियां डाकोत, कलाल, लखेरा, छीपा, सेवक, भगत, भड़भूंजा, रैगर, मोची, चमार आदि कई जातियां हैं। ब्राह्मण, महाजन आदि कई जातियों की अनेक उपजातियां भी बन गई हैं, जिनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता। ब्राह्मणों की कई उपजातियों में तो परस्पर भोजन-व्यवहार भी नहीं है। जंगली जातियों में मीरे, बावरी, थोरी आदि हैं। ये लोग पहले चोरी और डकैती अधिक किया करते थे, पर अब खेती और मजदूरी करने लगे हैं, तो भी दुष्काल में अपना पुराना पेशा नहीं छोड़ते। मुसलमानों में शेख, सैयद, मुसल, पठान, कायमखानी, राठ,

(१) कायमखानी पहले चौहान राजपूत थे और शेखावाटी के आस-पास के निवासी थे। मुंहणोत नैणसी ने लिखा है—“हिसार का फौजदार सैयद नासिर उन (चौहानों) पर चढ़ आया और ददेरा को लूटा। वहां की प्रजा भागी और केवल दो बालक (एक चौहान राजपूत और दूसरा जाट) उस गांव में रह गये, जिनको उसने अपने साथ ले लिया। फिर उस (नासिर) ने उनकी परवरिश की। सैयद नासिर की मृत्यु होने पर वे दोनों लड़के दिल्ली के सुलतान बहलोल लोदी के पास उपस्थित किये गये। इसपर उक्त सुलतान ने उस राजपूत लड़के (करमसी) को मुसलमान बनाकर कायमखां नाम रक्खा (श्यात; प्रथम भाग; पृ० १६६)।” जयपुर राज्य के शेखावाटी में भूमण्ड और कृतहपुर पर बहुत दिनों तक कायमखां के वंशजों का अधिकार रहा तथा अब भी वहां उसके वंशज निवास करते हैं, जो कायमखानी कहलाते हैं। उनके बहुतसे रीति-रिवाज हिन्दुओं के समान हैं और पुरोहित भी ब्राह्मण हैं, परन्तु अब वे अपने प्राचीन हिन्दू संस्कारों को मिटाते जाते हैं।

(२) राठ या राट भी एक बहुत प्राचीन जाति है, जिसको प्राचीन काल में ‘आरट्ट’ कहते थे। इसका दूसरा नाम ‘बाह्लीक’ (बाहिक) भी था। इस जाति के स्त्री-पुरुषों के रहन-सहन, आचार-विचार आदि की महाभारत में बड़ी निंदा की है—

.....आरट्टा नाम बाह्लीका एतेष्वायों हि नो वसेत् ॥ ४३ ॥

जोहिया', रंगरेज़, भिस्ती और कुंजड़े आदि कई जातियाँ हैं।

यहां के लोगों में से अधिकांश खेती करते हैं; शेष व्यापार, नौकरी, दस्तकारी, मज़दूरी, अथवा लेन-देन का कार्य करते हैं। राज्य के उत्तरी भाग में अनूपगढ़ के पश्चिम के लोग बहुधा पशु-पालन करके अपना निर्वाह करते हैं। पीरज़ादे और राठ जाति के मुसलमानों का यही मुख्य पेशा है। व्यापार करनेवाली जातियों में प्रधान महाजन हैं, जो कलकत्ता, बंबई, करांची, बर्मा, सिंगापुर, आदि दूर-दूर के स्थानों में जाकर व्यापार करते हैं और उनमें से बहुत से

.....आरट्टा नाम बाह्लीका वर्जनीया विपश्चिता ॥ ४८ ॥

.....आरट्टा नाम बाह्लीका नतेष्वार्यो वहं वसेत् ॥ ५१ ॥

महाभारत; कर्णपर्व, अध्याय ३७ (कुंभकोण संस्करण)।

मुसलमानों के राजत्वकाल में इन लोगों को मुसलमान बनाया गया, जो अब 'राठ' कहलाते हैं। वस्तुतः ये लोग पंजाब के एक प्रदेश के निवासी थे और महाप्रतापी दक्षिण के राठोड़ों से बिच्छुल ही भिन्न थे।

(१) जोहियों के लिए प्राचीन लेखों में 'यौधेय' शब्द मिलता है। प्राचीन क्षत्रिय राजवंशों में यह बड़ी वीर जाति थी। यौधेय शब्द 'युध्' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'लड़ना' है। मौर्य राज्य की स्थापना से भी कई शताब्दी पूर्व होनेवाले प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने भी अपने व्याकरण में इस जाति का उल्लेख किया है। इनका मूल निवासस्थान पंजाब था। इन्हीं के नाम से सतलज नदी के दोनों तटों पर का भावलपुर राज्य के निकट का प्रदेश 'जोहियावार' कहलाता है। जोहिये राजपूत अब तक पंजाब के हिसार और मोंटगोमरी (साहिवाल) जिलों में पाये जाते हैं। प्राचीन काल में ये लोग सदा स्वतन्त्र रहते थे और गण-राज्य की भांति इनके अलग-अलग दलों के मुखिये ही इनके सेनापति और राजा माने जाते थे। महाक्षत्रप रुद्रदामा के गिरनार के लेख से पाया जाता है कि क्षत्रियों में वीर का खिताब धारण करनेवाले यौधेयों को उसने नष्ट किया था। उसके पीछे गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त ने इनको अपने अधीन किया। पंजाब से दक्षिण में बढ़ते हुए ये लोग राजपूताने में भी पहुंच गये थे। ये लोग स्वामिकार्तिक के उपासक थे; इसलिए इनके जो सिक्के मिलते हैं, उनमें एक तरफ इनके सेनापति का नाम तथा दूसरी तरफ छः मुखवाली कार्तिकस्वामी की मूर्ति है। भरतपुर राज्य के बयाना नगर के पास विजयगढ़ के किले से वि० सं० की छठी शताब्दी के आस-पास की लिपि में इनका एक दृढ़ हुआ लेख मिला है। वर्तमान

बड़े संपन्न भी हो गये हैं। ब्राह्मण विशेषकर पूजा-पाठ तथा पुरोहिताई करते हैं, परन्तु कोई कोई व्यापार, तौकरी और खेती भी करते हैं। कुछ महाजन भी कृषि से ही अपना निर्वाह करते हैं। राजपूतों का मुख्य पेशा सैनिक-सेवा है, किन्तु कई खेती भी करते हैं।

शहरों में पुरुषों की पोशाक बहुधा लंबा अंगरखा या कोट, धोती और पगड़ी है। मुसलमान लोग बहुधा पाजामा, कुरता और पगड़ी, साफ़ा या टोपी पहनते हैं। सम्पन्न व्यक्ति अपनी पगड़ी का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं, परन्तु धीरे धीरे अब पगड़ी के स्थान में साफ़े या टोपी का प्रचार बढ़ता जा रहा है। राजकीय पुरुषों में कुछ अब पाजामा अथवा त्रिचिज़, कोट और अंग्रेज़ी टोप का भी व्यवहार करने लगे हैं। ग्रामीण लोग अधिकतर मोटे कपड़े की धोती, वगलबन्दी और फेंटा काम में लाते हैं। स्त्रियों की पोशाक लहंगा, चोली और दुपट्टा है पर अब तो कलकत्ता आदि बाहरी स्थानों में रहने के कारण कई हिन्दू स्त्रियां केवल धोती और कांचली (कंचुकी) पहनने लगी हैं और ऊपर दुपट्टा डाल लेती हैं। मुसलमान औरतों की पोशाक चुस्त पाजामा, लम्बा कुरता और दुपट्टा है। उनमें से कुछ तिलक भी पहनती हैं।

यहां के अधिकांश लोगों की भाषा मारवाड़ी (राजस्थानी) है, जो राजपूताने में बोली जानेवाली भाषाओं में मुख्य है। यहां उसके भेद थली,

बीकानेर राज्य के कुछ भाग में भी पहले जोहियों का ही निवास था और एक लड़ाई में मारवाड़ का राठोड़ राव वीरम सलखावत (जो राव चूंडा का पिता था) इन जोहियों के हाथ से मारा गया था। राव बीका-द्वारा बीकानेर का राज्य स्थापित होने के पीछे बीकानेर के राजाओं से जोहियों ने कई लड़ाइयां लड़ी थीं, जिनका उल्लेख यथा-प्रसङ्ग किया जायगा। मुसलमानों का भारत में आक्रमण पंजाब के मार्ग से ही हुआ था। उस समय उन्होंने वहां के निवासियों को बल-पूर्वक मुसलमान बना लिया। तब जोहियों ने भी अपना सामूहिक बल दूट जाने व मुसलमानों के अत्याचारों से तंग हो कर इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। अब बीकानेर राज्य में जोहिये राजपूत नहीं रहे केवल मुसलमान ही हैं।

भाषा

बागड़ी तथा शेखावाटी की भाषायें हैं। उत्तरी भाग के कुछ लोग मिश्रित पंजाबी, जिसको 'जाटकी' अर्थात् जाटों की भाषा कहते हैं, बोलते हैं।

लिपि

यहां की लिपि नागरी है, जो बहुधा घसीट रूप में लिखी जाती है। राजकीय दफ्तरों में अंग्रेज़ी का बहुत कुछ प्रचार है।

दस्तकारी

भेड़ों की अधिकता के कारण यहां ऊन बहुत होता है, जिसके कम्बल, लोइयां आदि ऊनी सामान बहुत अच्छे बनते हैं। यहां के गलीचे और दरियां भी प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त हाथी-दांत की चूड़ियां, लाख की चूड़ियां, लाख से रंगे हुए लकड़ी के खिलौने तथा पलंग के पाये, सोने-चांदी के ज़ेवर, ऊंट के चमड़े के बने हुए सुनहरी काम के तरह-तरह के सुन्दर कुप्पे, ऊंटों की काठियां, लाल मिट्टी के बर्तन आदि यहां बहुत अच्छे बनाये जाते हैं। बीकानेर शहर में बाहर से आनेवाली शकर से बहुत सुन्दर और स्वच्छ मिर्ची तैयार की जाती है, जो बाहर दूर-दूर तक भेजी जाती है। सुजानगढ़ में चुनड़ी की बंधाई का काम भी अच्छा होता है।

व्यापार

एक समय बीकानेर का बाहरी व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा था और राजगढ़ में दूर-दूर से कारवां (काफ़िले) आकर ठहरते थे। वहां हांसी और हिसार से होती हुई पंजाब तथा काश्मीर की वस्तुएं; पूर्वीय प्रदेशों से दिल्ली तथा रेवाड़ी होकर रेशम, महीन कपड़े, नील, चीनी, लोहा और तमाकू; हाडोती और मालवा से अफ़ीम; सिन्ध और मुलतान से गेहूं, चावल, रेशम तथा सूखे फल; तथा पाली से मसाले, टिन्, दवाइयां, नारियल और हाथीदांत व्यापार के लिए आते थे। इनमें से कुछ सामान तो राज्य में ही खप जाता था और शेष उधर से गुज़र कर अन्य देशों में चला जाता था, जिससे राहदारी में राज्य को काफ़ी धन मिलता था। ई० स० की अठारहवीं शताब्दी में कई कारणों से यह व्यापार नष्ट हो गया। अब रेल के खुल जाने, मार्गों के सुरक्षित हो जाने

और राहदारी के नियमों में परिवर्तन हो जाने से व्यापार में पुनः वृद्धि हो गई है। यहां से बाहर जानेवाली वस्तुओं में ऊन, कंबल, दरी, गलीचे, मिट्टी, सज्जी, सोड़ा, शोरा, मुल्तानी मिट्टी, चमड़ा, तथा पशुओं में ऊंट, गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी आदि मुख्य हैं। बाहर से आनेवाली वस्तुओं में पंजाब, सिन्ध, आगरा और जयपुर से गन्ना; बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली से कपड़ा; सिन्ध और अमृतसर से चावल; भिवानी, कानपुर, चंदौसी और गाज़ीपुर से चीनी; जयपुर, जोधपुर और सिन्ध से रुई; कोटा और मालवा से अफीम; सिन्ध और जयपुर से तमाकू; बम्बई, कलकत्ता, करांची और पंजाब से लोहा तथा अन्य धातुएं मुख्य हैं। सब सामान रेल-द्वारा आता-जाता है। भिवानी और हिसार के बीच तथा राज्य के उन विभागों में, जहां रेल निकट नहीं है, ऊंट भी माल ढोने के काम में आता है।

राजधानी को छोड़कर व्यापार के मुख्य केन्द्र गंगानगर, कर्णपुर, रायसिंहनगर, गजसिंहनगर, विजयनगर, सादूलशहर, संगरिया-मंडी, नौला-मंडी, भाद्रा, बीदासर, चूरू, झुंजरगढ़, नौहर, राजलदेसर, राजगढ़, रतनगढ़, सरदारशहर, सुजानगढ़ और सूरतगढ़ हैं। व्यापार का पेशा बहुधा अग्रवाल, माहेश्वरी और ओसवाल महाजनों, खत्रियों, ब्राह्मणों एवं शैख मुसलमानों के हाथ में है।

यहां हिन्दुओं के त्योहारों में शील-सप्तमी, अक्षयतृतीया, रक्षाबंधन, दशहरा, दिवाली और होली मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त गनगौर और तीज (थावणी तथा कजली) स्त्रियों के मुख्य त्योहार हैं। रक्षाबंधन विशेषकर ब्राह्मणों का तथा दशहरा खत्रियों का त्योहार है। दशहरे के दिन बड़ी धूम-धाम के साथ महाराजा की सवारी निकलती है। मुसलमानों के प्रमुख त्योहार, मुहर्रम, दोनों ईदें (ईदुलफितर और ईदुलजुहा) एवं शबेवरात हैं।

यहां का सब से प्रसिद्ध मेला प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्लपक्ष के अंतिम दिनों में श्रीकोलायतजी में होता है और पूर्णिमा का दिन मुख्य माना जाता

मेले

है। यहां कपिलेश्वर मुनि का आश्रम माना जाने से

इस स्थान का महत्व अधिक बढ़ गया है और

मेले के दिन हजारों यात्री दूर-दूर से यहां आते हैं। उस समय ऊंट, बैल आदि की बिक्री बहुत होती है। श्रावण में शिववाड़ी और भाद्रपद में देवीकुंड पर भी बड़े मेले लगते हैं, जो राजधानी के निकट हैं। इनके अतिरिक्त कोड़मदेसर, जैसुला तालाब, हरसोला तालाब और सुजानदेसर में भी मेले लगते हैं, पर वहां विशेष व्यापार नहीं होता। राजधानी बीकानेर में नागण्चीजी और धूणीनाथ के मेले प्रतिवर्ष लगते हैं। नौहर तहसील में गोगामेड़ी स्थान में प्रसिद्ध चौहान सिद्ध गोगा की स्मृति में प्रतिवर्ष भाद्रपद वदि ६ को और सूरपुरा तहसील में मुकाम स्थान में जामाजी नामक सिद्ध का मेला लगता है, जहां ऊंट-बैल आदि का व्यापार भी होता है।

प्राचीन काल में चिट्टी एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुंचाने का कार्य फ़ासिद (हलकारा) करते थे। सर्वप्रथम अंग्रेज़ी डाकखाने चूरू, रतनगढ़

डाकखाने

तथा सुजानगढ़ में खुले, जो ई० स० १८७२

में विद्यमान थे। अब तो अनूपगढ़, अनूपशहर,

बीकानेर (यहां पर—लालगढ़ महल, शहर, कचहरी तथा मंडी ज़कात—चार अलग डाकखाने हैं), बीकासर (मोकलिया), भूकरका, चीदासर, बिगा, भाद्रा, भीनासर, विजयनगर, चाहड़वास, छापरा, देशणोक, धोलीपाल, श्रीहंगरगढ़, डाभली, गजसिंहपुर, गंगाशहर, गजनेर, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, हिम्मतसर, जैतपुर, जैतसर, जामसर, केसरीसिंहपुर, कालू, लूणकरणसर, महाजन, मोमासर, नापासर, नौहर, पलाना, पदमपुर, पीलीबागान, पड़िहारा, रायसिंहनगर, रावतसर, रतननगर, राजलदेसर, रिशी, लालगढ़, सादूलशहर, सूड़सर, सूरपुरा, संगरिया, सरदारगढ़, सरदारशहर, सीदमुख, श्रीकर्णपुर, सूरतगढ़, सुजानगढ़, श्रीकोलायतजी, सादूलपुर, रतनगढ़, नरवासी, चूरू, चाक, हिन्दु-मलकोट, टीबी और उदैरामसर में भी अंग्रेज़ सरकार के डाकखाने

स्थापित हो गये हैं; तथा चूरु, दलपतसिंहपुर, दुलमेरा, हड़ियाल, हनुमानगढ़, पृथ्वीराजपुर एवं रामसिंहपुर के रेलवे स्टेशनों पर भी सरकारी डाकखाने हैं।

राजधानी में तीन तथा रतनगढ़, सरदारशहर, बीदासर, चूरु, नौहर, सुजानगढ़, छापर, श्रीगंगानगर, गंगाशहर, हनुमानगढ़, रिणी, सादुलपुर और सूरतगढ़ में एक-एक तारघर
तारघर
हैं। इन स्थानों के अतिरिक्त प्रायः प्रत्येक रेलवे स्टेशन पर भी तारघर बना हुआ है। बीकानेर, रतनगढ़, सरदारशहर, चूरु और सुजानगढ़ में बेतार के तारघर भी हैं।

टेलीफोन सर्वप्रथम ई० स० १९०५ (वि० सं० १९६२) में बीकानेर और गजनेर में लगाया गया था तथा अब यह गंगाशहर में भी लगा दिया गया है।
टेलीफोन

बिजली का प्रवेश राज्य में पहले पहल महाराजा डूंगरसिंह के समय में हुआ। ई० स० १८८६ (वि० सं० १९४३) में उसने पुराने महलों में बिजली की मशीन लगवाई। फिर तो क्रमशः
बिजली
इसका प्रचार बढ़ता ही गया और अब राजधानी तथा कोड़मदेसर एवं गजनेर के राजमहलों के अतिरिक्त रतनगढ़, चूरु, सरदारशहर, सुजानगढ़, छापर, बीदासर, मोमासर, राजलदेसर, डूंगरगढ़, नापासर आदि में बिजली का प्रचार है, जो राजधानी के पावरहाउस से पहुंचाई जाती है। बिजली आ जाने से अब बीकानेर में बहुत से कुओं का पानी भी इसी की सहायता से निकाला जाता है और प्रेस तथा रेलवे वर्कशॉप आदि भी इसी से चलते हैं।

पहले यहां राज्य की ओर से शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। खानगी पाठशालाओं में प्रारम्भिक शिक्षा और कुछ हिसाब-किताब की पढ़ाई होती थी। संस्कृत पढ़नेवाले पंडितों के यहां और फ़ारसी तथा उर्दू पढ़नेवाले विद्यार्थी मौलवियों के घर मक़तबों में पढ़ते थे। राज्य की तरफ़ से महाराजा डूंगरसिंह के

शिक्षा

राजत्वकाल में ई० स० १८७२ (वि० सं० १६२६) में सर्वप्रथम एक स्कूल खोला गया, जिसमें हिन्दी, संस्कृत, फ़ारसी और देशी तरीक़े के हिसाब की पढ़ाई होती थी और विद्यार्थियों की संख्या २७५ थी। ई० स० १८८२ में उर्दू की ओर ई० स० १८८५ में पहले-पहल अंग्रेज़ी की पढ़ाई भी इसी स्कूल में आरंभ हुई। तीन वर्ष बाद राजधानी में एक स्कूल लड़कियों के लिए खोला गया। ई० स० १८६१-६२ (वि० सं० १६४८) में राज्य-द्वारा संचालित स्कूलों की संख्या १२ थी, जिनमें ६६४ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। ई० स० १८६३ में राज्य के सरदारों के लड़कों की पढ़ाई के लिए कर्नेल सी० के० एम० वाल्टर के नाम पर 'वाल्टर नोबल्स स्कूल' की स्थापना हुई। अब इसमें शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों की संख्या पहले से अधिक हो गई है, जिससे यह हाईस्कूल कर दिया गया है। महाराजा डूंगरसिंह के नाम पर बीकानेर में 'डूंगरकालेज' है, जहां बी० ए० तक की पढ़ाई होती है। कुछ वर्ष पूर्व ही इसके लिए एक भव्य भवन निर्माण करवा दिया गया है। इनके अतिरिक्त राजधानी में 'सादूल हाईस्कूल' के सिवाय और दूसरे दो हाईस्कूल भी हैं। चूरु और रतनगढ़ में भी एक-एक हाईस्कूल उन विद्यार्थियों की सुविधा के लिए, जो राजधानी में पढ़ने नहीं आ सकते, खोला गया है। प्रायः प्रत्येक बड़े शहर में एंग्लो बर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल हैं, जिनकी संख्या इस समय ६० से अधिक है। राजधानी में 'लेडी एल्लियन गर्ल्स स्कूल' लड़कियों का प्रमुख स्कूल है और प्रायः हर बड़े शहर में लड़कियों के लिए पाठशाला विद्यमान है। राजपूत-बालिकाओं की शिक्षा के लिए 'महाराणी भट्टियानीजी नोबल्स गर्ल्स स्कूल' है। ऐसी संस्था राजपूताने में अब तक कहीं नहीं है। लार्ड बिलिंग्डन के नाम पर राजधानी में टेक्निकल इन्स्टीट्यूट (कला भवन) बनाया गया है, जिससे भविष्य में बेरोज़गारी का प्रश्न हल होकर जीविका-निर्वाह का साधन सरलता से हो जायगा। संस्कृत शिक्षा के लिए राज्य की ओर से 'गंगा-संस्कृत-पाठशाला' है, जिसमें कई विषयों की शिक्षा दी जाती है। परलोकवासी श्रीमान् किंग जॉर्ज की

रजत जयन्ती (Silver Jubilee) के उपलक्ष्य में राज्य की ओर से राजधानी में एक बृहत् पुस्तकालय तथा वाचनालय खोला गया है, जिससे सर्वसाधारण को ज्ञानशक्ति बढ़ाने का पूर्ण साधन हो गया है। राज्य के प्रसिद्ध नगर चूरू, रतनगढ़ आदि में भी पुस्तकालय स्थापित हैं, जिनसे जनता का लाभ होता है।

बीकानेर राज्य में वहां के निवासियों को शिक्षा नि:शुल्क दी जाती है।

महाराजा साहब का शिक्षा-विभाग की वृद्धि में बड़ा अनुराग है, जिससे इन्होंने विद्यार्थियों की रुचि पढ़ाई में प्रवृत्त कराने के लिए कितनी ही छात्रवृत्तियां नियत कर दी हैं। ई० स० १९२८-२९ (वि० सं० १९८५) में प्रारंभिक शिक्षा का प्रचार करने के लिए वहां 'अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा' नामक कानून का निर्माण हो गया है।

पहिले यहां प्राचीन पद्धति के वैद्यों तथा हकीमों के इलाज का ही प्रचार था, किंतु अब डाक्टरों का प्रचार बढ़ गया है। ई० स० १८४८

(वि० सं० १९०५) में महाराजा रतनसिंह के कुंवर

अस्पताल

सरदारसिंह के स्वास्थ्य का निरीक्षण करने

के लिए कोलरिज नामक प्रसिद्ध अंग्रेज़-डाक्टर नियुक्त हुआ। पहले लोग अंग्रेज़ी औषधियां लेने में हिचकते थे, पर धीरे-धीरे यह ग्लानि मिटती गई।

ई० स० १८७० (वि० सं० १९२७) में बीकानेर नगर में पहली बार अंग्रेज़ी ढंग से लोगों का इलाज करने के निमित्त एक अस्पताल खोला गया। अंग्रेज़ी

दवाइयों के इस्तेमाल में वृद्धि होने के साथ ही अस्पतालों की संख्या में भी क्रमशः उन्नति होती गई। इस समय राजधानी के अतिरिक्त चूरू

और गंगानगर में अस्पताल तथा रिणी, सुजानगढ़, सूरतगढ़, भाद्रा, नौहर, राजगढ़, रतनगढ़, सरदारशहर, झुंगरगढ़, हनुमानगढ़, गंगाशहर, देशखोक,

अनूपगढ़, विजयनगर, छापरा, गजनेर, हिम्मतनगर, करौंपुर, लूणकरणसर, नापासर, नोखा, पदमपुर, पलाना, राजलदेसर, रायसिंहनगर एवं संगरिया

में डिस्पेन्सरियां हैं। इनके अतिरिक्त रेल्वे के कर्मचारियों के लिए

राजधानी में 'रेल्वे-वर्कशॉप डिस्पेन्सरी' तथा चूरू और हनुमानगढ़ में भी शफ़ाखाने हैं। गांवों के लोगों में औषधियां वितरण करने के लिए हनुमानगढ़ में ऐसे डाक्टरों की नियुक्ति की गई है, जो हनुमानगढ़ से सूरतगढ़ तथा हनुमानगढ़ से सादुलपुर तक रेल में सफ़र करके प्रत्येक छोटे स्टेशन पर रुककर गांवों में जावें और रोगियों को देखकर उन्हें उचित औषधि दें। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को समुन्नत बनाने के लिए पांचू, फेफाना और रतननगर में आयुर्वेद-औषधालय खोले गये हैं।

राजधानी बीकानेर में पुरुषों और स्त्रियों के लिए पहले पृथक्-पृथक् अस्पताल थे, जिनमें चीर-फाड़ के सब प्रकार के आधुनिक औज़ारों के अतिरिक्त 'एक्सरे' यंत्र भी लगाया गया था, किंतु स्थान की संकीर्णता के कारण, वे दोनों पर्याप्त नहीं जान पड़े। इसलिए राजधानी में नगर के बाहर खुले मैदान में अब स्वर्गीय महाराजकुमार विजयसिंह की स्मृति में एक विशाल अस्पताल बनाया गया है, जिसमें पुरुष और स्त्रियों की चिकित्सा के पृथक्-पृथक् विभाग हैं। वहां चीर-फाड़ के कई प्रकार के औज़ार रखे गये हैं तथा शरीर के भीतरी भाग की परीक्षा के लिए 'एक्सरे' यंत्र भी लगा दिया गया है और कई रोगों का इलाज विजली से भी होता है। बीमारों के रहने के लिए वहां पर्याप्त स्थान है तथा देहात से आनेवाले रोगियों के साथियों के ठहरने के लिए पास ही एक अच्छी धर्मशाला भी बनवा दी गई है। राजधानी में सेना के लिए सादूल मिलिटरी हॉस्पिटल; लालगढ़ हॉस्पिटल तथा नगर निवासियों की सुविधा के लिए नगर के भिन्न-भिन्न भागों में तीन और शफ़ाखाने हैं। कई स्थलों में जहां शफ़ाखानों की आवश्यकता है, वहां भी अब वे खोले जा रहे हैं।

शासनप्रबंध की सुविधा के लिए राज्य के छः विभाग किये गये हैं, जिन्हें ज़िले अथवा निज़ामत कहते हैं। प्रत्येक निज़ामत में एक हाकिम रहता है, जिसे नाज़िम कहते हैं। इन विभागों के उपविभागों में १६

तहसीलें और ४ मातहत तहसीलें हैं। तहसील का हाकिम तहसीलदार और मातहत तहसील का नायब तहसीलदार कहलाता है। इनको दीवानी, फौजदारी तथा माल के मुकदमे तय करने के नियमित अधिकार प्राप्त हैं। इनके फैसलों की अपील नाज़िम की अदालत में और उसके किये हुए मुकदमों की सुनवाई हाई कोर्ट में होती है। प्रायः सारी भूमि का बन्दो-बस्त हो गया है और उसके अनुसार लगान (जमीजोत) की रकम स्थिर कर दी गई है। यहां भूमि का लगान इतना कम है कि लोग तीस, चालीस या इससे भी अधिक बीघे भूमि आसानी से जोत लेते हैं। इसमें से कुछ में तो गन्ना बोदिया जाता है, जिसकी एक फसल की पैदावार तीन-चार वर्ष तक काम देती है। पड़त भूमि में घास अच्छी हो जाती है, जिससे पशु-पालन में सुविधा रहती है।

राज्य की विभिन्न निज़ामतें नीचे लिखे अनुसार हैं—

सदर (बीकानेर) निज़ामत—यह राज्य के लगभग दक्षिण-पश्चिमी भाग में है। इसमें बीकानेर, लूणकरणसर और सूरपुरा की तहसीलें हैं। इसका मुख्य स्थान बीकानेर है तथा इसमें ५१० गांव हैं।

राजगढ़ निज़ामत—यह राज्य के पूर्व में है और इसके अन्तर्गत भाद्रा, चूरू, नौहर, राजगढ़ और रिणी की तहसीलें हैं। इसका मुख्य स्थान राजगढ़ है तथा इसमें ६३२ गांव हैं।

सुजानगढ़ निज़ामत—यह राज्य के दक्षिण-पूर्वी भाग में है और इसके अन्तर्गत सरदारशहर, सुजानगढ़, रतनगढ़ तथा झुंजरगढ़ तहसीलें हैं। इसका मुख्य स्थान सुजानगढ़ है और इसमें ५०६ गांव हैं।

सूरतगढ़ निज़ामत—इसके अन्तर्गत राज्य के उत्तर-पूर्वी हिस्से की ओर हनुमानगढ़ और सूरतगढ़ की तहसीलें हैं। इसका मुख्य स्थान सूरतगढ़ है और गांवों की संख्या २७७ है।

गंगानगर निज़ामत—गंगानगर के राज्य में आ जाने के बाद से उधर की आबादी बहुत बढ़ जाने पर वहां के प्रबन्ध के सुभीते के लिए गंगानगर निज़ामत अलग कर दी गई है। इसमें गंगानगर, कर्णपुर और

पदमपुर की तहसीले हैं। इसका मुख्य स्थान गंगानगर है और गांवों की संख्या ५३४ है।

रायसिंहनगर निज़ामत—माल-विभाग का कार्य बढ़जाने के कारण गंगानगर निज़ामत से रायसिंहनगर तहसील और सूरतगढ़-निज़ामत से अनूपगढ़ तहसील पृथक् कर यह निज़ामत बना दी गई है, जिसका मुख्य स्थान रायसिंहनगर है और गांवों की संख्या २६८ है।

शासन प्रबंध की सुव्यवस्था और प्रजा-हितकारी कानूनों की सृष्टि के लिए वर्तमान महाराजा साहब की इच्छानुसार नवम्बर ई० स० १९१३ (वि० सं० १९७०) में 'रिप्रेजेन्टेटिव असेम्ब्ली' (प्रतिनिधि सभा) की स्थापना की गई। उस समय इसके सदस्यों की संख्या ३५ थी। ई० स० १९१७ में इसका नाम बदलकर 'लेजिस्लेटिव-असेम्ब्ली' (व्यवस्थापक सभा) कर दिया गया। इसके सदस्यों की संख्या ४५ है, जिनमें से २५ सरकारी (१४ ऑफिशियल और ११ नॉन ऑफिशियल) और २० गैर-सरकारी हैं। सरकारी सदस्यों में ५ एड्स ऑफिशियो और २० राज्य-द्वारा चुनिंदा व्यक्ति होते हैं। इसके तीन प्रकार के कार्य हैं—क़ानून बनाना, निर्णय करना तथा सवाल पूछना। वार्षिक बजट इस सभा के समक्ष अर्थ-मंत्री-द्वारा पेश किया जाता है।

व्यवस्थापक सभा की स्थापना के चार वर्ष पीछे ई० स० १९२१ (वि० सं० १९७८) में वहां एक ज़मींदार सभा की स्थापना हुई। ई० स० १९२६ (वि० सं० १९८६) में एक के स्थान पर दो ज़मींदार सभायें कर दी गईं और इन्हें सदस्य चुनकर व्यवस्थापक सभा में भेजने का स्वत्व प्रदान किया गया। ज़मींदार सभा की स्थापना से महाराजा साहब का किसानों से निकट का सम्बन्ध हो गया है; जिससे उनकी आवश्यकताओं की ओर विशेष रूप से ध्यान देने में सुविधा हो गई है।

प्रजा-तन्त्र शासन का प्रचार करने के लिए महाराजा साहब ने

बड़े-बड़े नगरों में म्यूनीसिपैलिटियां स्थापित की हैं, जिनकी व्यवस्था बहुधा प्रजा-द्वारा निर्वाचित सदस्य करते हैं।
 म्यूनीसिपैलिटी अब तक बीकानेर, सुजानगढ़, रतनगढ़, सरदार-शहर, चूरू, डूंगरगढ़, राजलदेसर, राजगढ़, रिणी, नौहर, भाद्रा, रतननगर, सूरतगढ़, हनुमानगढ़, संगरिया, गंगानगर, छापर, रायसिंहनगर और कर्णपुर में म्यूनीसिपैलिटियां खुल गई हैं, जो प्रजा के हाथ में हैं। कुछ म्यूनीसिपैलिटियों ने तो अपनी सीमा में प्रारंभिक शिक्षा भी अनिवार्य कर दी है।

गांवों में पंचायतों की भी व्यवस्था है, जो गांवों के भूगड़ों आदि का फैसला करती हैं। ई० स० १९२८ (वि० सं० १९८५) में एक क़ानून पास करके इन्हें दिवानी और फौजदारी के कई अधिकार दे दिये गये हैं तथा इनके अधिकार का क्षेत्र भी बढ़ा दिया गया है। अब तक सदर, सूरपुरा, लूणकरणसर, सुजानगढ़, डूंगरगढ़, सरदारशहर, चूरू, नौहर, भाद्रा, रिणी, राजगढ़, हनुमानगढ़, सूरतगढ़ और गंगानगर की तहसीलों में ग्राम-पंचायतें क़ायम हो गई हैं।

गांवों में प्रजातंत्र शासन की शिक्षा देने और स्थानीय मामलों की स्वयं देख-रेख करने की योग्यता उत्पन्न करने के प्रयोजन से जगह-जगह ज़िला-सभाओं (District Board) की स्थापना के लिए एक क़ानून हाल ही में पास किया गया है, जिसके अनुसार गंगानगर में ज़िला-सभा की स्थापना भी हो गई है।

इमारती काम और सड़कों आदि के लिए महकमा तामीर (Public Works Department) स्थापित है। अब तक पक्की सड़कें, महकमा खास का भवन, डूंगर मेमोरियल कॉलेज और होस्टल, वाल्टर नोबल्स हाई स्कूल, कई अस्पताल, विक्टोरिया मेमोरियल क्लब आदि कई भव्य इमारतें बनाने के अतिरिक्त इस महकमे के द्वारा कई मनोहर उद्यानों का भी राज्य में निर्माण हुआ

है, जिनसे प्रजा को बहुत लाभ पहुंचता है। इनके अतिरिक्त राज्य के प्रमुख स्थानों में कई बड़ी-बड़ी इमारतें, डाकबंगले (rest houses) आदि भी इस महकमे के द्वारा बनाये गये हैं।

ग्रामीणों की ऋण-ग्रस्त दशा को सुधारने तथा उनमें अपनी सहायता आपस में कर लेने की शक्ति उत्पन्न करने के लिए वर्त-

मान महाराजा साहब ने राज्य में कई सहयोग संस्थायें (Cooperative Societies) स्थापित

कर दी हैं, जो सदस्यों की सहायता से ही संचालित होती हैं। ई० स० १९३२ (वि० सं० १९८६) में ऐसी संस्थाओं की संख्या १०५ थी। ये भाद्रा, नौहर, गंगानगर, रायसिंहनगर, अनूपगढ़ आदि स्थानों में हैं।

पहले राज्य में न्याय की व्यवस्था जैसी चाहिये वैसी न थी। हर प्रकार के लोगों के हस्तक्षेप या सिफ़ारिशों के कारण न्यायोचित व्यवहार का प्रायः अभाव हो जाया करता था। वर्तमान

न्याय

समय में राज्य में जैसे नियमावली न्यायालय हैं, उस समय उनका अस्तित्व भी न था और अपराधियों को मुक्ति के पूर्व जुरमाना तो अवश्य ही देना पड़ता था। ई० स० १८७१ (वि० सं० १९३८) में तीन कचहरियों (दीवानी, फ़ौजदारी और माल) की स्थापना राजधानी में हुई, पर शासनशैली में विशेष परिवर्तन न होने के कारण स्थिति वैसी ही डांवाडोल बनी रही। ई० स० १८८४-८५ (वि० सं० १९४१-४२) में दीवानी और फ़ौजदारी की मुख्य अदालतें हटाई जाकर राज्य के जो शासन विभाग किये गये, उनमें अलग-अलग निज़ामतें खोली गईं। पहले इनके निर्णय किये हुए मुकदमों की सुनवाई राज-सभा और उसके बाद 'इजलास-खास' में महाराजा के समक्ष होती थी। ई० स० १८८७ (वि० सं० १९४४) से रीजेन्सी कौंसिल को वह अधिकार प्राप्त हुआ और एक अपील-कोर्ट की स्थापना हुई। फिर नायब तहसीलदारों को भी मुकदमों सुनने का हक प्राप्त

हुआ तथा बीकानेर, चूरू एवं नौहर में छोटे-छोटे मुकदमों की सुनवाई के लिए कुछ ऑनरेरी-मैजिस्ट्रेट भी नियुक्त किये गये।

इस समय नायब तहसीलदारों को फौजदारी मामलों में तीसरे दर्जे के और तहसीलदारों को दूसरे दर्जे के मैजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं और जहां मुंसिफ या डिस्ट्रिक्ट जज नहीं है, वहां उन्हें क्रमशः ५० तथा २०० रुपये तक के दीवानी दावे सुनने का अधिकार है। भाजिमों को पहले दर्जे के मैजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं, दीवानी नहीं।

बीकानेर, रतनगढ़, भाद्रा, चूरू, हनुमानगढ़ और गंगानगर में मुंसिफ की अदालतें भी हैं, जिनको फौजदारी मामलों में दूसरे दर्जे के मैजिस्ट्रेट के और दीवानी मामलों में दो हजार तक के दावे सुनने का अधिकार है।

पांच निज़ामतों—सदर (बीकानेर), राजगढ़, सुजानगढ़, सूरतगढ़ और गंगानगर में डिस्ट्रिक्ट जज रहते हैं, जिनको फौजदारी मामलों में पहले दर्जे के मैजिस्ट्रेट के और दीवानी मामलों में दस हजार तक के दावे सुनने का अधिकार है। रायसिंहनगर में डिस्ट्रिक्ट जज नहीं है, अतएव वहां की कार्यवाही गंगानगर में होती है।

ई० स० १९२२ ता० ३ मई (वि० सं० १९७६ वैशाख सुदि ६) को राजधानी में हाईकोर्ट की स्थापना हुई, जिसमें तीन न्यायाधीश नियुक्त किये गये। इस अदालत में दीवानी और फौजदारी के नये मुकदमों के अतिरिक्त छोटी अदालतों के मुकदमों की अपीलें भी सुनी जाती हैं। केवल दस हजार से अधिक के मुकदमों अथवा किसी जटिल प्रश्न के निर्णय को छोड़कर अन्य सब अवस्थाओं में इस अदालत का फैसला अन्तिम माना जाता है। दस हजार से अधिक के मुकदमों अथवा किसी जटिल प्रश्न के निर्णय के संबंध की अपील राज्य की एग्जिक्यूटिव कौंसिल की जूडिशल कमिटी के सामने की जा सकती है। हाईकोर्ट को नियमानुसार पूरी सज़ा देने का अधिकार है, परंतु मृत्युदंड के लिए महाराजा साहब की आज्ञा प्राप्त करनी होती है। मृत्युदंड अथवा दस वर्ष या

उससे अधिक अवधि की कैद की सज़ा की अपील महाराजा साहब के समक्ष की जा सकती है। बड़े मुक़दमों में जूरी-द्वारा न्याय करने की प्रथा भी प्रचलित है।

व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly) ने एक लीगल प्रैक्टिशनर्स एक्ट (Legal Practitioners Act) बना दिया है, जिसके अनुसार राज्य की अदालतों में वकालत प्रारंभ करनेवालों को एक नियत परीक्षा पास करनी पड़ती है। वकीलों की सुविधा के लिए क़ानून की शिक्षा देनेवाले एक व्यक्ति की नियुक्ति भी कर दी गई है। राज्य में वहां के बने हुए क़ानून चलते हैं, जिनका ज्ञान प्राप्त करना वकीलों के लिए आवश्यक है।

राज्य की भूमि तीन भागों—ख़ालसा, जागीर और शासन (धर्मादा)—में बंटी हुई है। राज्य के कुल २७४२ गांवों और १५ नगरों में से १२५८ गांव तथा १४ नगर ख़ालसे में हैं। जागीर में ख़ालसा, जागीर और शासन १३०६ गांव एवं १ शहर है। धर्मादा और माफ़ी में दिये हुए १७५ गांव हैं। ख़ालसा गांवों की भूमि राज्य की मानी जाती है और जब तक किसान बराबर निश्चित लगान अदा करता रहता है, तब तक वह अपनी ज़मीन का अधिकारी रहता है। जागीरें बहुधा जागीरदारों के पूर्वजों को उनकी सेवाओं के उपलब्ध में अथवा राजाओं के कुटुम्बियों को मिली हुई हैं। इनमें से कुछ से तो ख़िराज नहीं लिया जाता, शेष से प्रतिवर्ष बंधी हुई रक़म ली जाती है। बिना ख़िराज की जागीरें 'राजकुटुम्बियों' और परसंगियों (अन्यवंशों के सरदारों)^१ तथा उन सरदारों की हैं, जिनका, महाराजा साहब ने ख़ास सेवाओं के कारण, ख़िराज माफ़ कर दिया है। महाराजाओं के सिंहासनारूढ़ होने के समय सरदारों को नियत रक़म नज़र के रूप में देनी पड़ती है, जिसे 'न्योता'

(१) यहां राजकुटुम्बियों को 'राजवी' कहते हैं, जो महाराजा साहब के निकट के रिश्तेदार हैं। उनका वर्णन आगे सरदारों के इतिहास में किया जायगा।

(२) 'परसंगी' वे राजपूत हैं, जिनके साथ राठोड़ों के विवाह-सम्बन्ध होते हैं।

ते हैं। इसके अतिरिक्त उनसे विवाह अथवा युवराज के जन्म आदि सरो पर भी कुछ रकम न्योते की ली जाती है। धर्मादे में दी गई है, जो मंदिरों के प्रबन्ध के लिए अथवा चारणों, ब्राह्मणों आदि को दी गई है, 'शासन' कहलाती है। इनसे राज्य में कोई रकम नहीं जाती और न इनसे किसी प्रकार की सेवा ली जाती है। कुछ ऐसे भेये राजपूत भी हैं, जिनके पास अपनी ज़मींदारी है। ये राज्य को न नहीं देते, पर इन्हें कुछ अन्य कर देने पड़ते हैं।

जागीरदार (जिन्हें सरदार तथा उमराव भी कहते हैं) बहुधा राज्य सरदार हैं। इनके दो विभाग—ताज़ीमी और गैरताज़ीमी—हैं। तज़ीमी सरदारों की संख्या १३० है, जिनमें से कई सरदार राज्य के बड़े-ओहदों पर भी नियुक्त हैं। इनमें से चार—महाजन, रावतसर, हरका और बीदासरवाले—अन्य ताज़ीमी सरदारों से ऊँचे दर्जे के हैं और 'सरायत' कहलाते हैं। पहले सब सरदार घोड़ों, ऊंटों अथवा पैदल नेकों के साथ राज्य की सेवा करते थे, परन्तु महाराजा डूंगरसिंह के समय से उसके बदले नक़द रकम निश्चित हो गई है। बहुधा यह रकम तीनों की आय की एक तिहाई निश्चित की गई है। सरायतों को नज़राने, न्योते आदि की रकम देनी पड़ती है। वे ठिकाने के मालिक के समय नज़राने में रख के बराबर रकम और अवसर विशेष पर न्योते की रकम देते हैं। इसके बदले में विवाह अथवा शमी के अवसरों पर राज्य की ओर से सरदारों को उचित सहायता दी जाती है।

इस राज्य में क़वायदी सेना की संख्या १७६७ है, जिसमें २३६ लन्दाज़ और ४६५ ऊंट सेना के सैनिक भी शामिल हैं। डूंगरलैन्सर्स की संख्या, जिनमें महाराजा साहब के अंगरक्षक भी शामिल हैं, ३४२ है तथा सादूल लाइट इन्फ़ैन्ट्री ६५४ सैनिक हैं। इनके अतिरिक्त मोटर मशीनगन सेक्शन में १०० नेक हैं। राज्य में पुलिस की संख्या १७१५ है।

वर्तमान महाराजा साहब के सिंहासनारूढ़ होने के समय राज्य की

आय अनुमान सवा पन्द्रह लाख रुपये थी, जो इनको अधिकार मिलने के समय बीस लाख रुपये तक पहुँच गई और आय-व्यय अब बढ़कर एक करोड़ तेतीस लाख के लगभग हो गई है। आमदनी के मुख्य स्रोत—ज़मीन का हासिल, जागीरदारों का खिराज, सरकार से मिलनेवाले नमक के रुपये, रेल्वे की आमद, नहरों की आमद, पलाना के कोयले की खान की आमद, विजली के कारखाने की आमद, आवकारी, चुंगी (दाण), स्टॉप, कोर्ट फ़ीस, दंड आदि—हैं। राज्य का व्यय लगभग एक करोड़ रुपये है। उसके मुख्य स्रोत—सेना, पुलिस, हाथखर्च, महलों का खर्च, अदालती खर्च, अस्तबल का खर्च, रेल, विजली, नहरें, सड़कें तथा इमारतें आदि—हैं।

बीकानेर राज्य में पहले बिना लेखवाले चिह्नान्कित (Punchmarked) सिक्के चलते थे। फिर यौद्धियों के सिक्कों का प्रचार हुआ। उनके पीछे गुप्तों के, हर्षों के चलाये हुए गधिये, प्रतिहारों में से भोज-देव (आदिवराह) के, चौहानों में से अजयदेव और उसकी गणी सोमलदेवी के तथा सोमेश्वर और अंतिम प्रसिद्ध चौहान पृथ्वीराज के सिक्के चलते रहे। मुसलमानों का राज्य भारतवर्ष में स्थापित होने के बाद दिल्ली के सुल्तानों और बादशाहों के सिक्कों का यहां भी चलन हुआ। मुग़ल साम्राज्य के निर्वल होने पर राजपूताने के राजाओं ने बादशाह की आज्ञा से अपने-अपने राज्यों में टकसालें खोलीं, परन्तु सिक्के बादशाह के नामवाले फ़ारसी लिपि के लेख सहित ही बनते रहे। सर्वप्रथम महाराजा गजसिंह ने बादशाह आलमगीर दूसरे (ई० स० १७५४-१७५६= वि० सं० १८११-१८१६) से अपने राज्य में सिक्के बनाने की सनद प्राप्त की। ई० स० १८५६ (वि० सं० १९१६) तक के सिक्कों पर केवल बादशाह शाह आलम (दूसरा) का नाम मिलता है, जो ई० स० १७५६ (वि० सं० १८१६) में गद्दी पर बैठा था। इससे यह कहा जा सकता है कि सनद आलमगीर दूसरे के समय में प्राप्त हो जाने पर भी सिक्के शाह आलम के समय में बीकानेर में बनने शुरू हुए हों और दूसरे बादशाहों के गद्दी बैठने पर भी

यहां के सिक्कों पर उसी (शाह आलम) का नाम चलता रहा। ये सिक्के राज्य की टकसाल में ही बनते थे। बीकानेर राज्य की टकसाल में पहले सोने की मुहरें भी बनती थीं। जो मुहरें हमारे देखने में आईं, उनमें से कुछ का उल्लेख यहां किया जाता है—

कप्तान ए० डबल्यू० टी० वेब को सीकर के खज़ाने से दो मुहरें महाराजा रत्नसिंह के समय की मिलीं, जिनपर वही लेख और चिह्न हैं, जो उक्त महाराजा के चांदी के सिक्कों पर हैं।

राज्य के बड़े कारखाने के तोषाखाने से दो मुहरें महाराजा सरदारसिंह के समय की देखने में आईं, जिनमें चांदी के सिक्कों के समान ही लेख हैं।

एक मुहर महाराजा डूंगरसिंह के समय की बीकानेर राज्य के बड़े कारखाने के तोषाखाने में देखने में आई, जिसपर लेख उसके समय के रुपयों के अनुसार ही है। उसकी दूसरी तरफ 'ज़र्ब श्री बीकानेर' खुदा है। उसमें पताका, त्रिशूल, छत्र, चंवर और किरणिया भी हैं^२।

(१) कप्तान डबल्यू० डबल्यू० वेब ने अपनी पुस्तक 'कॉरेंसीज़ ऑफ़ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ़ राजपूताना' के पृष्ठ ५७ में लिखा है—'बीकानेर राज्य की टकसाल में पहले कभी सोने का सिक्का नहीं बना', जो अम्र ही है। उसके पास जिस पुरुष ने बीकानेर राज्य के चांदी के सिक्के भेजे उसको सोने की मुहरें नहीं मिलीं इसलिए उक्त कप्तान ने सोने के सिक्के न होने की बात लिख दी। यह भी निश्चित है कि उस (वेब) ने बीकानेर जाकर सिक्कों की छानबीन नहीं की, किन्तु रायबहादुर सोदी हुकुमसिंह लिखित वृत्तांत के आधार पर (जिसको उस समय ये मुहरें प्राप्त नहीं हुई थीं) बीकानेर में सोने की मुहरें न बनने का हाल लिख दिया, किन्तु ख़ास उसी कप्तान वेब के पुत्र ए० डबल्यू० टी० वेब की सीकर से भेजी हुई दो सोने की मुहरों एवं बीकानेर के तोषाखाने से प्राप्त मुहरों के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि वहां सोने की मुहरें बनती थीं।

(२) यह मुहर आकृति में उक्त महाराजा के चांदी के सिक्कों से कुछ बड़ी है, परन्तु एक तरफ़ के छोटे दायरे के अन्दर का लेख 'औरंग आराय हिन्द व इंग्लिस्तान कीन विक्टोरिया' ऐसे सुन्दर अक्षरों में है कि उसको देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है।

राज्य के खज़ाने में ऐसी मुहरें बहुत थीं, परंतु ऐसा सुना जाता है कि वर्तमान महाराजा साहब की बाल्यावस्था के समय रीजेन्सी कौंसिल के शासन में उन्हें गलतवाकर सोता बनवा दिया गया।

साधारण रुपयों के साथ-साथ यहां 'नज़र' के लिए रुपये अलग बनाये जाते थे। इस राज्य के चांदी के सिक्के राजपूताने के अच्छे सिक्कों में गिने जाते हैं। 'नज़र' के सिक्के अधिक सुन्दर और पूरे वज़न के होते थे तथा आकार में बड़े होने के कारण उनपर ठप्पा पूरा आ जाता था। अन्य सिक्कों के सम्बन्ध में इतनी सावधानी नहीं रखी जाती थी और आकार में कुछ छोटे होने के कारण उनपर कभी-कभी पूरा ठप्पा भी नहीं आता था। पहले तो केवल रुपया ही चांदी का बनता था, परन्तु महाराजा सरदारसिंह और डूंगरसिंह के समय में अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नी भी चांदी की बनने लगीं।

महाराजा गजसिंह के समय के नज़र के रुपयों के एक ओर 'सिक्कह मुबारक साहब किरां सानी शाह आलम बादशाह गाज़ी' और दूसरी ओर 'सन् ११२१ जुलूस मैमनत मानूस' लेख फ़ारसी में है। साधारण सिक्कों पर एक ओर केवल 'सिक्का मुबारक बादशाह गाज़ी आलमशाह' और दूसरी ओर 'सन् जुलूस मैमनत मानूस' लिखा मिलता है। उस (गजसिंह) का चिह्न पताका था, पर किसी-किसी सिक्के में त्रिशूल भी मिलता है। महाराजा सूरतसिंह के सिक्कों पर भी क्रमशः ऊपर जैसे ही लेख मिलते हैं। उसका चिह्न त्रिशूल था परंतु किसी-किसी सिक्के पर पताका का चिह्न भी मिलता है। महाराजा रत्नसिंह का चिह्न किरणिया था, लेकिन उसके सिक्कों पर ऊपर जैसा ही लेख और कभी-कभी किरणिया के साथ भंडे का चिह्न भी मिलता है। महाराजा सरदारसिंह के सिपाही-विद्रोह से पहले के सिक्कों पर एक ओर केवल 'मुबारक बादशाह गाज़ी आलम' और सन् तथा दूसरी ओर पूर्व जैसा ही लेख है। यहां यह कह देना आवश्यक है कि ग़दर के पूर्व के सभी सिक्कों पर हि० स० तथा बादशाहों के जुलूसी सनों (राज्यवर्षों) के अंक अस्पष्ट या ग़लत लगे हैं। उसके ग़दर के बाद के सिक्कों पर एक तरफ़

'औरंग आराय हिन्द व इंग्लिस्तान कबीन विक्टोरिया १८५६' तथा दूसरी तरफ 'जुब श्री बीकानेर १६१६' लेख फ़ारसी लिपि में हैं। उसका चिह्न छत्र था, पर उसके सिक्कों पर ध्वजा, त्रिशूल, छत्र और किरणिया के चिह्न एक साथ भी मिलते हैं। महाराजा डूंगरसिंह के सिक्कों पर भी महाराजा सरदारसिंह के सिक्कों जैसे ही लेख हैं। उसका चिह्न चँवर था, पर उसके सिक्कों पर उपर्युक्त सभी चिह्न अंकित मिलते हैं। महाराजा गंगासिंहजी के पहले के सिक्कों पर भी वही लेख है, जो महाराजा डूंगरसिंह के सिक्कों पर था, परन्तु उनपर उनका एक चिह्न मोरछल अधिक मिलता है। ई० स० १८६३ में अंग्रेज़ सरकार के साथ बीकानेर राज्य का अंग्रेज़ी टकसाल से रुपये बनवाने के सम्बन्ध में एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार अंग्रेज़ी राज्य में प्रचलित रुपयों जैसे रुपये ही बीकानेर राज्य के लिए भी बने, जिनके एक तरफ़ सम्राज्ञी विक्टोरिया का चेहरा और अंग्रेज़ी अक्षरों में 'विक्टोरिया एम्प्रेस' तथा दूसरी तरफ़ बीच में ऊपर नीचे क्रमशः नागरी और उर्दू लिपि में 'महाराजा गंगासिंह बहादुर' लिखा है। उर्दू लिपि में सन् विशेष दिया है। किनारे के पास ऊपर 'वन रुपी' (One Rupee) और नीचे 'बीकानेर स्टेट' अंग्रेज़ी में है तथा मध्य में दोनों ओर किनारों के निकट एक-एक मोरछल भी बना है। ई० स० १८६५ में ताँबे के सिक्के—पाव आना और आधा पैसा (अधेला)—अंग्रेज़ी राज्य के जैसे ही बीकानेर राज्य के लिए भी बने, परन्तु उनमें दूसरी तरफ़ किनारे पर 'बीकानेर स्टेट' अंग्रेज़ी में है और मध्य में दोनों ओर किनारे पर एक-एक मोरछल बना है। ये सिक्के भी अंग्रेज़ी सिक्कों के साथ ही चलते रहे, पर अब इनका बनना बंद हो गया है और यहां अंग्रेज़ी सिक्कों (कल्दार) का ही चलन है।

इस राज्य को अंग्रेज़-सरकार की तरफ़ से १७ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है। महाराजा साहब की ज़ाती और स्थानीय तोपों की सलामी की संख्या १६ है। ये सम्मान वर्तमान महाराजा साहब को क्रमशः ई० स० १६१८ और

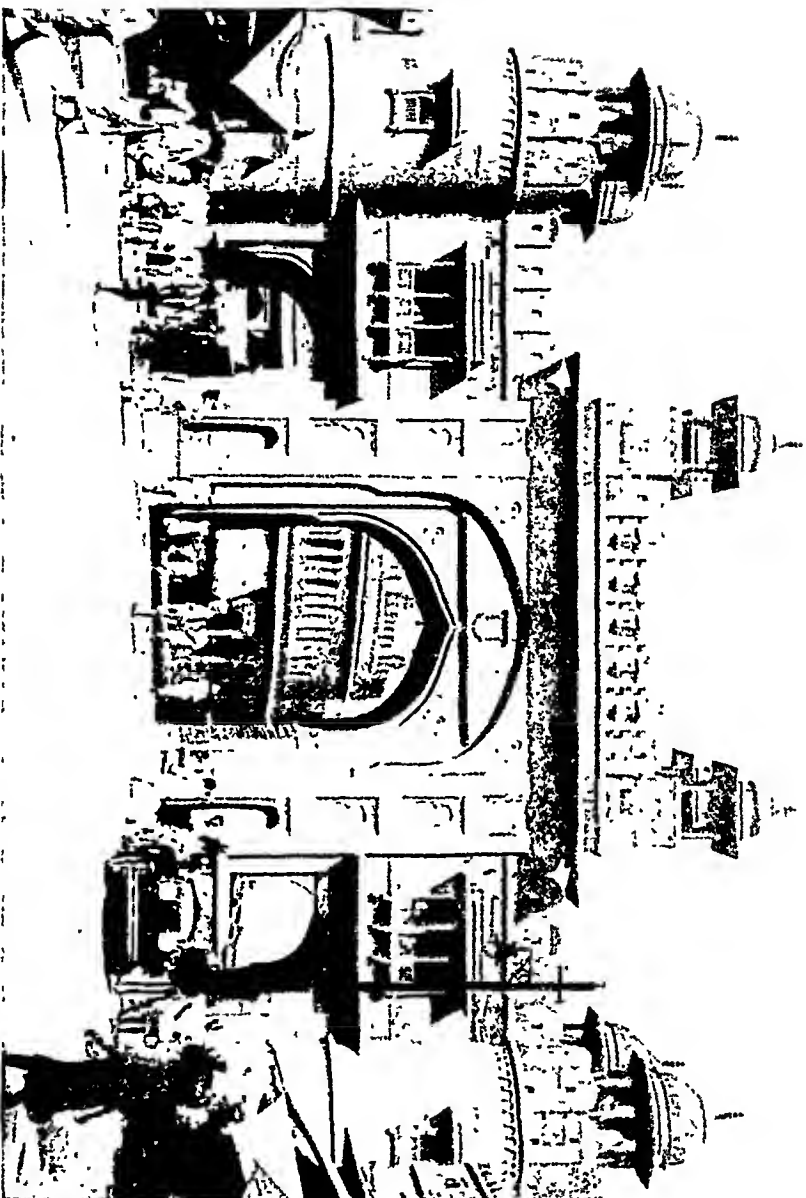
तोपों की सलामी

१६२१ (वि० सं० १६७५ और १६७८) के आरंभ में प्राप्त हुए थे ।

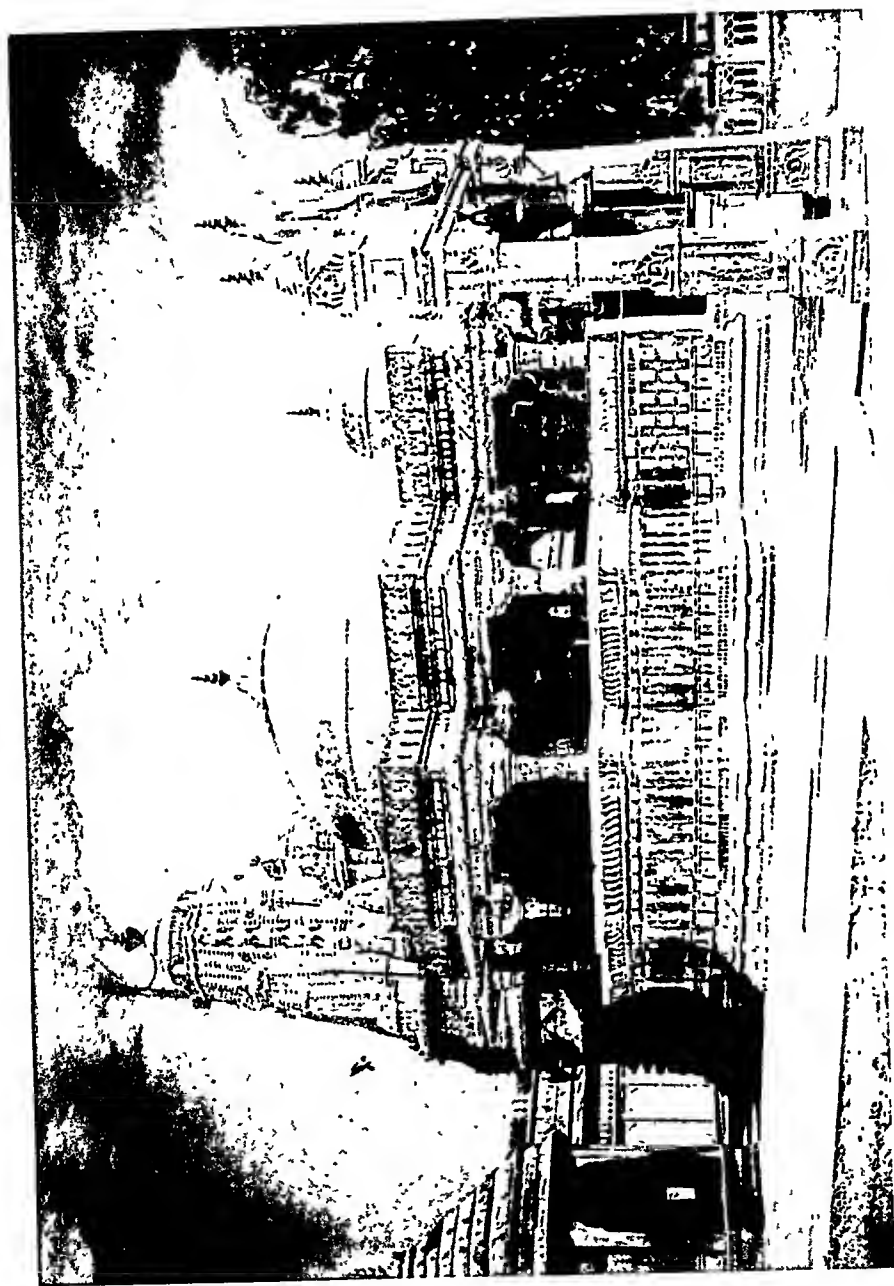
इस राज्य में प्राचीन एवं प्रसिद्ध स्थान बहुत हैं, जिनमें से कुछ प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान का वर्णन नीचे किया जाता है—

बीकानेर—राज्य का मुख्य नगर 'बीकानेर' राज्य के दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में कुछ ऊंची भूमि पर समुद्र की सतह से ७३६ फुट की ऊंचाई पर बसा हुआ है । किसी-किसी स्थान से देखने पर यह नगर बहुत भव्य और विशाल दिखलाई पड़ता है । मॉनस्ट्रार्ट एल्फिन्स्टन के साथियों को, जो ई० स० १८०८ (वि० सं० १८६५) में बीकानेर आये थे, इस नगर को देखकर यह निर्णय करना कठिन हो गया था कि दिल्ली और बीकानेर में कौन अधिक विस्तृत है । नगर के चारों ओर शहरपनाह है, जो घेरे में साढ़े-चार मील है और पत्थर की बनी है । इसकी चौड़ाई ६ फुट और ऊंचाई अधिक से अधिक तीस फुट है । इसमें पांच दरवाज़े हैं, जिनके नाम क्रमशः कोट, जस्सूसर, नत्थूसर, सीतलों और गोगा हैं तथा आठ खिड़कियां भी बनी हैं । शहर-पनाह का उत्तरी भाग वि० सं० १६५६ (ई० स० १८६६-१९००) में वर्तमान महाराजा साहब ने नया बनवा दिया है ।

यह नगर आबादी की दृष्टि से राजपूताने में चौथा गिना जाता है और पुराने ढंग का बसा हुआ है । ई० स० १६३१ (वि० सं० १६८७) की मनुष्य-गणना के अनुसार यहां की आबादी ८५६२७ थी । नगर के भीतर बहुत सी भव्य इमारतें हैं, जो बहुधा लाल पत्थर की बनी हैं तथा उनपर खुदाई का उत्कृष्ट काम है । नगर के मध्य में एक जैन मंदिर है, जिसके निकट से पांच मार्ग निकले हैं, जो अन्य सड़कों से मिलते हुए शहरपनाह के किसी एक दरवाज़े से जा मिलते हैं । कोट दरवाज़े के बाहर अलखगिरि मतानुयायी लच्छीराम का बनवाया हुआ 'अलखसागर' नाम का प्रसिद्ध कुआं है, जो बीकानेर के सब कुओं में अच्छा गिना जाता है । अन्य कुओं की संख्या १४ है, जो बहुधा बहुत गहरे हैं । उनमें से अधिकांश का जल बड़ा सुस्वादु और पीने के योग्य है । महाराजा अनूपसिंह का बनवाया हुआ 'अनूपसागर' (चौतीना) कुआं भी उल्लेखनीय है । नगर



कोट-दरवाजा, वीकानेर



लक्ष्मीनारायणजी का मन्दिर, चिकनेर

के बाहर के तालाबों में महाराजा सूरसिंह का बनवाया हुआ 'सूरसागर' (पुराने क़िले के निकट) सब से अच्छा माना जाता है और उसमें छः सात मास तक जल भरा रहता है ।

यहां के जैन मंदिरों में भांडासर का मंदिर बहुत प्राचीन गिना जाता है। कहते हैं कि इसे भांडा नाम के एक ओसवाल महाजैन ने वि० सं० १४६८ (ई० सं० १४११) के लगभग बनवाया था। यह बहुत ऊंचा है, जिससे इसके ऊपर चढ़ जाने से सारे नगर का दृश्य बड़ा मनोहर दीख पड़ता है। इसके बाद नेमीनाथ के मंदिर का नाम लिया जाता है, जो भांडा के भाई का बनवाया हुआ प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त और भी कई जैन मंदिर हैं, पर वे उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं। यहां के जैन उपासकों में संस्कृत आदि की प्राचीन पुस्तकों का बड़ा अच्छा संग्रह है, जो अधिकतर जैन धर्म से संबंध रखती हैं।

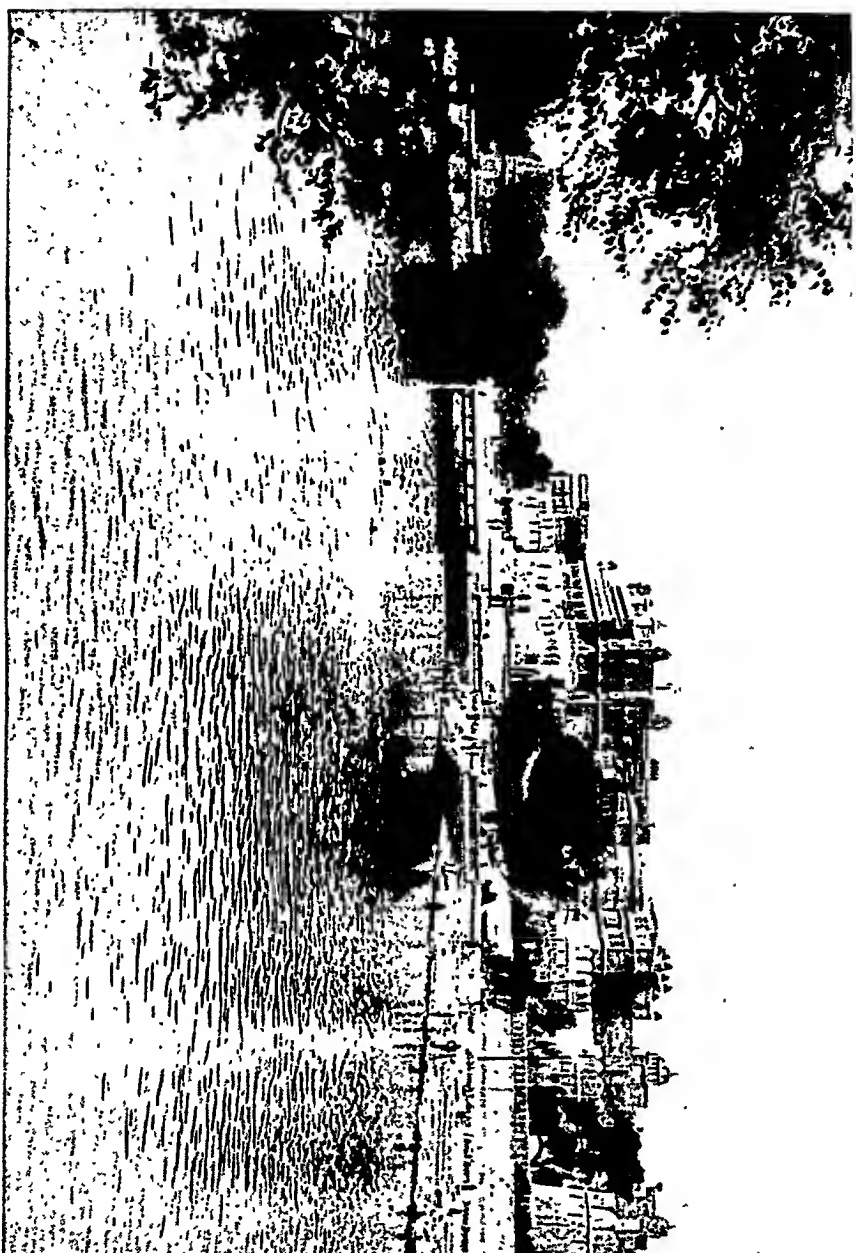
वैष्णव मंदिरों में लक्ष्मीनारायणजी का मंदिर प्रमुख गिना जाता है, जो राव लूणकरण ने बनवाया था। वर्तमान महाराजा साहब ने इस मंदिर के पास सर्व साधारण के उपयोग के लिए सुंदर उद्यान लगवा दिया है। इसके अतिरिक्त वल्लभ-मतानुयायियों के रतनबिहारी और रसिकशिरोमणि के मंदिर भी उल्लेखनीय हैं। यहां भी महाराजा साहब ने सुंदर बगीचे बनवा दिये हैं। रतनबिहारी का मंदिर महाराजा रत्नसिंह के राज्य-समय में बना था। धूनीनाथ का मन्दिर इसी नाम के योगी ने ई० सं० १८०८ (वि० सं० १८६५) में बनवाया था, जो नगर के पूर्वी द्वार के पास स्थित है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य और गणेश की मूर्तियां स्थापित हैं। नगर से एक मील दक्षिण-पूर्व में एक टीले पर नागणोची का मंदिर बना हुआ है। अपनी मृत्यु से पूर्व ही महिषासुरमर्दिनी की यह अट्टारह भुजावाली मूर्ति राव बीका ने जोधपुर से यहां लाकर स्थापित की थी।

नगर में कई मस्जिदें भी हैं, पर वे कारीगरी की दृष्टि से कुछ भी महत्व नहीं रखतीं।

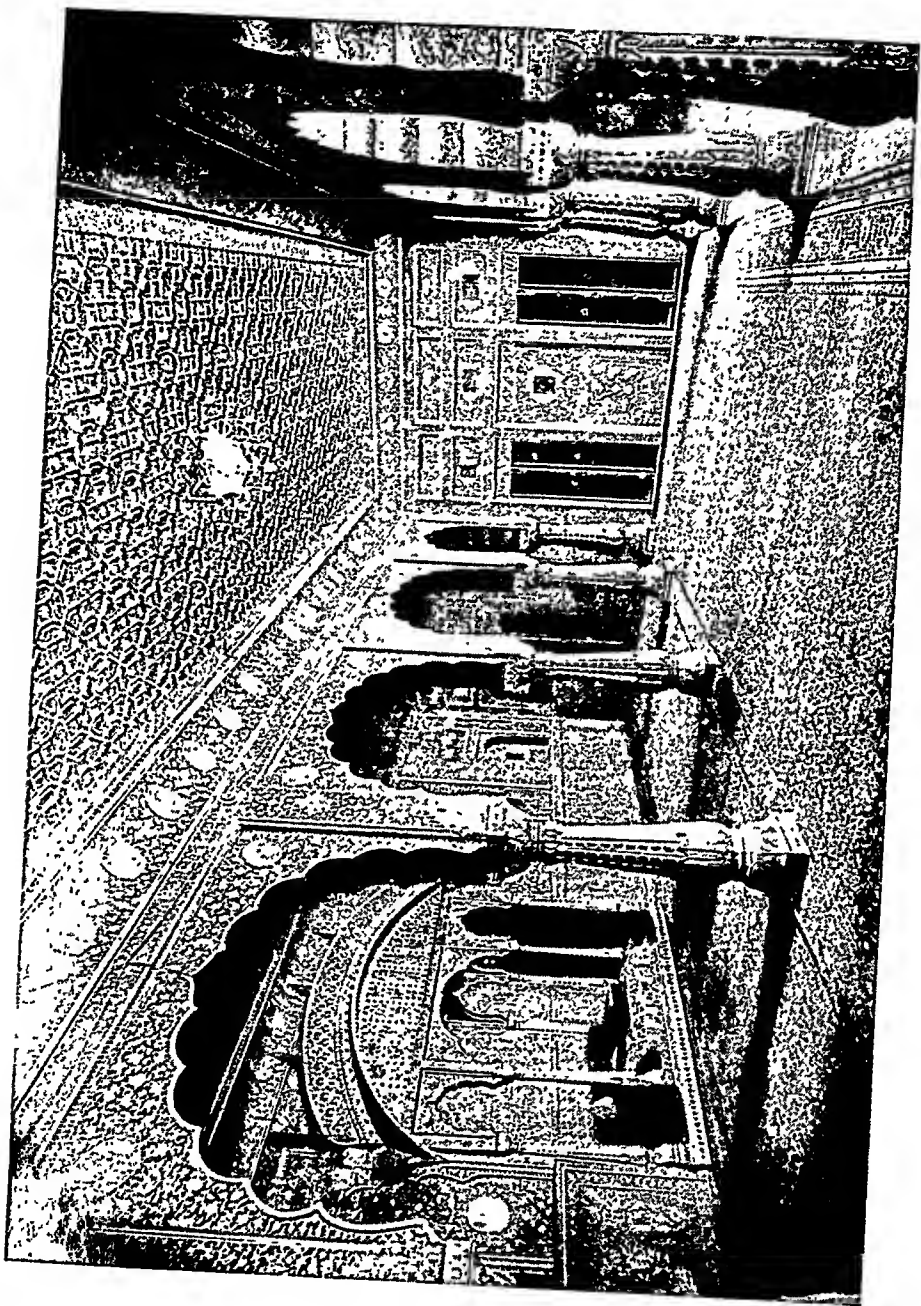
नगर बसाने के तीन वर्ष पूर्व बनवाया हुआ राव बीका का प्राचीन क़िला शहरपनाह के भीतर दक्षिण-पश्चिम में एक ऊंची चट्टान पर विद्यमान है। इसके पास ही बाहर की तरफ़ राव बीका, नरा और लूणकरण की स्मारक छत्रियाँ हैं। राव बीका की छत्री पहले लाल पत्थर की बनी हुई थी, परन्तु पीछे से संगमरमर की बना दी गई है।

बड़ा क़िला अधिक नवीन है। यह महाराजा रायसिंह के समय बना था और शहरपनाह के कोट दरवाज़े से लगभग तीन सौ गज़ की दूरी पर है। इसकी परिधि १०७८ गज़ है। भीतर प्रवेश करने के लिए दो प्रधान द्वार हैं, जिनके बाद फिर तीन या चार दरवाज़े हैं। कोट में स्थान-स्थान पर प्रायः चालीस फ़ुट ऊंची बुजें हैं और चारों ओर खाई बनी हुई है, जो ऊपर तीस फ़ुट चौड़ी होकर नीचे तंग होती गई है। इस खाई की गहराई बीस से पचीस फ़ुट तक है। प्रसिद्ध है कि इस क़िले पर कई बार आक्रमण हुए, पर शत्रु बलपूर्वक इसपर कभी अधिकार न कर सके।

क़िले का प्रवेश-द्वार 'कर्णपोल' है। उसके आगे के दरवाज़ों में एक सूरजपोल है, जिसके दोनों पाश्वों पर विशालकाय हाथी पर बैठी हुई दो मूर्तियाँ हैं, जो प्रसिद्ध वीर जयमल मेड़तिया (राठोड़) और पत्ता चूडावत (सीसोदिया) की (जो चित्तोड़ में बादशाह अकबर के मुक्ताबले में वीरतापूर्वक लड़कर मारे गये थे) बतलाई जाती हैं। आगे बहुत बड़ा चौक है, जिसमें एक तरफ़ पंक्तिबद्ध मरदाने और ज़नाने महल हैं, जो बड़े भव्य और सुदृढ़ बने हुए हैं। इन महलों के भीतर कई जगह कांच की पच्चीकारी और सुनहरी क़लम आदि का बहुत सुन्दर काम है, जो भारतीय कला का उत्तम नमूना है। इन राजमहलों की दीवारों पर रंगीन पलस्तर किया हुआ है, जिससे उनका सौन्दर्य बढ़ गया है। राजमहलों के निर्माण में बहूधा अब तक के प्रायः सभी महाराजाओं का हाथ रहा है। पहले के राजाओं के बनवाये हुए स्थानों में महाराजा रायसिंह



वीकानेर का क़िला और सूरसागर



अनूपमहल, बीकानेर

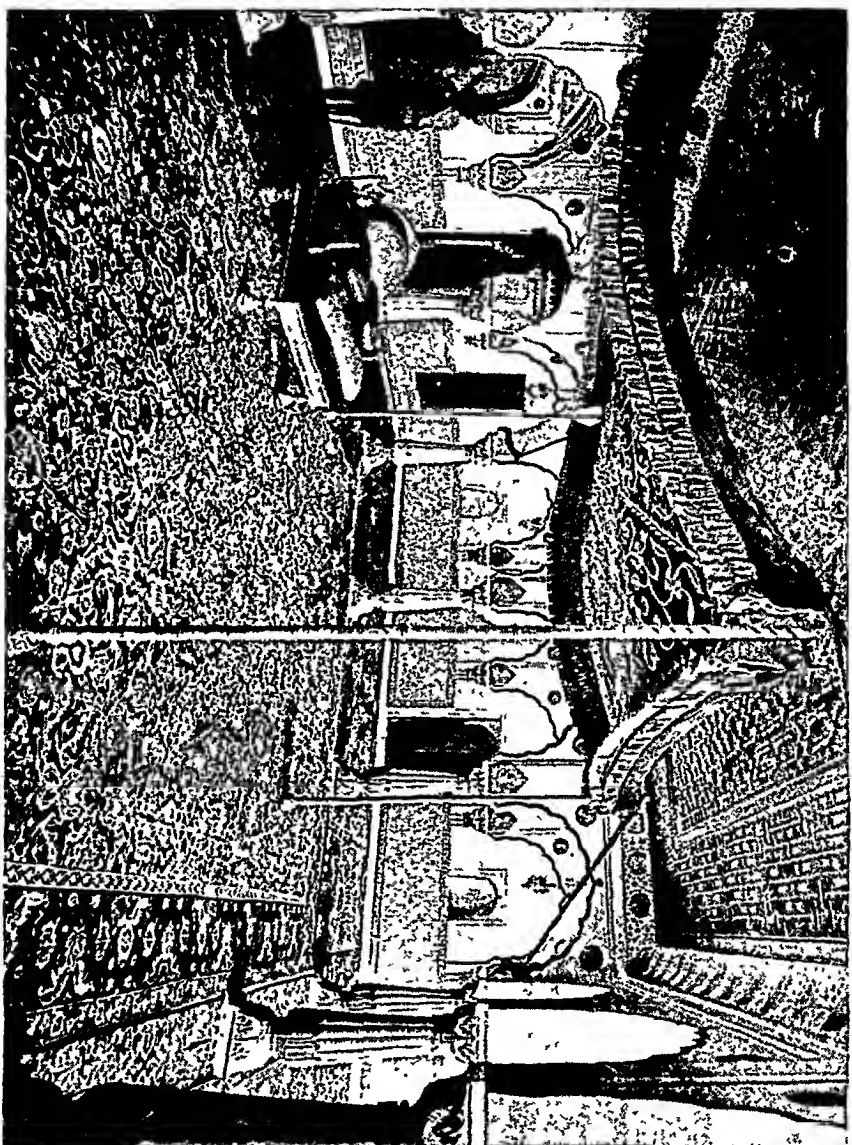
का चौबारा; महाराजा गजसिंह के फूलमहल, चंद्रमहल, गजमंदिर तथा कचहरी; महाराजा सूरतसिंह का अनूपमहल; महाराजा सरदारसिंह का बनवाया हुआ रतनविवास (रतनमंदिर) और महाराजा डूंगरसिंह के छत्रमहल, चीनी भुर्ज (बुर्ज), गनपतनिवास, लालनिवास, सरदारनिवास, गंगानिवास, सोहन भुर्ज, सुनहरी भुर्ज तथा कोठी शक्तनिवास हैं। वर्तमान महाराजा साहब ने समय-समय पर इन राजमहलों में कई नवीन भवन बनवाकर उनकी शोभा बढ़ा दी है, जिनमें दलेलनिवास और गंगानिवास नामक विशाल हॉल मुख्य हैं। गंगानिवास में लाल रंग के खुदाई के काम के पत्थर लगे हैं। छत की लकड़ी पर भी खुदाई का काम है और फर्श संगमरमर का बना है। किले के भीतर फ़ारसी, संस्कृत, प्राकृत और राजस्थानी भाषा की हस्तलिखित पुस्तकों का एक बड़ा पुस्तकालय है। इस पुस्तकालय में संस्कृत पुस्तकों का बड़ा भारी संग्रह है, जिनमें से कई तो ऐसी हैं जो अन्यत्र मिल ही नहीं सकतीं। इनमें से अधिकांश की विस्तृत सूची डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने ई० स० १८८० (वि० सं० १६३७) में एक बड़ी जिल्द के रूप में प्रकाशित की थी। मेवाड़ के महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के संगीत-ग्रन्थों का पूरा संग्रह भारतवर्ष में केवल इसी पुस्तकालय में है। किले के भीतर का शस्त्रागार भी देखने योग्य है, जहां प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों का अच्छा संग्रह है। वहाँ एक कमरे में कई पीतल की मूर्तियां रखी हुई हैं, जो तैंतीस करोड़ देवता के नाम से पूजी जाती हैं। ये मूर्तियां महाराजा अनूपसिंह ने दक्षिण में रहते समय मुसलमानों के हाथ से बचाकर यहां पहुंचाई थीं।

किले के एक हिस्से में बीकानेर राज्य के उत्तरी भाग के रंगमहल, बड़ोपल आदि गांवों से प्राप्त पकी हुई मिट्टी की बनी बहुत प्राचीन वस्तुओं का बड़ा संग्रह है, जिसका श्रेय स्वर्गवासी डॉक्टर टैसिटोरी को है। इस सामग्री को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) खुदाई के काम की ईंटें तथा पकी हुई मिट्टी के

बने हुए स्तम्भ आदि और (२) पकी हुई मिट्टी की सादी तथा उभरी हुई मूर्तियां आदि । खुदाई के काम की ईंटों में हड़जोरा (Acanthus) की बहुत ही सुन्दर पत्तियां बनी हैं । इसके अतिरिक्त उनपर मथुरा शैली और किसी-किसी पर गांधार शैली की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है । इनमें से एक में बैठे हुए दो बैलों की आकृतियां बनी हैं तथा दूसरे में एक राजस का सिर हड़जोरा की पत्तियों के मध्य में बना है । इराडोपर्सिपोलिटन शैली के शिरस्तम्भों में हाथी एवं गरुड़ तथा सिंह की सम्मिलित आकृतियां बनी हैं । पकी हुई मिट्टी के स्तंभों के सिरे बनावट से बहुत प्राचीन जान पड़ते हैं और उनमें तथा अन्य आकृतियों में मथुरा शैली का अनुकरण पाया जाता है । इनमें कुछ वैष्णव मूर्तियों का भी संग्रह है । महिषासुरमर्दिनी की चार भुजावाली मूर्ति के अतिरिक्त विष्णु के वामनावतार और रुद्र की अजैकपाद की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं । उभरी हुई खुदाई के काम की मूर्तियों में कृष्ण की गोवर्धन लीला, नाग लीला और राधा-कृष्ण की मूर्तियां भी महत्वपूर्ण हैं, जिनको वर्तमान महाराजा साहब ने एक नवीन भवन (म्यूजियम्) बनवाकर वहां रखने की व्यवस्था कर दी है ।

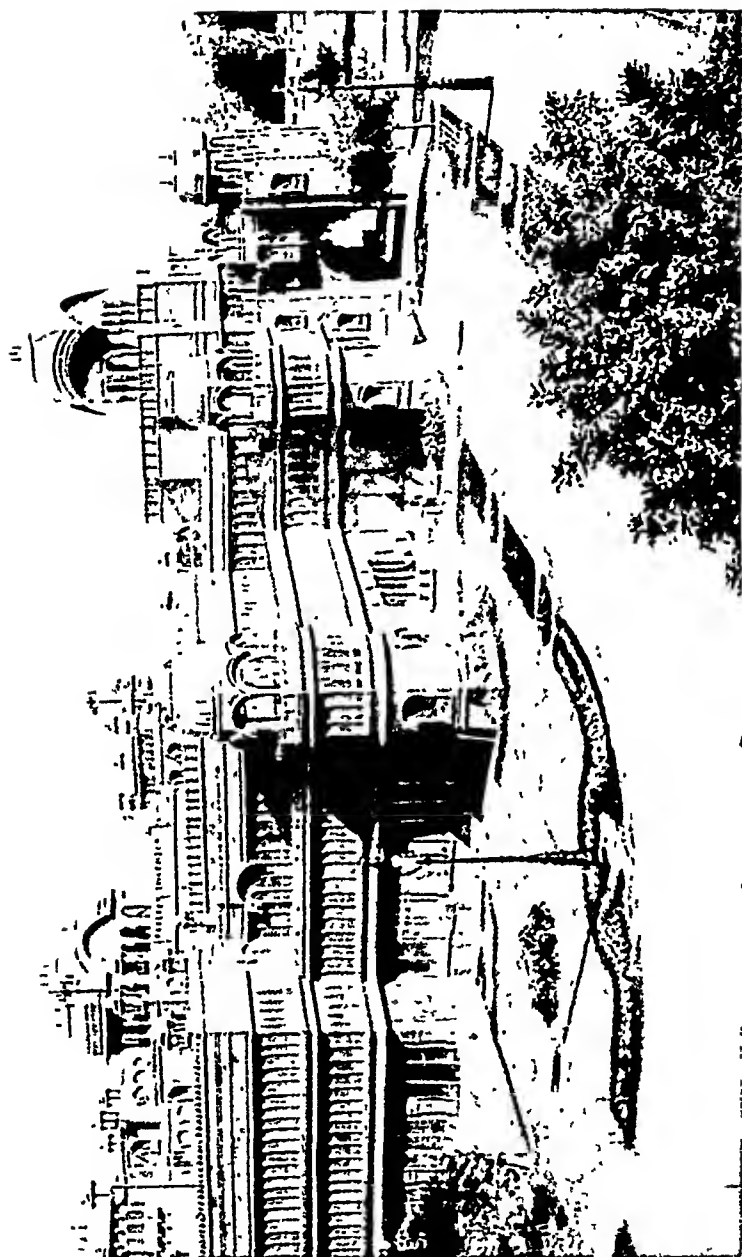
क़िले के भीतर एक घंटाघर, दो बगीचे और चार कुएं हैं, जो प्रायः ३६० फुट गहरे हैं । इनमें से एक का जल बीकानेर में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है ।

क़िले की कर्णपोल के सामने सूरसागर के निकट विशाल और मनोहर गंगानिवास पब्लिक पार्क (उद्यान) है । इस उद्यान का उद्घाटन तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड हार्डिंज के हाथ से ई० स० १९१५ (वि० सं० १९७२) के नवम्बर मास में हुआ था । इसके प्रधान प्रवेशद्वार का नाम 'क्वीन एम्प्रेस मेरी गेट' है । क़िले के सामने पार्क के एक किनारे पर महाराजा डूंगरसिंह की संगमर्मर की मूर्ति लगी है, जिसके ऊपर संगमर्मर का शिखर बना हुआ है । इसी उद्यान में एक तरफ वर्तमान महाराजा साहब के शिक्षक मि० एजर्टन के नाम पर 'एजर्टन टैंक' बना



कर्णमहल, वीकानेर

लालगढ़ महल



है। निकट ही महाराजा साहब की अश्वारूढ़ कांसे की मूर्ति (Bronze Statue) भी लगी है।

नगर के बाहर की इमारतों में लालगढ़ नामक महल बड़ा भव्य है। यह महल महाराजा साहब ने अपने पिता महाराज लालसिंह की स्मृति में बनवाया है। सारा का सारा महल लालपत्थर का बना है, जिसपर खुदाई का बड़ा उत्कृष्ट काम है। भीतर के फ़र्श बहुधा संगमरमर के हैं। महल इतना विशाल है कि यदि कई रईस एक साथ आवें, तो सब बड़े आराम से रह सकते हैं। महल के आहाते में मनोहर उद्यान बने हैं, जिनमें कहीं सघन वृक्षों, कहीं लताकुंजों और कहीं रंग-विरंगे फूलों से भरी हुई हरियाली की छटा दर्शनीय है। इस (महल) के सामने महाराज लालसिंह की सुन्दर प्रस्तर-मूर्ति (Statue) खड़ी है। महल के एक भाग में तैरने का स्थान (Swimming Bath) बना है तथा भीतर बाहर सर्वत्र बिजली की रोशनी लगी है।

इसके बाद विक्टोरिया मेमोरियल क्लब का उल्लेख किया जा सकता है। यह क्लब जनता के चन्दे से बना है और इसमें भांति-भांति के खेलों की व्यवस्था के अतिरिक्त तैरने का स्थान (Swimming Bath) भी बना हुआ है।

यहां का बिजली का कारखाना बहुत बड़ा है, जहां से नगर के अतिरिक्त राज्य के कई दूरस्थ स्थानों में भी रोशनी पहुंचाने का उत्तम प्रबन्ध है। रेल्वे का कारखाना भी यहां बहुत बड़ा है जहां अब रेल्वे के काम की बहुधा सब वस्तुएं बनने लगी हैं। यहां राज्य की तरफ़ से एक बड़ा छापाखाना भी है।

नगर में धर्मशालाएं और लोकोपकारी कई संस्थाएं हैं। अब राज्य की ओर से यहां अपंग-आश्रम, अनाथालय और व्यायामशाला भी बना दी गई है एवं एक बड़ा पुस्तकालय भी बनाया जा रहा है, जिससे भविष्य में बीकानेर के निवासियों को बहुत लाभ होगा। कला-कौशल की वृद्धि की तरफ़ राज्य का पूरा ध्यान है। यहां के जेल में ग़लीचे, दरियें, आसन,

लोइयां आदि सामान बड़ा सुन्दर और टिकाऊ बनता है। ग्लास फैक्टरी भी यहां स्थापित हुई, परन्तु इन दिनों उसका कार्य बंद है।

नगर के पांच मील पूर्व में देवीकुंड है, जहां बीकानेर के महाराजा और राजपरिवार के लोगों की दग्ध क्रिया की जाती है। यहां राव कल्याणसिंह से लगाकर महाराजा डूंगरसिंह तक के राजाओं तथा उनकी राणियों और कुंवरो आदि की स्मारक छत्रियां बनी हैं, जिनमें से कुछ तो बड़ी सुन्दर हैं। पहले के राजाओं आदि की छत्रियां दुलमेरा से लाये हुए लाल पत्थरों की बनी हैं, जिनके बीच में लगे हुए मकराना के संगमरमर पर लेख खुदे हैं, लेकिन पीछे की छत्रियां पूरी संगमरमर की बनी हैं। कुछ छत्रियों के मध्य में खड़ी हुई शिलाओं पर अश्वारूढ़ राजाओं की मूर्तियां खुदी हैं, जिनके आगे कतार में क्रमानुसार उनके साथ सती होनेवाली राणियों की आकृतियां बनी हैं। नीचे गद्य तथा पद्य में उनकी प्रशंसा के लेख खुदे हैं, जिनसे उनके कुछ-कुछ हाल के अतिरिक्त उनके स्वर्गवास का निश्चित समय ज्ञात होता है। महाराजा राजसिंह की छत्री उल्लेखयोग्य है, क्योंकि उसमें उसके साथ जल-मरनेवाले संग्रामसिंह नामक एक व्यक्ति का उल्लेख है। इस स्थान पर सती होनेवाली अंतिम महिला का नाम दीपकुंवरी था, जो महाराजा सूरतसिंह के दूसरे पुत्र मोतीसिंह की स्त्री थी और अपने पति की मृत्यु पर वि० सं० १८८२ (ई० सं० १८२५) में सती हुई थी। उसकी स्मृति में अब भी प्रति वर्ष भादों के महीने में यहां मेला लगता है। उसके बाद और कोई महिला सती नहीं हुई, क्योंकि सरकार के प्रयत्न से यह प्रथा उठ गई। राजपरिवार के लोगों के टहरने के लिए तालाब के निकट ही एक उद्यान और कुछ महल बने हुए हैं।

देवीकुंड और नगर के मध्य में, मुख्य सड़क के कुछ दक्षिण में महाराजा डूंगरसिंह का बनवाया हुआ शिव मंदिर है। इसके निकट ही एक तालाब, उद्यान और महल हैं। इस मंदिर का शिवलिंग ठीक मेवाड़ के प्रसिद्ध एकलिंगजी की मूर्ति के सदृश है। यहां प्रति वर्ष श्रावण मास में भारी मेला लगता है। इस स्थान को शिवबाड़ी कहते हैं।

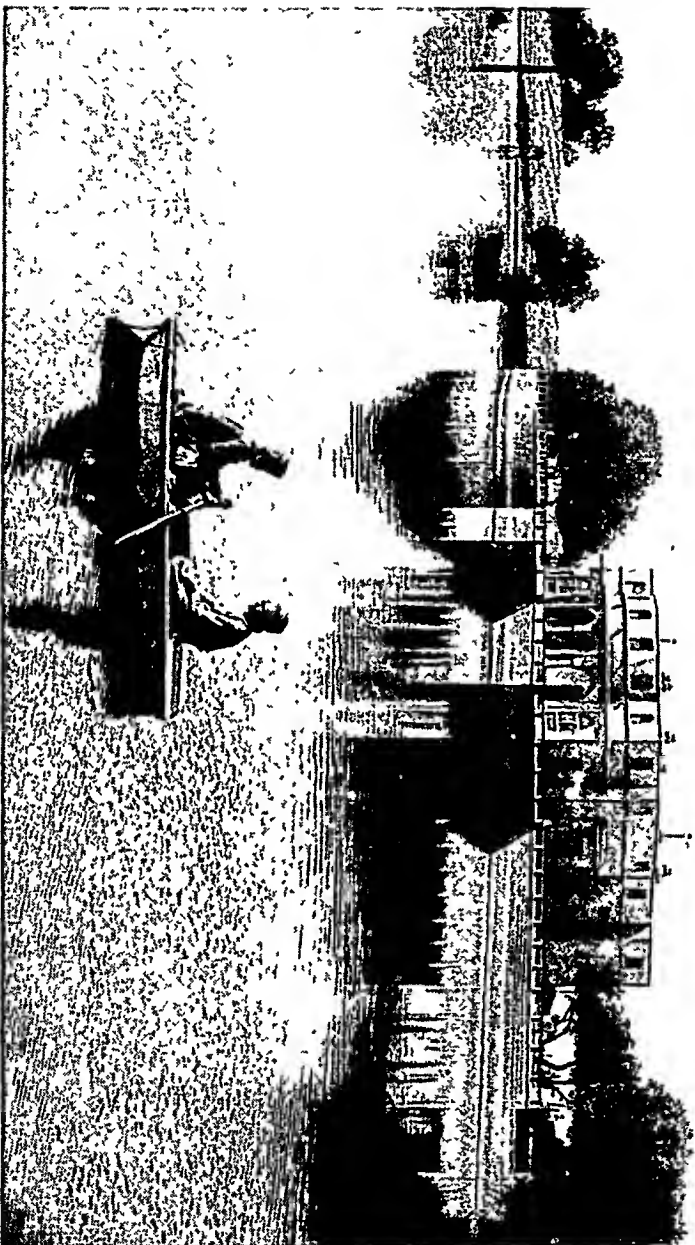
नाल—बीकानेर से ८ मील पश्चिम में इसी नाम के रेलवे स्टेशन के निकट यह गांव है। इसके चारों ओर भाड़ियों और वृक्षों से आच्छादित सात-आठ छोटे-छोटे तालाब हैं। इनमें से एक तालाब के किनारे, जिसे केशोलाय कहते हैं, एक लाल पत्थर का कीर्तिस्तंभ लगा है, जो वि० सं० की १७ वीं शताब्दी का जान पड़ता है। इसके लेख से पाया जाता है कि यह तालाब प्रतिहार केशव ने बनवाया था। दूसरा उल्लेखनीय लेख यहां के बाघोड़ा जागीरदार के निवासस्थान के द्वार पर लगा है, जो वि० सं० १७६२ ज्येष्ठ वदि ६ (ई० सं० १७०५ ता० ६ मई) रविवार का है। इससे उक्त वंश के इन्द्रभाण की मृत्यु तथा उसकी स्त्री अमृतदे के सती होने का पता चलता है।

नाल से दो मील दक्षिण में एक स्थान है, जिसे नाल का कुआं कहते हैं। यहां सात लेख हैं, जिनमें से छः तो वि० सं० की १६ वीं शताब्दी के और एक १७ वीं शताब्दी का है। उल्लेखनीय स्थलों में यहां के मंदिरों, दो कुओं और एक तालाब का नाम लिया जा सकता है। मंदिर सब एक ही स्थान में एक दीवार से घिरे हुए हैं, जिनमें पार्श्वनाथ और दादूजी के मन्दिर उल्लेखयोग्य हैं। दोनों लाल पत्थर के और सम्भवतः वि० सं० की १७ वीं शताब्दी के बने हैं। पार्श्वनाथ के मंदिर की मूर्ति संगमरमर की है, जिसके नीचे एक लेख खुदा है, जो पूरा-पूरा पढ़ा नहीं जाता। इसके सामने जैसलमेर के पीले पत्थर की बनी हुई दो देवलियां हैं, जिनमें से एक पर अश्वारूढ़ व्यक्ति और सती की आकृति बनी है तथा वि० सं० १६०३ फाल्गुन वदि १ (ई० सं० १५४७ ता० ५ फरवरी) का टूटा-फूटा लेख है। इससे कुछ दूर चार-दीवारी के पास एक सादे लाल पत्थर का कीर्तिस्तम्भ लगा है। इसपर वि० सं० १६८१ माघ सुदि १२ (ई० सं० १६२५ ता० १० जनवरी) सोमवार का एक लेख है, जिससे पाया जाता है कि उस दिन महाराजा सूरसिंह के राज्यकाल में सूत्रधार देवा नींबावत ने यहां एक छुत्री बनवाई थी। अब यह कीर्तिस्तम्भ यहां से हटा दिया गया है। दादूजी का मन्दिर साधारण है।

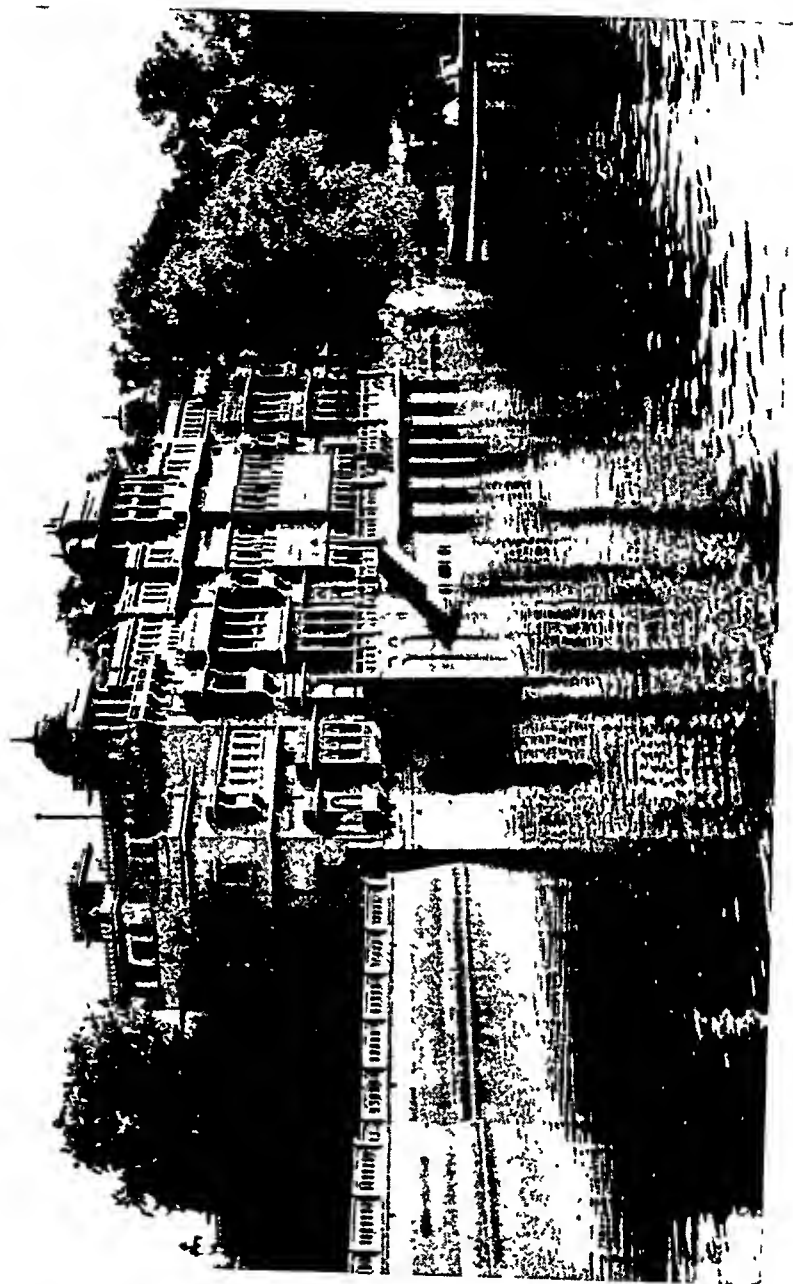
दोनों कुएं पास-पास बने हैं और प्रत्येक के पास एक-एक कीर्तिस्तम्भ लगा है। अधिक प्राचीन कुएं के पास का कीर्तिस्तम्भ जैसलमेर के पीले पत्थर का है, जिसके चारों तरफ़ अर्थात् पश्चिम की ओर गणेश, उत्तर की ओर माता, दक्षिण की ओर सूर्य और पूर्व की ओर किसी देवता (शिव) की अस्पष्ट मूर्ति बनी है। इसके लेख से पाया जाता है कि यह कुआं महाराजा रायसिंह के राजत्वकाल में वि० सं० १६५० फाल्गुन सुदि ११ (ई० सं० १५६४ ता० २१ फ़रवरी) गुरुवार को बनकर संपूर्ण हुआ था। कुएं की दूसरी तरफ़ दुहरी छत्री बनी है, जिसपर कोई लेख नहीं है। दूसरे कुएं का कीर्तिस्तम्भ लाल पत्थर का है, जिसके लेख से पाया जाता है कि उसे गोपाल के पुत्र इन्द्रभाण और उसकी स्त्रियों ने वि० सं० १७५६ ज्येष्ठ सुदि ८ (ई० सं० १६६६ ता० २६ मई) शुक्रवार को बनवाकर सम्पूर्ण किया था। यह इन्द्रभाण वाघोड़ा वंश का था, जो सोनगरे चौहानों की एक शाखा है और जिसके पास अब तक नाल का इलाका जागीर में है। कुओं से थोड़ी दूर उत्तर में दो और देवलियां हैं, जो एक ऊंचे चबूतरे पर बनी हैं और पीले पत्थर की हैं। इनमें से एक पर वि० सं० १६५४ पौष सुदि १२ (ई० सं० १५६८ ता० ६ जनवरी) और दूसरी पर वि० सं० १६६७ फाल्गुन वदि ६ (ई० सं० १६११ ता० २७ जनवरी) का लेख है। प्राचीन तालाब के पास एक छत्री बनी है, परन्तु उसपर कोई लेख नहीं है। उसके निकट का कीर्तिस्तम्भ लाल पत्थर का है और उसपर वि० सं० १६५६ वैशाख वदि २ (ई० सं० १६०२ ता० २६ मार्च) का लेख है, जिससे उसके निर्माण-काल का पता चलता है।

कोड़मदेसर—बीकानेर से १५ मील पश्चिम में यह एक छोटा सा गांव है, जो इसी नाम के तालाब और उसके किनारे पर स्थापित भैरव की मूर्ति के लिए प्रसिद्ध है। यह भैरव की मूर्ति जांगल में बसने के समय स्वयं राव बीका ने मंडोर से लाकर यहां स्थापित की थी।

यहां पर वि० सं० १५१६ से १६३० तक के चार लेख हैं। इनमें से सब से प्राचीन लेख तालाब के पूर्व की ओर भैरव की मूर्ति के निकट के कीर्तिस्तम्भ की दो ओर खुदा है। यह कीर्तिस्तम्भ लाल पत्थर का है



कोडमदेसर



इंदरनिवास महल-गजनेर

और इसकी चारों ओर देवी-देवताओं की मूर्तियां खुदी हैं। इसके लेख से पाया जाता कि वि० सं० १५१६ (शक सं० १३८१=ई० सं० १४५६) भाद्रपद सुदि.....सोमवार को राव रिंगमल के पुत्र राव जोधा ने यह तालाब खुदवाया और अपनी माता कोड़मदे के निमित्त कीर्तिस्तंभ स्थापित करवाया। शेष तीनों लेखों में से सब से पुराना वि० सं० १५२६ माघ सुदि ५ (ई० सं० १४७३ ता० ३ जनवरी) का है, जिसमें साह रुदा के पुत्र साह कया की मृत्यु होने और उसके साथ उसकी स्त्री के सती होने का उल्लेख है। दूसरा लेख एक देवली पर वि० सं० १५४२ भाद्रपद सुदि ७ (ई० सं० १४८५ ता० १७ अगस्त) सोमवार का है, जिसमें एक राठोड़ राजपूत की मृत्यु का उल्लेख है। तीसरा लेख वि० सं० १६३० भाद्रपद वदि १३ (ई० सं० १५७३ ता० २५ अगस्त) मंगलवार का तालाब के किनारे पीले रंग की देवली पर है। इसमें संघराव जीवा की मृत्यु और उसके साथ राठोड़ वंश की उसकी स्त्री रुपार्दे के सती होने का उल्लेख है।

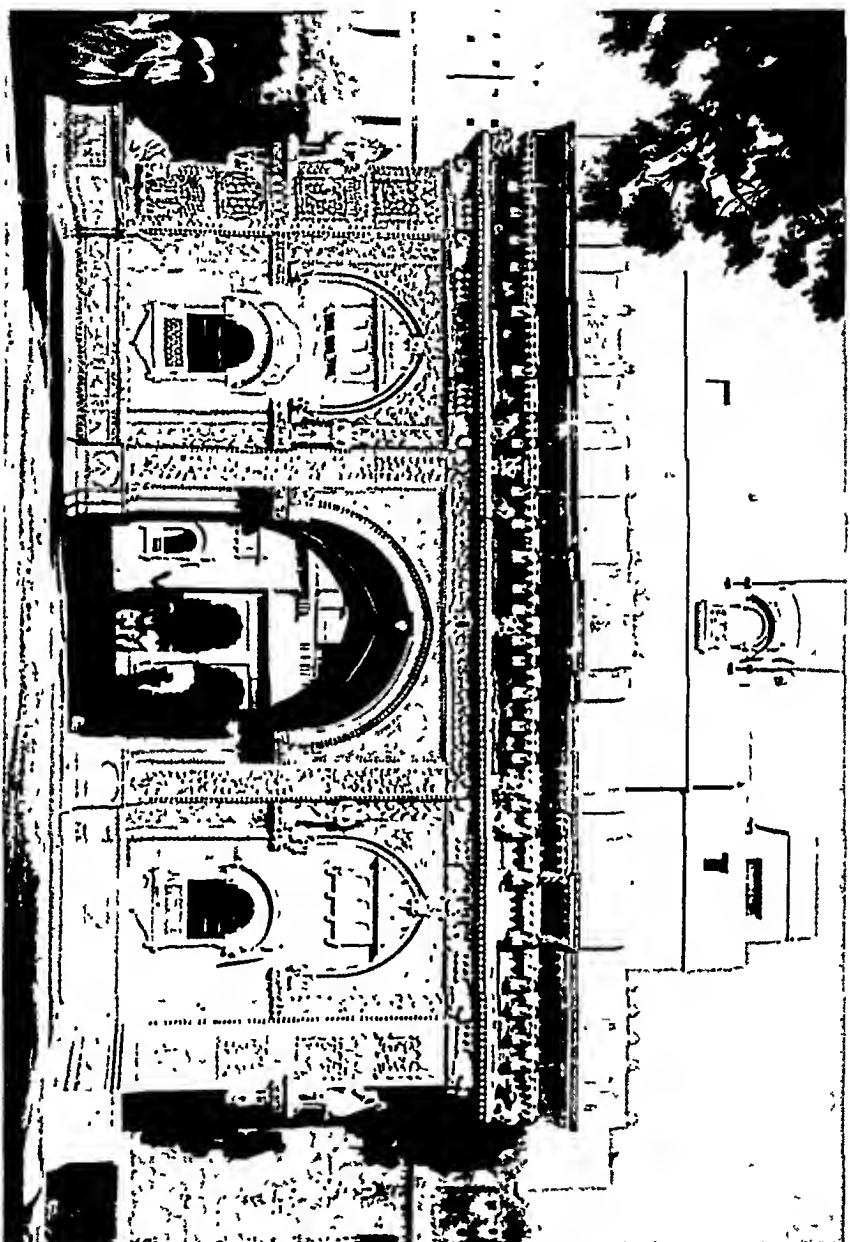
गजनेर—यह बीकानेर से लगभग २० मील दक्षिण-पश्चिम में बसा है। यह महाराजा गजसिंह के समय आवाद हुआ था और बीकानेर राज्य के प्रसिद्ध तालाब गजनेर के नाम पर ही इसकी प्रसिद्धि है। यहां परङ्गण-निवास, लालनिवास, शक्तनिवास, गुलाबनिवास और सरदारनिवास नामक सुन्दर महल हैं। वर्तमान महाराजा साहब के प्रयत्न से यहां का सौन्दर्य बहुत बढ़ गया है और पुराने महलों में परिवर्तन भी हो गया है। यहां सर्वत्र बिजली की रोशनी का प्रबन्ध है। शीतकाल में बतखों, भड़तीतरों आदि के आ जाने पर कुछ दिनों के लिए यह स्थान उत्तम शिकारगाह बन जाता है। गजनेर के उद्यान में नारंगी और अनार के वृक्ष बहुतायत से हैं तथा कई प्रकार की सुन्दर लताएं आदि भी हैं। तालाब का जल आरोग्यप्रद न होने से लोग उसका व्यवहार कम ही करते हैं। ई० सं० १६३३ के अगस्त (वि० सं० १६६०, भाद्रपद) में यहां केवल एक दिन में ही १२ इंच वर्षा हुई, जिससे कई मकानों में पानी भर गया और सरदारनिवास में साढ़े चार फुट पानी चढ़ गया। इस वर्षा से यहां बड़ी क्षति हुई और कितने ही

मकान गिर गये। गत वर्ष ई० स० १९३६ के अगस्त मास की तारीख ११-१३ (वि० सं० १९९३ प्रथम भाद्रपद वदि ६-११) तक तीन दिन लगातार ६० घंटों में १४ इंच वर्षा हुई, जिससे भी यहां के बहुत से कच्चे मकान गिर गये।

श्रीकोलायतजी—यह बीकानेर से करीब ३० मील दक्षिण-पश्चिम में इसी नाम के रेल्वे स्टेशन के निकट बसा है। यहां इसी नाम से प्रसिद्ध एक तालाब भी है, जिसके किनारे कपिल मुनि का आश्रम माना जाता है। प्रति वर्ष कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को यहां मेला लगता है, जिसमें नेपाल आदि बड़ी दूर-दूर से लोग कपिल मुनि के आश्रम के दर्शनार्थ आते हैं। पास ही धूनीनाथ का बनवाया एक अन्य मंदिर है। पुष्कर के समान यहां के तालाब के किनारे बहुत से घाट और मंदिर बने हैं, जो सघन पीपल के वृक्षों की शीतल छाया से आच्छादित हैं। यहां राज्य की ओर से एक अन्न-क्षेत्र स्थापित है तथा कई महाजनों आदि की बनवाई हुई धर्मशालाएं एवं 'देवमन्दिर' भी विद्यमान हैं। ई० स० १९३३ के अगस्त (वि० सं० १९९०, भाद्रपद) मास में एक दिन में ही बहुत अधिक वर्षा (१२ इंच) होने से तालाब का पानी ऊपर तक भर गया और सारी ज़मीन जल-मग्न हो गई, जिससे यहां के अधिकांश मकान गिर गये।

श्रीकोलायतजी से करीब ५ मील दक्षिण में भूमभू नाम का गांव है। इन दोनों स्थानों के आस-पास पहले पत्नीवाल ब्राह्मणों की बस्ती थी, जिनकी वि० सं० १५०० से १८०० तक की देवलियां (स्मारक) यहां बनी हैं।

देशणोक—बीकानेर से १६ मील दक्षिण में इसी नाम के रेल्वे स्टेशन के पास बसा हुआ यह स्थान बीकानेर के महाराजाओं के लिए बड़ा पूज्य है। यहां पर राठोड़ों की पूज्य देवी करणीजी का मंदिर है। ऐसी प्रसिद्धि है कि इस देश पर करणीजी की कृपा और सहायता से ही राठोड़ों का अधिकार स्थापित हुआ था। अब भी कहीं यात्रा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व महाराजा साहब यहां आकर करणीजी का दर्शन करते



करणीजी का मन्दिर, देशाणक

हैं। यहां पर चारणों की ही बस्ती अधिक है और वे ही करणीजी के पुजारी हैं। इस स्थान पर चूहों की बहुलता है जो करणीजी के काबे कहलाते हैं, पर उन्हें मारने या पकड़ने की मनाही है। इसके विपरीत लोग उन्हें भोजन आदि देने में पुण्य मानते हैं। मन्दिर के आसपास बड़ी-बड़ी झाड़ियां हैं, पर उन्हें भी कोई काट नहीं सकता। पहले ऐसा था कि राज्य का जो अपराधी यहां आकर शरण लेता था, वह जब तक यहां रहता, पकड़ा नहीं जाता था।

पलाणा—बीकानेर से १४ मील दक्षिण में इसी नाम के रेल्वे स्टेशन के पास बसा हुआ यह स्थान कोयले की खान के लिए प्रसिद्ध है। प्राचीनता की दृष्टि से यहां वि० सं० १५३६ (ई० स० १४८२) की एक देवली (स्मारक) उल्लेखनीय है, जिससे जांगल देश में प्रथम अधिकार करनेवाले राठोड़ों में से राव बीका के चाचा रिणमल के पुत्र मांडण की मृत्यु का पता चलता है।

वासी-वरसिंहसर—यह गांव बीकानेर से १५ मील दक्षिण में है। यहां पर एक कीर्तिस्तम्भ है, जिसपर पैंतीस पंक्तियों का एक महत्वपूर्ण लेख है। इससे पाया जाता है कि जंगलकूप के स्वामी शंखुकुल (सांखला) के कुमारसिंह की पुत्री और जैसलमेर के राजा कर्ण की स्त्री दूलहदेवी ने यहां वि० सं० १३८१ (ई० स० १३२४) में एक तालाब खुदवाया।

रासी (रायसी) सर—यह बीकानेर से १८ मील दक्षिण में पूर्व की तरफ बसा हुआ है। कहा जाता है कि रूण से चलकर रायसी सांखला पहले यहीं ठहरा था। अनुमानतः उसने ही यह गांव बसाया होगा।

यहां के कुएं के पास की तीन देवलियों पर लेख खुदे हैं, जिनमें से सब से प्राचीन वि० सं० १२८८ ज्येष्ठ वदि अमावास्या (ई० स० १२३१ ता० ३ मई) शनिवार का है। इससे पाया जाता है कि उक्त दिन लाखण के पुत्र चौहान विक्रमसिंह का स्वर्गवास हुआ था। इस लेख के बल पर यह कहना अयुक्त न होगा कि वि० सं० १२८८ से पूर्व ही यह गांव

बस गया था। दूसरे दो लेखों में सांखला रायसिंह के प्रपौत्र राणा कंवरसी (कुमारसी) के दो पुत्रों का उल्लेख है, जिनकी क्रमशः वि० सं० १३८२ और १३८६ (ई० स० १३२५ और १३२९) में मृत्यु हुई थी। पहला लेख लाल पत्थर की देवली पर खुदा है, जिसके ऊपर एक अश्वारूढ़ व्यक्ति और तीन सतियों की आकृतियां बनी हैं। दूसरी देवली भी ऐसी ही है, परन्तु उसमें केवल अश्वारूढ़ व्यक्ति की ही आकृति बनी है।

जेगला—यह बीकानेर से लगभग २० मील दक्षिण में है। यहां पर उल्लेख-योग्य गोगली सरदारों की दो देवलियां हैं। इनमें से अधिक प्राचीन वि० सं० १६४७ आश्विन वदि ८ (ई० स० १५६० ता० ११ सितंबर) की है और गोगली सरदार 'संसार' से सम्बन्ध रखती है। संसार के विषय में ऐसी प्रसिद्ध है कि वह बीकानेर के महाराजा रायसिंह और पृथ्वीराज की सेवा में रहा था और बादशाह के समक्ष एक लड़ाई में सिर कट जाने पर भी उसका धड़ बहुत देर तक लड़ता रहा था। गोगली वंश के व्यक्ति अब भी जेगला में हैं और यहां का एक पट्टेदार भी इसी वंश का है।

धारवा—यह स्थान बीकानेर से लगभग २० मील दक्षिण में जेगला से करीब चार मील पूर्व में है। यहां पर उल्लेखयोग्य केवल एक छत्री है, जिसपर बीकानेर के राव जैतसी के एक पुत्र राठोड़ मानसिंह की मृत्यु और उसके साथ उसकी स्त्री कछवाही पुनिमादे के सती होने के विषय का वि० सं० १६५३ आषाढ़ सुदि ४ (ई० स० १५६६ ता० १६ जून) का लेख खुदा है। छत्री की बनावट साधारण है और उसका छजा तथा गुम्बज बहुत जीर्ण दशा में हैं।

जांगलू—सांखलों का यह प्राचीन क़िला जांगलू नामक प्रदेश में बीकानेर से २४ मील दक्षिण में है। ऐसा कहते हैं कि चौहान सम्राट् पृथ्वीराज की राणी अजादे (अजयदेवी) दहियानी ने यह स्थान बसाया था। सर्व प्रथम सांखले महिपाल का पुत्र रायसी रूण को छोड़कर यहां आया और गुदा बांधकर रहने लगा एवं कुछ समय के बाद यहां के स्वामी दहियों की

छल से हत्या कर उसने यहां अपना अधिकार जमा लिया। सांखलों में नापा बड़ा प्रसिद्ध हुआ। उसके समय में जब बिलोचों का उत्पात जांगल पर बहुत बढ़ा तो वह जोधपुर चला गया और वहां से राव जोधा के पुत्र बीका को लाकर उसने जांगल का इलाका उसके सुपुर्द करा दिया। तब से सांखले राठोड़ों के विश्वासपात्र बन गये। बहुत समय तक गढ़ की कुंजियां तक उनके पास रहती थीं। नापा सांखला बुद्धिमान और राजनीतिज्ञ होने के अतिरिक्त इतना सत्यवादी था कि अब भी यदि कोई बड़ी सच्चाई का प्रमाण देता है तो उसका उदाहरण दिया जाता है कि यह तो नापा सांखला के जैसी बात है। वास्तव में नापा ने राठोड़ों को उक्त (जांगल) प्रदेश में राज्य-विस्तार करने में बड़ी सहायता पहुंचाई थी।

यहां के प्राचीन स्थानों में पुराना किला, केशोलाय और महादेव के मन्दिर उल्लेखनीय हैं। पुराना किला वर्तमान गांव के निकट बना हुआ था, पर अब उसके कुछ भग्नावशेष ही विद्यमान रह गये हैं। चारों ओर चार दरवाजों के चिह्न अब भी पाये जाते हैं। बीच के ऊंचे उठे हुए घेरे के दक्षिण-पूर्व की ओर जांगल के तीसरे सांखले स्वामी खोंवसी के सम्मान में एक देवली (स्मारक) बनी है, जो देखने से नवीन जान पड़ती है।

किले के पूर्व में केशोलाय तालाब है। इसके विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि दहियों के केशव नामक उपाध्याय ब्राह्मण ने यह तालाब खुदवाया था। तालाब के किनारे एक पत्थर पर खुदे हुए लेख में केशव का नाम आता है। यह लेख लाल पत्थर की देवली पर खुदा है और वि० सं० १३४६ आवण सुदि १४ (ई० सं० १२६२ ता० २६ जुलाई) का है। तालाब के निकट की अन्य पांच देवलियां पीछे की हैं, जिनमें से तीन के लेख अस्पष्ट हैं। ये लेख क्रमशः वि० सं० १६१८, १६३० और १६६४ (ई० सं० १५६१, १५७३ और १६०७) के हैं। शेष दो देवलियां वि० सं० १६६० और १६६६ (ई० सं० १६३३ और १६३६) की हैं। इनमें जांगल के भाटी जागीरदारों की मृत्यु के उल्लेख हैं। अब भी जांगल के जागीरदार भाटी ही हैं।

पुराने किले की तरफ गांव के बाहर महादेव का मंदिर है, जो

नवीन बना हुआ है। इसके भीतर एक किनारे पर प्राचीन शिवलिंग की जलेरी पड़ी हुई है। मंदिर के अन्दर की दीवार पर सगमर्मर पर एक लेख खुदा है, जिससे पाया जाता है कि इस मंदिर का नाम पहले श्रीभवानी-शंकरप्रासाद था और इसे राव बीका ने बनवाया तथा वि० सं० १६०१ (ई० सं० १८४४) में महाराजा रत्नसिंह ने इसका जीर्णोद्धार करवाया था।

जांगलू में तीन और मंदिर हैं, पर ये भी नये ही हैं। एक मंदिर जांभा नामक सिद्ध का है, जो पहले पंवार राजपूत था और बाद में साधू हो गया था। इसकी उपासना बिस्नोई मतावलम्बी करते हैं। इस मंदिर के भीतर एक चोला रक्खा है, जो जांभा सिद्ध का बतलाया जाता है।

जांगलू में दो कुएं हैं, परंतु उनपर कोई लेख नहीं है। इनमें से एक की दीवार में एक देवली बनी है, जिसपर केवल वि० सं० ११७० फाल्गुन सुदि १ (ई० सं० १११४ ता० ६ फरवरी) और 'पुत्र गासल' पढ़ा जाता है।

मोरखाणा—यह स्थान बीकानेर से २८ मील दक्षिण-पूर्व में है। यहां का सुसाणीदेवी (सुराणों की कुलदेवी) का मंदिर उल्लेखनीय है। यह मंदिर एक ऊंचे टीले पर बना है और इसमें एक तहखाना, खुला हुआ प्रांगण तथा बरामदा है। यह सारा जैसलमेरी पत्थरों का बना है और इसके तहखाने की बाहरी दीवारों पर देवताओं और नर्तकियों की आकृतियां खुदी हैं। इसी प्रकार द्वारभाग भी खुदाई के काम से भरा हुआ है। तहखाने के ऊपर का शिखर खोखला बना है। इसके भीतर एक देवी की मूर्ति है। तहखाने के चारों तरफ एक नीची दीवार बनी है। प्रांगण पर छत है जो १६ खंभों पर स्थित है, जिनमें से १२ तो चारों ओर एक घेरे में लगे हैं और शेष चार मध्य में हैं। मध्य के चारों स्तम्भ और तहखाने के सामने के दो स्तम्भ घटपल्लव शैली के बने हैं। घेरे में लगे हुए स्तम्भ श्रीधर शैली के हैं। मध्य के स्तम्भों में से एक पर बैठे हुए मनुष्य की आकृति खुदी है, जिसके विषय में कहा जाता है कि वह नागौर के नवाब की मूर्ति है, जो सुसाणी पर अधिकार करना चाहता था।

तहखाने के सामनेवाले बाईं तरफ के स्तम्भ पर दो ओर लेख खुदे हैं। एक तरफ का लेख तो स्पष्ट पढ़ा नहीं जाता, पर दूसरी तरफ के लेख में वि० सं० १२२६ (ई० सं० ११७२) लिखा मिलता है तथा उसके ऊपरी भाग में एक स्त्री की आकृति बनी है। इस लेख का भी आशय स्पष्ट नहीं है, परन्तु इससे इतना सिद्ध है कि उक्त संवत् से पूर्व भी सुसाणी के मन्दिर का अस्तित्व था। पासवाली देवलियों से भी, जिनका उल्लेख आगे किया जायगा, इस बात की पुष्टि होती है। द्वार के बायें पार्श्व और उसके सामनेवाले स्तम्भ को मिलानेवाली दीवार पर लगे हुए काले संगमरमर पर गद्य और पद्य में एक लेख खुदा है, जिसके पूर्वार्द्ध के अन्तिम अर्थात् छठे श्लोक से पाया जाता है कि शिवराज के पुत्र हेमराज ने देवताओं के रथ के समान सुन्दर ऊंचे शिखरवाला 'गोत्र देवी' का मन्दिर बनवाया। उसके बाद के अंश में लिखा है कि वि० सं० १५७३ ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा (ई० सं० १५१६ ता० १६ मई) शुक्रवार को सुराणावंशीय गोसल के प्रपौत्र पूजा के पुत्र संघेश चाहड़ ने (जीर्णोद्धार किये हुए) मन्दिर में श्री पद्मानन्दसूरि के उत्तराधिकारी श्रीनन्दिवर्धनसूरि के द्वारा मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई। सुसाणी के मंदिर की बाईं ओर कुछ पत्थर की मूर्तियां आदि पड़ी हैं, जिनमें नौ देवलियां, एक गोवर्धन (कीर्त्तिस्तम्भ) और एक देव-मूर्ति हैं। इनमें से कुछ लाल पत्थर और कुछ जैसलेमर के पीले पत्थर की हैं। इनपर लेख अवश्य थे, जो लगातार पुताई होने के कारण अब पढ़े नहीं जाते। देवलियां वि० सं० की १३ वीं शताब्दी के प्रारम्भ की जान पड़ती हैं और अनुमानतः राजपूत सरदारों से सम्बन्ध रखती हैं, जिनकी अश्वारूढ़ आकृतियां सतियों की आकृतियों सहित उनपर बनी हैं। एक देवली पर तो लिंग भी दृष्टि गोचर होता है। लेख प्रायः सब देवलियों पर अशुद्ध हैं। एक लेख जो कुछ-कुछ पढ़ा जाता है, वि० सं० १२३१ पौष वदि ३ (ई० सं० ११७४ ता० १३ नवम्बर) का है।

गोवर्धन अथवा कीर्त्तिस्तम्भ अधिक महत्वपूर्ण है। यह लाल

पत्थर का है और इसकी चारों ओर खुदाई का काम है। सामने की तरफ इसपर एक लेख है, जो वि० सं० ११०० के पीछे का नहीं जान पड़ता।

गांव के ससियाणी सागर नाम के कुएं के पास २६ देवलियां एक कतार में लगी हैं, जिनमें से २२ जैसलमेरी पत्थर की और शेष ४ संगमरमर की हैं। इनमें से कुछ जीर्ण दशा में हैं और एक को छोड़कर शेष सभी वि० सं० की १६ वीं और १७ वीं शताब्दी के बीच मृत्यु को प्राप्त होनेवाले भाटी जागीरदारों की हैं। इनमें से वि० सं० १६६५ (ई० सं० १६३८) की देवली से ज्ञात होता है कि इस गांव का पुराना नाम मोरखियाणा था। एक देवली, जो अधिक प्राचीन है, वि० सं० १५६४ फाल्गुन सुदि १४ (ई० सं० १५३८ ता० १२ फरवरी) की है। अब भी इस स्थान के जागीरदार भाटी ही हैं।

मोरखाणा में एक शिवालय भी है, जिसमें मन्दिर और मठ दोनों हैं। शिवालय बहुत पीछे का बना है।

कंवलीसर—यह बीकानेर से ३६ मील दक्षिण में बसा है। यहां वि० सं० की १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की देवलियों का समूह है, जिनमें से केवल एक सुरक्षित रह सकी है। यह वि० सं० १३२८ (ई० सं० १२७१) की है और इसमें इस गांव को बसानेवाले सांखला कमलसी की मृत्यु का उल्लेख है। अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि यहां की सब देवलियां सांखले राणाओं की हैं, जो पहले जांगलू और रासी (रायसी) सर पर राज्य करते थे।

पांचू—बीकानेर से ३६ मील दक्षिण में बसा हुआ यह गांव भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व का है। यहां राव बीका के तीसरे चाचा ऊधा रियमलोत के दो पुत्रों—पंचायण और सांगा—की देवलियां (स्मारक) हैं, जो क्रमशः वि० सं० १५६८ और १५८१ (ई० सं० १५११ और १५२४) की हैं। अनुमानतः पंचायण ने ही यह गांव बसाया होगा और उसी के नाम से इसकी प्रसिद्धि है। इस स्थान के निकट ही

सीलवा गांव है जहां वि० सं० १६३४ (ई० सं० १५७७) की राव जैतसी के पुत्र पूरणमल की देवली (स्मारक) है ।

भादला—यह बीकानेर से ४५ मील दक्षिण में बसा है । यहां कई अति प्राचीन देवलियां हैं, जो सब राजपूतों की चिक्कण शाखा से सम्बन्ध रखती हैं । इनमें से सब से पुरानी वि० सं० ११६१ (ई० सं० ११३४) की है । इनपर के लेखों से स्पष्ट है कि वि० सं० की १२ वीं शताब्दी के अंत और १३ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भादला तथा उसके आसपास के गांवों पर चिक्कण राजपूतों का, जो अपने को राणा कहते थे, अधिकार था ।

साखंडा—बीकानेर से ५२ मील दक्षिण में बसा हुआ यह गांव भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व रखता है । इस के निकट ही दन्तोला की तलाई है, जिसके किनारे पर राव बीका के चाचा मंडला रणमलोत की देवली है, जो वि० सं० १५६२ (ई० सं० १५०५) की है ।

अणखीसर—यह गांव बीकानेर से ३० मील पूर्व-दक्षिण में बसा है । यहां चार देवलियां हैं जो सब वि० सं० १३४० (ई० सं० १२८३) की हैं । इनमें से तीन अणखसिंह के पुत्र आसल और उसकी दो स्त्रियों—रोहिणी और पूमा—की हैं; चौथी देवली रणमल की है, जो अनुमानतः आसल का सम्बन्धी रहा होगा और उसी समय मरा या मारा गया होगा । अणखसी और कोई नहीं, सांखले, राणा रायसी का ही उत्तराधिकारी होना चाहिये । ऐसा ज्ञात होता है कि उसने ही यह गांव बसाया होगा ।

सारंगसर—बीकानेर से ६४ मील पूर्व दक्षिण में बसे हुए इस गांव में मोहिलों का सब से प्राचीन लेख एक गोवर्द्धन (कीर्तिस्तम्भ) पर खुदा है, जो पूरा पढ़ा नहीं जाता । उसमें केवल सम्यत् ११८० स्पष्ट है ।

छापर—यह बीकानेर से ७० मील पूर्व में बसा है और ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व का है । यह मोहिलों की दो प्राचीन राजधानियों में से एक थी । उनकी दूसरी राजधानी द्रोणपुर थी । मोहिल, चौहानों की ही एक

शाखा है, जिसके स्वामियों ने राणा का विरुद्ध धारणकर एक स्थानों के आस-पास के प्रदेश पर वि० सं० की १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक राज्य किया था।

छापर में मोहिलों की बहुत सी देवलियां (स्मारक) हैं, जो वि० सं० की १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की हैं। इनमें से दो विशेष महत्व की हैं क्योंकि इनसे मोहिल राणाओं के सम्बन्ध का निश्चित समय ज्ञात होता है। एक राणा सोहणपाल की वि० सं० १३११ (ई० स० १२५४) और दूसरी राणा अरडक की वि० सं० १३४८ (ई० स० १२९१) की है, जो सम्भवतः सोहणपाल का पुत्र हो। इनके अतिरिक्त एक देवली (स्मारक) वि० सं० १६८२ (ई० स० १६२५) की गिरधरदास के पुत्र आसकर्ण की है।

यहां छापर नाम की एक खारे पानी की भील है, जिससे पहले नमक बनाया जाता था, पर अंग्रेज़ सरकार के साथ किये हुए वि० सं० १६६१ (ई० स० १६१३) के इक्करारनामे के अनुसार अब यह काम बन्द कर दिया गया है।

इस गांव से लगभग दो मील दक्षिण-पश्चिम में चाहड़वास गांव है, जहां राव बीका के भाई राव बीदा के वंशधरों में से खेतसी के पुत्र राम की वि० सं० १६२५ (ई० स० १५६८) की और गोपालदास के पुत्र कुम्भकर्ण की वि० सं० १६४५ (ई० स० १५८८) की देवलियां (स्मारक) हैं।

सुजानगढ़—यह बीकानेर से ७२ मील पूर्व-दक्षिण में मारवाड़ की सीमा से मिला हुआ बसा है। इस स्थान का पुराना नाम खरबूजी का कोट था। पीछे से सांडवा के जागीरदार को दूसरे स्थान में भूमि देकर उससे यह स्थान महाराजा सूरतसिंह ने वि० सं० १८३५ (ई० स० १७७८) के आसपास लिया और इसका नाम सुजानसिंह के नाम पर रक्खा। यहां पुराना क़िला अब तक विद्यमान है, जिसका उक्त महाराजा के समय जीर्णोद्धार हुआ था। इसकी चारों ओर खाई तो नहीं

है पर धूल-कोट है। यहां २७ मन्दिर, दो मस्जिदें तथा कई धर्म-शालाएं हैं।

सुजानगढ़ से छः मील पश्चिमोत्तर में गोपालपुरा गांव है, जिसके आस-पास पर्वत श्रेणियां हैं। राज्य भर में यही एक ऐसा स्थल है, जहां पर्वत श्रेणियां दिखलाई पड़ती हैं। यह कहा जाता है कि पहले इस स्थान पर द्रोणपुर नाम का नगर था, जो पांडवों के आचार्य द्रोण ने बसाया था। पीछे से यहां परमारों का अधिकार हुआ जिन्हें निकालकर वागड़ी राजपूत यहां के स्वामी हुए। उनके बाद मोहिलों का आधिपत्य हुआ, जिनसे राठोड़ों ने यह स्थान लिया। राव बीका ने यह सारा प्रदेश अपने भाई बीदा को दिया था, जिससे अब तक इसका नाम बीदाहद (बीदावाटी) है।

गोपालपुरा में राव बीदा के पुत्र उदयकरण की वि० सं० १५६५ (ई० सं० १५०८) की देवली (स्मारक) है, जो प्राचीनता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

चरखू—छापर से १४ मील दूर बसा हुआ यह स्थान ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्व रखता है, क्योंकि यहां मोहिलों की बहुत सी देवलियां (स्मारक) हैं, जिनसे विष्णुदत्त, देवसरा (?), आहड़ और अम्बराक नाम के चार मोहिल सरदारों के नाम ज्ञात होते हैं। इनमें से प्रथम की मृत्यु वि० सं० १२०० (ई० सं० ११४३) और अंतिम की १२४१ (ई० सं० ११८४) में हुई थी। आहड़ और अम्बराक के विषय में इन देवलियों से पता चलता है कि वे नागपुर (नागौर) की लड़ाई में मारे गये थे। इनसे तथा मोहिलों की अन्य देवलियों से यह सिद्ध हो जाता है कि वि० सं० की १३ वीं शताब्दी के पूर्व ही उनका इस प्रदेश पर अधिकार हो गया था और उनकी पहली राजधानी चरखू ही थी।

सालासर—यह बीकानेर से ८७ मील पूर्व-दक्षिण में जयपुर की सीमा के निकट बसा है। यहां का हनुमान का मंदिर उल्लेखनीय है, जहां वर्ष में

दो बार, कार्तिक और वैशाख में पूर्णिमा के दिन, मेले लगते हैं, जिनमें दूर-दूर के यात्री दर्शनार्थ आते हैं।

रतनगढ़—यह बीकानेर से ८० मील पूर्व में बसा है। सर्व-प्रथम यहां महाराजा सूरतसिंह ने कौलासर नाम का एक मजरा बसाया था। महाराजा रतनसिंह ने इसे वर्तमान रूप दिया। नगर में तथा उसके आस-पास प्रायः दस पक्के तालाब और बीस कुएं हैं, जिनमें से अधिकांश बड़े सुन्दर हैं और उनके पास छत्रियां भी बनी हैं। चारों ओर चहारदिवारी भी है और दो छोटे-छोटे किले भी विद्यमान हैं। यहां का प्रमुख मन्दिर जैनों का है। इसके अतिरिक्त कई विष्णु और शिव के मंदिर भी हैं।

चूरु—यह नगर बीकानेर से १०० मील पूर्व में कुछ उत्तर की तरफ बसा है। ऐसी प्रसिद्धि है कि चूरु नाम के एक जाट ने ई० स० १६२० के आसपास इसे बसाया था, जिससे इसका नाम चूरु पड़ा। शेखावाटी की ओर से अग्रसर होनेवाले व्यक्ति को यह नगर दूर से दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि बीच में रेत का एक ऊंचा टीला आ गया है। कहा जाता है कि यहां का किला मालदे नामक व्यक्ति के उत्तराधिकारी खुशहालसिंह ने वि० सं० १७६६ (ई० स० १७३६) में बनाया था। यहां के भवन विशाल और कुएं अति सुन्दर हैं। मानस्टुअर्ट पटिफन्स्टन ने, जो ई० स० १८०८ में इधर से गुजरा था, यहां के कुओं और अट्टालिकाओं की बड़ी प्रशंसा की थी। इस नगर में कई प्राचीन मक़बरे और छत्रियां भी हैं।

सरदारशहर—यह बीकानेर से ८५ मील पूर्वोत्तर में बसा है। महाराजा सरदारसिंह ने सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व ही यहां पर एक किला बनवाया था। शहर की चारों तरफ टीले हैं, जिनसे इसका सौन्दर्य बहुत बढ़ गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व रखनेवाली यहां एक छत्री है, जो वि० सं० १२४१ (ई० स० ११८४) की है, परन्तु उसपर मोहिल इन्द्रपाल के अतिरिक्त और कुछ पढ़ा नहीं जाता। इस देवली से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मोहिलों का प्रभाव पहले बहुत बड़ा-चढ़ा था और उनका राज्य यहां तक फैला हुआ था।

इसके तीन मील दक्षिण में ऊदासर गांव है, जो इसी नाम के रेलवे स्टेशन के पास बसा है। यहां पर राव कल्याणमल के पुत्र रामसिंह की वि० सं० १६३४ (ई० सं० १५७७) की देवली (स्मारक) है।

रिणी—यह बीकानेर से १२० मील पूर्वोत्तर में बसा है। कहते हैं कि इसे राजा रिणीपाल ने कई हजार वर्ष पूर्व बसाया था। उसके अंतिम वंशधर जसवन्तसिंह के समय लगातार कई बार अकाल पड़ने के कारण जब यह नगर नष्ट हो गया तो चायल राजपूतों ने इसपर तथा इसके आस-पास के गांवों पर अधिकार कर लिया। वि० सं० की सोलहवीं शताब्दी में राव बीका ने उन्हें निकालकर यहां अपना आधिपत्य स्थापित किया। महाराजा गजसिंह का जन्म यहीं पर होने के कारण गजसिंहोत बीका इसे बड़ा शुभ स्थान मानते हैं। इस नगर की चारों तरफ भी शहरपनाह बनी है। वर्तमान किला महाराजा सूरतसिंह का बनवाया हुआ है। यहां भी कुछ छत्रियां तथा वि० सं० १६६६ (ई० सं० ८४२) का बना हुआ एक सुन्दर जैन मन्दिर है, जो बड़ा सुदृढ़ बना हुआ है। छत्रियों में से वि० सं० १८०५ (ई० सं० १७४८) की एक छत्री उल्लेखनीय है, जिसमें महाराज आनन्दसिंह की मृत्यु का उल्लेख है। जैन मन्दिर बहुत प्राचीन होते हुए भी देखने में अबतक नवीन ही जान पड़ता है। वि० सं० १८७५ (ई० सं० १८१८) के बने हुए रामदेवजी के मन्दिर में प्रतिवर्ष एक मेला लगता है। निकट के जसरासर नाम के तालाब के पास के मन्दिर में भी प्रति मास एक मेला लगता है।

राजगढ़—बीकानेर से १३५ मील पूर्वोत्तर में बसा हुआ यह नगर वि० सं० १८२२ (ई० सं० १७६६) में महाराजा गजसिंह ने अपने पुत्र राजसिंह के नाम पर बसाया था। यहां का किला उक्त महाराजा की आज्ञा से उसके मंत्री महता बख्तावरसिंह ने बनवाया था।

दद्रेवा—यह बीकानेर से १२४ मील पूर्वोत्तर में बसा है। प्राचीनता की दृष्टि से महत्व रखनेवाला यहां वि० सं० १२७० (ई० सं० १२१३) का एक लेख है, जिसमें एक कुआं खुदवाये जाने का उल्लेख है तथा मंडलेश्वर

गोपाल के पुत्र राणा जयतसिंह का नाम दिया है। इससे यह सिद्ध है कि वि० सं० की १३ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यहां पर चौहानों का राज्य था, जो अपने को राणा कहते थे। बीकानेर की ख्यातों में गोगादे सिद्ध का जन्म दद्रेवा में होना लिखा है। संभव है कि वह जयतसिंह का ही कोई वंशधर रहा हो।

नौहर—यह बीकानेर से ११८ मील उत्तर-पूर्व में बसा है। यहां एक जीर्ण-शीर्ण क़िले के चिह्न अभी तक विद्यमान हैं। इस स्थान से १६ मील पूर्व में गोगामेड़ी नामक स्थान है, जहां भाद्रपद के कृष्ण पक्ष में गोगासिद्ध की स्मृति में मेला लगता है, जिसमें १०-१५ हजार आदमी एकत्र होते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि एक बार यहां की यात्रा कर लेने के बाद सर्प-दंश का भय नहीं रहता। इस स्थान से एक मील उत्तर में प्रसिद्ध गोरखटीला है। कहा जाता है कि यहां पहले गोरखनाथ नाम का सिद्ध रहता था।

नौहर में वि० सं० १०८४ (ई० सं० १०२७) का एक लेख है।

हनुमानगढ़—यह बीकानेर से १४४ मील उत्तर-पूर्व में बसा है। यहां एक प्राचीन क़िला है, जिसका पुराना नाम भटनेर था। भटनेर भट्टीनगर का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ भट्टी अथवा भाटियों का नगर है।

बीकानेर राज्य के दो प्रमुख क़िलों में से हनुमानगढ़ दूसरा है। यह क़िला लगभग ५२ बीघे भूमि में फैला हुआ है और ईंटों से सुदृढ़ बना है। इसका जीर्णोद्धार होते-होते सारा-का-सारा क़िला नया सा हो गया है। चारों ओर की दीवारों पर बुर्ज बने हैं। क़िले का एक द्वार कुछ अधिक पुराना प्रतीत होता है। प्रधान प्रवेशद्वार पर संगमरमर के काम के चिह्न अब तक विद्यमान हैं। कहते हैं कि पहले इस क़िले में शुम्बद आदि बने हुए थे, पर ये सब तोड़ डाले गये और ईंटें आदि मरम्मत के काम में लगा दी गईं। क़िले के एक द्वार के एक पत्थर पर वि० सं० १६७७ (ई० सं० १६२०) खुदा है। उसके नीचे राजा का नाम तथा छः राणियों की आकृतियां भी बनी थीं जो अब स्पष्ट नहीं हैं। कहीं-कहीं ईंटों

पर अब भी फ़ारसी एवं अरबी के अक्षर खुदे हुए दीख पड़ते हैं। किले के भीतर का जैन उपासरा प्राचीन है। उसके भीतर की मूर्तियों में से तीन की पीठ पर क्रमशः वि० सं० १५०६ मार्गशीर्ष सुदि १० (ई० स० १४४६ ता० २५ नवम्बर); १५५६ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० १५०२ ता० २१ अक्टूबर) और १५६५ माघ वदि २ (ई० स० १५३६ ता० ६ जनवरी) के लेख खुदे हैं, जिनमें उक्त मूर्तियों की स्थापना के सम्बन्ध के उल्लेख हैं। किले में एक लेख हि० स० १०१७ (वि० सं० १६६५=ई० स० १६०८) का फ़ारसी लिपि में लगा है, जिससे पाया जाता है कि उस (बादशाह) की आज्ञा से कछवाहे राय मनोहर ने उक्त संवत् में वहां मनोहरपोल नाम का दरवाज़ा बनवाया।

धनुमानगढ़ किसका बसाया हुआ है, इसका ठीक पता नहीं चलता। पहले यह स्थान निर्जन पड़ा हुआ था, केवल दो कोस की दूरी पर दो गुम्बद थे, जिनके पास के टीले पर कुछ लोगों की बस्ती थी, जो भाटी थे। फिर सादात (जलालुद्दीन बुखारी के वंशधर) के समय में यह क़िला बनकर सम्पूर्ण हुआ, जिसे मारकर भाटियों ने यहां अपना अधिकार स्थापित किया। कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि महमूद गज़नवी ने वि० सं० १०५८ (ई० स० १००१) में भटनेर लिया, पर यह कथन विश्वसनीय नहीं है। १३ वीं शताब्दी के मध्य में चल्ह्वन का एक सम्बन्धी शेरखां यहां का हाकिम था। कहा जाता है कि उसने भटिंडा और भटनेर के क़िलों की मरम्मत कराई थी और वि० सं० १३२६ (ई० स० १२६६) में उसका भटनेर में देहांत हुआ, जहां उसकी स्मृति में एक क़ब्र (Tomb) बनी है। वि० सं० १४४८ (ई० स० १३९१) में भाटी राजा (राव) दुलचंद से तैमूर ने भटनेर लिया। तत्कालीन तवारीखों में लिखा है—“बहुत ही सुदृढ़ और सुरक्षित होने से यह क़िला हिन्दुस्तान भर में प्रसिद्ध है। यहां के लोगों के व्यवहार के लिए जल, एक बड़े हौज़ से आता है, जहां का वर्षा-काल का एकत्रित पानी साल भर तक काम देता है।” इसके बाद यहां क्रमशः भाटियों, जोहियों और चायलों का अधिकार हुआ। वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में बीकानेर के चौथे शासक राव जैतसिंह

ने यहां राठोड़ों का आधिपत्य स्थापित किया। इसके ११ वर्ष बाद वावर के पुत्र कामरां ने इसे जीता। फिर कुछ दिनों तक चायलों का अधिकार रहा, जिनसे पुनः राठोड़ों ने इसे लिया। बीस वर्ष बाद शाही खज़ाना लूटे जाने के अपराध में बादशाह की आज्ञा से हिसार के सूबेदार ने इसे शाही राज्य में मिला लिया। बीच में कई बार इसके अधिकारियों में परिवर्तन हुए। अन्त में महाराजा सूरतसिंह के समय वि० सं० १८६२ (ई० सं० १८०५) में पांच मास के विकट घेरे के बाद राठोड़ों ने इसे ज़ाबताखां भट्टी से छीना और यहां बीकानेर राज्य का अधिकार हुआ। मंगलवार के दिन अधिकार होने के कारण इस क़िले में एक छोटा सा हनुमानजी का मंदिर बनवाया गया और उसी दिन से इसका नाम हनुमानगढ़ रक्खा गया।

घग्गर के आस-पास का प्रदेश प्राचीन काल में बीकानेर राज्य का सब से सम्पन्न भाग था, अतएव शिल्पकला का विकास भी यहां ही अधिक हुआ था। पत्थर की कमी के कारण यहां मिट्टी पकाकर उसकी बड़ी सुन्दर मूर्तियां आदि बनाई जाती थीं। हनुमानगढ़ में इस तरह के काम के जो उदाहरण मिले हैं वे बड़े उत्कृष्ट और उच्चकोटि की कला के परिचायक हैं। क़िले के भीतर के एक टीले के नीचे १५ फ़ुट की गहराई में पकी हुई मिट्टी के बने स्तम्भ के दो शिरोभाग (Terra Cotta Capitals) पाये गये, जिनके किनारों पर सीढ़ी सहित शंखु आकृति के भीनारे (Pyramids) बने हैं। भीतर के तीसरे द्वार के निकट से दो भाग में टूटी हुई पक्की मिट्टी की चौकी मिली, जो उसी समय की बनी है, जिस समय के उपर्युक्त शिरोभाग हैं। भीतर के दूसरे अथवा मध्य-द्वार के निकट लाल पत्थर का बना द्वार-स्तम्भ (Door-jamb) है, जिसके ऊपर तीन चतुष्कोण पटरियां बनी हैं, जिनमें से दो पर मनुष्य की आकृतियां और तीसरे पर सूर्य की बैठी हुई मूर्ति बनी है, जो हाथों में दो कमल के फूल लिये है।

हनुमानगढ़ के निकट ही भद्रकाली, पीर सुलतान, मुंडा, डोबेरी, कालीबंग आदि स्थान हैं, जहां से भी प्राचीन कला के अवशेष मिले हैं।

मुंडा का स्तूप अन्य स्तूपों से बड़ा है। इसके निकट ही एक कटहरे का काम देनेवाले स्तम्भ का टुकड़ा है, जिसके मध्य में कमल-पुष्प बना है। पीर सुलतान में मिली हुई पकी हुई मिट्टी की बनी खी की टूटी आकृति बड़ी उत्कृष्ट कला का उदाहरण है और गान्धार शैली की जान पड़ती है। डोबेरी में एक सुदृढ़ नगर के अवशिष्ट चिह्न प्राप्त हुए हैं।

गंगानगर—यह बीकानेर से १३६ मील उत्तर में बसा है। पहले यहां कोई आवादी नहीं थी और यह हिस्सा ऊजड़ तथा 'दुले की चार' नाम से प्रसिद्ध था। फिर इधर कुछ गांव आवाद हुए; जिनमें वर्तमान गंगानगर से एक मील दूरी पर रामनगर नामक गांव आवाद हुआ। वर्तमान महाराजा साहब ने जब पंजाब जिले के फ़ीरोज़पुर से बीकानेर राज्य में गंगानगर लाने का कार्य आरंभ किया उस समय व्यापार के लिए यहां मंडी बनाना स्थिर हुआ और वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२७) में इस स्थान की नींव दी गई। यहां दूर-दूर के लोग अपना नाज बेचने के लिए आते हैं और राज्य के उद्योग से यहां बहुत बड़ी मंडी हो गई है। यह गंगानगर निज़ामत का मुख्य स्थान है। इसमें एक 'कॉटन प्रेस एन्ड जिनिंग फ़ैक्टरी' है तथा और भी कई फ़ैक्टरियां हैं। वि० सं० १६६१ (ई० स० १६३४) में राज्य ने यहां की खास तौर पर मर्दुमशुमारी की तो १०५७६ मनुष्यों की आवादी पाई गई। इस मंडी का निर्माण बड़ी सुंदरता से हुआ है और मुख्य सड़कें तो जयपुर नगर की प्रसिद्ध सड़कों के समान बहुत चौड़ी हैं। यहां कई भव्य मकान भी बने हैं और बनते जाते हैं। राज्य की तरफ़ से यहां कई बड़े अफ़सर रहते हैं और इधर के माल्क-सीने का रेवेन्यू अफ़सर भी यहीं रहता है।

लाखासर—यह बीकानेर से ११० मील उत्तर में कुछ पूर्व की तरफ़ बसा है। कहते हैं कि हरराज ने अपने पिता के नाम पर इसे बसाया था। ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्थान दो देवलियों के लिए प्रसिद्ध है। एक देवली वि० सं० १६०३ (ई० स० १५४६) की है, जो सम्भवतः राव बीका के चाचा लाखा रणमलोत की हो। इसके निकट ही हरराज के पौत्र सुरसाण की वि० सं० १६५० (ई० स० १५९३) की देवली है।

सूरतगढ़—यह वीकानेर से ११३ मील उत्तर में कुछ पूर्व की तरफ बसा है। यहां एक जिला भी था। वि० सं० १८६२ (ई० स० १८०५) में महाराजा सूरतसिंह ने यहां नया जिला बनवाया और उसका नाम सूरतगढ़ रखा। यह जिला सारा ईंटों का बना है, जिनमें से बहुत सी ईंटें आदि बौद्ध स्थानों से लाकर लगाई गई हैं। ईंटें कुछ तो सादी और कुछ खुदाई के काम से भरी हैं। मिट्टी की बनी अधिक महत्व की वस्तुएं वीकानेर के जिले में सुरक्षित हैं। इनमें हड़जोरा की पत्तियों, गरुड़, हाथी, राजस आदि की आकृतियां बनी हैं और गांधार शैली की छाप स्पष्ट दीख पड़ती है। कहते हैं कि ये सब ईंटें आदि रंगमहल नामक गांव से लाई गई थीं।

रंगमहल गांव सूरतगढ़ से दो मील उत्तर-पूर्व में स्थित है। वीकानेर के जिले में सुरक्षित शिवपार्वती, कृष्ण की गोवर्धन लीला तथा एक पुरुष और स्त्री की पकी हुई मिट्टी की बनी मूर्तियां इसी प्राचीन स्थान से मिली थीं। कहते हैं कि यह स्थान पहले जोहिये सरदारों की राजधानी थी, जिनके समय में टोंड के कथनानुसार यहां सिकन्दर महान् का आगमन हुआ था। यहां एक प्राचीन चावली (Step-well) है, जिसमें २½ फुट लम्बी और उतनी ही चौड़ी ईंटें लगी हैं।

सूरतगढ़ से ७ मील उत्तर-पूर्व में बड़ोपल नामक गांव है। यहां भी बौद्धकालीन प्राचीन कला की वस्तुओं के अवशेष विद्यमान हैं।



दूसरा अध्याय

राठोड़ों से पूर्व का प्राचीन इतिहास

राठोड़ों का बीकानेर राज्य पर अधिकार होने से पूर्व यह प्रदेश कई भागों में विभक्त था । मरुभूमि और आबादी कम होने के कारण विजेताओं का इस तरफ ध्यान कम ही रहा, जिससे यहां के शासक स्वाधीनता का उपभोग करते रहे । महाभारत के समय वर्तमान बीकानेर राज्य 'कुरु-राज्य' के अन्तर्गत था । इसके पीछे यहां किन-किन राजवंशों का अधिकार रहा, यह ज्ञात नहीं होता । प्रतापी मौर्यों, यूनानियों, क्षत्रपों, गुप्तवंशियों और प्रतिहारों का इस प्रदेश पर राज्य रहा या नहीं, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पुरातत्वानुसंधान से इस राज्य के संबंध की इतिहास-संबंधी जो सामग्री प्राप्त हुई है, वह ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व की नहीं है । फिर भी उपर्युक्त सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस राज्य पर जोहियों, चौहानों, सांखलों (परमारों), भाटियों और जाटों का अधिकार अवश्य रहा । अतएव उनका यहां संक्षेप से परिचय दिया जाता है ।

जोहिये

जोहियों के लिए संस्कृत लेखों आदि में 'यौधेय' शब्द मिलता है । यह बहुत प्राचीन क्षत्रिय जाति है । इसका वर्णन हमने ऊपर पृ० २२-२३ (टिप्पण १) में किया है । इनका मूल निवास पंजाब में था । इन्हीं के नाम से सतलज नदी के दोनों तटों पर का भावलपुर राज्य के निकट का प्रदेश अभी तक 'जोहियावार' कहलाता है । बीकानेर राज्य का उत्तरी भाग पहले जोहियों के अधिकार में था । राठोड़ राव सलखा का छोटा पुत्र वीरम, अपने भाई माला (मल्लीनाथ) के पौत्रों-द्वारा मालाणी से

निकाला जाने पर, जोहियों के पास आ रहा था। जब उस (वीरम) ने जोहियों के साथ दगा करने का विचार किया तो जोहियों ने उसको मार डाला। वि० सं० की सोलहवीं शताब्दी में जोधपुर के राव जोधा के पुत्र बीका ने मारवाड़ की तरफ से जांगलू की तरफ बढ़कर अपने लिए बीकानेर नामक नवीन राज्य की स्थापना की। उस समय राव बीका के बढ़ते हुए प्रताप को देखकर जोहियों ने भी उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। उस समय से ही इधर के जोहियों का इलाका बीकानेर राज्य के अधिकार में आ गया।

चौहान

चौहानों की पुरानी राजधानी नागोर (अहिच्छत्रपुर) थी। वहां से वे लोग सांभर की तरफ बढ़े और वहां अपनी राजधानी स्थापित की। सांभर का समीपवर्ती प्रदेश 'सपादलक्ष' कहलाता था। चौहानों का राज्य सांभर में होने से वे सांभरिये (सपादलक्षीय) चौहान कहलाने लगे।

बीकानेर राज्य से चौहानों के शिलालेख चिक्रम की बारहवीं शताब्दी से मिलते हैं, परंतु वे स्मारक छत्रियों के ही हैं। वि० सं० की तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्रसिद्ध चौहान राजा विग्रहराज (वीसलदेव) चतुर्थ ने दिल्ली, हांसी, हिसार आदि प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। इससे यह अनुमान होता है कि बहुधा यह सारा राज्य चौहान साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया हो। बीकानेर राज्य में चौहानों के सिक्के भी मिलते हैं। ई० स० १६३२ (वि० सं० १६८६) में हनुमानगढ़ (भटनेर) से चौहान राजा अजयराज (अजयदेव) का एक तांबे का सिक्का मुद्रको मिला, जिसपर उसकी राणी सोमलदेवी का नाम अंकित है। इससे पाया जाता है कि सांभर के चौहानों के सिक्के यहां चलते थे और यहां उनके सामंत रहते थे।

छापर और द्रोणपुर के आसपास का प्रदेश मोहिलवाटी कहलाता था। मोहिल, चौहानों की ही एक शाखा है। नैणसी ने लिखा है कि

चाहमान के वंश में सजन का पुत्र मोहिल हुआ। मोहिल ने यहां के प्राचीन वागड़िये राजपूतों को, जिन्होंने शिशुपालवंशी डाहलियों से छापार और द्रोणपुर का इलाका छीन लिया था, परास्त कर उनका अधीकृत प्रदेश छीन लिया, जहां कई पीढ़ी तक उनका अधिकार रहा। फिर रूण की तरफ से सांखले (परमार) रायसी (महीपाल का पुत्र) ने इधर आकर जांगलू पर अधिकार कर लिया। देशणोक के पास रासीसर नामक प्राचीन गांव है, जिसके लिए कहा जाता है कि उसे सांखला रायसी ने बसाया था। वहां चौहान लाखण के पुत्र विक्रमसिंह की मृत्यु का वि० सं० १२८८ ज्येष्ठ वदि ३० (ई० स० १२३१ ता० ३ मई) शनिवार का स्मारक लेख है। उससे पाया जाता है कि रासीसर तक मोहिल चौहानों का अधिकार था। सम्भव है कि सांखलों (पंवारों) ने कुछ भूमि चौहानों की भी दवाकर वहां अपना आधिपत्य किया हो। तथापि बीकानेर राज्य का दक्षिणी-पूर्वी भाग तथा मारवाड़ का लाड़नू परगना मोहिलों के अधिकार में रहना पूर्ण रूप से सिद्ध है। इन मोहिलों की उपाधि 'राणा' थी, ऐसा उनके प्राचीन लेखों तथा नैणसी की ख्यात से पाया जाता है। जोधपुर के राव जोधा-द्वारा मोहिल चौहान अजीतसिंह के मारे जाने के बाद राठोड़ों और मोहिलों में वैर हो गया तथा उनमें कई लड़ाइयां हुईं। अनन्तर पारस्परिक फूट से मोहिलों के निर्वल हो जाने पर राव जोधा ने उनपर आक्रमण कर उनका सारा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इसपर मुसलमान सेनाध्यक्ष सारंगखां की सहायता से उन्होंने (मोहिलों) ने अपने इलाके को पुनः राठोड़ों से छीन लिया। तब बीकानेर से राव बीका ने मोहिलों पर चढ़ाई कर उन्हें परास्त किया और मोहिलवाडी को विजय कर वह प्रदेश अपने भाई बीदा को दे दिया। बीका की इस सहायता के बदले में बीदा ने राव बीका की अधीनता स्वीकार की। तब से उसके वंशज बीकानेर राज्य के अधीन चले आते हैं।

बीकानेर राज्य से चौहानों के कई स्मारक लेख मिले हैं।

सांखले (परमार)

सांखलों को वि० सं० १३८१ (ई० स० १३२४) के लिये संस्कृत शिलालेख में 'शंखुकुल' शब्द लिखा है। उनकी एक शाखा का रूण (जोधपुर राज्य) में निवास था, जिससे वे रूण के सांखले भी कहलाने लगे। उनकी उपाधी 'राणा' थी। विक्रम की बारहवीं शताब्दी के आस-पास सांखले महीपाल का पुत्र रायसी बीकानेर राज्य के जांगलू प्रदेश में गया और वहां रहने लगा। रासीसर (रायसीसर) गांव में एक देवली पर वि० सं० १२८८ ज्येष्ठ वदि ३० (ई० स० १२३१ ता० ३ मई) शनिवार का लेख है, जिससे अनुमान होता है कि जांगलू पर सांखलों का अधिकार होने के पूर्व चौहानों का अधिकार रहा हो और सम्भवतः रायसी ने चौहान लाखण के पुत्र विक्रमसिंह को मारकर उस प्रदेश पर अधिकार किया हो तथा रासीसर नाम रायसी के समय वह गांव बसने से प्रसिद्ध हुआ हो।

रायसी के पीछे उसका पुत्र अणखसी जांगलू का स्वामी हुआ। बीकानेर राज्य का अणखीसर गांव अणखसी के बसाये जाने से उसका नाम अणखीसर प्रसिद्ध हुआ। अणखसी के बाद खीवसी और उसके बाद कुमरसी (कुंवरसी, कुमारसिंह) हुआ। कुमरसी के दो पुत्रों (विक्रमसी और प्रतापसी) की देवलियां रासीसर गांव में बनी हुई हैं, जिनमें उनके मृत्यु-संवत् क्रमशः वि० सं० १३८२ और १३८६ (ई० स० १३२५ और १३२९) दिये हैं। कुमरसी की एक पुत्री दूलहदेवी थी, जिसका विवाह जैसलमेर के रावल कर्णदेव के साथ हुआ था। उसने वि० सं० १३८१ (ई० स० १३२४) में वासी-वरसिंहसर में तालाब बनवाया।

कुमरसी के पीछे राजसी, मूंजा, ऊदा, पुन्यपाल और माणकपाल ने क्रमशः जांगलू का अधिकार पाया। माणकराव का पुत्र नापा सांखला था। उसके समय में वहां बिलोच जाति के मुसलमानों के आक्रमण होने लगे, जिससे सांखले निर्बल हो गये। फिर नापा जोधपुर के राव जोधा के

पास गया और वहां कुंवर बीका को तख्त राज्य स्थापित करने को उद्यत देख जांगलू पर अधिकार करने की सलाह दी। तब वर्ष १५२२ (ई० स० १४६५) में बीका ने जांगलू की तरफ जाकर उस प्रदेश को जीता और नापा ने राव बीका की अधीनता स्वीकार कर ली। नापा के इस कार्य से राव बीका का उसपर बहुत विश्वास हो गया और उस (नापा) के वंशज भी वर्षों तक राज्य के विश्वासपात्र रीनत बने रहे, जिसका वर्णन यथा प्रसङ्ग किया जायगा।

भाटी

बीकानेर के पश्चिमोत्तर का खारा प्रदेश, जो जैसलमेर राज्य की सीमा से पंजाब की सीमा तक जा मिलता है, बीकानेर राज्य की स्थापना के पूर्व भाटियों के अधिकार में था, जो यहां लुटपात भी किया करते थे। उनके भी दो भाग थे। पश्चिम की तरफ जैसलमेर राज्य की सीमा की मिली हुए पृगल प्रदेश के भाटी राजपूत और पश्चिम की तरफ बीकानेर के आस-पास बसनेवाले भाटी मुसलमान थे, जो भाटी कहलाने लगे। जब राजा बीका ने जांगलू की तरफ बढ़कर यहां अपना अधिकार किया तब समय भाटी राव शेखा पृगल का स्वामी था, जिसकी मुसलमानों ने मदद ली थी। राव बीका ने शेखा की स्त्री की मायका पर शेखा को कैद हो चुकवा दिया। इसपर शेखा की पुत्री का विवाह राव बीका से हो गया। फिर राव बीका ने वर्तमान कोटमहेंदर गांध के निकट अपनी राजधानी बनाने के लिए दुर्ग बनवाना चाहा, जिसमें भाटियों को उसमें भय हो गया और उन्होंने उसे रोक़ा, किन्तु उसने ध्यान नहीं दिया। तब भाटी जैसलमेर से सेना लेकर आये और राव बीका से युद्ध हुआ। भाटियों से मित्रता स्थापित होने की सम्भावना देख अन्त में राव बीका ने कोटमहेंदर को छोड़कर वहां से दक्षिण-पूर्व की तरफ जाकर वर्ष १५४० (ई० स० १४८३) में किला बनवाया, जो राजधानी बीकानेर में बनाने के समय के निकट वर्तमान बसाकर उसने उसका नाम बीकानेर रखा। राव बीका के मृत्यु १५४०

को देखकर राव शेखा ने भी वीका की अधीनता स्वीकार कर ली और पूगल वीकानेर राज्य के अन्तर्गत हो गया ।

इसी प्रकार राव वीका ने उत्तर की तरफ बढ़कर वहां भी अपनी विजय पताका फहराई और भटनेर की तरफ के भट्टियों पर अपना आतङ्क स्थापित किया, परन्तु उधर के प्रदेश पर वीकानेर के नरेशों का लगातार अधिकार न रहा । दिल्ली की मुसलमान सल्तनत समीप होने के कारण उधर का प्रदेश कभी-कभी मुसलमानों के अधीन रहा । मुगलों के राज्य-समय में यह इलाका फिर वीकानेर राज्य में आया, परन्तु अधिक समय तक उसपर वीकानेर राज्य का अधिकार न रहा । मुगल साम्राज्य की निर्वलता के दिनों में कई बार इस इलाके पर वीकानेर के महाराजाओं ने अधिकार किया, पर भट्टियों ने उनका वहां अधिकार स्थिर न रहने दिया । अंत में महाराजा सूरतसिंह ने भट्टियों का दमन कर सारा इलाका और भटनेर दुर्ग, जो अब हजुमानगढ़ कहलाता है, अपने राज्य में मिला लिया ।

जाट

वीकानेर राज्य के आसपास का बहुत सा इलाका जाटों के अधिकार में था और शासकों का ध्यान उस ओर न रहने से वे एक प्रकार से स्वाधीनता का उपभोग करते थे । आत्मरक्षार्थ उन्होंने अपना बल भी बढ़ा लिया था । उनकी यहां कई जातियां थी और उनका इलाका कई भागों में बंटा हुआ था । गोदारा जाट पांडू और सारन जाट पूला (फूला) के पारस्परिक झगड़े में राव वीका ने पांडू का पक्ष लिया । फलतः पूला के सहायक नरसिंह के मारे जाने पर राव वीका का उनपर पूरा आतङ्क जम गया और युद्ध के समय वे भाग गये । अंत में उन्होंने राव वीका की अधीनता स्वीकार कर ली । उनका सारा इलाका बिना रक्तपात के उसके अधिकार में आ गया और जाट साधारण प्रजा की भांति भूमि-कर देकर निवास करने लगे ।

तीसरा अध्याय

राव बीका से पूर्व के राठोड़ों का संक्षिप्त परिचय

बीकानेर के महाराजा जोधपुर के राठोड़ राव जोधा के पुत्र बीका के वंशधर हैं। राठोड़ों का प्राचीन इतिहास महत्वपूर्ण है, अतएव जोधपुर राज्य के इतिहास में विस्तृत रूप से उसका उल्लेख किया गया है, परन्तु वंशक्रम मिलाने के लिए यहां भी संक्षेप से उसका परिचय दिया जाता है।

‘राठोड़’ शब्द केवल भाषा में ही प्रचलित है। संस्कृत पुस्तकों, शिलालेखों और दानपत्रों में उसके लिए ‘राष्ट्रकूट’ शब्द मिलता है।

प्राकृत शब्दों की उत्पत्तिके नियमानुसार ‘राष्ट्रकूट’

राठोड़ शब्द की उत्पत्ति

शब्द का प्राकृत रूप ‘रठऊड़’ होता है, जिससे

‘राठऊड़’ या ‘राठोड़’ शब्द बना है। ‘राष्ट्रकूट’ के स्थान में कहीं-कहीं ‘राष्ट्रवर्य’ शब्द भी मिलता है, जिससे ‘राठवर्य’ शब्द बना है। ‘राष्ट्रकूट’ और ‘राष्ट्रवर्य’ दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है, क्योंकि ‘राष्ट्रकूट’ का अर्थ ‘राष्ट्र’ जाति या वंश का शिरोमणि है और ‘राष्ट्रवर्य’ का अर्थ ‘राष्ट्र’ जाति अथवा वंश में श्रेष्ठ है।

राठोड़ों का प्राचीन उल्लेख अशोक के पांचवे प्रज्ञापन में गिरनार, धौली, शहवाज़गढ़ी और मानसेरा के लेखों में पेटनिक(पैठनवालों)के

साथ समास में मिलता है, जिससे पाया जाता है

राठोड़वंश की प्राचीनता

कि उस समय ये दक्षिण के निवासी थे। बहुत

पहले से राजा और सामन्त अपने वंश के नाम के साथ ‘महा’ शब्द लगाते रहे हैं, जिससे राष्ट्रवंशी अपने को ‘महाराष्ट्र’ अथवा ‘महाराष्ट्रिक’ लिखने लगे। देशों के नाम बहुधा उनमें बसनेवाली या उनपर अधिकार जमानेवाली

(१) राठोड़ शब्द के लिए ‘राष्ट्रोड़’ शब्द भी मिलता है, जो संस्कृत सांघे में

दाजा हुआ राठोड़ शब्द का ही सूचक है।

जातियों के नाम से प्रसिद्ध होते रहे हैं। 'महाराष्ट्र' जाति के अधीन का दक्षिण देश 'महाराष्ट्र' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मौर्यवंशी राजा अशोक से लगाकर वि० सं० ५५० (ई० स० ४६३) के आस-पास तक राठोड़ों का कुछ भी इतिहास नहीं दक्षिण में राठोड़ों का प्रताप मिलता। केवल कहीं-कहीं नाम मात्र का उल्लेख है।

दक्षिण के येवूर गांव के सोलंकियों के वंशावलीवाले शिलालेख से पाया जाता है कि वि० सं० ५५० (ई० स० ४६३) के लगभग राष्ट्रकूट राजा कृष्ण के पुत्र इंद्र को, जिसकी सेना में ८०० हाथी थे, सोलंकी राजा जयसिंह ने जीता और वहां सोलंकी राज्य की स्थापना की। इससे स्पष्ट है कि वि० सं० ५५० (ई० स० ४६३) के कई वर्ष पूर्व राठोड़ों का दक्षिण में राज्य जम चुका था और वे बड़े शक्तिशाली थे।

सोलंकी राजा जयसिंह-द्वारा दक्षिण में सोलंकी राज्य की स्थापना होने पर भी राठोड़ों के पास उनके राज्य का कुछ अंश विद्यमान था। राठोड़ राजा दंतिवर्मा के पौत्र गोविंदराज ने सोलंकीवंश के राजा पुलकेशी (वि० सं० ६६७-६६५=ई० स० ६१०-६३८) पर चढ़ाई की, परंतु फिर उसने मेल कर लिया।

तब से लगभग १५० वर्ष तक दक्षिण में सोलंकियों का राज्य उन्नत रहा। इसके पीछे उपरोक्त गोविंदराज के प्रपौत्र दंतिदुर्ग ने वि० सं० ८११ (ई० स० ७५४) के लगभग माही और रेवा नदियों के बीच का प्रदेश (लाटदेश) विजय किया तथा राजा वल्लभ (सोलंकी राजा) को भी जीतकर 'राजाधिराज' और 'परमेश्वर' के विरुद्ध धारण किये। इनके अतिरिक्त उसने कर्लिंग, कौशल, श्रीशैल, मालव, टंक आदि देशों के राजाओं को जीतकर 'श्रीवल्लभ' नाम धारण किया। उसने कांची, केरल, चोल तथा पांड्य देशों एवं श्रीहर्ष (कन्नौज का प्रसिद्ध राजा) तथा वज्रट को जीतनेवाले कर्णाटक (सोलंकियों) के असंख्य लश्कर को जीता, जो अजेय कहलाता था। दंतिदुर्ग के पीछे राठोड़ों के इस महा-राज्य का स्वामी उसका चाचा कृष्णराज हुआ, जिसने अपने राज्य की

और भी वृद्धि की। उसका बनवाया हुआ एलोरा (निज़ाम राज्य) का 'कैलाश' मंदिर संसार की शिल्पकला का अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है।

कृष्णराज के बाद गोविंदराज (दूसरा) हुआ, जिसे परास्त कर उसका भाई ध्रुवराज राज्य का स्वामी बना। ध्रुवराज बड़ा पराक्रमी राजा था। उसने कौशल और उत्तराखंड के कई राजाओं को परास्त किया। उसका राज्य रामेश्वर से अयोध्या तक फैला हुआ था। तदनन्तर गोविंदराज तीसरा सिंहासनारूढ़ हुआ। वह गुजरात और मालवे को अधीन कर विंध्याचल के निकट तक जा पहुंचा। तुंगभद्रा, वेंगी, गंगवाडी, केरल, पाण्ड्य, चोल और कांची के नरेशों को परास्त कर उसने सिंहाल के राजा को अपने अधीन बनाया। फिर उसने प्रतिहार राजा नागभट को हराकर मारवाड़ में भगा दिया। गोविंदराज की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र अमोघवर्ष दक्षिण के महाराज्य का स्वामी हुआ, जो बड़ा प्रतापी था। मान्यखेट (मालखेड़, निज़ाम राज्यान्तर्गत) उसकी राजधानी थी। उसने भी कई राजाओं को परास्त कर अपने राज्य का विस्तार बढ़ाया। सिलसिल-तु-त्तवारीख के लेखक सुलेमान सौदागर ने, जो उसका समकालीन था, उसके विषय में लिखा है कि वह दुनियां के चार बड़े बादशाहों में से एक था।

अमोघवर्ष से लगाकर उसके सातवें वंशधर कृष्णराज (तीसरा) तक दक्षिण का राठोड़ राज्य उन्नत रहा। अरब यात्री अल-मसऊदी ने, जो कृष्णराज (तीसरा) के समय विद्यमान था, हि० स० ३३२ (वि० सं० १००१= ई० स० ९४४) में 'भुरु-जल-जहब' नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें लिखा है—“इस समय हिंदुस्तान के राजाओं में सब से बड़ा मान्यखेट नगर का राजा बलहरा (राठोड़) है। हिंदुस्तान के बहुत से राजा उसको अपना मालिक मानते हैं। उसके पास हाथी और असंख्य लश्कर है, जिसमें पैदल सेना अधिक है, क्योंकि उसकी राजधानी पहाड़ों में है।”

समय के परिवर्तन के अनुसार कृष्णराज (तीसरा) के छोटे भाई खोद्विग के समय इस महाराज्य की अवन्ति होने लगी। मालवे के परमार, जो पहले राठोड़ों के सामंत थे, उस (खोद्विग) के विरोधी हो गये और

वि० सं० १०२६ (ई० स० ६७२) में उस (खोद्विग) को मालवे के परमार राजा श्रीहर्ष (सीयक) ने परास्त कर उसकी राजधानी मान्यखेट को लूटा। तदनन्तर वि० सं० १०३० (ई० स० ६७३) में खोद्विग के उत्तराधिकारी कर्कराज (दूसरा) से सोलंकी राजा तैलप ने दक्षिण के राठोड़ों का महाराज्य छीन लिया। इस समय गंगवंशी नोलंवांतक मारसिंह एवं कतिपय राठोड़ सरदारों ने कृष्णराज (तीसरा) के पुत्र इन्द्रराज (चौथा) को गद्दी पर बैठाकर राठोड़-राज्य क्लायम रखने का प्रयत्न किया, पर उसमें सफलता नहीं मिली और थोड़े समय के अन्तर से मारसिंह और इन्द्रराज (चौथा) अनशन करके मर गये।

दक्षिण के राठोड़ों की कई छोटी शाखाएं थीं, जिनको जागीर में गुजरात (लाट), काठियावाड़ और सौंदत्ति (बंवई आहाते के धारवाड़ राठोड़वंश की अन्य शाखाएं जिले के परसगढ़ विभाग में) के प्रदेश मिले हुए थे। गुजरात के राठोड़ राज्य का वि० सं० ६४५

(ई० स० ८८८) तक विद्यमान होना पाया जाता है। उसके पीछे मान्यखेट के राठोड़ राजा कृष्णराज (दूसरा) ने गुजरात पीछा अपने राज्य में मिल लिया, किन्तु सौंदत्ति की शाखा, मान्यखेट का विशाल राज्य सोलंकीयों द्वारा छिन जाने पर भी वि० सं० १२८५ (ई० स० १२२८) तक वहां पर अपना अधिकार रखती थी और सोलंकीयों के अधीन थी। पश्चात् सौंदत्ति का राज्य देवगिरि के यादव राजा सिंघण ने छीन लिया।

इनके अतिरिक्त मध्यप्रांत, राजपूताना तथा वदायूं (संयुक्त प्रान्त) में भी राठोड़ों के छोटे-बड़े राज्य रहे थे। यही नहीं बिहार के गया (पीथी) में भी राठोड़ राज्य होना पाया जाता है।

मध्य प्रांत में मानपुर (संभवतः मऊ के आसपास) और बेतुल (मध्य प्रदेश) में विक्रम की सातवीं शताब्दी के आस-पास तक राठोड़ों का अधिकार था, पर उनका स्वतन्त्र राज्य होना पाया नहीं जाता। भोपाल राज्य के पथारी में वि० सं० ६१७ (ई० स० ८६०) में राठोड़ों का अधिकार था।

बुद्ध गया (बिहार) से मिले हुए एक शिलालेख में क्रमशः राठोड़ नन्न, कीर्तिराज और तुंग के नाम मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि उपर्युक्त व्यक्तियों का दसवीं शताब्दी में बुद्ध गया से संबंध था।

राजपूताने में हठुंडी (जोधपुर राज्य) में वि० सं० ६६३ से १०५३ (ई० स० ६३६ से ६६६) के कुछ पीछे तक और धनोप (शाहपुरा राज्य) में वि० सं० १०६३ (ई० स० १००६) में राठोड़ों का अधिकार था।

संयुक्त प्रान्त के बदायूं नामक स्थान में राठोड़ों का राज्य विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास जम गया था। फिर उन्होंने प्रतिहारों की निर्वलता का अवसर पाकर कन्नौज के राज्य पर भी अपना अधिकार कर लिया, किन्तु वहां वे अपना अधिकार स्थिर न रख सके और गाहड़वाल चंद्रदेव ने उनसे कन्नौज का राज्य छीन लिया। तब से वे गाहड़वालों के सामंत हो गये। वि० सं० १२५० (ई० स० ११६३) में शहाबुद्दीन योरी ने कन्नौज के अंतिम गाहड़वाल राजा जयचंद्र पर विजय प्राप्तकर वहां अपना अधिकार कर लिया। ई० स० ११६६ (वि० सं० १२५३) में कुतुबुद्दीन ऐबक ने बदायूं को विजयकर वहां भी मुसलमानों का अधिकार स्थापित किया।

बीकानेर के महाराजा रायसिंह की बनवाई हुई बीकानेर दुर्ग के सूरजपोल की संस्कृत की वि० सं० १६५० माघ सुदि ६ (ई० स० १५६४
जयचन्द और राठोड़ ता० १७ जनवरी) गुरुवार की बृहत् प्रशस्ति में भाटों के कथानुसार राजपूताना के वर्तमान राठोड़ों को कन्नौज के अन्तिम राजा जयचन्द्र का वंशधर लिखा है और यहां के राठोड़ अब तक अपने को जयचन्द्र का ही वंशधर मानते हैं; किन्तु यह ठीक नहीं है। जयचन्द्र वस्तुतः गाहड़वाल था। उसके पूर्वजों के ताम्रपत्रों और शिलालेखों में उनको कहीं भी राठोड़ नहीं लिखा है, वरन् कई स्थलों पर गाहड़वाल ही लिखा है, जो अधिक माननीय है। इन ताम्रपत्रों के आधार पर आधुनिक पुरातत्त्ववेत्ता भी ऐसा ही मानते हैं। ये दोनों जातियां भिन्न होने से अब भी जहां गाहड़वालों की आबादी है वहां राठोड़ों के साथ

उनके विवाह सम्बन्ध होते हैं। इसका विशद विवेचन हमने जोधपुर राज्य के इतिहास में किया है।

कन्नौज के महाराज्य पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने के बाद कुंवर सेतराम का पुत्र राठोड़ सीहा वि० सं० १३०० (ई० स० १२४३) के राठोड़ों के मूल पुरुष आस-पास राजपूताने में आया और पाली नगर में राव सीहा से राव जोधा ठहरा, जहाँ के ब्राह्मण बड़े सम्पन्न थे और उनका तत्काल का संक्षिप्त परिचय व्यापार दूर-दूर तक चलता था। उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर उस (सीहा) ने वहाँ के आस-पास के प्रदेश पर दखल जमाना आरम्भ किया। वि० सं० १३३० कार्तिक वदि १२ (ई० स० १२७३ ता० ६ अक्टोबर) सोमवार को किसी लड़ाई में बीटू गांव (पाली से १४ मील उत्तर-पश्चिम) में उसकी मृत्यु हुई। सीहा की मृत्यु के उपरांत आस्थान अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ, जिसके समय में उसके भाई सोनिंग ने गोहिलों से खेड़ का इलाका लिया। तदनन्तर उस- (आस्थान) का पुत्र धूहड़ हुआ, जिसकी वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०६) में पचपदरा परगने के तिगड़ी (तिरसींगड़ी) गांव में मृत्यु हुई।

धूहड़ के पीछे रायपाल, कन्हपाल, जालहणसी, छाड़ा, टीडा और सलखा हुए। राव सलखा के ज्येष्ठ पुत्र माला (मल्लीनाथ) ने महेवा का प्रांत विजय किया, जो मालाणी कहलाता है। उसने अपनी उपाधि रावल रखी। उसके वंशज महेचे कहलाये और मालाणी के स्वामी रहे। मल्लीनाथ के छोटे भाइयों में से एक वीरम था, जिसने महेवा का परित्याग कर वर्तमान बीकानेर राज्य में आकर निवास किया और यहां जोहियों के साथ की लड़ाई में मारा गया।

वीरम का पुत्र चूंडा प्रतापी हुआ। उसने अपना वाल्यकाल कष्ट में बिताने पर भी साहस न छोड़ा और पूर्वजों-द्वारा प्राप्त भूमि न मिलने पर भी निज बाहुबल से बड़ी ख्याति प्राप्त की एवं मंडोवर के ईंदा पड़िहारों (प्रतिहारों) से उनका इलाका (मंडोवर) दहेज में पाकर उसने अपने वंशजों के लिए मंडोवर का राज्य स्थापित कर लिया। अनन्तर उसने

मुसलमानों के अधिकृत प्रदेश पर आक्रमण कर नांगोर पर भी अधिकार कर लिया, जहां पीछे से वह मुसलमानों के साथ की लड़ाई में मारा गया। अपनी प्रीतिपात्री राणी के कहने में आकर जब राव चूंडा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल को राज्य से वंचित कर छोटे पुत्र कान्हा को राज्य देना चाहा, तब रणमल मेवाड़ के महाराणा लाखा (लक्षसिंह) के पास चित्तोड़ जा रहा, जहां उसने महाराणा से जागीर प्राप्त की। चित्तोड़ में रहते समय रणमल ने अपनी बहिन हांसवाई का विवाह महाराणा लाखा के ज्येष्ठ कुंवर चूंडा से करना चाहा, परंतु उसने महाराणा के हंसी में कहे हुए वाक्यों से प्रेरित होकर उक्त विवाह से निषेध कर दिया। तब रणमल ने चूंडा के यह प्रतिज्ञा करने पर कि 'उक्त कुंवरी से उत्पन्न पुत्र ही मेवाड़ का स्वामी होगा,' हांसवाई का विवाह महाराणा लाखा के साथ कर दिया, जिसके गर्भ से महाराणा मोकल का जन्म हुआ। महाराणा लाखा की मृत्यु होने पर उसका छोटा पुत्र मोकल अपने ज्येष्ठ भ्राता चूंडा की पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार मेवाड़ का स्वामी हुआ, किन्तु वह (मोकल) कम उम्र था, इसलिए राज-कार्य उसका ज्येष्ठ भ्राता सत्यव्रत रावत चूंडा चलाता था। कुछ समय बाद मोकल की माता हांसवाई ने उस (रावत चूंडा) पर अविश्वास किया। इसपर वह मेवाड़ छोड़कर मालवे के सुलतान दोशंग के पास चला गया। चूंडा के चित्तोड़ से चले जाने पर मेवाड़ के शासन-कार्य में रणमल का बहुत कुछ हाथ रहा।

मंडोवर के राव चूंडा का उत्तराधिकारी उसका छोटा पुत्र कान्हा हुआ, परंतु वह शीघ्र ही काल-कवलित हो गया। तब उसका भाई सत्ता वहां का स्वामी बन बैठा। इसपर रणमल ने मेवाड़ की सेना के साथ जाकर सत्ता से मंडोवर का राज्य छीन लिया। मेवाड़ के महाराणा मोकल के—चाचा और मेरा नामक महाराणा खेता (क्षेत्रसिंह) के दासीपुत्रों के हाथ से—मारे जाने पर राव रणमल ने मेवाड़ में जाकर आततायियों को दंड दिया और मोकल के पुत्र महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के राज्य के प्रारंभकाल में

वह (रणमल) अपने पुत्रों जोधा आदि साहित मेवाड़ में ही रहा, किंतु महाराणा लाखा के एक पुत्र राघवदेव को मरवा देने के कारण सीसोदियों और राठोड़ों के बीच वैर हो गया। सीसोदियों को रणमल के विषय में संदेह होने लगा, अतएव उन्होंने वि० सं० १४६६ (ई० सं० १४३६) से पूर्व उसको मरवा डाला।

इस घटना के समय राव रणमल का पुत्र जोधा चित्तौड़ की तलहट्टी में था। जब उसको अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वह वहां से भाग निकला। मेवाड़वालों ने उस (राव जोधा) का पीछा किया, किन्तु वह उनके हाथ न आया और बच निकला। इस-पर उन्होंने मंडोवर के राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। जोधा ने सीसोदियों से अपना राज्य छुड़ाने के लिए कई वर्ष तक उद्योग किया। अंत में उसका परिश्रम सफल हुआ और वि० सं० १५१० (ई० सं० १४५३) के लगभग सीसोदियों से उसने मंडोवर का राज्य छीन लिया। फिर राव जोधा ने वि० सं० १५१६ (श्रावणादि १५१५=ई० सं० १४५६) में अपने नाम से जोधपुर नगर बसाकर पहाड़ी पर दुर्ग बनवाया और वहीं अपनी राजधानी स्थिर की। अनन्तर उसने अपने पराक्रम से आस-पास के कई प्रांतों को विजयकर राज्य का विस्तार बढ़ाया।

राव जोधा की ६ राणियों से नीचे लिखे सत्रह पुत्र हुए—

(१) हाड़ी राणी जसमादे से—

१ नींबा—पिता की विद्यमानता में ही मृत्यु हुई।

२ सांतल—राव जोधा की मृत्यु हो जाने पर जोधपुर राज्य का स्वामी हुआ।

३ सूजा—राव सांतल का उत्तराधिकारी हुआ।

३

(१) कहीं-कहीं इनसे अधिक और कहीं कम नाम भी दिये हैं, पर जोधपुर राज्य की ख्यात में उपर्युक्त सत्रह पुत्रों के नाम ही मिलते हैं (जि० १, पृ० ४६-४७)।

(२) भटियाणी राणी पूरा से—

- १ कर्मसी
- २ रायपाल
- ३ वणवीर
- ४ जसवन्त
- ५ कृपा
- ६ चांदराव

६

(३) सांखली राणी नौरंगदे से—

- १ बीका—बीकानेर राज्य का संस्थापक ।
- २ बीदा—इसने मोहिल चौहानों का प्रदेश छापरा-द्रोणपुर राव बीका की सहायता से प्राप्त किया, जो बीकानेर राज्य में है और इसके वंशज बीकानेर राज्य के सरदार हैं ।

२

(४) इलानी राणी जमना से—

- १ जोगा
- २ भारमल

२

(५) सोनगरी राणी चंपा से—

- १ दूदा—इसने मेड़ते में ठिकाना बांधा । इसके वंशज मेड़तिया कहलाते हैं ।
- २ वरसिंह—यह मेड़ते में दूदा के शामिल रहा । फिर मुसलमानों ने इसको मेड़ते से निकाल दिया । वरसिंह के वंशज वरसिंहोत कहलाये । मालवे में भाबुआ का राज्य वरसिंह के वंशजों के अधिकार में है ।

२

(६) वघेली राणी बीनां से—

१ सामन्तासिंह

२ शिवराज

२

ख्यातों में राव जोधा के कहीं सात और कहीं इससे भी कम पुत्रियों के नाम दिये हैं । मेवाड़ में घोसुंडी की चावली की वि० सं० १५६१ (ई० सं० १५०४) की महाराणा रायमल की राठोड़ राणी शृंगारदे की बनवाई हुई संस्कृत की प्रशस्ति में उसको राव जोधा की पुत्री लिखा है, जिसका मेवाड़ और जोधपुर राज्य की ख्यातों में कुछ भी उल्लेख नहीं है ।

राव जोधा के उपर्युक्त सत्रह पुत्रों में नौवा सय से बड़ा था, यह तो अधिकांश ख्यातों आदि से सिद्ध हो चुका है, परन्तु नौवा के बाद कौनसा पुत्र बड़ा था, यह विवादग्रस्त विषय है ।

वि० सं० १६५० (ई० सं० १५९३) के रचे हुए कवि जयसोम के 'कर्म-चन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में लिखा है—“(दूसरी) महाराणी जसमादेवी के तीन लड़के, नौवा, सूजा और सांतल नाम के थे और वह राजा का जीवन-सर्वस्व थी । जब दैवयोग से नौवा नाम के पुत्र की कथा ही याकी रह गई (अर्थात् वह मर गया) तब जसमादेवी ने, जिसे स्त्री-स्वभाव से अपनी सौतों के प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ, यह दोनहार दी है, ऐसा सोच कर एकान्त में विक्रम नाम के अपनी सौत के पुत्र की अनुपस्थिति में राजा को अपने पुत्र के विषय की कुछ रोचक कथा कही । तब राजा ने पत्नी के कण्ठ से मोहित होकर अपने बेटे विक्रम को जांगल में निकाल देने की इच्छा से अपने पास बुलाकर यह कहा—‘हे पुत्र ! बाप के राज्य को बेटा भोगे इसमें कोई अचरज की बात नहीं, परन्तु जो नया राज्य प्राप्त करे वही बेटों में मुख्य गिना जाता है । पृथ्वी पर कठिनता से वश में आनेवाला जांगल नामक देश है; तू साहसी है इसलिये मैंने तुझे

इस काम में (अर्थात् उसे वश करने में) नियुक्त किया है' ।

उपर्युक्त 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं' के अवतरण से तो यही पाया जाता है कि नीवा के बाद कुंवर बीका ही राव जोधा के पुत्रों में बड़ा था । यह काव्य, ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन होने के कारण इसके कथन की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

बीका ने असीम पितृभक्ति-वश पिता के कहे हुए वाक्यों से प्रभावित होकर नवीन राज्य स्थापित करने का दृढ़ विचार कर लिया और अपने हेतुचिंतकों एवं नया सांखला की सम्मति के अनुसार पिता के जीवन काल में ही जांगल देश की तरफ जाकर निज बाहुबल से शीघ्र ही अपने वंशजों के लिए एक बृहत् राज्य की स्थापना कर ली ।

जोधरा की मृत्यु होने पर सांतल गद्दी पर बैठा, जिसकी अब तक

(१) नीवासूजासातलनामसुतत्रययुता महाराज्ञी ।

जसमादेवीनाम्नी राज्ञो जीवस्य सर्वस्वं ॥ ११० ॥

नीवाख्ये संजाते दैवनियोगात्सुते कथाशेषे ।

जातिस्वभावदोषाज्जातामर्षा सपत्नीषु ॥ १११ ॥

विक्रमनामसपत्नीसुतेऽसति स्वात्मजे कथां रम्यां ।

भावीति विभाव्यात्मनि विजने राजानमाचष्टे ॥ ११२ ॥

(त्रिभिः कुरुकं)

ततो निजात्मजं जायामायया मोहितोऽधिपः ।

विक्रमं जंगले मोक्तुं समाहूयेदमुक्तवान् ॥ ११३ ॥

पित्र्यं राज्यं सुतो मुंक्ते किं चित्रं तत्र नंदन ।

नवं राज्यं य आदत्ते स धत्ते सुतधुर्यतां ॥ ११४ ॥

तेन देशोस्ति दुःसाधो जंगलो जगतीतले ।

त्वं साहसीति कृत्येऽसिन्नियुक्तोऽसि मयाधुना ॥ ११५ ॥

कोई भी जन्मपत्री नहीं मिली है, अतएव उसके जन्म संवत् के विषय में निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है। सांतल के उत्तराधिकारी सूजा का जन्म-संवत् जोधपुर से मिलनेवाली जन्मपत्रियों में १४६६ (ई० स० १४३६) तथा बीका का १४६७ (ई० स० १४४०) दिया है। इस हिसाब से सूजा बीका से लगभग एक वर्ष बड़ा होता है, परन्तु इसके विपरीत बीकानेर राज्य से मिलनेवाले जन्मपत्रियों के संग्रह में बीका का जन्म वि० सं० १४६५ (ई० स० १४३८) में होना लिखा है^१। इस हिसाब से सूजा बीका से एक वर्ष छोटा हो जाता है। इन जन्म-पत्रियों में परस्पर विभिन्नता होने के कारण, कौनसी विश्वसनीय है यह कहना कठिन है। टेसिटोरी को जोधपुर की एक दूसरी ख्यात में सूजा का जन्म-संवत् १४६६ (ई० स० १४४२) प्राप्त हुआ है^२। यदि यह ठीक हो तो यही सिद्ध होता है कि बीका हर हालत में सूजा से बड़ा था।

टेसिटोरी को फलोधी से मिली हुई एक ख्यात में लिखा है कि जोधा की सृष्ट्यु पर टीका जोगा को देते थे, पर उसके यह कह देने पर कि मेरे बाल सुखा लेने तक ठहर जाओ, लोगों ने टीका सांतल को दे दिया^३। इस कथन से तो यही ज्ञात होता है कि सांतल भी वास्तविक उत्तराधिकारी न था, परन्तु जोगा को मन्द-बुद्धि देख टीका सांतल को दे दिया गया। बीका की अनुपस्थिति में ऐसा हो जाना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं थी। फिर अधिकांश ख्यातों से यह भी पता चलता है कि जोधा ने पूजनीय घीजों देने का वादा कर बीका से जोधपुर के राज्य का दावा न करने का वचन ले लिया था।

बीका सांतल से बड़ा न रहा हो अथवा उसने पिता को वचन

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १।

(२) जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल; जिल्द १५ (ई० स० १६१६), पृ० ७३।

(३) वही; जिल्द १५ (ई० स० १६१६), पृष्ठ ७२ तथा टिप्पण ५।

दिया था, इस कारण से सांतल के गद्दी पर बैठने पर कोई हस्तक्षेप न किया, परन्तु जब सूजा ने सांतल की मृत्यु पर जोधपुर की गद्दी स्वयं हस्तगत कर ली तब तो बीका ने ससैन्य उसपर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाई का उल्लेख बीकानेर तथा जोधपुर की ख्यातों में मिलता है। जोधपुर के प्रसिद्ध कविराजा बांकीदास के 'ऐतिहासिक बातों के संग्रह' से पाया जाता है कि जोधपुर सूजा के पास रहा, परन्तु बीका और सूजा में बीका बड़ा था तथा सूजा छोटा। राज-माता हाड़ी ने भंवर ढोल, भुंजाई की देग, लक्ष्मीनारायण की मूर्ति, नागणेची की मूर्ति, तख्त इत्यादिक पूजनीक चीजें बीका को दीं, जिन्हें लेकर वह बीकानेर लौट गया^१। कविराजा श्यामलदास लिखित 'वीर विनोद' में बीकानेर के इतिहास में लिखा है—“सूजा के गद्दी पर बैठने के बाद राव-बीका ने जंगी फौज के साथ जोधपुर पर चढ़ाई की, क्योंकि सांतल के बाद जोधा के पुत्रों में यही सब से बड़ा था।.....बीका ने शहर और क़िले पर घेरा डाला। आखिर इस शर्त पर फ़ैसला हुआ कि जो चीजें इज्जत और करामत की समझी जाती थीं बीका ने ले लीं और जोधपुर का राज्य मारवाड़ सहित सूजा के कब्ज़े में रहा^२।” ‘इतिहास राजस्थान’ का रचियतारामनाथ रत्नू राव सूजा के प्रसंग में लिखता है—“सूजा के गद्दी बैठते ही जोधाजी के तीसरे पुत्र बीका ने सूरजमल (सूजा) से बड़े होने के कारण जोधपुर की गद्दी का दाइया (दावा) किया और बहुत कुछ सेना के साथ जोधपुर को कूच किया।.....सूजा ने जोधा का छत्र आदि पूजनीक चीजें देकर संधि कर ली^३।”

(१) इन पूजनीक चीजों की संख्या १४ है, जिनमें तख्त, राव जोधा की ढाक तलवार, नागणेची की १८ हाथोंवाली मूर्ति आदि हैं, जो बीकानेर के क़िले में अब तक सुरक्षित हैं। प्रति वर्ष विजयादशमी और दीपावलि के दिन स्वयं महाराजा साहब इनकी पूजा करते हैं।

(२) बांकीदास, ऐतिहासिक बातें; संख्या २६११।

(३) वीरविनोद भाग २, पृष्ठ ४८०।

(४) इतिहास राजस्थान; पृष्ठ १५३-४।

लिङ्गायत कवि दयालदास लिखता है—“बीका ने जोधपुर पर चढ़ाई कर गढ़ को घेर लिया। बारह दिन बाद सूजा की माता ने स्वयं उसके पास जाकर उसे बड़ा माना तथा पूजनीक वस्तुएं उसे देकर खुल्लह कर ली।” कैप्टेन पी० डब्ल्यू० पाउलेट अपने ‘गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट’ में लिखता है—“सांतल के बाद सूजा गद्दी पर बैठा, तब बीका ने जोधा के जीवित पुत्रों में सब से बड़ा होने के कारण पूजनीक चीज़ें जोधपुर से लाने के लिए बेला पड़िशार को भेजा, परन्तु जब उसने ये वस्तुएं देने से इनकार कर दिया तो एक विशाल सेना के साथ बीका ने सूजा पर चढ़ाई कर दी और उस (सूजा) की भेजी हुई सेना को परास्त कर गढ़ को घेर लिया। कुछ दिनों बाद पानी की कमी हो जाने के कारण जब गढ़ के भीतर के लोग बहुत घबरा गये तो सूजा की माता जसमादेवी ने स्वयं बीका के पास जा कर उसे पूजनीक चीज़ें दीं और खुल्लह कर ली।”

सुंशी देवीप्रसाद ने भी ‘राव बीकाजी के जीवनचरित्र’ में बीका की इस चढ़ाई का उल्लेख किया है और उसे कई स्थल पर जोधा का उत्तराधिकारी माना है तथा यह भी लिखा है—“बारह दिन तक गढ़ पर घेरा रहने के बाद सूजा ने अपनी माता को बीका के पास भेजा, जिसने बीका को बड़ा स्वीकार किया तथा पूजनीक चीज़ें उसे दीं।” जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना पर परदा डालने का प्रयत्न किया गया है। राव जोधा, बीका, सांतल तथा सूजा के प्रसंग में कहीं भी इस घटना का उल्लेख नहीं है, किंतु वरजांग भीमावत के प्रसंग में सांतल की मृत्यु के बाद सूजा के मारवाड़ की गद्दी पर बैठने पर बीका का जोधपुर पर चढ़ जाना लिखा है। ख्यातों में बहुधा कुंवरों के नाम राखियों के साथ दिये जाते हैं, इसलिए उनसे छोटे बड़े का कुछ भी निर्लेप नहीं हो सकता^१।

(१) दयालदास की ख्यात, खिल्द २ पृ० १-६।

(२) पृ० ६।

(३) पृ० ३१-३६।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; खि० १, पृ० १६ तथा ११-१७।

उपर्युक्त अवतरणों से तो यही सिद्ध होता है कि बीका ने सूजा से ज्येष्ठ होने के कारण ही जोधपुर पर चढ़ाई की होगी और इस सम्बन्ध में टॉड का यह मत कि वह (बीका) जोधा का छठा पुत्र था, माननीय नहीं हो सकता ।

चौथा अध्याय

राव बीका से राव जैतसी तक

राव बीका

जोधपुर के स्वामी राव जोधा की सांखली राणी नौरंगदे' से बीका
(विक्रम) का जन्म वि० सं० १४६५ श्रावण सुदि
जन्म १५ (ई० स० १४३८ ता० ५ अगस्त) मंगलवार

को हुआ था^१ ।

एक दिन जब राव जोधा दरबार में बैठा हुआ था, बीका भीतर से
आया और उस(बीका)से तथा कांधल से कान में बातें होने लगीं । जोधा ने
यह देखकर पूछा—“आज चाचा भतीजे क्या
सलाह कर रहे हैं ? क्या कोई नया ठिकाना जीतने
की बात हो रही है ?” कांधल ने उत्तर दिया—
“आपके प्रताप से यह भी हो जायगा ।” उन दिनों जांगलू का नापा

बीका का जांगलदेश
विजय करना

(१) विक्रमबीदानामकजातसुता सांखलाहगोत्रीया ।

नवरंगदेऽभिधाना जज्ञे राज्ञः पुरा पत्नी ॥ १०६ ॥

(जयसोम; कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्) ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १ । मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी
का जीवनचरित्र; पृ० १ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७८ । देशदर्पण; पृ० २३ ।
पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १ ।

जोधपुर से मिलनेवाली जन्मपत्री में बीका का जन्म वि० सं० १४६७ (ई०
स० १४४०) में होना लिखा है तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में भी ऐसा ही दिया
है (जि० १, पृ० ४६) ।

सांखला' भी दरबार में आया हुआ था। उसने बीका से कहा—“परगना जांगलू बिलोचों के आक्रमण से कमजोर हो गया है और कुछ सांखले उसका परित्याग कर अन्यत्र चले गये हैं। यदि आप चाहें तो वहां सरलता से अधिकार किया जा सकता है।” राव जोधा को भी यह बात पसन्द हुई और उसने बीका तथा कांधल को नापा के साथ जाकर नया राज्य स्थापित करने के लिए आज्ञा दे दी। तब बीका ने अपने चाचा कांधल, रूपा, मांडण, मंडला, नाथू, भाई जोगा, बीदा, पड़िहार बेला, नापा सांखला, महता लाला, लाखण, चच्छावत महता धरसिंह तथा अन्य राजपूतों आदि के साथ वि० सं० १५२२^२ आश्विन सुदि १० (ई० स० १४६५ ता० ३० सितंबर) को जोधपुर से प्रस्थान किया। कहते हैं कि इस अवसर पर बीका के साथ १०० घोड़े तथा ५०० राजपूत थे^३। बीका के मिले हुए मृत्यु-स्मारक लेख में भी लिखा है कि पिता का वचन सुनकर बीका ने प्रणाम किया तथा राजा (जोधा) के छोटे भाई (कांधल) द्वारा प्रेरित होकर शत्रुओं के समूह का नाशकर नया राज्य प्राप्त किया^४।

(१) सांखले महीपाल का पुत्र रायसी रूण को छोड़कर जांगलू आया और विवाह के मिस से वहां के स्वामी को मार जांगलू का स्वामी बन बैठा। उसके भावें बंशधर माणकराव का पुत्र नापा जब गद्दी पर बैठा तो बिलोचों ने उसे आदबाया, जिससे वह राव जोधा के पास जोधपुर चला गया।

(मुंहपोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० २३६-४००)।

(२) देशदर्पण में वि० सं० १५२७=ई० स० १४७० (पृ० २३) तथा टॉड-कृत ‘राजस्थान’ में वि० सं० १५१५=ई० स० १४५८ (जि० १, पृ० ११२३ ऑक्सफ़र्ड संस्करण) दिया है, जो विश्वास के योग्य नहीं है।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १-४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० १। टॉड-कृत ‘राजस्थान’ में बीका के साथ ३०० राठोड़ों का जाना लिखा है (जिल्द २, पृ० ११२३)।

(४) श्रुत्वा पितृवचः प्रणाममकरोद् भूपानुजप्रेरितः ।

इत्वा शत्रुवनं स्वभिन्न (?) सहितः राज्यं परं प्राप्तवान् ॥

मंडोवर होता हुआ बीका देशणोक पहुंचा, जहां उसने करणीजी का दर्शन किया, जिसने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा—“तेरा प्रताप जोधा से सवाया बढ़ेगा और बहुत से भूपति तेरे चाकर होंगे।” वहां से वह चांडासर आदि स्थानों पर अपना अधिकार जमाता हुआ कोड़मदेसर में जाकर रहा, जहां उसने अपने को वि० सं० १५२६ (ई० सं० १४७२) में राजा घोषित किया। फिर उसने जांगलू पहुंचकर सांखलों के ८४ गांव अपने अधीन कर अपनी सेना और राज्य का विस्तार बढ़ाना शुरू किया।

ख्यातों आदि से पाया जाता है कि पूराल का भाटी राव शेखा

(१) करणीजी, जिनका जन्म वि० सं० १४४४ आश्विन सुदि ७ (ई० सं० १३८७ ता० २० सितम्बर) को हुआ था, गांव सूवाप (जोधपुर राज्य) के चारण मेहा की पुत्री थीं और सांठी (बीकानेर राज्य) के वीहू केलू के पुत्र देपा को व्याही गई थीं। उनको आस-पास के लोग देवी का अवतार मानते थे और उनका विश्वास था कि उनमें भविष्य की बातें बता देने की अभूतपूर्व शक्ति है। कहते हैं कि बीका को बीकानेर का राज्य उन्हीं की कृपा से प्राप्त हुआ था। बीकानेर के राजघराने में अब तक करणीजी पर पूर्ण श्रद्धा है और प्रति वर्ष हज़ारों यात्री दर्शनार्थ देशणोक जाते हैं, जहां आश्विन की नवरात्रि में मेला लगता है। वर्तमान बीकानेर नरेश को भी करणीजी पर बड़ी श्रद्धा है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६८।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १६।

(५) ‘कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्’ (श्लोक १२४) से भी पाया जाता है कि कठिनता से वश में आनेवाले सब पुराने भूस्वामियों (भूमियों) को वहां से बलात्कारपूर्वक निकालकर बलवान् (विक्रम) राजा ने उसी देश से सवारों आदि की सेना तैयार की।

(६) जैसलमेर के रावल केहर का ज्येष्ठ पुत्र केलण था। उसने पिता की आज्ञा के बिना अपना विवाह महेचों के यहां कर लिया था, जिससे केहर ने उसको निर्वासित कर अपने दूसरे पुत्र लक्ष्मण को उत्तराधिकारी बनाया। केलण ने अपने बाहुबल से

बड़ा लुटेरा था और इधर-उधर लूटमार किया करता था। एक बार वह मुलतान की ओर चला गया। वहां से लूटमार कर जब लौट रहा था तो वहां के सूबेदार की सेना से उसकी मुठभेड़ हो गई, जिसमें उसके बहुत से साथी काम आये तथा वह पकड़ा जाकर मुलतान में कैद कर दिया गया। उसको मुक्त कराने के बदले में उसकी ठकुराणी ने अपनी पुत्री रंगकुंवरी का विवाह बीका के साथ कर दिया^१। उपर्युक्त ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन बीहू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' से भिन्न, उसी नाम का एक अन्य समकालीन ग्रंथ मिला है, जिसके बनाने-वाले के नाम का पता नहीं, पर वह बीहू सूजा के ग्रन्थ से बड़ा है। उसमें लिखा है—'राव शेखा लंघों' के लिए कांटे के समान था, अतएव उन्होंने उसके भाई तिलोकसी और जगमाल को अपने पक्ष में भिलाकर उनकी

नया इलाका—बीकमपुर—कायम किया। उसका पुत्र चाचा पूगल का स्वामी हुआ। चाचा का पुत्र वैरसल और उसका बेटा शेखा था।

(मुहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ३२०, ३२१, ३६५)।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १; मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ६-७। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७८। पाउलोड; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २-३।

बीका की राणी रंगकुंवरी का उल्लेख 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनके काव्यम्' के श्लोक १२६ में भी है, जहां उसका नाम रंगादेवी दिया है।

(२) सिन्ध तथा उसके आसपास के प्रदेश पर ई० स० १०५० से १३५१ (वि० सं० ११०७ से १४०८) तक सुमरा राजपूतों का अधिकार रहा, जो पीछे से मुसलमान बना लिये गये। उनके बाद क्रमशः सम्मा, अर्धून तथा तरखानों का वहां पर राज्य रहा। तैमूर के आक्रमण के बाद मुलतान की गद्दी पर कुरेशी शेख बैठा, जिसको हटाकर ई० स० १४५४ (वि० सं० १५११) में सीबी के स्वामी ने वहां पर अधिकार कर लिया और कुतुबुद्दीन मुहम्मद लंघा का विरुद्ध धारण किया। उसका पुत्र हुसेन लंघा (ई० स० १४६६-१५०२=वि० सं० १५२६-१५६६) बीका का समकालीन हो सकता है। संभव है उसके काल में उपरोक्त घटना हुई हो।

(इम्पीरियल गैज़ेटियर ऑव् इंडिया; जि० २, पृ० ३७०)।

सहायता से उस(शेखा)को पकड़ने की व्यवस्था की। शेखा के उक्त भाइयों ने ही उसे पकड़कर लंघों के सुपुर्द कर दिया। पीछे तिलोकसी ने मुसलमानों की सहायता से पूगल पर अधिकार कर लिया, लेकिन बीका ने ससैन्य लंघों तथा भाटियों पर चढ़ाई कर उन्हें तितर-बितर कर दिया और शेखा को लंघों के हाथ से छुड़ा लिया^१। शेखा पुनः पूगल का स्वामी बना। इस विजय के पश्चात् बीका ने पूगल जाकर उसकी पुत्री से विवाह किया^१।

वि० सं० १५३५ (ई० सं० १४७८) में बीका ने कोड़मदेसर तालाब के पास गढ़ बनवाने का आयोजन किया, जिसपर राव शेखा ने कहा—
 'भाटियों से युद्ध लाया कि यहाँ गढ़ न बनवाकर जांगलू की हद्द में बनवाओ, परन्तु बीका ने इसपर ध्यान न दिया। तब तो भाटियों ने उसे वहाँ से हटाने के लिए सलाह की और शेखा से कहा—“अब तो अपनी भूमि जाने का भय है, इसलिए शीघ्र कोई प्रबन्ध करना चाहिये।” परन्तु शेखा ने उत्तर दिया—“मैं तो प्रकट रूप से सहायता नहीं दे सकता, तुम्हीं कुछ उपाय करो।” तब भाटियों ने मिलकर जैसलमेर के रावल केहर के छोटे पुत्रों में से कलिकर्ण^३ को,

(१) बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' में भी बीका-द्वारा शेखा के छुड़ाये जाने का उल्लेख है (छन्द ४८)। उसी ग्रन्थ के ४३ वें छन्द में बीका का बहुत से लंगाढ़ लोगों (लंघों) को मारना भी लिखा है।

(२) जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल; ई० सं० १९१७, पृ० २३३।

बीका के आश्रित बारठ चोहथ ने उस(बीका)की प्रशंसा में एक गीत लिखा है, जिसमें उसके पूगल तथा वरसलपुर के गढ़ों को मुसलमानों के हाथ से छुड़ाने का वर्णन है।

(ज० ए० सो० जं०; सन् १९१७, पृ० २३४)।

(३) जैसलमेर के दीवान नथमल की आज्ञा से लिखित 'जैसलमेर के इतिहास' में ८० वर्ष के वृद्ध कलिकर्ण के स्थान में रावल देवीदास का बीका पर चढ़कर जाने का उल्लेख है। उक्त पुस्तक से पाया जाता है कि देवीदास बीका का गढ़ नष्ट कर वहाँ के किवाड़ तथा एक तराजू ले गया, जिनमें से किवाड़ वरसलपुर के दरवाजे में लगवाये गये और तराजू सदर सायर में रक्खी गई (पृ० ४८)। व्यास

जो ८० वर्ष का था, सहायता के लिए बुलवाया। वह २००० सेना सहित बीका पर चढ़ा और उसने शेखा को भी आने को कहा, पर वह न आया। ब्रधर बीका भी अपने काका कांधल और भाई बीदा तथा अन्य सरदारों से सलाह कर लड़ने के लिए सम्मुख आया। इस युद्ध में भाटियों की हार हुई और कलिकर्ण ३०० साधियों सहित काम आया।

इतना होने पर भी भाटियों ने बीका को तंग करना न छोड़ा। तब तो किसी अन्य स्थान पर गढ़ बनवाने का मन में विचार कर बीका

गोविन्द मधुवन रचित 'भट्टिवंश प्रशस्ति' नामक काव्य में यह घटना लूणकर्ण के समय में लिखी है।

श्रीबीकानगराधिपोतिवलवान्श्रीलूणकर्णः प्रभुः

सेहे यस्य पराक्रमं न महतो विद्रावितः संगरात् ॥

उद्वास्यास्य पुरं कपाटयुगलं चानीय तत्पत्तनात्

संस्थाप्याशु निजे पुरे यदुपतिः प्रीतोभवद् विक्रमी ॥ ४४ ॥

.....कपाट युगलं दानी तुलां चाप्यथो

नूनं नेत्रयुगं श्रियं च वसतेर्नित्वा ययौ स्वं पुरं ॥ ४७ ॥

(भट्टिवंशप्रशस्तिकाव्य) ।

परंतु उपर्युक्त कथन ठीक प्रतीत नहीं होता। यदि इस घटना में सत्य का अंश हो तो यही मानना पड़ेगा कि बीका के समय जब राठोड़ कोड़मदेसर में गढ़ बनाते थे उस समय भाटियों ने उसपर चढ़ाई की हो और वहां के किवाड़ आदि ले गये हों। गोविन्द मधुवन ने अपना काव्य रावल कल्याणसिंह के समय—जिसका देहान्त वि० सं० १६८३ और १६८५ (ई० सं० १६२६ और १६२८) के बीच किसी समय हुआ था—अर्थात् उक्त घटना से लगभग बड़े सौ वर्ष पीछे बनाया था। ऐसी दशा में बीका के स्थान में लूणकर्ण लिखा जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

(१) दयालदास की रयात; जिल्द-२, पन्ना २। मुन्शी देवीप्रसाद; रावल बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ८-१०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३।

मुंहणोत मैणसी ने बीकानेर का गढ़ पूर्ण हो जाने पर कलिकर्ण का बीका पर चढ़ आना तथा मारा जाना लिखा है (जि० २, पृ० २०४-५), जो ठीक नहीं प्रतीत होता।

गढ़ तथा नगर
बीकानेर की स्थापना

ने नापा सांखला से सलाह की। शुभलक्षण आदि का विचार करने के उपरान्त रातीघाटी पर वि० सं० १५४२ (ई० सं० १४८५) में गढ़ की नींव रखी गई और वि० सं० १५४५ वैशाख सुदि २ (ई० सं० १४८८ ता० १२ अप्रैल) को उस गढ़ के आस-पास बीका ने अपने नाम पर बीकानेर नामक नगर बसाया^१।

राणा ऊदा का
बीकानेर जाना

प्रतापी महाराणा कुंभा को मारकर वि० सं० १५२५ (ई० सं० १४६८) में उसका ज्येष्ठ पुत्र ऊदा मेवाड़ का स्वामी बन गया, परन्तु राजपूताने के लोग पितृघाती को प्राचीन काल से ही 'हत्यारा' कहते और उसका मुख देखने से घृणा करते थे; इतना ही नहीं, किन्तु वंशावली-लेखक उसका नाम तक वंशावली में नहीं लिखते थे। ठीक वैसा ही व्यवहार ऊदा के साथ भी हुआ। राजभक्त राजपूतों ने धीरे-धीरे उससे किनारा करना आरंभ कर दिया और उसको राज्यच्युत करने का उद्योग

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६८-६९। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १०-११। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७६। पाउलोटे; गैजेटियर ऑफ् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४।

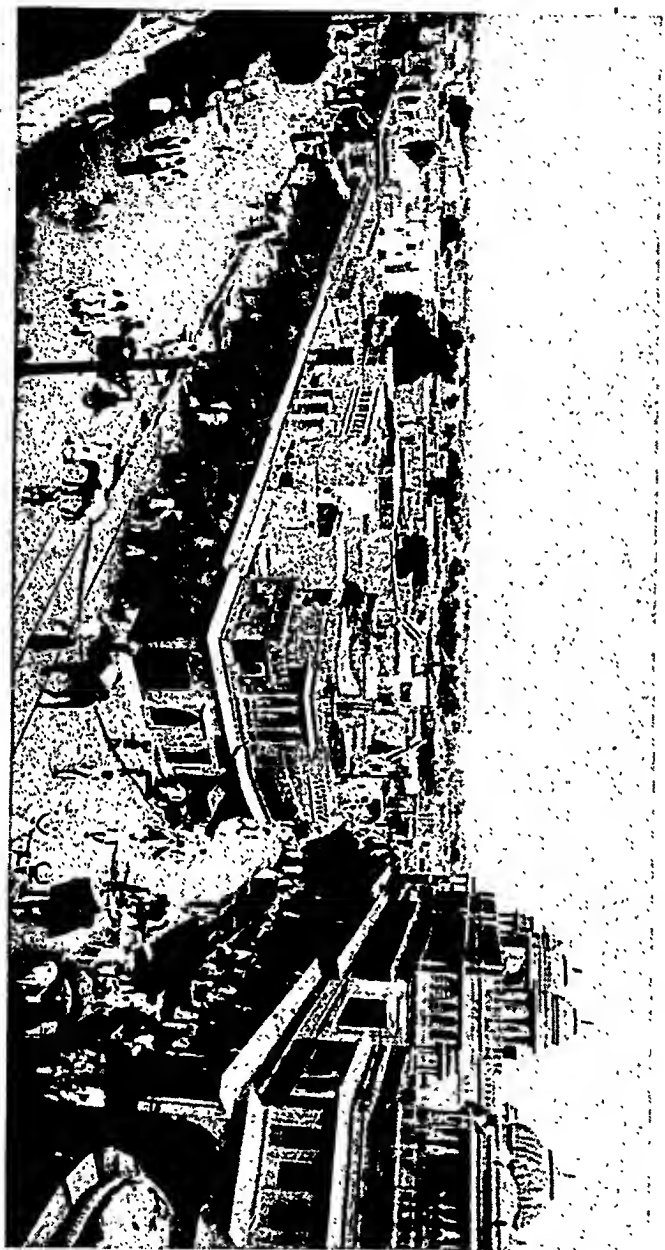
इस विषय में नीचे लिखा हुआ दोहा प्रसिद्ध है—

पनरे सै पैतालवे, सुद वैशाख सुमेर ।

थावर बीज थरप्पियो, बीके बीकानेर ॥

'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में एक स्थान में बीका के गढ़ और नगर का नाम 'कोड़िमदेसर' दिया है (श्लोक १३१), जो भूल है, क्योंकि आगे १३८ वें श्लोक में उसी का नाम विक्रमपुर (बीकानेर) दिया है।

टॉड-कृत 'राजस्थान' में लिखा है कि जिस स्थान पर बीका ने गढ़ बनवाना निश्चय किया, वह नेर नाम के एक जाट की भूमि थी। उसने इस शर्त पर अपनी भूमि बीका को दी कि नवनिर्मित नगर के नाम में उसका नाम भी रहे। इसी से बीका की राजधानी का नाम बीकानेर पड़ा (जि० २, पृ० ११२६-३०); परन्तु टॉड का यह अनुमान ठीक नहीं है, क्योंकि 'नेर' का अर्थ 'नगर' होता है, जैसे भटनेर, जोबनेर, सांगानेर आदि।



वीकानेर नगर का दृश्य

करने लगे। ऊदा ने उनकी प्रीति प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया, पर उसमें सफलता न मिली, जिससे उसने पड़ोसी राज्यों को सहायक बनाने के लिए उन्हें अपने राज्य के परगने देने शुरू किये। इस कार्य से मेवाड़ के सरदार उससे और भी अप्रसन्न हो गये और परस्पर सलाह कर उन्होंने ऊदा के छोटे भाई रायमल को ईडर से बुलाया, जिसने वहाँ आकर उन (सरदारों) की सहायता से जावर, दाड़िमपुर, जावी और पानगढ़ के युद्धों में विजय प्राप्त कर चित्तोड़ को घेर लिया। एक बड़ी लड़ाई के उपरान्त वहाँ भी रायमल का अधिकार हो गया और ऊदा ने भागकर कुम्भलगढ़ में शरण ली। वहाँ भी उसका पीछा किया जाने पर वि० सं० १५३० (ई० सं० १४७३) में वह अपने दोनों पुत्रों—सैसमल तथा सूरजमल—सहित अपनी सुसराल सोजत में जाकर रहा और पीछे से वह बीका के पास चला गया^१। बीका ने उसको शरण तो दी, परन्तु उसकी सहायता करना स्वीकार न किया, जिससे कुछ समय तक वहाँ रहकर वह मांडू के सुलतान गुयासशाह (गुयासुद्दीन) खिलजी के पास चला गया^२।

उन दिनों बीकानेर के आसपास उत्तर-पूर्व में जाटों का काफी अधिकार था^३। शेखसर का इलाका गोदारा जाट पांडू के तथा भाड़ंग, सारन जाट पूला के अधीन थे। गोदारा पांडू जाटों से घृण्य दहा दानी था। एक दिन उसका एक ढाढ़ी पूला

(१) मुंहयोत नैयसी की ख्यात; जि० १, पृष्ठ ३६। नैयसी लिखता है कि ऊदा की मृत्यु बीकानेर में हुई, परन्तु यह ठीक नहीं है। उसकी मृत्यु मांडू में उसपर विजली गिरने से हुई थी (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३८)।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३८।

(३) ख्यातों आदि के अनुसार उस समय जाटों के निम्नलिखित सात बड़े इलाके थे—

१—गोदारा पांडू के अधिकार में लाधड़िया तथा शेखसर।

२—सारन पूला के अधिकार में भाड़ंग।

३—कस्बा कंवरपाख के अधिकार में सीधमुख।

के यहां मांगने के लिए गया। पूला ने जो कुछ हो सका उसे दिया, परन्तु जब वह अपने महलों में गया तो उसकी स्त्री मल्की ने उससे कहा—“चौधरी ऐसा दान करना था, जिससे पांडू से अधिक यश प्राप्त होता।” पूला उस समय नशे में था, उसने मल्की को मारते हुए कहा—“तुझे पांडू अच्छा लगता है तो तू उसी के पास चली जा।” मल्की को भी यह बात सुनकर क्रोध आ गया। उसने उत्तर दिया—“चौधरी, मैंने तो एक बात कही थी, परन्तु जब तू यही सोचता है तो मैं यदि आज से तेरे पास आऊं तो भाई के पास आऊं।” उसी दिन से मल्की ने पूला से बोलना बंद कर दिया और कुछ दिनों पश्चात् पांडू को सारी घटना का वृत्तान्त पहुंचाकर कहलवाया कि आकर मुझे ले जाओ। प्रायः छः मास बाद पांडू के कहने से उसका पुत्र नकोदर भाड़ंग आकर मल्की से मिला और वह अपने स्थान पर अपनी दासी को छोड़कर उस (नकोदर) के साथ शेखसर चली गई। पांडू बहुत वृद्ध हो गया था, फिर भी उसने मल्की को अपने घर में डाल लिया, परन्तु नकोदर की मां से मल्की की अनबन रहने लगी, जिससे वह (मल्की) गोपलाणा गांव में जा रही। फिर उसने अपने नाम पर मल्कीसर गांव बसाया।

उधर जब भाड़ंग में मल्की की खोज हुई, तो उसी दासी के द्वारा, जिसे मल्की अपने स्थान में छोड़ गई थी, पूला को उसके पांडू के यहां जाने का हाल मालूम हुआ। तब पूला ने रायसाल^१, कंवरपाल^२ आदि जाटों को बुलाकर सलाह की, परन्तु पांडू का सहायक बीका था,

४—वेणीवाल रायसाल के अधिकार में रायसलाणा।

५—पुनिया काना (कान्हा) के अधिकार में बड़ी लूंधी।

६—सीहागां चोला के अधिकार में सुई।

७—सोहुवा अमरा के अधिकार में धानसी।

ख्यातों के अनुसार उपर्युक्त जाटों के पास बहुत गांव थे।

(१) वेणीवाल जाट, रायसलाणा का स्वामी।

(२) कस्वां जाट, सीधमुख का स्वामी।

अतएव किसी की भी हिस्मत उसपर चढ़ाई करने की नहीं पड़ती थी। फिर सब मिलकर सिवाणी के स्वामी नरसिंह जाट के पास गये और उसे पांडू पर चढ़ा लाये, जिसपर वह (पांडू) अपने बहुत से साथियों के साथ निकल भगा। बीका तथा कांथल उस समय सीधमुख को लूटने गये थे। पांडू ने उनके पास जाकर सब समाचार कहा और सहायता की याचना की। उन्होंने तुरन्त पूला का पीछा किया और सीधमुख से दो कोस पर नरसिंह आदि को जा घेरा। बीका का आगमन सुनते ही उस गांव के जाट उससे आ मिले और वह स्थल उसे बता दिया जहां नरसिंह सोया हुआ था। बीका ने नरसिंह को जगाकर कहा—“उठ, जोधा का पुत्र आया है।” नरसिंह ने तत्काल वार किया, पर वह खाली गया। तब बीका ने एक ही वार में उसका काम तमाम कर दिया^१। अनन्तर अन्य जाट आदि भी भाग गये तथा रायसल, कंवरपाल, पूला आदि ने, जो बीका के मारे तंग हो रहे थे, आकर उससे क्षमा मांग ली। इस प्रकार जाटों के सब डिकाने बीका के अधिकार में आ गये। पांडू को उसकी खैरखाही के बदले में यह अधिकार दिया गया कि बीकानेर के राजा का राजतिलक उस (पांडू) के ही वंशजों के हाथ से हुआ करेगा^२ और अब तक यह प्रथा प्रचलित है।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३। मुंहयोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०१-३। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ११-१८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४-६।

बीहू सृजा रचित ‘जैतसी रो छन्द’ में भी बीका-द्वारा नरसिंह जाट के मारे जाने एवं भाइंग के किले के कई भाग ध्वंस किये जाने का उल्लेख है (छन्द ४२), जिससे उपर्युक्त घटना की वास्तविकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

डॉड-कूत ‘राजस्थान’ में लिखा है कि गोदारों का जोह्यों तथा भाटियों से वैर रहता था। अतएव बीका के आने पर अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उन्होंने उसे बड़ा मान उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और बीका ने भी यह वचन दिया कि अब से बीकानेर के राजाओं का टीका उसी के वंशजों के हाथ से हुआ करेगा (भाग २, पृ० ११२-६)।

फिर बीका ने वहां के राजपूतों तथा मुसलमानों की भूमि पर आक्रमण करना शुरू किया। सर्वप्रथम उसने सिंघाणे पर चढ़ाई की, जहां का जोइया स्वामी उसके पैरो में आ गिरा। फिर खीचीवाड़े के स्वामी देवराज खीची को मारकर उसने वहां इलाका भी अपने राज्य में मिला लिया। अनन्तर उसने पूगल के भाटी शेखा को अपने चाकर बनाया तथा खड़लां का परगना वहां के स्वामी सुभराम ईसरोत को मारकर लिया। धीरे-धीरे सारा जांगल प्रदेश बीका के अधिकार में आ गया। यही नहीं उसने हिसार के पठानों की भी भूमि छीनी तथा बाघोड़ों, भूटों व बिलोचों को भी पराजित किया। कहते हैं कि इस समय बीका की आन ३००० गांवों में चलती थी और उसके राज्य की सीमा पंजाब के पास तक पहुंच गई थी^३।

३

बीका की मृत्यु से करीब ३१ वर्ष पीछे के रचे हुए बीकू खूजा के 'जैतसी रो छन्द' से भी पाया जाता है कि उस (बीका) ने देरावर, मुम्मण-वाहण,^४ सिरसा, भटिंडा, भटनेर, नागड़, नरहड़ आदि स्थानों

(१) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र ३। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

टॉड-कृत 'राजस्थान' में लिखा है कि जोहियों ने बहुत दिनों तक गोदारों तथा राठोड़ों के सम्मिलित आक्रमण का सामना किया पर अन्त में उन्हें पराजय स्वीकार करनी पड़ी (जि० २, पृ० ११३०-१)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३-४। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १६-२१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

टॉड-कृत 'राजस्थान' में बीका का २६७० गांवों पर कब्ज़ा करना लिखा है (जि० २, पृ० ११२७)।

(४) वाहण=बस्ती या बसाया हुआ गांव। मुम्मण-वाहण का आशय मुम्मण का बसाया हुआ गांव है। पंजाब में कई गांवों के नामों के अन्त में वाहण शब्द जुड़ा हुआ मिलता है।

पर आक्रमण कर उन्हें अधिकृत किया तथा नागौर पर चढ़ाई कर उसे दो बार जीता^१। उपर्युक्त ग्रन्थ ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन होने के कारण उसके कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस हिसाब से उसके राज्य का विस्तार चालीस हजार वर्ग मील भूमि पर होना अनुमान किया जा सकता है।

राव जोधा ने छापर-द्रोणपुर का इलाका बरसल (बैरसल, मोहिल^२) से लेकर वहाँ का अधिकार अपने पुत्र बीदा को दे दिया था। बरसल अपना राज्य खोकर अपने भाई नरबद को साथ ले दिल्ली के सुलतान बहलोल^३ लोदी के पास चला गया। उस समय उसके साथ कांधल का ज्येष्ठ पुत्र बाघा भी था। बहुत दिनों बाद जब उनकी सेवा से सुलतान प्रसन्न हुआ तो उसने बरसल का इलाका उसे वापस दिलाने के लिए हिसार के सूबेदार सारंगछां को फौज देकर उसके साथ कर दिया। जब यह फौज द्रोणपुर पहुँची तो बीदा ने इसका सामना करना उचित न समझा, अतएव बरसल से सुलह कर वह अपने भाई बीका के पास बीकानेर चला गया और छापर-द्रोणपुर पर पीछा बरसल का अधिकार हो गया।

बीदा के बीकानेर पहुँचने पर, बीका ने अपने पिता (जोधा) से

(१) छन्द ४३, ४४, ४५ और ४७।

(२) मोहिल चौहानों की एक शाखा का नाम है, जिसके अधिकार में छापर-द्रोणपुर आदि इलाके थे। छापर बीकानेर से पूर्व-दक्षिण में सुजानगढ़ से कुछ मील उत्तर में है और द्रोणपुर सुजानगढ़ से १० मील पश्चिम में 'कालाहंगर' नाम की पहाड़ी के नीचे था। इन दोनों गाँवों के नाम से वह परगना छापर-द्रोणपुर कहलाता था। श्रीमोर परगने के स्वामी सजन के ज्येष्ठ पुत्र का नाम मोहिल था, जिसके नाम से मोहिल शाखा चली।

(३) बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' से भी बहलोल लोदी का बीका का समकालीन होना पाया जाता है (छन्द ४६), परन्तु सिकन्दर और बहलोल (लोदी) दोनों ही बीका के समकालीन थे।

कहलाया कि यदि आप सहायता दें तो फिर वीदा को द्रोणपुर का इलाका दिला दें। जोधा ने एक बार राणी हाड़ी के कहने से वीदा से लाडलू मांगा था, परन्तु उसने देने से इनकार कर दिया। इस कारण उसने वीका की इस प्रार्थना पर कुछ ध्यान न दिया। तब वीका ने स्वयं सेना एकत्र कर कांधल, मंडला आदि के साथ वरसल पर चढ़ाई कर दी। इस अवसर पर राव शेखा, सिंघाणे का सरदार तथा जोइये आदि भी उसकी सहायता के लिए आये। नागा सांखला, पड़िहार धेला आदि वीकानेर की रक्षा करने के लिए वहीं छोड़ दिये गये। देशणोक में करणीजी के दर्शन कर वीका द्रोणपुर की ओर अग्रसर हुआ तथा वहां से चार कोस की दूरी पर उसकी फौज के डेरे हुए। सारंगखां उन दिनों वहीं था। एक दिन राधा को, जो वरसल का सहायक था, एकान्त में बुलाकर वीका ने उसे उपालम्भ देते हुए कहा—“काका कांधल तो ऐसे हैं कि जिन्होंने जाटों के राज्य को नष्ट कर वीकानेर राज्य को बढ़ाया और तू (कांधल का पुत्र) मोहिलों के बदले में मेरे ऊपर ही चढ़कर आया है। ऐसा करना तेरे लिए उचित नहीं।” तब तो वह भी वीका का मददगार बन गया और उसने वचन दिया कि वह मोहिलों को पैदल आक्रमण करने की सलाह देगा, जिनके दाईं ओर सारंगखां की सेना रहेगी तथा ऐसी दशा में उन्हें पराजित करना कठिन न होगा। दूसरे दिन युद्ध में ऐसा ही हुआ, फलतः मोहिल एवं तुर्क भाग गये, नरवद और वरसल मारे गये तथा वीका की विजय हुई। कुछ दिन वहां रहने के उपरान्त वीका ने छापरा-द्रोणपुर का अधिकार वीदा को सौंप दिया और स्वयं वीकानेर लौट गया।

(१) दयालदास की रूपात; जि० २, पन्ना ४। मुन्शी देवीप्रसाद; राव वीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० २१-२७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६-८।

इसके विपरीत मुंहणोत नैणसी की रूपात में लिखा है कि जोधा ने जिन दिनों छापरा द्रोणपुर पर अधिकार कर लिया उन्हीं दिनों नरवद दिल्ली जाकर जोदी बादशाह के पास से सारंगखां के साथ ५००० सवार अपनी सहायता को ले आया।

इस युद्ध के बाद कांधल हिसार के पास साहवा नामक स्थान में जा रहा और हिसार में लूट-मार करने लगा। जब सारंगखां इस उत्पात का दमन करने लगा तो कांधल अपने राजपूतों कांधल का मारा जाना सहित राजासर (परगना सारण) में चला गया और वहां से चढ़कर हिसार में आया तथा खूब लूट-मार कर फिर वापस चला गया। उस समय कांधल के साथ उसके तीन पुत्र—राजसी, नीवा तथा सूर—थे और बाघा चाचावाद में एवं अरडकमल बीकानेर में था। जब हिसार के फौजदार सारंगखां ने उसपर चढ़ाई की तो कांधल ने सब साथियों सहित उसका सामना किया। अचानक कांधल के घोड़े का तंग टूट गया, जिससे उसने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा कि मेरे तंग सुधार लेने तक तुम सब शत्रु का सामना करो, परन्तु वह तंग आदि ठीककर अपने घोड़े पर पुनः सवार हो सका इसके पूर्व ही सारंगखां ने आक्रमण कर उसकी सारी सेना को तितर-बितर कर दिया। कांधल ने अपने पास बचे हुए राजपूतों के साथ धीरतापूर्वक सारंगखां का सामना किया, पर शत्रु की संख्या बहुत अधिक होने से अंत में

नरबद, बैरसल, बाघा (कांधलोत) तथा सारंगखां ने मिलकर जोधा पर चढ़ाई की। जोधा ने गुप्त रीति से बाघा को अपने पास बुलाया और कहा कि शाबाश भतीजे, मोहिलों के घास्ते तू अपने भाइयों पर तलवार उठाकर भोजाइयों और स्त्रियों को कैद करावेगा। तब तो बाघा के मन में भी विचार उठा कि मोहिलों के घास्ते अपने भाइयों को मारना उचित नहीं है और वह जोधा का मददगार हो गया। फलतः युद्ध में सारंगखां ५५५ पठानों के साथ मारा गया, बैरसल पीछा भेवाड़ को चला गया तथा नरबद क्रतहपुर के पास पड़ा रहा (जि० १, पृ० १६३-६५)।

परन्तु मुंहणोत नैणसी का उपर्युक्त कथन विश्वासयोग्य नहीं प्रतीत होता, क्योंकि आगे चलकर वह स्वयं बीका के कहलवाने पर कांधल को मारने के घैर में जोधा का सारंगखां पर चढ़ाई करना लिखता है। इस अवसर पर राव बीका का भी उसके साथ होना उसने माना है (जिल्द २, पृ० २०६)। इससे स्पष्ट है कि सारंगखां बाद की दूसरी चढ़ाई में मारा गया था।

तेईस मनुष्यों को मारकर वह वीर अपने साथियों सहित काम आया' ।

वीका ने जब कांधल के मारे जाने का समाचार सुना तो उसी समय सारंगखां को मारने की प्रतिज्ञा की तथा अपनी सेना को युद्ध की तैयारी करने के लिए आज्ञा दी । इसकी सूचना वीका की कांधल के वैर में सारंगखां पर चढ़ाई राव जोधा को देने के लिए कोठारी चोधमल जोधपुर भेजा गया । जोधा ने मेड़ते से दूदा घ वरसिंह को भी बुला लिया और सेना सहित वीका की सहायता के लिए प्रस्थान किया । वीकानेर से वीका भी चल चुका था । द्रोणपुर में पिता-पुत्र एकत्र हो गये, जहां से दोनों फ़ौजें सम्मिलित होकर आगे बढ़ीं । सारंगखां भी अपनी फ़ौज लेकर सामने आया तथा गांव भांस (भांसल) में दोनों दलों में युद्ध हुआ, जिसमें सारंगखां की फ़ौज के पैर उखड़ गये और वह वीका के पुत्र नरा के हाथ से मारा गया^२ ।

वहां से लौटते हुए फिर द्रोणपुर में डेरे हुए । राव जोधा ने वीका को अपने पास बुलाकर कहा—“वीका तू सपूत है, अतएव तुमसे एक वचन मांगता हूं । ” वीका ने उत्तर दिया—
 “कहिये, आप मेरे पिता हैं, अतएव आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है । ” जोधा ने कहा—“एक तो

जोधा का वीका को पूजनीक
 चीजें देने का वचन देना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५ । मुन्शी देवीप्रसाद; राव वीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० २८-३० । मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०५-६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७६ । पाउलोटे; गैज़ेटियर ऑव् दि वीकानेर स्टेट; पृ० ८ ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५ । मुन्शी देवीप्रसाद; राव वीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३०-३१ । पाउलोटे; गैज़ेटियर ऑव् दि वीकानेर स्टेट; पृ० ८ ।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि जब राव वीका ने कांधल के मारे जाने की खबर राव जोधा के पास जोधपुर भिजवाई, तब वह बोला कि कांधल का वैर मैं लूंगा । अतएव एक बड़ी सेना के साथ वह सारंगखां पर चढ़ा । वीका हरावल (हिरोल) में रहा । गांव भांसल के पास लड़ाई हुई, जिसमें सारंगखां और उसके बहुत से साथी मारे गये (जिह्द २, पृ० २०६) ।

लाडण मुझे दे दे और दूसरे अब तूने अपने बाहुबल से अपने लिए नया राज्य स्थापित कर लिया है, इसलिए जोधपुर के अपने भाइयों से राज्य के लिए दावा न करना ।” बीका ने इन बातों को स्वीकार करते हुए कहा — “मेरी भी एक प्रार्थना है । मैं बड़ा पुत्र हूँ, अतएव तक्षत, छत्र आदि तथा आपकी ढाल-तलवार मुझे मिलनी चाहियें ।” जोधा ने इन सब वस्तुओं को जोधपुर पहुँच कर भेज देने का वचन दिया । अनन्तर दोनों ने अपने-अपने राज्य की ओर प्रस्थान किया^१ ।

जोधा का जोधपुर में देहांत हो जाने पर वहाँ की गद्दी पर सांतल^२ बैठा, परन्तु वह अधिक दिनों तक राज्य न करने पाया था कि मुसलमानों के हाथ से मारा गया । उसके कोई सन्तान न होने से उसके बाद उसका छोटा भाई सूजा गद्दी पर बैठा । यह समाचार मिलते ही बीका ने राज्य-चिह्न आदि लाने के लिए पड़िहार बेला को सूजा के पास जोधपुर भेजा, परन्तु सूजा ने ये वस्तुएं देने से इनकार कर दिया । जब बीका को यह खबर मिली तो उसने अपने सरदारों से सलाहकर बड़ी फौज के साथ जोधपुर पर चढ़ाई कर दी । इस अवसर पर द्रोणपुर से दीदा ३००० फौज लेकर उसकी सहायता को आया और कांधल के पुत्र अरड़कमल (साहवा का) तथा राजसी (राजासर का) और पौत्र वणीर (चाचाबाद का) भी अपनी-अपनी सेना के साथ आये । इनके

बीका की जोधपुर
पर चढ़ाई

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५ । सुंशी देवीमसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३१-३३ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६ ।

(२) एक प्राचीन गीत प्राप्त हुआ है, जिसमें सांतल का जैसलमेर के रावल देवीदास, पूगल के राव शेखा तथा नागोर के ख़ां के साथ बीका पर चढ़कर जाने का उल्लेख है, परन्तु इस चढ़ाई में उन्हें सफलता न मिली (जर्नल ऑव् दी एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १६१७, पृ० २३५) । इस गीत के रचयिता का नाम अज्ञात है और न यही पता चलता है कि इसकी रचना कब हुई, जिससे इसकी सत्यता में सन्देह है । यदि उक्त गीत में कुछ सत्यता हो तो यही मानना पड़ेगा कि पहले सांतल ने बीका पर चढ़ाई की थी, फिर उसका देहांत हो जाने और सूजा के गद्दी बैठने पर बीका ने जोधपुर पर चढ़ाई की हो ।

अतिरिक्त सांरूडे से मंडला भी सहायतार्थ आया तथा भाटी और जोहिये आदि भी बीका के साथ हो गये। इस बड़ी सेना के साथ बीका देशणोक होता हुआ जोधपुर पहुँचा। सूजा ने स्वयं गढ़ के भीतर रहकर कुछ सेना उसका सामना करने के लिए भेजी, परन्तु वह अधिक देर तक बीका की फौज के सामने ठहर न सकी। अनन्तर बीका की सेना ने जोधपुर के गढ़ को घेर लिया। दस दिन में ही पानी की कमी हो जाने के कारण जब गढ़ के भीतर के लोग घबड़ाने लगे तो सूजा की माता हाड़ी जसमादे के कहलाने से बीका ने अपने मुसाहिबों को गढ़ में सुलह की शर्तें तय करने के लिए भेजा, परन्तु कुछ तय न हो सका, जिससे दो दिन बाद सूजा के कहने से जसमादे ने स्वयं बीका से मिलकर कहा—“तू ने तो अब नया राज्य स्थापित कर लिया है। अपने छोटे भाइयों को रखेगा तो वे रहेंगे।” बीका ने उत्तर दिया—“माता, मैं तो पूजनीक चीजें चाहता हूँ।” तब जसमादे ने पूजनीक चीजें उसे देकर सुलह कर ली, जिनको लेकर बीका बीकानेर लौट गया।

(१) ख्यातों आदि में इन पूजनीक चीजों के ये नाम मिलते हैं—

- १—राव जोधा की ढाल तलवार । २—तफ्त । ३—चंवर । ४—छत्र । ५—सांखले हरभू की दी हुई कटारी । ६—हिरण्यगर्भ लक्ष्मीनारायण की मूर्ति । ७—अठारह हाथोंवाली नागणेची की मूर्ति । ८—करंड । ९—भंवर ढोल । १०—बैरीसाल नक्का । ११—दलसिंगार घोड़ा । १२—भुंजाई की देग ।

इनमें से अधिकांश चीजें अर्थात् तफ्त, ढाल, तलवार, कटार, छत्र, चंवर आदि बीकानेर के किले में रखी हुई हैं और वर्ष में दो बार—दशहरे (विजयादशमी) और दीवाली के दिन—बीकानेर नरेश स्वयं इनका पूजन करते हैं।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५-६। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३५-३६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६। कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या २६११। रामनाथ रन्धू; इतिहास राजस्थान; पृ० १५४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७६-४८०।

जोधपुर राज्य की ख्यात में सूजा के प्रसंग में इस चढ़ाई का कुछ भी उल्लेख नहीं किया है, परन्तु उसी पुस्तक में वरजांग (भीमोत) के प्रसंग में बीका का सूजा के राजत्व-काल में जोधपुर पर चढ़कर आना स्वीकार किया है (जि० १, पृ० ५६)।

उन दिनों मेड़ते पर बीका के भाई दूदा तथा वरसिंह का अमल था । वरसिंह इधर-उधर बहुत लूटमार किया करता था । एक बार

उसने सांभर को लूटा तथा अजमेर की भूमि का बहुत बिगाड़ किया । इसपर अजमेर के सूबेदार (मल्लूखां) ने अपने आपको उससे लड़ने में

असमर्थ देख उसे लालच देकर अजमेर बुलाया और गिरफ्तार कर लिया । इस खबर के मिलने पर मेड़ता के प्रबन्ध के लिए अपने पुत्र वीरम को छोड़कर दूदा बीकानेर चला गया, जहां उसने बीका को यह घटना कह सुनाई । इसपर बीका ने कहा—“तुम मेड़ते जाकर फौज एकत्र करो, मैं आता हूं ।” दूदा के जाने पर बीका ने इसकी खबर सूजा के पास भिजवाई और स्वयं सेना लेकर रीयां पहुंचा, जहां दूदा अपनी फौज के साथ उससे आ मिला । जोधपुर से चलकर सूजा ने कोसाणे में डेरा किया । अजमेर का सूबेदार इन विशाल सेनाओं का आना सुनते ही डर गया और उसने वरसिंह को छोड़कर सुलह कर ली । अनन्तर दूदा तो वरसिंह को लेकर मेड़ते गया और बीका बीकानेर लौट गया । सूजा सुलह का हाल सुन कोसाणे से जोधपुर चला गया । कहते हैं कि वरसिंह को भोजन में जहर दे दिया गया था, जिससे मेड़ता लौटने के कुछ मास बाद उसका देहांत हो गया ।

शेखावाटी के खंडेला प्रदेश का स्वामी रिड़मल प्रायः बीका के राज्य में लूट-मार किया करता था । उसने एक बार बीकानेर और कर्णा-वाटी का बहुत नुकसान किया, जिसपर बीका ने ससैन्य उसपर आक्रमण कर दिया । रिड़मल ने दो कोस सामने आकर उसका सामना किया, पर

बीका का खंडेला पर
आक्रमण

(१) भाबुआवालों का पूर्वज । वरसिंह का पुत्र सीया, पौत्र भीमा और प्रपौत्र केशोदास था, जिससे भाबुआ का राज्य स्थापन हुआ ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पन्ना ६ । मुन्शी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३६-४१ । कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक वार्तें; सं० ६२१ । श्रीरत्नोद; भाग २, पृ० ४७६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६ ।

उसे पराजित होकर भागना पड़ा। तब बीका की सेना ने उस प्रदेश को लूटा, जिससे बहुतसा माल वहां से हाथ लगा^१।

बीका का अंतिम आक्रमण रेवाड़ी पर हुआ। बहुत दिनों से उसकी इच्छा दिल्ली की तरफ की भूमि दवाने की थी। अतएव फ़ौज के साथ उसने रेवाड़ी की ओर कूच किया और उधर की बहुत सी भूमि पर अधिकार कर लिया^२।

बीका की रेवाड़ी पर चढ़ाई

खंडेले के स्वामी रिद्धमल को जब इसकी खबर लगी तो उसने दिल्ली के सुलतान से सहायता की याचना की, जिसपर सुलतान ने ४००० फ़ौज के साथ नवाब हिंदाल^३ को उसके साथ कर दिया। ये दोनों बीका पर चढ़े, जिसपर बीका ने वीरतापूर्वक इनका सामना किया तथा रिद्धमल और हिंदाल दोनों को तलवार के घाट उतार नवाब की सारी सेना को भगा दिया^४।

ख्यातों में लिखा है कि बीकानेर लौटकर सुखपूर्वक राज्य करते हुए वि० सं० १५६१ आश्विन सुदि ३ (ई० स० १५०४ ता० ११ सितंबर) को बीका का देहांत हो गया तथा उसकी आठ राणियां सती हुई^५। बीका के मरने का यह संवत्

बीका की मृत्यु

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ४१-४३। पाउलोट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० १०।

(२) बांदू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' में बीका का बहलोलशाह के राज्य में क़तहपुर से खूँझू तक अपना डंका बजाने का उल्लेख मिलता है (छन्द ४६)।

(३) नवाब हिंदाल बाबर के चौथे पुत्र मिर्जा हिंदाल से भिन्न व्यक्ति होना चाहिये, क्योंकि मिर्जा हिंदाल तो ई० स० १५५१ (वि० सं० १४९४) में खैबर के पास कामरां की सेना के साथ की लड़ाई में रात के समय मारा गया था। कर्नल पाउलोट ने अपने 'गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट' के टिप्पण में हिंदाल को बाबर का भाई लिखा है (पृ० १०), जो असमर्थ ही है।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ४३-४४। पाउलोट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० १०।

(५) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी

तो ठीक है, परन्तु तिथि अशुद्ध है, क्योंकि बीका के मृत्यु स्मारक शिलालेख में उसका आषाढ़ सुदि ५ (ता० १७ जून) सोमवार को देहांत होना लिखा है, जो विश्वसनीय है।

बीका के दस पुत्र हुए—

बीका की संतति
१ नरा, २ लूणकर्ण, ३ घड़सी, ४ राजसी,^१
५ मेघराज, ६ केलण, ७ देवसी, ८ विजयसिंह,
९ अमरसिंह और १० बीसा।

का जीवनचरित्र; पृ० ४५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर; स्टेट, पृ० १०।

टॉड ने बीका की मृत्यु वि० सं० १५५१ (ई० स० १४६४) में लिखी है (राजस्थान; भाग २, पृ० ११३२), जो ठीक नहीं है। दयालदास की ख्यात में बीका के साथ आठ राणियों के सती होने का उल्लेख है, परन्तु उसके स्मारक लेख में केवल तीन राणियों का सती होना लिखा है, जो अधिक विश्वसनीय है।

(१)संवत् १५६१ वर्षे शाके १४२६ प्रवर्तमाने
.....आषाढ़मासे शुभे शुक्लपक्षे.....तिथौ पंचम्यां सोम-
वासरे.....रावजी श्रीजोधराजी तत्पुत्रः रावजी श्रीबीकोजी व श्री
पुंगलाणी निरवाणजी एवं द्वाभ्यां धर्मपत्नीभ्यां.....परमधाम मुक्ति-
पदं प्राप्तः.....।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पन्ना ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ४६।

(३) इसके दो पुत्रों में से देवीसिंह को गारबदेसर और डालूसिंह (डूंगरसिंह) को घड़सीसर की जागीर मिली। घड़सी के वंशज घड़सीयोत बीका कहलाये।

(४) राजसी को जागीर में राजलदेसर मिला था, जहां से उसकी मृत्यु का स्मारक शिलालेख वि० सं० १५८१ आषाढ़ सुदि १० (ई० स० १५२४ ता० ११ जून) शुक्रवार का मिला है, जिसमें लिखा है कि राठोड़वंशी राव श्री बीका का पुत्र राजसी उक्त दिन मृत्यु को प्राप्त हुआ और सोढ़ी रत्नादे उसके साथ संती हुई।

.....संवत् १५८१ वर्षे आषाढ मासे सुकल पक्षे १० सुक्र

जिस राजपूती वीरता से राजस्थान का इतिहास भरा पड़ा है, राव बीका उसका एक जाज्वल्यमान उदाहरण था। वह बड़ा ही पितृभक्त,

राव बीका का व्यक्तित्व

उदार, वीर एवं सत्यवक्ता था। जिस प्रकार पितृ-भक्ति के लिए मेवाड़ के इतिहास में रावत चूड़ा का नाम प्रसिद्ध है, वैसे ही जोधपुर और बीकानेर के इतिहास में राव बीका का नाम भी अग्रगण्य है। पिता की इच्छा का आभास पाते ही उसने जोधपुर के राज्य की आकांक्षा छोड़ दी और अपने बाहुबल से अपने लिए एक नया राज्य कायम कर लिया। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर बड़ा होने पर भी, उसने अपने पैतृक राज्य से सदा के लिए स्वत्व त्याग दिया। ऐसी अनन्य पितृभक्ति बहुत कम लोगों में प्रस्फुटित होती है। इसके अतिरिक्त उसका सत्य-आचरण भी कम प्रशंसनीय नहीं है। पिता को दिया हुआ वचन उसने पूर्ण रूप से निभाया और कभी छल या कपट से अपना स्वार्थ सिद्ध न किया।

उसने अपने जीवनकाल में ही बीकानेर-राज्य का विस्तार बहुत बड़ा दिया था। जब उसने पहले-पहल कोड़मदेसर में गढ़ बनवाना प्रारंभ किया तो भाटियों ने उसका विरोध किया, जिससे उस स्थान को छोड़कर उसने वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) में बीकानेर के नवनिर्मित गढ़ के आस पास शहर बसाया। इसके बाद उसने विद्रोही भाटियों, जाटों, जोइयों, खीचियों, पठानों, बाघोड़ों, वलूचियों और भूटों को हराकर अभूतपूर्व वीरता, साहस एवं युद्ध-कौशल का परिचय दिया। पंजाब के हिसार तक उसने अपना अधिकार जमा दिया था और ऐसी प्रसिद्धि है कि उसकी जीवितावस्था में ही दूर-दूर तक ३००० गांवों में उसकी आन (दुहाई) फिरने लगी थी। उसकी

दिने घटिका ५ उपरांत ११ मध(घ्ये) देवलोक भवतु राठवड़ वंसि राव खी(श्री)बीका सुत राजसीजी देवलोक भवतु सती सोढी रतना दे सहत..... ।

(मूल लेख की छाप से) ।

शक्ति कितनी बढ़ गई थी, यह इसीसे स्पष्ट है कि पूजनीक चीजें लेने के लिए उसकी जोधपुर पर चढ़ाई होने पर राव सूजा के लिए उसका सामना करना कठिन हो गया, जिससे अन्तमें अपनी माता जसमादे के द्वारा पूजनीक चीजें भिजवाकर उस(सुजा)ने सुलह कर ली।

बीका का हृदय बड़ा उदार था। दूसरों का कष्ट मिटाने के लिए वह अपनी जान को संकट में डाल देता था। पूगल के राव शेखा के लंघों-द्वारा बन्दी कर लिये जाने पर उस(बीका)ने ससैन्य उनपर चढ़ाई कर उसे मुक्त कराया था। पितृभक्ति के साथ-साथ उसमें भ्रातृप्रेम का भी प्रचुर मात्रा में समावेश था। भाइयों पर संकट पड़ने पर, उसने उन्हें आश्रय भी दिया और सहायता भी पहुंचाई। राव बीदा के हाथ से छाप-द्रोणपुर का इलाका निकल जाने पर वह बीका के पास चला गया। यह बीका की समयोचित सहायता का ही फल था कि उसका वहां पुनः आधिपत्य होना संभव हो सका। उसके बाद भी बीका के वंशज समय-समय पर बीदावतों की सहायता करते रहे, जिससे बीदावत बीकानेर के ही अधीन हो गये। मेड़ते के स्वामी वरसिंह के अजमेर के सूबेदार-द्वारा गिरफ्तार कर लिये जाने पर बीका ने ससैन्य जाकर उसे भी छुड़ाया।

वह माता करणीजी का अनन्य उपासक था और राज्य की वृद्धि को उसी की कृपा का फल समझता था।

राव नरा

राव बीका का परलोकवास होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र नरा बीकानेर का स्वामी हुआ, परन्तु केवल कुछ मास राज्य करने के बाद ही वि० सं० १५६१ माघ सुदि ८ (ई० सं० १५०५ ता० १३ जनवरी) को उसका देहांत हो गया।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ४६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १०।

‘वीरविनोद’ में नरा का जन्म सं० १५२५ कार्तिक वदि ४=ई० सं० १४६८

राव लूणकर्ण

बीका की राणी रंगकुंवरी के गर्भ से वि० सं० १५२६ माघ सुदि १० (ई० सं० १४७० ता० १२ जनवरी) को लूणकर्ण का जन्म हुआ था ।

नरा के निःसन्तान मरने पर उसका छोटा भाई जन्म तथा राज्याभिषेक होने के कारण वि० सं० १५६१ फाल्गुन वदि ४ (ई० सं० १५०५ ता० २३ जनवरी) को वह (लूणकर्ण) बीकानेर की गद्दी पर बैठा ।

उसके राज्यारंभ में ही आस-पास के इलाकों के मालिक, जिन्हें उसके पिता ने अपने राज्य में मिला लिया था, बिगड़ गये और लूट-मार कर प्रजा का अहित करने लगे । अतएव अपने ददेवा पर चढ़ाई भाइयों तथा अन्य राजपूतों आदि के साथ एक बड़ी सेना एकत्र कर उस लूणकर्ण ने उनका दमन करने के लिए प्रस्थान किया । सर्वप्रथम उसने वि० सं० १५६६ आश्विन सुदी १० (ई० सं० १५०६ ता० २३ सितंबर) को बीकानेर से पूर्व ददेवा पर आक्रमण किया । वहां के स्वामी मानसिंह चौहान (देपालोत) ने सात मास तक तो किले के भीतर रहकर लूणकर्ण का सामना किया, परन्तु रसद की कमी हो जाने के कारण अन्त में गढ़ के द्वार खोलकर वह ५०० साथियों

ता० ५ अक्टोबर (भाग २, पृ० ४८०) तथा मुंशी देवीप्रसाद की पुस्तक (राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र) में वि० सं० १५२६ कार्तिक वदि ४=ई० सं० १४६६ ता० २५ सितंबर (पृ० ४७) दिया है । इसने थोड़े ही समय राज्य किया, इसलिए किसी-किसी वंशावली लेखक ने इसका नाम तक छोड़ दिया है । टॉड ने भी इसका नाम नहीं दिया है ।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७ । मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ४७ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८० । पाउलेट; गैजेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० १० ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७ । मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ४८ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१ । पाउलेट के 'गैजेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट' में पौष मास में लूणकर्ण का गद्दी पर बैठना लिखा है (पृ० १०), जो ठीक नहीं हो सकता ।

सहित उसकी सेना पर टूट पड़ा और घड़सी^१ के हाथ से मारा गया। फलस्वरूप दद्रेवा का सारा परगना लूणकर्ण के हाथ में आ गया, जहाँ अपने थाने स्थापित कर वह बीकानेर लौट गया। इस युद्ध में बीदा के पुत्र संसारचन्द तथा उदयकरण, पूगल का राव हरा, चाचाबाद का वशीर, साहवे का अरड़कमल, सारूंडे का महेशदास आदि भी अपनी-अपनी सेना सहित उसके साथ थे^२।

उन दिनों फ़तहपुर पर कायमखानियों^३ का अधिकार था और वहाँ दौलतखां शासन करता था। उससे तथा रंगखां से भूमि के लिए सदा झगड़ा रहता था। इस अवसर से लाभ फ़तहपुर पर चढ़ाई उठाकर लूणकर्ण ने वि० सं० १५६६ वैशाख सुदि ७ (ई० सं० १५१२ ता० २२ अप्रैल) को फ़तहपुर पर चढ़ाई कर दी। इसपर दौलतखां तथा रंगखां मिलकर लड़ने को आये, परन्तु उन्हें हारकर भागना पड़ा। जब राव लूणकर्ण के आदमियों ने उनका पीछा किया, तब उन्होंने १२० गांव उसे देकर सुलह कर ली। इन गांवों में भी राव लूणकर्ण ने अपने थाने स्थापित कर दिये^४।

(१) लूणकर्ण का छोटा भाई।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७-८। मुन्शी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ४८-५१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१। ठाकुर बहादुरसिंह; ब्रीदावतों की ख्यात; पृ० ४८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ११।

(३) हिसार के फ़ौजदार सैय्यद नासिर ने दरेरे के निवासी चौहानों को परास्त कर वहाँ से निकाल दिया। इस अवसर पर केवल दो बालक—एक चौहान और दूसरा जाट—वहाँ रह गये, जिनको उसने महावत के सुपुर्दे कर दिया। बाद में बादशाह बहलोल लोदी ने चौहान बालक को मुसलमान कर, सैय्यद नासिर का मनसब देकर उसका नाम कायमखां रखवा। उसने अपने लिए फ़ूमलू की भूमि में फ़तहपुर बसाया। इसी कायमखां के वंशज कायमखाना कहलाये।

(४) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र ८। मुन्शी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ५१-२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ११।

अनन्तर राव लूणकर्ण ने चायलवाड़े पर, जो वर्तमान सिरसा और हिसार के किनारे पर वसा हुआ था, आक्रमण किया, क्योंकि वहां के राजपूत भी बिगड़ रहे थे। उसके ससैन्य आगमन का समाचार पाते ही वहां का चायल स्वामी पूना भागकर भटनेर चला गया और हिरदेसर, साहवा एवं गंडीणियां के बीच के चायलवाड़े के ४४० गांव लूणकर्ण के अधीन हो गये, जहां उसके थाने स्थापित हो गये।

वि० सं० १५७० (ई० सं० १५१३) में नागोर के स्वामी मुहम्मदखां ने बीकानेर पर चढ़ाई कर दी। वीर लूणकर्ण ने अपनी सेना सहित उसका सामना किया और अवसर देखकर रात्रि के समय मुसलमानी फौज पर आक्रमण कर दिया, जिसमें मुहम्मदखां बुरी तरह घायल हुआ तथा उसकी पराजय हुई।

नागोर के खान की
बीकानेर पर चढ़ाई

चित्तोड़ के महाराणा रायमल की पुत्री का सम्बन्ध राव लूणकर्ण से हुआ था, इसलिए वि० सं० १५७० फाल्गुन वदि ३ (ई० सं० १५१४ ता० १२ फरवरी) को उस (लूणकर्ण) ने चित्तोड़ जाकर खूब धूम-धाम से अपना विवाह किया।

महाराणा रायमल की
पुत्री से विवाह

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८ । मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ५२-३ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ११ ।

(२) बीहू सूजा; जैतसी रो छन्द; संख्या ५७-६१ ।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८ । मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ५३-५४ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ११ ।

ख्यातों में यह विवाह महाराणा रायमल के समय में ही होना लिखा है, जो ठीक नहीं है; क्योंकि उक्त महाराणा का तो वि० सं० १५६६ ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० सं० १५०६ ता० २४ मई) को देहान्त हो चुका था। अतएव यह विवाह उक्त महाराणा के पुत्र महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के समय होना चाहिये।

ख्यातों में लिखा है कि राठोड़ों का चारण लाला, जैसलमेर के रावल जैतसी के पास मांगने के लिए गया। जब भी लाला रावल के पास जाता वह (रावल) उसके सामने राठोड़ों की हंसी करता।

जैसलमेर पर चढ़ाई

इसपर एक दिन लाला ने कहा—“रावल, चारणों

से ऐसी हंसी नहीं करनी चाहिये, राठोड़ बहुत बुरे हैं।” रावल ने प्रत्युत्तर में विगड़कर कहा—“जा, तेरे राठोड़ मेरी जितनी भूमि पर अपना घोड़ा फिरा देंगे, वह सब भूमि मैं ब्राह्मणों को दान कर दूंगा।” लाला ने बीकानेर लौटने पर लूणकर्ण से सारी घटना कही तथा अनुरोध किया कि आप कांधल अथवा बीदा के पुत्रों को आज्ञा दें कि वे जाकर रावल के कुछ गांवों में अपने घोड़े फिरा दें। तब राव ने उत्तर दिया—“लाला तू निश्चिन्त रह। जब रावल ने ऐसा कहा है, तो मैं स्वयं जाऊंगा।” अनन्तर उसने एक बड़ी सेना एकत्र कर जैसलमेर की ओर प्रस्थान किया। इस अवसर पर बीदा का पौत्र सांगा, बाघा का पुत्र वणीर (वणवीर) और राजसी (कांधलोत) तथा अन्य सरदार आदि भी सेना सहित लूणकर्ण की फौज के साथ थे। गांव राजोवाई (राजोलाई) में फौज के डेरे हुए, जहां से मंडला का पुत्र महेशदास ५०० सवारों के साथ चढ़कर गया और जैसलमेर की तलहटी तक लूटमार करके फिर वापस आ गया। उधर जैतसी ने अपने सरदारों आदि से सलाह कर रात्रि के समय शत्रु पर आक्रमण करना निश्चित किया। अनन्तर गढ़ की रक्षा की व्यवस्था कर वह ५००० आदमियों सहित राजोवाई में लूणकर्ण के डेरे पर चढ़ा। राव ने, जो अपनी सेना सहित तैयार था, उसका सामना किया। सेना कम होने के कारण जैतसी अधिक देर तक लड़ न सका और भाग निकला, परन्तु सांगा ने उसका पीछा कर उसे पकड़ लिया और लूणकर्ण के पास उपस्थित किया, जिसने उसे हाथी पर बैठाकर सांगा को ही उसकी चौकसी पर नियत किया। अनन्तर राठोड़ों की फौज ने जैसलमेर पहुंचकर लूट मचाई, जिससे बहुतसा धन इत्यादि उसके हाथ लगा। लाला जब पुनः जैतसी के पास गया तो वह बहुत लज्जित हुआ। लूणकर्ण एक मास तक घड़सीसर पर

रहा, परन्तु भाटी-गढ़ से बाहर न निकले और उन्होंने भीतर से ही आदमी भेजकर सुलह कर ली। इसपर उस (लूणकर्ण) ने जैतसी को मुक्तकर जैसलमेर उसके हवाले कर दिया तथा अपने पुत्रों का विवाह उसकी पुत्रियों से किया। अनन्तर अपनी सेना-सहित लूणकर्ण बीकानेर लौट गया।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८-६। मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ५४-७। वीरविनोद; भाग २; पृ० ४८१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ११-१२। बीटू सूजा-रचित 'जैतसी रो छन्द' (संख्या ६५-७३) में भी इस चढ़ाई का उल्लेख है।

लूणकर्ण की मृत्यु के लगभग लिखे हुए चारण गोरा के एक छन्द में भी लूणकर्ण के जैसलमेर को नष्ट करने तथा इसके अतिरिक्त मुहम्मदखां से युद्ध करने एवं हांसी, हिसार और सिरसा तक विजय करने का उल्लेख है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १६१७, पृ० २३७)।

ऊपर लिखी हुई ख्यातों आदि में यह घटना रावल देवीदास के समय में लिखी है, जो ठीक प्रतीत नहीं होती। जैसलमेर की तवारीख के अनुसार देवीदास का उत्तराधिकारी जैतसिंह (वि० सं० १५५३-१५८६) राव लूणकर्ण का समकालीन था, जिसके समय में बीकानेर की फौज ने जैसलमेर पर चढ़ाई की और कुछ लूटमारकर वापस चली गई (पृ० ४६)।

सुहणोत नैणसी की ख्यात में भी भाटियों के प्रसंग में लिखा है कि देवीदास के किसी दोष के कारण बीकानेर के राव लूणकर्ण ने रावल जैतसी के समय जैसलमेर पर चढ़ाई की और नगर से दो कोस राजबाई की तलाई पर डेरा कर उस इलाके को लूटा। भाटियों ने रात को छापा मारने का विचार किया, परन्तु इसका पता किसी प्रकार लूणकर्ण को लग गया, जिससे उसने उन्हें मार भगाया। उसी ख्यात में एक और मत दिया है कि जैतसी के वृद्ध होने पर उसके छोटे पुत्रों ने उसे क्रौंद कर लिया था, परन्तु फिर कुछ स्वतन्त्रता मिलने पर उसने भाटियों से सलाह कर अपने ज्येष्ठ पुत्र लूणकर्ण को सिंध से, जहां वह जा रहा था, बुलाया। उसने उसका पुनः जैसलमेर पर अधिकार करा दिया (जि० २, पृ० ३२७-२६)।

उपर्युक्त अवतरणों से यह स्पष्ट है कि जिस-किसी कारण से भी हो लूणकर्ण ने जैसलमेर पर चढ़ाई अवश्य की थी। जैसलमेर के शास्तिनाथ के मन्दिर से एक

अबसर पाकर जोधपुर के राव गांगा ने नागौर के खान पर आक्रमण कर उसका गढ़ घेर लिया। तब राव लूणकर्ण ने नागौर के खान-द्वारा बुलाये जाने पर उसकी सहायतार्थ प्रस्थान किया और गांगा की सेना से लड़कर खान को बचा लिया तथा उन दोनों में मेल करा दिया^१।

कुछ दिनों पश्चात् राव लूणकर्ण ने फीरोज़शाह^(१) को जीता और कांठ-लिया, डीडवाणा, वागड़, नरहड़, सिंघाणा आदि पर आक्रमण कर उन्हें विजय करने के अनन्तर^२ पूगल के भाटी हरा, उदयकरण के पुत्र नारनोल पर चढ़ाई और लूणकर्ण का मारा जाना कल्याणमल^३, रायमल शेखावत (अमरसर का), तिहुणपाल (जोहिया) आदि के साथ नारनोल की तरफ ससैन्य कूच किया। मार्ग में छापरा-द्रोणपुर में डेरे हुए, जहां की अच्छी भूमि देखकर उसके मन में उसे भी हस्तगत करने का विचार हुआ। लौटते समय वहां पर भी अधिकार करने का निश्चय कर उसने आगे प्रस्थान किया, परंतु इसकी सूचना किसी प्रकार कल्याणमल को, जो उसके साथ था, लग गई, जिससे उसके हृदय में राव लूणकर्ण की ओर से शंका हो गई। नारनोल

शिलालेख मिला है, जिससे पाया जाता है कि वि० सं० १५८१ तथा १५८३ (ई० सं० १५२४ तथा १५२६) में जैतसिंह जीवित था—

.....॥ १ ॥ संवत् १५८३ वर्षे मागसिर सुदि ११ दिने महाराजाधिराज राउल श्रीजयतसिंह विजयराज्ये.....। सं० १५८१ वर्षे मागसिर वदि १० रविवारे महाराजाधिराज राउल श्रीजयतसिंह.....।

अतएव यह निश्चित है कि यह चढ़ाई रावल जैतसिंह के समय ही हुई होगी, क्योंकि वह राव लूणकर्ण के समय विद्यमान था।

(१) बीठू सूजा; राव जैतसी रो छन्द; संख्या ७४-५।

(२) बही; संख्या ७५-६, ७८, ८०-८१।

(३) बीदावतों की ख्यात; भाग १, पृ० ५४। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०७।

दयालदास की ख्यात आदि में कल्याणमल के स्थान में उसके पिता उदयकरण का नाम दिया है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि वह तो वि० सं० १५६५ में ही मर गया था।

से तीन कोस की दूरी पर ढोसी नामक गांव में लूणकर्ण की फौज के डेरे हुए । नारनोल का नवाब उन दिनों शेर अमीर था । राव की शक्ति देखकर कछवाहों, तंवरों आदि को भी भय हुआ, तब पाटण के तंवर तथा अमरसर का रायमल (शेखावत) अपनी-अपनी सेना सहित नवाब से मिल गये । नवाब ने एक बार सुलह करने का प्रयत्न किया, परन्तु लूणकर्ण ने ध्यान न दिया । उदयकरण के पुत्र कल्याणमल और रायमल में बड़ी मित्रता थी । अतएव उसने रायमल से मिलकर कहा—“मैं हूं तो राव की फौज के साथ पर भगड़े के समय उसका साथ छोड़कर भाग जाऊंगा ।” फिर उसने अपनी फौज में आकर भाटी हरा तथा जोहिया तिहुणपाल को भी अपनी तरफ़ मिला लिया और यह समाचार नवाब को दे दिया । फलतः जब नवाब और राव लूणकर्ण में युद्ध हुआ तो कल्याणमल, भाटी तथा जोहियों ने किनारा कर लिया । विरोधी पक्ष की सेना अधिक होने से अन्त में लूणकर्ण की सेना के पैर उखड़ गये । फिर भी उसने तथा कुंवर प्रतापसी, वैरसी और नेतसी ने बचे हुए राजपूतों के साथ वीरता-पूर्वक नवाब का सामना किया, परन्तु नवाब की सेना बहुत अधिक थी और भाटी, जोहियों आदि के चले जाने से लूणकर्ण का पक्ष निर्बल हो गया था, इसलिए वे सब के सब बुरी तरह घिर गये । पुरोहित देवीदास ने बीदावतों को उलाहना भी दिया, पर वे सहायतार्थ न आये । अन्त में वि० सं० १५८३ श्रावण वदि ४ (ई० स० १५२६ ता० २८ जून) को २१ आदमियों को मारकर अपने पुत्र प्रतापसी, नेतसी, वैरसी तथा पुरोहित देवीदास और कर्मसी के साथ लूणकर्ण अन्य राजपूतों सहित परमधाम सिधारा । यह समाचार बीकानेर पहुंचने पर उसकी तीन राणियां सती हुई^२ ।

(१) जोधपुर के राव जोधा का पुत्र । बांकीदास रचित ‘ऐतिहासिक बातें’ नामक ग्रन्थ में लिखा है कि यह लूणकर्ण की चाकरी में रहता था और गांव ढोसी (ढोसी) के युद्ध में उसके साथ ही मारा गया (संख्या १४५) । जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इसका उल्लेख है (जिल्द १, पृ० ५०) ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६ । सुंशी देवीप्रसाद; राव लूण-

लूणकर्ण की मृत्यु का उपर्युक्त संवत् तो ठीक है, पर तिथि गलत है, क्योंकि उसकी छत्री (स्मारक) के लेख में वि० सं० १५८३ वैशाख वदि २ (ई० स० १५२६ ता० ३१ मार्च) शनिवार को उसकी मृत्यु होना लिखा है^१ ।

लूणकर्ण^२ के नीचे लिखे बारह पुत्रों के नाम प्रायः प्रत्येक ख्यात में मिलते हैं^३—

१—जैतसी

संतति

२—प्रतापसी—इसके वंश के प्रतापसिंघोत बीका कहलाये ।

कर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ५७-६ (तिथि श्रावण वदि ६ दी है)। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या २२५८। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०७। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८१। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ५०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १२।

बीहू सूजा रचित 'राव जैतसी रो छन्द' में भी मुसलमानों के हाथ से लूणकर्ण के मारे जाने का उल्लेख है (छन्द ६१-६२) एवं चारण गौरा की लिखी हुई एक कविता में भी इसका वर्णन है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १६१७, पृ० २३८-३९)।

(१) संवत् १५८३ वर्षे शाके १४४८ प्रवर्तमाने वैशाखमासे कृष्णपक्षे तिथौ द्वितीयायां शनिवासे रावजी श्रीबीक्रोजी तदात्मजः रावजी श्रीलूणकर्णजी वर्मा तिसृभिः धर्मपत्निभिः सः (सह) दिवं गतः ।

(२) लूणकर्ण की एक स्त्री लालादेवी का नाम बीहू सूजा के 'जैतसी रो छन्द' (संख्या ७३) तथा जयसोम-रचित 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' (श्लोक १५७) में मिलता है। उसी के गर्भ से जैतसी का जन्म होना भी संस्कृत काव्य के उपर्युक्त श्लोक से सिद्ध है ।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६। मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्ण का जीवनचरित्र; पृ० ५६-६०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १२।

जयसोम-रचित 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में भी लूणकर्ण के ११ पुत्रों (कुशलसी को छोड़कर) के नाम दिये हैं—

- ३—वैरसी—इसका पुत्र नारण हुआ जिसके वंश के नारणोत बीका कहलाये।
 ४—रतनसी—इसने महाजनमें ठिकाना बांधा। इसके वंश के रतनसिंघोत बीका कहलाये।
 ५—तेजसी—इसके वंशज तेजसिंघोत बीका कहलाये।
 ६—नेतसी
 ७—करमसी
 ८—किशनसी
 ९—रामसी
 १०—सूरजमल
 ११—कुशलसी
 १२—रूपसी

राव लूणकर्ण वीर पिता का वीर पुत्र था। पिता के स्थापित किये हुए राज्य की उसने अपने पराक्रम से बहुत वृद्धि की। दद्रेवा आदि के विद्रोही सरदारों का दमन करने के अतिरिक्त उसने राव लूणकर्ण का व्यक्तित्व फतहपुर और चायलवाड़े को भी अपने अधीन बनाया। साहसी और असामान्य वीर होने के साथ ही वह बड़ा उदार, दानी, प्रजापालक और गुणियों का सम्मान करनेवाला था। नागौर के खान की बीकानेर पर चढ़ाई होने पर उसने बड़ी वीरता से उसका सामना कर उसे हराया था, परन्तु बाद में जब खान के ऊपर स्वयं संकट आ पड़ा और जोधपुर के राव गांगा ने उसपर चढ़ाई की तो बुलाये जाने पर उस (लूणकर्ण) ने उसकी सहायतार्थ जाकर अपनी उदार-हृदयता का परिचय दिया। यहीं नहीं जैसलमेर के रावल को परास्त कर बन्दी कर

जेतृसिंहो द्विषां जेताः सप्रतापः प्रतापसी ।

रत्नसिंहो महारत्नं तेजसी तेजसा रविः ॥ १५५ ॥

वैरिसिंहो कृष्णनामा रूपसीरामनामकौ ।

नेतसीकर्मसीसूर्यमल्लाद्याः कर्णसूनवः ॥ १५६ ॥

लेने के बाद भी उसने मुक्त कर दिया। कवियों आदि गुणीजनों को बह दरबार की शोभा मानता और उनका बड़ा सम्मान करता था। जैसलमेर की चढ़ाई वास्तव में चारण लाला की बात रखने के लिए ही हुई थी। 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में उसकी समानता दानी कर्ण से की है^१। ऐसे ही बीहू सृजा-रचित 'जैतसी रो छन्द' में भी उसे कलियुग का कर्ण कहा है। इससे स्पष्ट है कि वह दान करने का अवसर पाने पर कभी पीछे नहीं हटता था^२। 'जैतसी रो छन्द' में उसके चारणों, कवियों आदि गुणीजनों को हाथी, घोड़े आदि देने का उल्लेख है^३।

प्रजा के हित और उसके कष्टों का ध्यान सदा उसके हृदय में बना रहता था। दुर्भिक्ष पड़ने पर वह खुले हाथों प्रजा की सहायता करता^४

(१) आकर्णितः पुरा कर्णः स कर्णेरीक्षितोऽधुना ।

दानाधिकतया लब्धावतारोऽयं स एव किं ॥ १५३ ॥

(२) कळि कळि परी क्रम अ करन्न

देखियइ दुवापुर दिख्या दन्न । ॥ ६३ ॥

(३) तेड़िय नट हूँता गुजरात

वीकउत उबारण सुजस वात ।

ताजी हसत्ति दीन्हा तियाइ

रण हूँत पिता मोखावि राइ ॥ ५६ ॥

इळ राइ करन वारउ कि ईद

गुणियणां ग्रिहे बाधा गईद ।

ताकुआं रेसि सोभाग तत्ति

हिन्दुवइ राइ दीन्हा हसत्ति ॥ ६२ ॥

(४) नवसहस राइ नीसाण नाद

पूजिजइ देव आगी प्रसाद ।

चउपनउ समीसर करनि चाळि

देवरउ दुनी राखी दुकाळि ॥ ५४ ॥

और उसके प्रत्येक कष्ट को दूर करना अपना कर्तव्य मानता । जिस राज्य में प्रजा और राजा का ऐसा सम्बन्ध हो वहां पर शान्ति और समृद्धि का होना अवश्यभावी है । लूणकर्ण के राज्यकाल में राज्य का वैभव बहुत बढ़ा और प्रजा भी सुखी और सम्पन्न रही ।

छापर-द्रोणपुर पर अधिकार करने की लालसा उसका काल हुई । उसकी बढ़ी हुई शक्ति से वैसे ही पड़ोस के सरदार भयभीत रहते थे । वे भीतर ही भीतर उसकी बढ़ती हुई शक्ति को दवाने का अवसर देख रहे थे । लूणकर्ण अपनी शक्ति से मदमत्त होने अथवा मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञाता न होने के कारण परिस्थिति को ठीक-ठीक हृदयंगम न कर सका । फलतः नारनोल के नवाब पर जब उसकी चढ़ाई हुई तो उसी (लूणकर्ण) के सरदार उसके विपक्षियों से जा मिले । फिर भी वह बड़ी वीरता से लड़ा और अपने थोड़े से साथियों सहित मारा गया ।

राव जैतसिंह

लूणकर्ण के ज्येष्ठ पुत्र जैतसी (जैतसिंह) का जन्म वि० सं०

करन राउ करइ कुसमइ कड़ाहि

मेदनी उवारी मइल माहि । १००॥ ५५ ॥

(वीरू सूजा-रचित 'जैतसी रो छन्द') ।

(१) टॉड राजस्थान में लिखा है कि लूणकर्ण के चार पुत्र थे, जिनमें से सब से बड़ा (नाम नहीं दिया है; रत्नसिंह होना चाहिये) महाजन और उसके साथ के एकसौ चालीस गांव मिलने पर वीकानेर से अपना स्वत्व त्याग वहीं अपना ठिकाना बांध रहने लगा । तब उसका छोटा भाई जैतसिंह वि० सं० १५६६ (ई० सं० १५१२) में वीकानेर की गद्दी पर बैठा (जि० २, पृ० ११३२); परन्तु जैतसिंह के गद्दी पर बैठने के संवत् के समान ही टॉड का उपर्युक्त कथन निराधार है । जयसोम-रचित 'कर्मचन्द्र-वंशोत्कर्तनकं काव्यम्' से तो यही पाया जाता है कि जैतसिंह ही लूणकर्ण का ज्येष्ठ पुत्र तथा उत्तराधिकारी था, क्योंकि उसका नाम उसने लूणकर्ण के पुत्रों में सर्व-प्रथम दिया है ।

(श्लोक १५५-७) ।

नैणसी ने भी जैतसी को ही लूणकर्ण का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है (ख्यात, जि० २, पृ० १६६) । ऐसा ही 'आर्यशास्त्रानकल्पद्रुम' से भी पाया जाता है (पृ० १०६) ।



राव जेतसी

जन्म

१५४६ कार्तिक सुदि ८ (ई० स० १४८६ ता० ३१ अक्टोबर) को हुआ था^१ ।

जब ढोसी नामक स्थान में पिता के मारे जाने का समाचार जैतसी के पास बीकानेर पहुँचा तो उसी समय उसने राज्य की चाग-डोर अपने हाथ में ले ली । उधर बीदावत उदयकरण के पुत्र कल्याणमल^२ ने बीकानेर पर अधिकार करने की लालसा से शीघ्र ही उस ओर प्रस्थान किया, परन्तु इसी बीच जैतसी ने गढ़ तथा नगर की रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर लिया और उस (कल्याणमल) के आते ही उससे कहलाया कि वापस लौट जाओ । कल्याणमल ने इसके प्रत्युत्तर में कहलाया कि मैं शोकप्रदर्शन करने के लिए आया हूँ, परन्तु जैतसी ने उसके इस कथन पर विश्वास न किया, जिसपर उसने वहाँ से लौट जाने में ही बुद्धिमानी समझी^३ ।

अपने पिता को धोका देने का बदला लेने के लिए वि० सं० १५८४ आश्विन सुदि १० (ई० स० १५२७ ता० ४ अक्टोबर) को जैतसी ने अपनी सेना द्रोणपुर पर चढ़ाई करने के लिए भेजी । उदयकरण का पुत्र कल्याणमल सेना का आगमन सुनते ही भागकर नागौर के खान के पास चला गया । तब जैतसी ने वहाँ की गद्दी पर बीदा के पौत्र सांगा को, जो संसारचन्द का पुत्र था, बैठाया^४ ।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६ । मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ६१ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८२ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १२ ।

(२) ठाकुर बहादुरसिंह की लिखी हुई 'बीदावतों की ख्यात' में कल्याणमल के साथ नवाब (नारनोल) का भी बीकानेर जाना लिखा है (पृ० ५५-६) ।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६-१० । मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ६१-२ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८२ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १३ । इनमें कल्याणमल के स्थान में उसके पिता उदयकरण का नाम दिया है, जो ठीक नहीं है ।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १० । मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी

अनन्तर उसने एक सेना के साथ सांगा को सिंहाणकोट की ओर जोहियों के विरुद्ध भेजा, क्योंकि उनमें से बहुतों ने उसके पिता के साथ धोका किया था। इस आक्रमण में सांगा को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और जोहियों का सरदार तिहुणपाल लाहौर की तरफ भाग गया।

जैतसी की बहन बालाबाई आमेर के राजा पृथ्वीराज को ब्याही थी। उस (पृथ्वीराज) के देहांत से कुछ पीछे रत्नसिंह आमेर का स्वामी हुआ।

कद्यबाई सांगा की सहायता करना
बालाबाई का पुत्र सांगा रत्नसिंह का सौतेला भाई था अतः उसमें और रत्नसिंह में अनबन हो गई, जिससे वह बीकानेर में अपने मामा जैतसी के पास चला गया। रत्नसिंह खूब शराब पिया करता था, अतएव अच्छा अवसर देखकर

का जीवनचरित्र; पृ० ६२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७८। ठाकुर बहादुरसिंह; वीदावतों की ख्यात; पृ० ५६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १३।

टॉड लिखता है कि जैतसी ने वीदा के वंशजों को अधीन बनाया और वह उनसे खिराज आदि लेने लगा (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३२)। संभव है कि सांगा के गद्दी बैठने के समय से वीदावतों ने बीकानेर की अधीनता पूर्ण रूप से फिर स्वीकार की हो। वीदा और उसके वंशजों से वीदावतों की सात शाखाएं चलीं, जो नीचे लिखे अनुसार हैं—

१. वीदा के प्रपौत्र गोपलदास के पुत्र केशोदास से 'केशोदासोत'।
२. उपर्युक्त केशोदास के भाई तेजसिंह से 'तेजसीयोत'।
३. उपर्युक्त तेजसिंह के भाई जसवंतसिंह के पुत्र मनोहरदास से 'मनोहरदासोत'।
४. उपर्युक्त मनोहरदास के भाई पृथ्वीराज से 'पृथ्वीराजोत'।
५. वीदा के पौत्र सांगा के भाई सूर के पुत्र खंगार से 'खंगारोत'।
६. उपर्युक्त खंगार के पुत्र किशनदास के प्रपौत्र मानसिंह से 'मानसिंहोत'।
७. उपर्युक्त सांगा के भाई पाता के पुत्र मदनसिंह से 'मदनावत'।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १०। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ६२-३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १३।

उसके सरदारों आदि ने भूमि को दाना शुरू किया। जब यह ख़बर सांगा को बीकानेर में मिली तो उसने अपने मामा जैतसी से सारा हाल कहकर सहायता मांगी। जैतसी ने वणीर^१, रत्नसिंह^२, किशनसिंह^३, खेतसी^४, सांगा^५, महेशदास^६, भोजराज^७, बीका देवीदास^८, राव वैरसल आदि सरदारों के साथ एक बड़ी सेना सांगा के संग कर दी। अमरसर पहुँचने पर रायमल शेखावत भी उनसे आ मिला। उन दिनों आमेर में रत्नसिंह का सारा राजकार्य उसका मंत्री तेजसी (रायमलोत) चलाता था। रायमल ने उससे कहलाया कि राज तो सांगा को ही मिलेगा, अतएव अब्छा हो कि तुम उससे मिल जाओ। इसपर तेजसी सांगा से मिला और उसी के पक्ष में हो गया। उस- (तेजसी) के द्वारा सांगा ने कर्मचन्द नरूका को, जिसने आमेर की बहुतसी भूमि अपने अधिकार में कर ली थी, मारने की सलाह की। फिर मौजावाद पहुँचने पर तेजसी ने जैमल के द्वारा, जो कर्मचन्द का भाई था और तेजसी के यहां काम करता था, उस (कर्मचन्द) को अपने पास बुलवाया जहां वह लाला सांखज्ञा^९ के हाथ से मारा गया। जैमल ने, जो साथ में था, इसका बदला तेजसी को मारकर लिया और वह सांगा को भी मार लेता, परन्तु इसी बीच वह उस (सांगा) के आदमियों द्वारा मारा गया। अनन्तर सांगा ने आमेर के बहुत से भाग पर अधिकार कर लिया और आसपास के सरदार उससे आ मिले। आमेर के सिंहा-सनारूढ़ स्वामी से उसने छेड़-छाड़ करना उचित न समझा, अतएव अपने

- (१) कांधल का पौत्र, चाचावाद का स्वामी ।
- (२) राव जैतसी का भाई, महाजन का ठाकुर ।
- (३) कांधल का पौत्र, राजासर का रावत ।
- (४) कांधल का पौत्र, साहवे का स्वामी ।
- (५) बीदा का पौत्र, बीदासर का स्वामी ।
- (६) मंडला का वंशज, सारुंडे का स्वामी ।
- (७) भेजू का स्वामी ।
- (८) घड़सीसर का स्वामी ।
- (९) नापा सांखला का भाई ।

लिए सांगानेर नामक नगर अलग बसाकर वह वहां रहने लगा। रत्नसिंह (महाजन) तो उसके पास ही रह गया और शेष सब फौज बीकानेर लौट गई^१।

जोधपुर के राव सूजा के बेटे—वीरम, बाघा और शेखा—थे। बाघा के पुत्र का नाम गांगा था। सूजा जब गद्दी पर था, तभी मारवाड़ के बड़े-बड़े सरदार पाटवी वीरम से अप्रसन्न रहते थे^२। अतएव सूजा का परलोक-वास होने पर उन्होंने वीरम के स्थान में गांगा को जोधपुर का राव बना दिया। स्वामिभक्त महता रायमल ने इसका विरोध किया, परन्तु सरदारों आदि ने जब न माना तो वह वीरम के साथ सोजत में, जो वीरम को जागीर में दे दिया गया था, जा रहा। वहां रहकर उसने कई बार वीरम को गद्दी दिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु अन्त में गांगा पर चढ़ाई करने में वह मारा गया और सोजत पर गांगा ने अधिकार कर लिया। अनन्तर शेखा, हरदास ऊहड़^३ से मिलकर, जोधपुर

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ६ (टिप्पण १)। दयालदास की ख्यात; जि० १, पत्र १०। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ६३-४। पाउलेट; गैजेटियर ऑफ् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १३।

(२) ख्यातों आदि में राजपूत सरदारों की अप्रसन्नता का कारण यह दिया है कि जिन दिनों मारवाड़ में सूजा राज करता था उस समय एक दिन कुछ ठाकुर वहां आये। उस दिन निरन्तर वर्षा होने के कारण वे अपने ढेरों पर न जा सके और पाटवी वीरम की माता से उन्होंने अपने भोजन आदि का प्रबन्ध करा देने को कहलाया, परन्तु उसने ध्यान न दिया। तब उन्होंने गांगा की माता से अर्ज कराई, जिसने उनका बड़ा सत्कार किया। तभी से ठाकुर वीरम से अप्रसन्न रहने लगे और उन्होंने सूजा के बाद गांगा को गद्दी पर बैठाने का निश्चय कर लिया (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४४। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ११)।

(३) राठोड़ हरदास मोकल्लोत के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४७-१५२। यह राव आस्थान के पौत्र ऊहड़ का वंशधर था।

हस्तगत करने का उद्योग करने लगा। गांगा ने, जिसका पक्ष बहुत बलवान था, भूमि के दो भाग कर सुलह करनी चाही, परन्तु शेखा ने, हरदास के कहने के अनुसार, इस शर्त को स्वीकार न किया। तब गांगा ने आदमी भेजकर बीकानेर के राव जैतसी से सहायता मांगी, जिसपर उस(जैतसी)ने रतनसी, बणीर, खेतसी, सांगा, वैरसल (पुगल का), महेशदास आदि अपने सरदारों के साथ एक बड़ी सेना एकत्र कर वि० सं० १५८५ मार्ग-शीर्ष वदि ७ (ई० सं० १५२८ ता० ३ नवम्बर) को जोधपुर की ओर प्रस्थान किया। उधर शेखा ने हरदास को नागौर के सरखेलख़ा के पास से सहायता लाने के लिए भेजा। नागौर की सीमा पर के २०० गांव मिलने के वादे पर सरखेलख़ा और उसका पुत्र दौलतख़ा एक विशाल फ़ौज के साथ शेखा की मदद के वास्ते खाना हुए और उन्होंने बिराई गांव में डेरा किया। गाघाणी गांव में गांगा के डेरे हुए जहां जैतसी भी आकर सम्मिलित हो गया। गांगा ने पुनः एकबार सन्धि करने का प्रयत्न किया, परन्तु शेखा ने कुछ ध्यान न दिया। दूसरे दिन विरोधी दलों की मुठभेड़ होने पर भी जब गांगा तथा उसके साथी भागे नहीं तो खान ने शेखा से कहा कि तुमने तो कहा था कि हमारे सामने वे ठहरेंगे नहीं, अब यह क्या हुआ। शेखा ने उत्तर दिया कि वे भाग तो जाते, परन्तु जोधपुर की मदद पर बीकानेर है। खान के हृदय में उसी समय सन्देह ने घर कर लिया। इतने ही में गांगा ने अपने धनुष से एक तीर छोड़ा, जो खान के महावत को लगा। फिर तो जैतसी के राजपूतों ने खान के हाथी को जा घेरा और रन्तसिंह ने

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में गांगा-द्वारा जैतसी के बीकानेर से सहायतार्थ बुलवाये जाने का वृत्तान्त नहीं दिया है। उक्त ख्यात में केवल इतना लिखा है कि जैतसी उन दिनों नागाणा गांव में मानता करने गया था और युद्ध में शामिल हो गया। उक्त ख्यात में राठोड़ों की शेखा तथा मुसलमानों पर की इस विजय का सारा श्रेय गांगा को दिया है (जिल्द १, पृ० ६४); परन्तु उससे बहुत प्राचीन मुंहणोत नैणसी की ख्यात में स्पष्ट लिखा है कि गांगा ने राव जैतसी को बीकानेर से सहायतार्थ बुलवाया, जिसपर वह अपनी सेना सहित आया और उसी की वजह से गांगा की विजय हुई (जिल्द २, पृ० १५०-२)।

हाथी के एक बछ्छों ऐसी मारी, जिससे वह घूमकर भाग गया^१। साथ ही सारी यवन सेना भी रणक्षेत्र छोड़कर भाग गई^२। शेखा के अकेले रह जाने से उसकी पराजय हो गई, हरदास मारा गया और नवाब का सारा सामान विजेताओं के हाथ लगा। गांगा तथा जैतसी को, शेखा युद्धक्षेत्र में निपट घायल दशा में मिला। होश में लाये जाने पर जय उसका जैतसी से सामना हुआ तो उसने कहा—“रावजी, भला मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो यह चढ़ाई की। हम चाचा-भतीजे आपस में निपट लेते।” इतना कहने के साथ ही वह मर गया। उसका अन्तिम संस्कार करने के उपरान्त गांगा तथा जैतसी अपने-अपने छेरों में गये। वहां से धिदा होकर जैतसी बीकानेर लौट गया^३।

(१) ख्यातों आदि से पाया जाता है कि गान का हाथी भागकर मेड़ते पहुँचा, जहाँ वीरम दूरावत ने उसे पकड़ लिया। राव गांगा के पुत्र मालदेव ने वीरम से वह हाथी मांगा, परन्तु वीरम ने देने से इनकार कर दिा, यही मालदेव और वीरम के बीच के वैमनस्य का कारण हुआ, जिसका घृणांत आगे लिखा जायगा।

(२) एक अज्ञात नामा चारण के बनाये हुए प्राचीन छप्पय में वि० सं० १५८५ कार्तिक वदि १३ (ई० स० १५२८ ता० ११ अक्टोबर) को राव जैतसी और मुगल (मुसलमान) खान में जाखाणिया (बीकानेर और नागौर की सीमा पर नागौर से १८ मील पश्चिम) नामक स्थान में युद्ध होना तथा खान का हारकर भागना लिखा है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; न्यू सीरीज़ संख्या १३, ई० स० १६१७, पृ० २४१)। सम्भवतः यह कथन सरखेलख़ां तथा उसके पुत्र दौलतख़ां से सम्बन्ध रखता हो। उनके साथ की लड़ाई का संवत् ख्यातों आदि में एक सा नहीं, किन्तु मुंदिवादवालों की ख्यात में १५८५ तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में १५८६ मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० स० १५२६ ता० २ नवम्बर) दिया (जि० १, पृ० ६४) है और यह लड़ाई सेवकी के तालाब पर होना लिखा है। सेवकी शायद जाखाणिया के पास ही कोई स्थान अथवा तालाब हो।

(३) मुंहखोत नैयसी की ख्यात; जिल्द २, पृ० १४४-१५२। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ११-१३। मुंशी देवीनसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ६५-७०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८२। पाउलेट; गैजेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १४-१५।

बीठू सूजा-रचित 'राव जैतसी रो छन्द' में लिखा है—'मुगलों ने प्रवेशकर केवल थोड़े से समय में ही उत्तरी-भारत के बहुत से प्रदेशों पर

कामरां से युद्ध

अपना आधिपत्य कर लिया था । देवकरण पंवार ने बाबर के उत्कर्ष को रोकने की चेष्टा की, परन्तु मुगलों के विशाल सैन्य के सामने उसे पराजित होना पड़ा । फिर भाखर, अरोड़, सुलतान, खेड़, सातलमेर, उच्च, मुम्मण-वाहण, मारोठ, देरावर, भरेहा, बगा, भंभेरी, मांगलोर, जम्मू, सिरमौर, लाहौर, देपालपुर आदि स्थान एक-एक करके उस (बाबर) के अधीन हो गये । जानू, खोखर, बरिहा, यादव, तंवर एवं चहुआण जातियों को परास्तकर बाबर ने उनके गढ़ों को नष्ट कर दिया । अनन्तर सुलतान इब्राहीम लोदी से दिल्ली, मीरों से आगरा तथा पठानों से बयाना भी उसने ले लिये और जौनपुर, अयोध्या एवं बिहार (प्रान्त) भी उसके अधिकार में आ गये । मेवाड़ का महाराणा सांगा उसका अवरोध करने के लिए आगरे गया, परन्तु वह पराजित हुआ । फिर बाबर ने अलवर और मेवात का विध्वंस करने के उपरान्त आमेर, सांभर तथा नागोर को विजय किया ।

'बाबर की मृत्यु होने पर, उसका राज्य उसके पुत्रों में विभाजित हो गया, जिनमें से कामरां ने लाहौर को अपने अधिकार में कर स्वतंत्र राज्य की स्थापना की' । उस समय तक भारत (उत्तरी) के प्रायः सभी छोटे-बड़े राज्य मुगलों के अधीन हो गये थे (?), केवल राठोड़ों का राज्य ही ऐसा बच रहा था, जिसकी स्वतंत्रता पर आंच न आई थी । तब भारत के उत्तरी प्रदेश के स्वामी कामरां ने एक बड़ी फौज के साथ मारवाड़ की ओर मुख मोड़ा । सतलज को पारकर बठिंडा (भटिंडा) तथा अभोहर के बीच से अग्रसर हो, मुगल सेना ने भटनेर पर चढ़ाई कर उसे घेर लिया । भटनेर (हनुमानगढ़) उन दिनों खेतसी (कांधल के पौत्र) के

(१) हुमायूँ ने गद्दी पर बैठने के बाद कामरां को काबुल, कन्दहार, गज़नी और पंजाब के इलाक़े सौंपे थे (बील; ओरिएण्टल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी; पृ० २०८) ।

अधिकार में था^१। मुगलों ने उसके पास अधीनता स्वीकार कर लेने के लिए दूत भेजे, परन्तु इसके उत्तर में निर्भीक वीर खेतसी युद्ध करने को उद्यत हो गया। तीरों और तोपों की वर्षा करते हुए जब मुगलों ने गढ़ की दीवार पर चढ़कर भीतर प्रवेश करना प्रारम्भ किया, तब खेतसी द्वार खोल जैसा, राणिगदेव आदि अपने वीरों के साथ उनपर दूट पड़ा और लड़ता हुआ मारा गया। फल-स्वरूप भटनेर के गढ़ पर मुगलों का अधिकार हो गया^२।

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात में खेतसी के भटनेर लेने की बात इस प्रकार लिखी है—‘भटनेर में बादशाह हुमायूँ का थाना रहता था। उस वक्त खेतसी से एक कानूंगो ने आकर कहा कि यदि तू मेरी सहायता करता रहे तो तुझे गढ़ दिलवाऊँ। उस कानूंगो को तिकालकर दूसरा नियत कर दिया गया था, उसी जलन के मारे वह खेतसी के पास गया था। खेतसी ने कहा—“भली बात है, मैं भी यही चाहता हूँ।” अपने काका और बाबा पूरणमल कांधलोत और दूसरे कई राजपूतों को साथ ले, कानूंगो को आगे कर वह चढ़ धाया। कानूंगो ने पहले स्वयं गढ़ में प्रवेश कर एक रस्से के सहारे खेतसी तथा उसके साथियों को ऊपर चढ़ा लिया। इस प्रकार गढ़ खेतसी के कब्जे में आ गया (जिल्द-२, पृ० १६२)।’

इसके विपरीत दयालदास की ख्यात में लिखा है कि राव जैतसी की आज्ञा प्राप्तकर पूरणमल आदि की सहायता से साहबे के ठाकुर अरडकमल (कांधलोत) ने सहू चायल से भटनेर का गढ़ छीन लिया था (जि० २, पत्र १४)।

(२) मुहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है—‘बबगच्छ का एक यती बीकानेर में रहता था। उसके पास कोई अच्छी चीज़ थी। राव जैतसी ने वह चीज़ उससे मांगी, परन्तु यती ने दी नहीं, तब राव ने उसे मारकर वह वस्तु ले ली। फिर कामरां (हुमायूँ का भाई जो काहुल में राज करता था) हिन्दुस्तान पर चढ़ आया। उस यती का चेला उससे मिलकर उसे भटनेर पर चढ़ा लाया (जि० २, पृष्ठ १६२-६३)।’

दयालदास की ख्यात में लिखा है कि भावदेव सूरि नाम के एक जैन पंडित ने, जिससे राठोड़ों से कुछ कहा-सुनी हो गई थी, दिल्ली जाकर कामरां से भटनेर के गढ़ की बहुत प्रशंसा की, जिसपर उस (कामरां) ने ससैन्य आकर भटनेर को घेर लिया। कुछ दिनों के युद्ध के बाद उस गढ़ का स्वामी खेतसी मारा गया और वहाँ कामरां का अधिकार हो गया (जि० २, पत्र १४); परन्तु एक जैन पंडित के दिल्ली जाकर

‘वहां से कामरां की फ़ौज बीकानेर की ओर अग्रसर हुई, जिसकी सूचना दूतों ने जाकर राव जैतसी को दी। वहां पहुंचकर भी मुग़लों ने अधीनता स्वीकार करने का पैग़ाम जैतसी के पास भेजा, परन्तु उसने वीका के वंशज के अङ्गरूप ही उत्तर दिया—“जाओ, कामरां से कह देना कि जिस प्रकार मेरे वंश के मल्लीनाथ, सतसल्ल (सांतिल), रणमल, जोंधा, वीका, दूदा, लूणकर्ण गांगा आदि ने मुसलमानों का गर्व-भंजन किया था, उसी प्रकार मैं भी तेरा नाश करूंगा।” दूतों ने यह उत्तर जाकर अपने स्वामी से कहा, जिसपर उसने अपनी सेना सहित तलहटी में प्रवेश किया। जैतसी ने इस अवसर पर इतनी बड़ी सेना का सामना करना उचित न समझा और अपनी भयभीत प्रजा को आगे कर वह वहां से दूर हट गया। केवल भोजराज रूपावत कुछ भाटियों के साथ वीकानेर के गढ़ (पुराना) की रक्षा के लिए रह गया, जिसे मारकर मुग़लों ने वहां पर अधिकार कर लिया, परन्तु जैतसी भी चुप न बैठा रहा। इसी बीच में उसने एक बड़ी सेना मुग़लों का सामना करने के लिए एकत्र कर ली। अपने भाइयों में से तेजसी, रतनसिंह, नेतसी और रामसिंह एवं अपने सरदारों में से हरराज, सांगला (सांगा), डूंगरसिंह, जयमल (जगगा का वंशज), संकरसी, नारायण, जगा (कछवाहा), अमरसिंह, गांगा, पृथ्वीराज, रायमल, भीम, संग्रामसिंह (सोढ़ा), दुर्जनसाल (ऊदावत) आदि चुने हुए १०६ वीर राजपूत सरदारों तथा सारी सेना के साथ उसने वि० सं० १५६१ मार्गशीर्ष वदि ४ (ई० सं० १५३४ ता० २६ अक्टोबर) को रात्रि के समय मुग़लों की सेना पर आक्रमण कर दिया। राठौड़ों के इस प्रबल हमले का सामना मुग़ल सेना

कामरां को भटनर पर चढ़ा लाने की बात निराधार है, क्योंकि यह घटना बाबर की मृत्यु (वि० सं० १५८७=ई० सं० १५३०) के बाद की है, जब कामरां लाहौर में था और वह वहां से ही चढ़कर आया होगा।

(१) ख्यातों आदि में वि० सं० १५६५ आश्विन सुदि ६ (ई० सं० १५३८ ता० २६ सितंबर) को रात्रि के समय राव जैतसी का कामरां की फ़ौज पर आक्रमण करना लिखा है (दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १४। मुंशी देवीप्रसाद, राव जैतसीजी का जीवनचरित्र, पृ० ७४ आदि); परन्तु इस सम्बन्ध में बीटू सूजा का

न कर सकी और मैदान छोड़कर लाहौर की ओर भाग खड़ी हुई। जैतसी की मुसलमानों पर यह विजय राठोड़ों के इतिहास में चिरकाल तक अमर रहेगी।^१

वीरू चूजा के कथन में अतिशयोक्ति अवश्य पाई जाती है, परन्तु मूल कथन विश्वसनीय है। डाक्टर टेसिटोरी के कथनानुसार यह ग्रंथ उक्त घटना से लगभग एक वर्ष पीछे लिखा गया था, इसलिए इसका अधिकांश ठीक होना चाहिये।

जोधपुर राज्य का अधिकांश भाग राव गांगा के हाथ से निकलकर, केवल दो परगने (जोधपुर और सोजत) ही उसके अधीन रह गये। यह बात उसके ज्येष्ठ पुत्र मालदेव को खटकती थी और वह उसे मारकर गद्दी हस्तगत करना चाहता था। पहले तो मालदेव ने विप देकर अपने पिता को मारने का प्रयत्न किया, परन्तु जब इसमें सफलता न मिली तो उसने अवसर पाकर एक दिन उस (गांगा) को झरोखे पर से, जहाँ बैठकर वह दातुन कर रहा था, नीचे गिराकर मार डाला और वि० सं० १५८८ श्रावण सुदि १५ (ई० स० १५३१ ता० २६ जुलाई) को स्वयं जोधपुर की गद्दी पर बैठ गया^२। नागौर, सिवांणा आदि स्थानों पर अधिकार

कथन ही अधिक विश्वासयोग्य है, क्योंकि उसने उक्त घटना के कुछ समय बाद ही अपना ग्रन्थ रचा था।

(१) छन्द १०८-४०१। मुंहणोत नैणसी की ख्यात (जित्द २, पृ० १६३) में भी राव जैतसी का कामरां को परास्त कर भगाना लिखा है।

शिवा (सम्भवतः चारण) के बनाये हुए एक गीत में भी जैतसी-द्वारा कामरां की फौज के परास्त किये जाने का उल्लेख है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; न्यू सीरीज़ १३, ई० स० १६१७, पृ० २४२-४३)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जित्द १, पृ० ६८।

दयालदास की ख्यात में वि० सं० १५८८ ज्येष्ठ वदि ३ (ई० स० १५३१ ता० ४ मई) को मालदेव का जोधपुर की गद्दी पर बैठना लिखा है (जि० २, पृ० १५)।

करने के अनन्तर वि० सं० १५६८ (ई० सं० १५४१) में उसने बीकानेर पर अधिकार करने के लिए कूपा महाराजोत् एवं पंचायण करमसियोत्^२ की अध्यक्षता में एक बड़ी सेना भेजी । इस सम्बन्ध में जयसोम अपने 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में लिखता है—

‘किसी समय मालदेव सेना के साथ जांगलदेश (बीकानेर राज्य) पर अधिकार जमाने की इच्छा करने लगा । तब जैतसिंह (जैतसिंह) ने मंत्री (नगराज^३) से कहा कि मालदेव बलवान है, हम लोगों से जीता नहीं जा सकता। इसलिए उसके साथ लड़ाई की इच्छा करना फलदायक नहीं । सुना जाता है, वह यहां पर चढ़ाई करनेवाला है, इसलिए उसके चढ़ आने के पहले ही उपाय की मंत्रणा करनी चाहिये । फिर आ जाने पर क्या हो सकता है ? तब निपुण मंत्री ने यह सलाह दी कि शेरशाह का आश्रय लेना चाहिये । इसके बिना हमारा काम न निकलेगा; क्योंकि समर्थ की चिन्ता समर्थ ही मिटा सकता है—हाथी के सर की खुजलाहट बड़े वृद्ध से ही मिट सकती है । यह सुनकर जैतसिंह ने कहा—“अपना काम सिद्ध करने के लिए तुमने ठीक कहा । अपने से बढ़कर गुणवान की सेवा निष्फल होने पर भी अच्छी है; सफल होने पर तो कहना ही क्या ? इसलिए तुम्हीं सोत्साह मन से शाह के समीप जाओ, क्योंकि मानस-सरोवर के बिना हंस प्रसन्न नहीं होते ।” फिर नज़राने के उपायों में चतुर मंत्री नगराज “जो आक्षा” कहकर क्षत्रियों की सेना लेकर (अच्छे) शकुनों से

(१) कूपा जोधपुर के राव रिद्धमल (रणमल) का प्रपौत्र, अखैराज का पौत्र और महाराज का पुत्र था । कूपा से राठोड़ों की कूपावत शाखा चली । कई कूपावत सरदार इस समय भी जोधपुर राज्य में विद्यमान हैं, जिनमें मुख्य आसोप का सरदार है ।

(२) जोधपुर के राव जोधा के एक पुत्र का नाम कर्मसी था । कर्मसी का एक पुत्र पंचायण था ।

(३) जोधपुर के राव जोधा ने जब अपने पुत्र विक्रम (बीका) को जांगल-देश विजयकर नवीन राज्य स्थापित करने को भेजा, उस समय मंत्री वत्सराज को भी उसके साथ कर दिया था । नगराज उक्त मंत्री वत्सराज के दूसरे पुत्र वरसिंह का पुत्र था ।

अपने अर्थ के सिद्ध होने का अनुभव कर, बादशाह के पास पहुंचा। मंत्रणा में निपुण नगराज ने हाथी, घोड़े, ऊंट आदि भेंट करके शूरवीरों की रक्षा करनेवाले सुलतान को प्रसन्न किया। (अपनी अनुपस्थिति में) शत्रु की चढ़ाई के डर से (राजकुमार) कल्याण सहित सब राजपरिवार को उस (नगराज) ने सारस्वत (सिरसा) नगर में छोड़ा था। मालदेव के मरुस्थल लेने के लिए आने पर जैतसिंह क्रोध से विकराल मुख होकर युद्ध करने के लिए शत्रुओं के सम्मुख आया। युद्ध आरंभ होने पर मंत्री भीम' योद्धाओं के साथ लड़ता हुआ, शुद्ध ध्यानपूर्वक राजा के सामने स्वर्ग को प्राप्त हुआ। संग्राम में जैतसिंह के मारे जाने पर मालदेव जांगल देश छीनकर जोधपुर लौट गया।'

इसके विपरीत ख्यातों आदि में लिखा है कि अपने सरदारों, कृपा महाराजोत एवं पंचायण करमसियोत को साथ ले मालदेव के बीकानेर पर चढ़ आने पर, राव जैतसी ससैन्य उसके मुकाबिले को आया और गांव सोहवा (सोहवा) में डेरे हुए। सांखला महेशदास और रूपावत भोजराज (भेलू व चाखू का ठाकुर) को उसने गढ़ तथा नगर की रक्षा के लिए बीकानेर में छोड़ दिया। जैतसी ने किसी समय पठानों से कुछ घोड़े खरीदे थे, जिनका दाम कामदारों ने चुकाया नहीं था, जिससे वे सब सोहवे में अपने दाम मांगने आये। जैतसी ने ऐसे समय किसी का भी ऋण रखना उचित न समझा, अतएव अपने सेवकों को यह आदेश देकर कि मैं लौटकर न आऊं तब तक मेरे जाने का समाचार किसी पर खोला न जाय उसने तत्काल पठानों के साथ बीकानेर की ओर प्रस्थान किया। वहां पहुंचने पर उसने कार्यकर्त्ताओं को डांटा और रुपया चुका देने को कहा, परन्तु उस समय पठानों ने रुपया लेने से इनकार कर दिया। इन बातों के कारण जैतसी को सोहवे लौटने में प्रायः एक प्रहर लग गया, परन्तु इसी बीच

(१) भीम (भीमराज) मंत्री वत्सराज के तीसरे पुत्र नरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था।

(२) कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्, श्लोक २०५ से २१८।

उसके चले जाने का समाचार सारी सेना में फैल चुका था और अधिकांश सरदार आदि अपनी-अपनी सेना के साथ वापस जा चुके थे । उधर जैसे ही मालदेव को अपने चरों-द्वारा जैतसी के लौटने का समाचार मिला वैसे ही उसने उसपर आक्रमण कर दिया । जैतसी ने बचे हुए लगभग १५० राजपूतों के साथ उसका सामना किया, परन्तु मालदेव की सेना बहुत अधिक थी, जिससे १७ आदमियों को मारकर वह अपने सब साथियों सहित इसी युद्ध में काम आया । विजयी मालदेव ने नगर में प्रवेश किया, परन्तु इसके पहले ही भोजराज ने जैतसी के परिवार को सिरसा भिजवा दिया था । तीन दिन तक गढ़ के भीतर रहकर चौथे दिन भोजराज अपने साथियों सहित मालदेव की झौंज पर दूट पड़ा और वीरतापूर्वक खड़कर काम आया । मालदेव ने गढ़ तथा नगर पर अधिकार कर लिया और कूपा तथा पंचायण को वहां का इन्तजाम करने के लिए नियुक्त किया^१ ।

ख्यातों आदि में जैतसिंह के मारे जाने का समय वि० सं० १५६८ चैत्र वदि ११ (ई० स० १५४२ ता० १२ मार्च) दिया है^२, जो ठीक नहीं है, क्योंकि उसकी स्मारक छत्री के लेख में वि० सं० १५६८ फाल्गुन

(१) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र १५-१६ । वीरविनोद भाग २, पृ० ४८३ । मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ७५-८२ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १६-७ । ख्यातों के अनुसार जैतसी की मृत्यु के उपरान्त कुंवर कल्याणमल का भोजराज-द्वारा सिरसा भिजवाया जाना कल्पना मात्र ही है । इस सम्बन्ध में जयसोम का कथन कि मंत्री नगराज शेरशाह सूर के पास जाते समय ही कुंवर और राजपरिवार को सिरसा छोड़ गया था, अधिक विश्वासयोग्य है, क्योंकि उस (जयसोम) का ग्रन्थ ख्यातों आदि से बहुत प्राचीन है ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८३ । मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ८० । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १६ । जोधपुर राज्य की ख्यात में जैतसी के मारे जाने का समय वि० सं० १५६८ चैत्र वदि ५ (ई० स० १५४२ ता० ६ मार्च) दिया है (जि० १, पृ० ६६), परन्तु अन्य ख्यातों आदि के समान ही यह भी गुलत है ।

सुदि ११ (ई० स० १५४२ ता० २६ फ़रवरी) को उसकी मृत्यु होना लिखा है ।

जैतसी के १३ पुत्र हुए—

सन्तति

(१) सोढ़ी राणी कश्मीरदे से—

१—कल्याणमल

२—भीवरराज—इसके वंश के भीमराजोत वीका कहलाये ।

३—ठाकुरसी—इसने जैतपुर बसाया ।

४—मालदे ।

५—कान्हा ।

(२) सोनगरी राणी रामकुंवरी से—

१—शृंग—इसके वंश के शृंगराजोत वीका कहलाये ।

(१) अथास्मिन् शुभसंवत्सरे.....१५६८ वर्षे शाके १४६३ प्रवर्त्तमाने मासोत्तममासे फाल्गुनमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ एकादश्यांरावजी लूणकरणजी तत्पुत्रः रावजी श्रीजैतसिंहजी वर्मा तिसृभिः धर्मपत्नीभिः.....परमधाम मुक्तिपदं प्राप्तः ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पन्ना १६। वीराविनोद भाग २, पृ० ४८३। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ८३-४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि वीकानेर स्टेट; पृ० १७।

टॉड ने जैतसी के केवल ३ पुत्र—कल्याणसिंह, सिया तथा यशपाल—होना लिखा है और यह भी लिखा है कि उसने अपने दूसरे पुत्र सिया को नारनोत (नारनोल) विजय कर दिया (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३२), परन्तु सिया का अन्य किसी ख्यात में नाम नहीं मिलता ।

(३) सोढ़ी कश्मीरदे तथा उससे उत्पन्न पांच पुत्रों के नाम जयसोम के 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं कान्यम्' में भी मिलते हैं—

तत्सुरतरं (?) लोके प्रथमः कल्याणमल्लराजोऽभूत् ।

श्रीमालदेवभीमौ ठाकुरसीकान्हनामानौ ॥ १८० ॥

कसमीरदेविजाताः पंचामी पांडवा इवापूर्वाः ।

व्यसनविमुक्ता दुर्यो—

२—सुर्जन—इसने सुर्जनसर वसनाया ।

३—कर्मसेन ।

४—पूरणमल ।

५—अचलदास ।

६—मान ।

७—भोजराज ।

८—तिलोकसी ।

राव जैतसी ने जिस समय शासन की बाग-डोर अपने हाथ में ली उस समय परिस्थिति बड़ी भीषण थी, क्योंकि विद्रोही सरदारों के किसी क्षण भी बीकानेर पर चढ़ आने की शंका विद्यमान थी, परन्तु सतर्क जैतसी इसके लिए पहिले से ही तैयार बैठा था और उसने थोड़े समय में ही गढ़ आदि का ऐसा अच्छा प्रबन्ध कर लिया कि छाप-द्रोणपुर के स्वामी उदयकरण के बीकानेर पर अधिकार करने की लालसा से आने पर उसे निराश होकर लौटना पड़ा ।

राव जैतसी का
व्यक्तित्व

जैतसी वीर और योग्य शासक होने के साथ ही युद्धनीति का भी अच्छा ज्ञाता था । सदैव युद्ध के हर एक पहलू पर गंभीरतापूर्वक विचार कर लेने के अनन्तर ही वह अपनी नीति निर्धारित करता था । प्रसिद्ध मुगल-शासक बाबर की मृत्यु के बाद उसके पुत्र लाहौर के स्वामी कामरां की बीकानेर पर चढ़ाई होने पर जैतसी ने अद्भुत युद्ध-चातुर्य का परिचय दिया था । कामरां की विशाल बाहिनी को केवल वीरता से परास्त नहीं किया जा सकता था । जैतसी भी यह भलीभांति समझता था । इस अवसर पर उसने बड़े धैर्य और चातुर्य से काम लिया । गढ़ खाली छोड़कर उसने पहले यवन-सेना को भीतर चढ़ आने का लालच दिया, जिसमें वह फँस गई । फिर तो उसने उसे बुरी तरह हराकर भगा दिया और इस प्रकार अपने पूर्वजों की उपार्जित कीर्ति को और भी उज्ज्वल बनाया ।

उसके अन्य गुणों में उदारता, दूरदर्शिता और वचन-पालन का उल्लेख करना आवश्यक है। जहां वह इतना कठोर था कि उसने सिंहासना-रुढ़ होते ही अपने पिता के साथ धोका करनेवाले सरदारों को उपयुक्त दंड दिये बिना चैन न लिया, वहां उसकी उदारता भी बहुत बड़ी-चढ़ी थी। अपने भाइयों और अन्य सम्बन्धियों आदि को अवसर पड़ने पर उसने सहायता देने से कभी पैर पीछे न हटाया। जोधपुर के राव मालदेव की बीकानेर पर चढ़ाई करने का विचार सुनते ही जब उसने देखा कि अकेले उसका सामना करना आसान नहीं, तो उसने पहले से ही अपने चतुर मंत्री नगराज को शेरशाह के पास से सहायता लाने के लिए भेज दिया और अपने परिवार को भी सुरक्षित स्थान सिरसा में पहुंचवा दिया। यदि ख्यातों के कथन पर विश्वास किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि वचन-पालन के कारण ही उसकी जान गई। जहां इसे हम दुर्लभ गुण कहेंगे, वहां राजनीति की दृष्टि से इसे अदूरदर्शिता ही कहा जायगा।

राव जैतसी ने अपने पिता के समान ही अपने राज्य के वैभव में अभिवृद्धि की। उसके समय में प्रजा हर प्रकार से सुखी और सम्पन्न थी। दुर्भिक्ष आदि संकट के समयों पर उसके समय में भी राज्य की तरफ से अन्नक्षेत्र आदि खोलकर पीड़ित प्रजाजनों को हर प्रकार की सुविधायें पहुंचाई जाती थीं।



(१) बीहू सूजा; जैतसी रो छन्द; संख्या ६६-१०३।

(२) दीनानाथजनानामुपकारपरायणैकधिषणाभूत्।

तेने च सत्रशलां दुःकाले कालभावज्ञः ॥ १८८ ॥

(जयसोम; कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काम्यम्)।

पाँचवाँ अध्याय

राव कल्याणमल से महाराजा सूरसिंह तक

राव कल्याणमल (कल्याणसिंह)

राव जैतसी के ज्येष्ठ पुत्र राव कल्याणमल का जन्म सोढ़ी राणी
 कश्मीरदे के उदर से वि० सं० १५७५ माघ सुदि ६
 जन्म. (ई० सं० १५१६ ता० ६ जनवरी) को हुआ था^१।

राव जैतसी को मारकर जोधपुर के राव मालदेव ने बीकानेर पर
 अधिकार कर लिया और कुंपा महाराजोत एवं पंचायण करमसियोत को
 वहाँ के प्रबन्ध के लिए छोड़कर वह जोधपुर लौट
 गया। ख्यातों आदि में लिखा है कि बीकानेर के
 आधे राज्य पर मालदेव का अधिकार हो गया था^३।

मंत्री नगराज ने दिल्ली के सुलतान शेरशाह के पास जाते समय ही कुंवर

(१) कल्याणमल की छूत्री के लेख में उसे 'महाराजाधिराज' और 'राई'
 (राव) लिखा है —

.....महासजाधिराज राई श्रीकल्याणमल.....

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १६ । वीरविनोद; भाग २, पृ०
 ४८३ । मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ८५ ।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १६ । मुंशी देवीप्रसाद; राव
 जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ८२ ।

(४) शेरशाह, जिसका असली नाम फरीद था, हिसार का रहनेवाला था ।
 उसका पिता हसन, सूर खानदान का अफगान था, जिसको जौनपुर के हाकिम जमालखान
 ने ससराम और टांडे के जिले १०० सवारों से नौकरी करने के एवज में दिये थे ।
 फरीद कुछ समय तक बिहार के स्वामी मुहम्मद लोहानी की सेवा में रहा और एक
 शेर को मारने पर उसका नाम शेरशाह रक्खा गया । वीर प्रकृति का पुरुष होने के

कल्याणमल एवं अन्य राज-परिवार को सिरसा (सारस्वत) में पहुँचा दिया था, जैसा कि जयसोम के 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' से पाया जाता है^१। कल्याणमल सिरसे में रहकर ही गई हुई भूमि को पुनः हस्तगत करने का उद्योग करने लगा। इस कार्य में शेखसर का गोदारा स्वामी उसका सहायक रहा^२, परन्तु कल्याणमल को, क्षीण शक्ति होने के कारण, इन प्रयत्नों में सफलता न मिली।

राव मालदेव वीर योद्धा होने के साथ ही एक महत्वाकांक्षी पुरुष था। शेरशाह-द्वारा हुमायूँ के परास्त किये जाने का समाचार जब मालदेव शेरशाह की राव मालदेव पर चढ़ाई को ज्ञात हुआ तो उसने भङ्कर में हुमायूँ के पास इस आशय के पत्र भेजे कि मैं तुम्हारी सहायता को तैयार हूँ^३। हुमायूँ भङ्कर की सीमा पर ता० २८ रमजान (वि० सं० १५६७ फाल्गुन वदि द्वितीय १४=ई० सं० १५४१ ता० २६ जनवरी) के आसपास पहुँचा था^४।

कारण उसकी शक्ति दिन-दिन बढ़ती गई। उसने ता० ६ सऊर सन् १४६ (वि० सं० १५६६ आपाद सुदि द्वितीय १०=ई० १५३६ ता० २६ जून) को बादशाह हुमायूँ को चौसा नामक स्थान (विहार) में परास्त किया और दूसरी बार हि० सं० १४७ ता० १० सुहरम (वि० सं० १५६७ ज्येष्ठ सुदि १२=ई० सं० १५४० ता० १७ मई) को कन्नौज में हराकर आगरा, लाहौर आदि की तरफ उसका पीछा किया, जिससे वह सिंध की तरफ भाग गया। इस प्रकार हुमायूँ पर विजय प्राप्तकर शेरशाह उसके राज्य का स्वामी बना और शेरशाह नाम धारणकर हि० सं० १४८ ता० ७ शव्वाल (वि० सं० १५६८ माघ सुदि ६=ई० सं० १५४२ ता० २५ जनवरी) को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा (बील; ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी; पृ० ३८०)।

(१) शात्रवागममाशंक्य सकल्याणस्ततोऽखिलः।

राजलोकोऽमुना मुक्तः श्रीसारस्वतपत्तने ॥ २१५ ॥

(२) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र १६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १७।

(३) तबकात-इ-अकबरी (फ़ारसी); पृ० २०५। इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया; जि० ५, पृ० २११।

(४) बेवरिज; अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृ० ३६२।

इन्हीं दिनों शेरशाह को भी एक बड़ी सेना के साथ बंगाल के सूबेदार के खिलाफ जाना पड़ा था। संभवतः इसी अवसर पर मालदेव ने उक्त मुगल बादशाह से लिखा पढ़ी की होगी, परन्तु हुमायूँ ने उस समय इस विषय पर कोई ध्यान न दिया, क्योंकि उसे ठट्ठा के शासक शाहहुसेन अर्घून से सहायता मिलने की आशा थी। जब शाहहुसेन की ओर से उसे निराशा हो गई, तो उसने उस (शाहहुसेन) पर आक्रमण किया, परन्तु इसमें भी उसे सफलता न मिली। तब उसने मालदेव की सहायता से लाभ उठाने का निश्चय किया और उच्च व पोकरन होता हुआ वह फलौधी पहुँचा। वहाँ से उसने अत्काखाँ को मालदेव के पास भेजा^१। निज़ामुद्दीन लिखता है—‘जब हुमायूँ भागकर मालदेव के राज्य में आया तब उसने शम्सुद्दीन अत्काखाँ को जोधपुर भेजा और स्वयं उसके आने की राह देखता हुआ वह मालदेव के राज्य की सीमा पर ठहर गया। जब मालदेव को हुमायूँ की कमजोरी और शेरशाह से मुकाबला करने योग्य सेना का उसके पास न होना पता हुआ तब उसे भय हुआ, क्योंकि शेरशाह ने अपना एक दूत मालदेव के पास भेजकर बड़ी-बड़ी आशायें दिलाई थीं और उसने भी शेरशाह से प्रतिज्ञा कर ली थी कि यथा-संभव मैं हुमायूँ को पकड़कर आपके पास भेज दूंगा। इधर नागौर पर शेरशाह ने अधिकार कर लिया था; अतः उसे भय था कि हुमायूँ के विरुद्ध होने से वह मारवाड़ पर भी बड़ी फौज न भेज दे। हुमायूँ को इस बात की सूचना न मिल जाय इसलिए उसके दूत अत्काखाँ को उसने वहीं रोक लिया, परन्तु वह मौका पाकर हुमायूँ के पास भाग गया और उसने उसे यह सब खबर दे दी^१।’

(१) तबकात-इ-अकबरी (फ़ारसी); पृ० २०३-२११ । इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० ४, पृ० २०७-२११ ।

(२) जौहर; तजकिरतुल चाक़यात (फ़ारसी); पृ० ७६-७८ । स्टिवर्ट-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ३६-३८ ।

(३) तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० ४, पृ० २११-११२ ।

आगरा लौटने पर जैसे ही शेरशाह को हुमायूँ के मालदेव के पास मारवाड़ में जाने का समाचार मिला, उसने ससैन्य उस (मालदेव) के राज्य में प्रवेश किया और दूत भेजकर कहलाया कि या तो हुमायूँ को अपने राज्य से निकाल दो या लड़ने के लिए तैयार हो जाओ। इस अवसर पर मालदेव ने शेरशाह का सामना करना बुद्धिमत्ता का कार्य न समझा; अतएव उसे लाचार होकर हुमायूँ के विरुद्ध सेना भेजनी पड़ी। हुमायूँ को इसकी सूचना अत्काखाँ आदि से मिल गई और वह वहाँ से भागकर अमरकोट चला गया। इस प्रकार मालदेव के साथ शेरशाह की लड़ाई कुछ समय के लिए रुक गई।

पर शेरशाह के दिल में मालदेव की तरफ से खटका बना ही रहा। उधर मालदेव की महत्वाकांक्षा में भी कभी न आई थी। शेरशाह को यह भी भय था कि कहीं सब राजपूत एकत्र होकर कोई वखेड़ा न करें। अतएव इन दोनों प्रबल शक्तियों में कभी न कभी युद्ध अवश्यंभावी था। ऐसे में राव जैतसी का मंत्री नगराज उसकी सेवा में उपस्थित हुआ और उसने उससे अपने स्वामी की सहायता के लिए चलने की प्रार्थना की^१। फलतः

(१) के. आर. कानूनगो; शेरशाह; पृ० २७५-७६।

(२) जयसोम के 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' से ऐसा ही पाया जाता है—

राजन्यसैन्यमादाय दायोपायविशारदः ।

शकुनानुमितस्वार्थसिद्धिः साहिमुपेयिवान् ॥ २१३ ॥

गजाश्वकरभत्रातमुपदीकृत्य सेवया ।

शूरत्राणं सुरत्राणं प्रीणयामासं मंत्रवित् ॥ २१४ ॥

साग्रहं साहिमभ्यर्थ्य सममेवास्य सेनया ।

वैरिमंडलमुद्वास्य रणे हत्वा च तद्गटान् ॥ २१६ ॥

दयालदास की रूपात में लिखा है—'राव जैतसी के मारे जाने पर आधे वीकानेर पर मालदेव का अधिकार हो गया और कल्याणमल सिरसा में रहने लगा, जिससे आज्ञा ले भीमराज (कल्याणमल का छोटा भाई) दिल्ली में बादशाह हुमायूँ की सेवा में जा रहा। मालदेव ने वीरभदेव को मेढ़ते से निकालकर वहाँ अपनी

एक विशाल सैन्य के साथ हि० सन् ६५० के शज्वाल के मध्य (वि० सं० १६०० माघ=ई० सं० १५४४ जनवरी) में उसने मालदेव के विरुद्ध प्रस्थान किया^१। दिल्ली से चलकर शेरशाह नारनोल और फ़तहपुर होता हुआ मेड़ते पहुंचा^२। सिरसा से कल्याणमल ने भी प्रस्थान किया और वह मार्ग में शेरशाह की सेना के साथ मिल गया^३।

अधिकार कर लिया था जिससे वह (वीरम) भी कल्याणमल के पास सिरसा होता हुआ भीमराज के पास दिल्ली चला गया। उन दिनों शेर-शाह अपने पिता के साथ बादशाह हुमायूँ की सेवा में रहता था। शेरशाह की तनज़्वाह के १५ लाख रुपये बादशाह के पास बाँकी थे, जो भीमराज ने बादशाह से कह सुनकर दिलवा दिये। इन्हीं रुपयों के बल से शेरशाह ने लाहौर जाकर क़ौज एकत्र की और हुमायूँ को भगाकर वह स्वयं दिल्ली के तख़्त पर बैठ गया। भीमराज और वीरमदेव तब शेरशाह की सेवा में रहने लगे। कुछ दिनों बाद बादशाह उनकी सेवा से प्रसन्न हुआ और भीमराज तथा वीरमदेव के साथ एक विशाल सैन्य लेकर उसने मालदेव पर चढ़ाई कर दी। मार्ग में कल्याणमल भी मिल गया। मालदेव को परास्त कर शेरशाह ने बीकानेर कल्याणमल को और मेड़ता वीरमदेव को दे दिया। गया हुआ राज्य वापस दिलाने के बदले में कल्याणमल ने अपने भाई भीमराज को 'गई भूम का बाहड़' का विरुद्ध दिया और भीमसर में उसका ठिकाना बांध दिया (जिल्द २, पत्र १७-२०); परन्तु उपर्युक्त कथन का अधिकांश निराधार ही प्रतीत होता है क्योंकि जैतली के मारे जाने से पूर्व ही शेरशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया था। ऐसी दशा में शेरशाह का हुमायूँ की सेवा में रहना और उसकी तनज़्वाह के १५ लाख रुपये बाकी रह जाना कैसे संभव हो सकता है। यह माना जा सकता है कि भीमसिंह तथा वीरमदेव भी शेरशाह की सेवा में रहे हों। जोधपुर राज्य की ख्यात में स्वयं कल्याणमल का दिल्ली जाना लिखा है (जि० १, पृ० ६६), पर यह कथन भी निराधार है, क्योंकि इसकी अन्य किसी ख्यात से पुष्टि नहीं होती। इस सम्बन्ध में जयसोम का कथन ही विश्वासयोग्य है, क्योंकि यह संभवतः उसके जीवनकाल की ही घटना हो। बाकी की ख्यातें कई सौ वर्ष पीछे की लिखी हुई हैं।

(१) कानूनगो; शेरशाह; पृ० ३२१। अन्बासख़ां शेरवानी कृत-तारीख़-इ-शेरशाही (इलियद; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०४) से पाया जाता है कि शेरशाह के पास इस अवसर पर बहुत बड़ी सेना थी।

(२) कानूनगो; शेरशाह; पृ० ३२१-४।

(३) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र १६। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याण-मलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १६।

उधर बीकानेर में राव मालदेव द्वारा स्थापित किये हुए जोधपुर के थानों पर रावत किशनसिंह चढ़कर उत्पात करने लगा। लूणकरणसर, गारवदेसर आदि कुछ थानों को उजाड़कर वह गांव भीनासर तक जा पहुंचा। उस समय गढ़ में कूपा महाराजोत का अधिकार था। रावत ने उससे गढ़ खाली कर देने को कहलाया; पर वह गढ़ के बाहर न निकला और उसने मालदेव के पास से सहायता मंगवाने के लिए आदमी भेजा। शेरशाह का आगमन सुनते ही मालदेव ने कूपा से कहलाया कि गढ़ छोड़कर तुरन्त चले आओ, जिसपर कूपा अपने साथियों सहित गढ़ खालीकर जोधपुर चला गया। तब रावत ने बीकानेर के गढ़ पर अधिकार करके वहां कल्याणमल की दुहाई फेर दी।

जोधपुर से एक बड़ी सेना के साथ कूचकर मालदेव शेरशाह का सामना करने के लिए अजमेर के निकट पहुंचा, शेरशाह भी अपनी फौज राव मालदेव का भागना और के साथ अजमेर के निकट पड़ा हुआ था। प्रायः शेरशाह का जोधपुर पर अधिकार एक मास तक दोनों फौजों एक दूसरे के सामने पड़ी रहीं, पर लड़ाई न हुई। शेरशाह चाहता था कि शत्रु उसपर हमला करे, परन्तु जब मालदेव ने उसपर आक्रमण न किया तब बादशाह ने यह चाल चली कि मालदेव के सरदारों के नाम से झूठे खत लिखवाकर अपने एक दूत के द्वारा गुप्त रूप से मालदेव के

(१) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पृष्ठ १८-१९। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६०-६२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० १६।

वीरविनोद में कृष्णसिंह (किशनसिंह) को राव लूणकरण का बेटा लिखा है (भाग २, पृ० ४८४)।

उपर्युक्त ख्यातों में रावत किशनदास द्वारा बीकानेर के गढ़ पर अधिकार होने का समय वि० सं० १६०१ 'पौष' सुदि १५ (ई० सं० १५४४ ता० २६ दिसम्बर) दिया है। यह नगर के भीतर का प्राचीन गढ़ (किला) था।

डेरों में डलवाये। उनमें यह लिखा था कि यदि हमें अमुक-अमुक जागीर दी जावे तो हम मालदेव को पकड़कर आपके सुपुर्द कर देंगे और आपको लड़ने की कोई आवश्यकता न रहेगी^१। ऐसे पत्र पाकर मालदेव घबराया और अपने सरदारों पर से उसका विश्वास उठ गया, इसलिए उसने अपने सरदारों को पीछे हटने की आज्ञा दी। सरदारों ने शपथ लेकर विश्वास दिलाया कि ये कृत्रिम पत्र शेरशाह ने लिखवाये हैं, परन्तु मालदेव को उनके कथन पर विश्वास न हुआ और उसने वहां से लौटना ही उचित समझा^२। ज्यों-ज्यों मालदेव पीछा हटता गया त्यों-त्यों बादशाह आगे बढ़ता गया।

(१) ठीक ऐसी ही चाल शाहजादे अकबर के बागी होकर चढ़ आने पर औरंगजेब ने भी उसके साथ चली थी।

(२) अलबदायूनी की 'मुंतखबुत्तवारीज़' का रैकिंग-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० १, पृ० ४७८ ।

भिन्न-भिन्न ख्यातों में भिन्न-भिन्न प्रकार से इस घटना का उल्लेख किया गया है। मुंहणोत नैणसी लिखता है—'वीरम जाकर सूर बादशाह को मालदेव पर चढ़ा लाया। राव भी अस्सी हज़ार सवार लेकर मुक्ताविले को गया। वहां वीरम ने एक तरकीब की—कूपा के डेरे पर बीस हज़ार रुपये भिजवाये और कहलाया कि हमें कम्बल मंगवा देना और बीस ही हज़ार जेता के पास भेजकर कहा, सिरौही की तलवारें भेज देना; फिर राव मालदेव को सूचना दी कि जेता और कूपा बादशाह से मिल गये हैं, वे तुमको पकड़कर हज़ूर में भेज देंगे। इसका प्रमाण यह है कि उनके डेरे पर रुपयों की थैली भरी देखना तो जान लेना कि उन्होंने मतलब बनाया है। राव मालदेव के मन में वीरम के वाक्यों से शंका उत्पन्न हो गई। उसने खबर कराई कि बात सच है या नहीं। जब अपने उमरावों के डेरों पर थैलियां पाईं तो मन में भय उत्पन्न हो गया (जि० २, पृ० १५७-५८)।'

दयालदास का वर्णन भी मुंहणोत नैणसी जैसा ही है। उसमें अन्तर केवल इतना ही है कि वीरम ने रुपये भिजवाकर कूपा से सिरौही की तलवारें और जेता से कम्बल मंगवाये थे (जि० २, पत्र १६)।

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन है—'बादशाह ने मालदेव से कहलाया कि एक आदमी आप भेजें, एक मैं, इस प्रकार द्वंद्व युद्ध करें। मालदेव ने बीदा भारमलोत का नाम लिखवाकर भेज दिया। वीरमदेव ने बादशाह से कहा कि उससे

जब बादशाह समेल में पहुँचा, उस समय मालदेव गिरी में ठहरा हुआ था। राव ने वहाँ से भी पीछा हटना चाहा, परन्तु कृपा, जैता आदि राठोड़ सरदारों ने कहा कि हम तो यहाँ से पीछे न हटेंगे और यहीं मर मिटेंगे। तब मालदेव अपने कितने एक सरदारों के साथ रात के समय उनको छोड़कर बिना लड़े जोधपुर की तरफ लौट गया। जैता, कृपा आदि ने रात्रि के समय शत्रु पर आक्रमण करने का विचार किया, परन्तु मार्ग भूल जाने के कारण उनका प्रातःकाल समेल नदी के पास मुसलमानों से युद्ध हुआ, जिसमें सबके सब काम आये और विजय शेरशाह की हुई। यह घटना वि० सं० १६०० के चैत्र मास (ई० सं० १५४४ मार्च) के आरम्भ में हुई। फिर शेरशाह ने जोधपुर की ओर प्रस्थान किया। उसका आना सुनते ही मालदेव धूवरोट के पहाड़ों में भाग गया और जोधपुर पर शेरशाह का अधिकार हो गया, जहाँ वह कई मास तक रहा।

बीकानेर राज्य के विषय में प्रमोद माणिक्य गणि के शिष्य जयसोमरचित 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में लिखा है कि मंत्री नगराजने शेरशाह

युद्ध करने योग्य आपके पास कोई योद्धा नहीं है, मैं ही जाऊँ, पर वीरमदेव को उसने जाने न दिया। तब उस (वीरमदेव) ने क्रोध कर ढालों के भीतर रुक्ते रखकर राठोड़ों में भिजवाये और इस प्रकार जैता, कृपा आदि राजपूतों की तरफ से राव के मन में अविश्वास उत्पन्न कराया (जि० १, पृ० ७०-७१)।

ख्यातों में दिये हुए उपर्युक्त सभी वर्णन कल्पित हैं। इस सम्बन्ध में वदायूनी का कथन ही विश्वासयोग्य कहा जा सकता है, क्योंकि वह अकबर के समय में विद्यमान था। अपने बाहुबल एवं चातुरी से भारत के सिंहासन पर अधिकार करनेवाला शेरशाह अपने आश्रित की राय पर चले, यह कल्पना से दूर की बात प्रतीत होती है।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७०-७१।

(२) कानूनगो; शेरशाह; पृ० ३२६।

(३) मुंहपोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १५८-६। दयालदास की ख्यात; जि० २, पृ० १६। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७२। पाउलोटे; मैनेटियर ऑव् दी बीकानेर स्टेट; पृ० २१।

शेरशाह का कल्याणमल को
बीकानेर का राज्य देना

के हाथ से ही कल्याणमल को टीका दिलवाकर
विक्रमपुर (बीकानेर) भेजा और आप बादशाह के
साथ गया। फिर किसी समय बादशाह की आज्ञा

पाकर नगराज अपने देश की ओर चला, परन्तु मार्ग में, अजमेर में उसका
देहांत हो गया।

भटनेर के चायल स्वामी अहमद और राव कल्याणमल के भाई
ठाकुरसी में अनबन रहा करती थी, जिससे वह (ठाकुरसी) भटनेर लेने
के उपाय में था। ठाकुरसी का विवाह जैसलमेर में
कल्याणमल के भाई
ठाकुरसी का भटनेर लेना हुआ था। पीछे से उसने अपने लिए राव की आज्ञा
से जैतपुर का इलाका फायम किया। भटनेर का

एक तेली जेतपुर में व्याहा था, वह जब अपनी ससुराल आया तो ठाकुरसी
ने उसे अपने पास बुलवाकर भटनेर का हाल पूछा और उसकी खूब
खातिरदारी की। इस प्रकार उस तेली को प्रसन्नकर ठाकुरसी ने उसे अपना
सहायक बना लिया। तेली ने भी वचन दिया कि जब कभी आप भटनेर
पधरेंगे तब मैं आपको ऐसी रीति से भीतर बुला लूंगा कि किसी को पता
न चलेगा। जब तेली वहां से जाने लगा तो ठाकुरसी ने उसे वस्त्र,
आभूषण, धन आदि बहुतसा सामान विदायगी में दिया और अपना एक
मनुष्य उसके साथ कर दिया, जो जाकर भटनेर का एक-एक मार्ग देख

(१) साम्राज्यतिलकं साहिकरेणाकारयत्तरां ।

कल्याणमल्लराजस्य स्वामिधर्मधुरंधरः ॥ २२१ ॥

राजानं प्रेषयामास विक्रमाख्यपुरं प्रति ।

स्वयं त्वनुययौ साहेर्न संतः स्वार्थलंपटाः ॥ २२२ ॥

आज्ञामासाद्य साहेयीमन्यदा मंत्रिनायकः ।

संतोषपोषभृज्जातः स्वदेशमभिगामुकः ॥ २२४ ॥

तूर्णं पथि समागच्छन्मंत्री पूर्णमनोरथः ॥

अजमेरपुरे स्वर्गमगात्पंडितमृत्युना ॥ २२५ ॥

आया। फिर धीरे-धीरे ठाकुरसी ने भटनेर पर आक्रमण करने की तैयारी आरंभ की और मूंज के मजबूत रस्सों की एक सीढ़ी बनवाई।

जब कुछ दिनों बाद भटनेर का चायल स्वामी (अहमद) अपने पुत्र का विवाह करने के लिए गया तो तेली ने ठाकुरसी के पास इसकी सूचना भेजी और कहलाया कि गढ़ लेने का यही उपयुक्त अवसर है। यहां सिर्फ फ़ौरोज़ है। यह समाचार सुनकर ठाकुरसी ने अपने सारे साथियों सहित भटनेर की ओर प्रस्थान किया और उसी तेली के घर की तरफ़ जाकर इशारा किया, जिसपर उस (तेली) ने रस्सा ऊपर खींच लिया और तीरकस (तीर मारने के छिद्र) में कसकर बांध दिया। इस रस्से के सहारे ठाकुरसी अपने एक हजार राजपूतों के साथ गढ़ के भीतर घुस गया। फ़ीरोज़ ने खबर पाते ही अपने ५०० आदमियों के साथ उसका सामना किया, पर वह मारा गया। इस प्रकार वि० सं० १६०६ (ई० सं० १५४६) में भटनेर का क़िला जीतकर ठाकुरसी ने वहां अपने बड़े भाई कल्याणमल की दुहाई फेर दी और उसकी तरफ़ से २० वर्ष तक वह वहां का हाकिम रहा^१।

अनन्तर ठाकुरसी ने सिरसा, फ़तिहाबाद, सिवाणी, अहरवा, रतिया, विठंडा (भटिंडा), लखी जंगल आदि को भी अपने इलाक़े में शामिल किया और फ़ौज भेज-भेजकर बटुवा (भट्ट) के ठाकुरसी की अन्य विजय आसपास भगड़ा करता रहा, जिससे उसे नज़राने में काफ़ी सामान मिला^२।

हि० सं० ६५२ ता० १२ रबीउलअव्वल (वि० सं० १६०२ ज्येष्ठ

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पत्र १६३-६४। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २१-२२। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६६-१०४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २२-२३।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २२। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २३।

सुदि १३=ई० स० १५४५ ता० २४ मई) को शेरशाह का कालिंजर की चढ़ाई में देहांत हो गया^१। इसकी खबर मिलते ही मालदेव ने जोधपुर पर पुनः अधिकार कर लिया^२। वीरमदेव^३ के पीछे जब जयमल मेड़ते का स्वामी हुआ, तब मालदेव ने उससे छेड़-छाड़ करना आरम्भ किया और कहलाया कि मेरे रहते हुए तू सब भूमि दूसरों को न दे, कुछ खालसे के लिए भी रख। जयमल ने अर्जुन रायमलोत को ईडवे की जागीर दी थी, अतएव उस(जयमल)ने यह सब हाल उससे भी कहला दिया। राव मालदेव के तो दिल से लगी थी अतएव दशहरे के बाद ही उसने ससैन्य मेड़ते पर चढ़ाई कर दी और गांव गांगरडे में डेरे हुए। उसकी सेना चारों ओर घूम-घूम कर निरीह प्रजा को लूटने और मारने लगी^४। तब जयमल ने बीकानेर आदमी भेजकर राव कल्याणमल से मदद करने के लिए कहलाया, जिसपर उसने निम्नलिखित सरदारों को उस(जयमल)की सहायता के लिए मेड़ते भेजा^५—

(१) बील; ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी; पृ० ३८०-८१।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७४। दयालदास की ख्यात में मालदेव का १५ वर्ष कष्ट में रहना तथा जब शेरशाह से अकबर ने दिल्ली छुड़ाई तब उस(मालदेव)का जोधपुर पर अधिकार करना लिखा है (जि० २, पत्र २०), परन्तु यह कथन निराधार है, क्योंकि अकबर ने गया हुआ राज्य शेरशाह से नहीं, किन्तु सिकन्दरशाह सूर से पीछा लिया था।

(३) मालदेव को परास्तकर जब शेरशाह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया तो मेड़ते का अधिकार उसने पुनः वीरम को सौंप दिया था।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २; पृ० १६१-२।

(५) मुंहणोत नैणसी तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में बीकानेर से मेड़ते-वालों की सहायता के लिए सरदारों का जाना नहीं लिखा है। अधिक संभव तो यही है कि बीकानेर से जयमल को सहायता प्राप्त हुई हो, क्योंकि बिना किसी प्रकार की सहायता के मालदेव की शक्ति का अकेले सामना करना जयमल के लिए संभव नहीं था।

१—महाजन का स्वामी ठाकुर अर्जुनसिंह ।

२—शृंगसर का स्वामी शृंग (श्रीरंग) ।

३—चाचाबाद का स्वामी वणीर ।

४—जैतपुर का स्वामी किशनसिंह ।

५—पूगल के भाटी हरा का पुत्र वैरसी ।

६—बछावत महता सांगा ।

बीकानेर से इन सरदारों के आ जाने से जयमल की शक्ति बहुत बढ़ गई और उसने इस सम्मिलित सेना के साथ मालदेव का सामना करने के लिए प्रस्थान किया^१ । जैतमाल, जयमल का प्रधान था। अखैराज भादावत और चांदराव जोधावत जयमल के प्रतिष्ठित सरदार थे । जयमल के कहने से वे राव मालदेव के प्रधान पृथ्वीराज से मिले और उसके साथ मालदेव के पास जाकर उन्होंने कहा कि मेड़ता आप जयमल के पास रहने दें तो हम आपकी चाकरी करें । पर मालदेव ने इसे स्वीकार न किया, तब वे वापस लौट गये और उन्होंने जयमल से सारी बात कही^२ । अनन्तर दोनों दलों में युद्ध हुआ^३ । मेड़ते की सम्मिलित सेना के प्रबल आक्रमण को मालदेव की सेना सह न सकी और पीछे हटने लगी । अखैराज और सुरताण पृथ्वीराज तक पहुंच गये और कुछ ही देर में वह (पृथ्वीराज) अखैराज के हाथ से मारा गया । फिर तो मालदेव की सेना के पैर उखड़ गये । जयमल के सरदारों ने कहा कि मालदेव को दबाने का यह उपयुक्त अवसर है, पर जयमल ने ऐसा करना उचित न समझा । फिर भी बीकानेर के सरदारों ने मालदेव का पीछा किया । इस अवसर पर नगा भारमलोत शृंग के हाथ से मारा

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २० ।

(२) सुंदरगोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६२-६३ । दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २०-२१ ।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १६१० (वैशाख १६११) वैशाख सुदि २ (ई० स० १५५४ ता० ४ अप्रैल) दिया है (जि० १, पृ० ७४) ।

गया और मालदेव अपनी सेना के साथ भाग गया। लगभग एक कोस पर बीकानेर के सरदारों ने उसको पुनः जा घेरा। मालदेव के सरदार चांदा ने रुककर कुछ साथियों सहित उनका सामना किया, परन्तु वह वणीर के हाथ से मारा गया^१। इतनी देर में मालदेव अन्य साथियों सहित बहुत दूर निकल गया था, अतः बीकानेर के सरदार लौट आये और मालदेव के भाग जाने पर उन्होंने जयमल को बधाई दी। जयमल ने कहा—“मालदेव के भागने की क्या बधाई देते हो? मेड़ता रहने की बधाई दी। पहले भी मेड़ता आपकी मदद से रहा था और इस बार भी आपकी सहायता से बचा।” इस लड़ाई में मालदेव का नगरा बीकानेरवालों के हाथ लग गया था, जिसको जयमल ने एक भांभी (ढोली) के हाथ वापस भिजवाया। गांव लांबिया में पहुंचते-पहुंचते उस (भांभी) के मन में नगारे को बजाने की उत्कट इच्छा हुई, जिससे उसने उसे बजा ही दिया। मालदेव ने जब नगारे की आवाज़ सुनी तो समझा कि मेड़ते की फ़ौज आ रही है और उसने शीघ्रता से जोधपुर का रास्ता लिया। भांभी ने वहां जाकर जब नगरा लौटाया तब उसपर सारा भेद खुला^२। कुछ दिनों बाद जब बीकानेर के सरदार मेड़ते से लौटने लगे तो जयमल ने उनसे कहा—“राव से मेरा मुजरा कहना। मैं उन्हीं की रक्षा के भरोसे मेड़ते में बैठा हूँ^३।”

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार चांदा मारा नहीं गया, वरन् उसने ही मालदेव तथा अन्य घायल सरदारों को सुरक्षित रूप से जोधपुर पहुंचाया था (जि० २, पृ० १६५-६६)।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी मेड़तेवालों के हाथ मालदेव का नगरा लगने और उसके भांभी (बलाई) द्वारा लौटाये जाने का उल्लेख है। बलाई जब गांव लांबिया के पास पहुंचा तो उसने सोचा कि नगरा तो बजा लेवें, यह तो मालदेव का है सो कल मेरे हाथ से जाता रहेगा। ऐसा सोचकर उसने नगरा बजा दिया, जिसकी आवाज़ सुनकर मालदेव ने चांदा से कहा कि भाई मुझे जोधपुर पहुंचा दे। तब चांदा ने उसे सकुशल जोधपुर पहुंचा दिया (ख्यात; जि० २, पृ० १६५)।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २०-२१। मुन्शी देवीप्रसाद; राव

शेरशाह सूर का गुलाम हाजीखां एक प्रबल सेनापति था। अकबर के गद्दी बैठने के समय उसका मेवात (अलवर) पर अधिकार था। वहां से उसे निकालने के लिए बादशाह अकबर ने पीर हाजीखां की सहायतार्थ सेना भेजना मुहम्मद सरवानी (नासिरुलमुल्क) को उसपर भेजा, जिसके पहुँचने से पहले ही वह (हाजीखां) भागकर अजमेर चला गया। राव मालदेव ने उसे लूटने के लिए पृथ्वीराज (जैतावत) को भेजा। हाजीखां की अकेले उसका सामना करने की सामर्थ्य न थी, अतएव उसने महाराणा उदयसिंह के पास अपने दूत भेजकर कहलाया कि मालदेव हमसे लड़ना चाहता है, आप हमारी सहायता करें। ऐसे ही उसने राव कल्याणमल से सहायता मांगी। इसपर महाराणा ५००० फौज लेकर अजमेर आया और इतनी ही सेना बीकानेर से राव कल्याणमल ने निम्नलिखित सरदारों के साथ उस (हाजीखां) की सहायतार्थ भेजी—

१—महाजन का स्वामी ठाकुर अर्जुनसिंह।

२—जैतपुर का स्वामी रावत किशनदास और

३—ऐवारे का स्वामी नारायण।

इस बड़े सम्मिलित कटक को देखकर जोधपुर के सरदारों ने पृथ्वीराज से कहा कि राव मालदेव के अच्छे-अच्छे सरदार पहले की लड़ाइयों में मारे जा चुके हैं; यदि हम भी मारे गये तो राव का बल बहुत

कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६६-६६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० २१ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में भी मालदेव का जयमल-द्वारा परास्त होकर भागना लिखा है।

जयमलजी जपियो जपमालो । भागो राव मंडोवर वालो ॥

(जि० १, पृ० ७५) ।

(१) अकबरनामा—इलियद; हिस्ती ऑफ़ इंडिया; जि० ६, पृ० २१-२२ ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पृ० २३ । मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १८ ।

घट जायगा। इतनी बड़ी सेना का सामना करना कठिन है इसलिए लौट जाना ही अच्छा है। इसपर मालदेव की सेना बिना लड़े ही लौट गई और महाराणा तथा कल्याणमल के सरदार आदि भी अपने-अपने स्थानों को लौट गये।

वैरामखां मुगल दरबार का एक प्रसिद्ध दरबारी था। वह हुमायूँ के साथ फ़ारस से भारतवर्ष में आया था और जब उस (हुमायूँ) का पुत्र अकबर सिंहासन पर बैठा तो उसने उसे खानखाना कैरामखां का बीकानेर में आकर रहना का खिताब देकर प्रधान-मन्त्री के पद पर नियुक्त किया, परन्तु उसके दबाव से बादशाह उससे अप्रसन्न रहने लगा। इसलिए अपने राज्य के पाँचवें वर्ष^१, वि० सं० १६१७ (ई० सं० १५६०) के प्रारम्भ में ही उसने वैरामखां को मन्त्री-पद से हटाकर राज्य का सारा कार्य अपने हाथ में ले लिया। तब उस (वैरामखां) ने मक्का जाने की आशा मांगी और बादशाह ने उसके निर्वाह के लिए ५०००० रुपये वार्षिक नियत कर दिये, परन्तु जब उसका इरादा पंजाब में जाकर बग़ावत करने का मालूम हुआ, तब बादशाह ने उसपर चढ़ाई कर

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २३। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६८-६।

मेरे 'राजपूताने के इतिहास' (जि० २, पृ० ७२०) में मुंहथोत नैयसी और बांकीदास के आधार पर कल्याणमल का हाजीख़ां की दूसरी लड़ाई में राणा उदयसिंह के पक्ष में लड़ना लिखा गया है, परन्तु बाद के शोध से यह निश्चित रूप से पता लग गया है कि मालदेव के हाजीख़ां पर चढ़ाई करने के समय कल्याणमल ने हाजीख़ां की सहायतार्थ सेना भेजी थी। उस समय उदयसिंह भी उस (हाजीख़ां) की सहायता को गया था। कल्याणमल का मालदेव से वैर था और शेरशाह ने उसको राज्य दिलवाया था, जिससे वह (कल्याणमल) उसका अनुगृहीत था। ऐसी दशा में उसका शेरशाह के गुलाम की सहायतार्थ पहली लड़ाई में ही सेना भेजना अधिक संभव है।

(२) वि० सं० १६१६ फाल्गुन सुदि १४ से वि० सं० १६१७ चैत्र वदि १० (ई० सं० १५६० ता० ११ मार्च से ई० सं० १५६१ ता० १० मार्च) तक।

दी। उस समय खानखाना ने मालदेव के राज्य से होकर गुजरात जाना चाहा, परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि मालदेव ने उधर का रास्ता रोक लिया है तब वह गुजरात का रास्ता छोड़कर वीकानेर चला गया और कुछ समय तक राव कल्याणमल और उसके कुंवर रायसिंह के आश्रय में रहा, जिन्होंने उसको बड़े सत्कार-पूर्वक रक्खा^१।

एक बार जब बादशाह (अकबर) का खजाना काश्मीर और लाहौर से दिल्ली को जा रहा था, तो भटनेर परगने के गांव मच्छली में लूट लिया बादशाह की सेना की भटनेर गया। इसकी सूचना जब बादशाह के पास पहुंची पर चढ़ाई और ठाकुरसी का तो उसने हिसार के सूबेदार निज़ामुल्मुल्क को मारा जाना फ़ौज लेकर भटनेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा भेजी। निज़ामुल्मुल्क ने आज्ञानुसार भटनेर को घेर लिया, परन्तु जब बहुत दिन बीत जाने पर भी वह वहां अधिकार करने में समर्थ न हुआ, तब उसने हिसार की तरफ़ से और फ़ौज एकत्र कर गढ़ पर प्रबल रूप से आक्रमण किया तथा रसद का भीतर पहुंचना रोक दिया। तब ठाकुरसी अपने कुटुम्ब को दूसरे स्थान में भेज अपने १००० राजपूतों के साथ गढ़ से बाहर निकलकर मुसलमानों पर दूट पड़ा और धीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। निज़ामुल्मुल्क का क़िले पर अधिकार हो गया और वहां बादशाह का थाना स्थापित हो गया^२।

ठाकुरसी का पुत्र बाघा कुछ दिनों वीकानेर में राव कल्याणमल

(१) तबकात-इ-अकबरी—इलियद; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ५, पृ० २६५। मन्शासिर-उल्-उमरा—वेवरिज-कृत अनुवाद; पृ० ३७३। आईने अकबरी—ब्लाकमैन-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३१६। अकबरनामा—वेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १५६। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०६ और अकबर-नामा, पृ० १२-३।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २२। मुन्शी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि वीकानेर स्टेट; पृ० २३।

के पास रहकर दिल्ली में बादशाह की सेवा में चला गया। एक बार एक कारीगर ने ईरान से एक धनुष लाकर बादशाह को नज़र किया। बादशाह ने अपने सरदारों को उसे चढ़ाने का हुक्म दिया, पर किसी से चढ़ा नहीं, तब बाघा ने उसे चढ़ा दिया। ऐसे ही एक अवसर पर उसने वीरता के साथ एक शेर को मार डाला, जिसपर बादशाह उससे बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि बाघा जो तुम्हारी इच्छा हो मांगो। तब बाघा ने उत्तर दिया कि मुझे भटनेर इनायत किया जाय। बादशाह ने उसी समय भटनेर का अधिकार उसे सौंप दिया, जहां लौटने पर उसने गोरखनाथ का एक मंदिर बनवाया^१।

अपने राज्य के पन्द्रहवें वर्ष^२ वि० सं० १६२७ (ई० स० १५७०) में ता० ८ रविउस्सानी हि० स० ६७८ (वि० सं० १६२७ द्वितीय भाद्रपद सुदि १०=ई० स० १५७० ता० ६ सितम्बर) को अकबर ने ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत के लिए अजमेर की ओर प्रस्थान किया। बारह दिन फ़तहपुर में रहकर वह अजमेर पहुंचा। शुक्रवार ता० ४ जमादिउस्सानी (वि० सं० १६२७ कार्तिक सुदि ६=ई० स० १५७० ता० ३ नवंबर) को अजमेर से चलकर वह ता० १६ जमादिउस्सानी (मार्गशीर्ष वदि ३=ता० १६ नवंबर) को नागोर पहुंचा, जहां एक तालाब अपने सैनिकों से खुदवाकर उसने उसका नाम 'शुकरतालाब' रखवा। इन दिनों बादशाह का प्रभाव बहुत बढ़ रहा था, इसलिए कई राजा उससे मैत्री करने अथवा उसकी सेवा स्वीकार करने के लिए उत्सुक थे। जब बादशाह नागोर में ठहरा हुआ था उस

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २२-२३; मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०५-१०६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि. बीकानेर स्टेट; पृ० १०।

(२) वि० सं० १६२७ चैत्र सुदि ५ (ई० स० १५७० ता० ११ मार्च) से वि० सं० १६२७ फाल्गुन सुदि १४ ई० स० १५७१ ता० १० मार्च) तक।

समय अन्य राजाओं के अतिरिक्त वीकानेर का राव कल्याणमल भी अपने कुंवर रायसिंह के साथ उसकी सेवा में उपस्थित हुआ । नागोर में ६० दिन रहने के बाद जब बादशाह ने पट्टन (? पंजाब) की ओर प्रस्थान किया, तब कल्याणमल तो वीकानेर लौट गया, पर उसका कुंवर रायसिंह बादशाह के साथ रहा^१ ।

ख्यातों के अनुसार वीकानेर में ही वि० सं० १६२८ वैशाख वदि ५

(ई० सं० १५७१ ता० १४ अप्रैल) को कल्याणमल

कल्याणमल की मृत्यु

का स्वर्गवास हो गया^२, परंतु उस (कल्याणमल)-

की स्मारक छत्री के लेख से वि० सं० १६३० माघ सुदि २ (ई० सं० १५७४ ता० २४ जनवरी) को उसका देहांत होना पाया जाता है^३ ।

कल्याणमल के १० पुत्र हुए^४—

१—रायसिंह, २—रामसिंह, ३—पृथ्वीराज,

कल्याणमल की संतति

४—अमरसिंह, ५—भाण, ६—सुरताण, ७—सारंग-

देव, ८—भाखरसी, ९—गोपालसिंह और १०—राघवदास ।

(१) अयुलफज़ल; अकबरनामा—वेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ५१६-६१ ।

मुंतख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १३७ ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २२ । मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०७ (तिथि वैशाख वदि २ दी है) पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि वीकानेर स्टेट; पृ० २३ ।

(३)संवत् १६३० वर्षे माघ मासे शुक्ले पक्षे वीज दिने.....वीकानेर मध्ये पर्मपवित्र महाराजाधिराज राइ श्री कल्याणमल सत्य रुह.....वैकुंठ लक प्रप्त शुभं भवतु कल्याणमस्तु

मुहण्णोत नैणसी की ख्यात में कल्याणमल के पुत्र रायसिंह का वि० सं० १६३० (ई० सं० १५७३) में गद्दी बैठना लिखा है (जिल्द २, पृ० १६६), जिससे स्पष्ट है कि कल्याणमल का देहांत उसी संवत् में हुआ होगा ।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २२-२३ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८५ । मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०८ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि वीकानेर स्टेट; पृ० २४ ।

राव कल्याणमल के छोटे पुत्रों में पृथ्वीराज का चरित्र बड़ा आदर्श और महत्वपूर्ण है, अतएव उसका संक्षिप्त परिचय यहां देना आवश्यक है।

उसका जन्म वि० सं० १६०६ मार्गशीर्ष वदि १ (ई०
पृथ्वीराज सं० १५४६ ता० ६ नवंबर) को हुआ था। वह बड़ा वीर,

विष्णु का परम भक्त और उंचे दर्जे का कवि था। उसका साहित्यिक ज्ञान बड़ा गंभीर और सर्वांगीय था। संस्कृत और डिंगल साहित्य का उसको अच्छा ज्ञान था।

कर्नल टॉड ने उसके विषय में लिखा है—‘पृथ्वीराज अपने समय का सर्वोच्च वीर व्यक्ति था और पश्चिमीय “टूबेडार” राजकुमारों की भांति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा किसी भी कार्य का पक्ष उन्नत कर सकता था तथा स्वयं तलवार लेकर लड़ भी सकता था।’

बादशाह अकबर के दरबारियों में उसको बड़ा सम्मान था और प्रायः वह उसके दरबार में बना रहता था। मुंहणोत नैणसी की ख्यात से पाया जाता है कि बादशाह ने उसे गागरोन (कोटा राज्य) का किला दिया था, जो बहुत समय तक उसकी जागीर में था^१। अकबर के समय के लिखे हुए इतिहास ‘अकबरनामे’ में उसका नाम केवल दो-तीन स्थानों पर आया है। वि० सं०

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में ६ पुत्रों के नाम मिलते हैं, जिनमें हुंगरीसिंह का नाम उपरोक्त ख्यातों से भिन्न है (जि० २, पृ० १६६)।

जयसोम रचित ‘कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्’ में कल्याणमल की दो स्त्रियों से उसके ८ पुत्र होना लिखा है—

राज्ञीरत्नावतीकुक्षिरत्नं कल्याणनंदनाः ।

रायसिंहो रामसिंहः सुरत्राणश्च पार्थराट् ॥ २५८ ॥

अन्यपत्नीसुता अन्ये भाणगोपालनामकौ ।

अमरो राघवः सर्वे विख्याताः सर्वदाभवन् ॥ २५९ ॥

(१) राजस्थान; जि० १, पृ० ३६६ ।

(२) भाग १, पृ० १८८ ।

१६३८ (ई० स० १५८१) की मिर्जा हकीम के साथ की काबुल की^१ और वि० सं० १६५३ (ई० स० १५९६) की अहमदनगर की लड़ाइयों में यह वीर राठोड़ भी शाही सेना के साथ था^२ ।

उसमें देश-प्रेम कूट-कूटकर भरा हुआ था । स्वयं शाही सेवा में रहने पर भी स्वदेश-प्रेमी प्रसिद्ध महाराणा प्रताप पर उसकी असीम श्रद्धा थी । राजपूताने में यह जनश्रुति है कि एक दिन बादशाह ने पृथ्वीराज से कहा कि राणा प्रताप अब हमें बादशाह कहने लग गया है और हमारी अधीनता स्वीकार करने पर उतारू हो गया है; इस पर उसे विश्वास न हुआ और बादशाह की अनुमति लेकर उसने उसी समय निम्नलिखित दो दोहे बनाकर महाराणा के पास भेजे—

पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूँतां वयण ।

मिहर पछम दिस मांह, ऊगे कासप राव उत ॥ १ ॥

पटकूं मूंछां पाण, के पटकूं निज तन करद ।

दीजे लिख दीवाण, इण दो महली वात इकै ॥ २ ॥

इन दोहों का उत्तर महाराणा ने इस प्रकार दिया—

तुरक कहासी मुख पतौ, इण तन सँ इकलिंग ।

ऊगै जांही ऊगसी, प्राची बीच पतंग ॥ १ ॥

खुसी हूंत पीथल कमध, पटको मूंछां पाण ।

पछटण है जेतै पतौ, कलमाँ सिर केवाण ॥ २ ॥

(१) वेवरिज; अकबरनामा (अंग्रेजी अनुवाद); जि० ३, पृ० ५१८ ।

(२) ठाकुर रामसिंह तथा पं० सूर्यकरण पारीक; 'बेलि किसन रुक्मणी री' की भूमिका; पृ० १८ ।

(३) आशय—महाराणा प्रतापसिंह यदि अकबर को अपने मुख से बादशाह कहे तो कश्यप का पुत्र (सूर्य) पश्चिम में उग जावे अर्थात् जैसे सूर्य का पश्चिम में उदय होना सर्वथा असम्भव है वैसे ही आप (महाराणा) के मुख से बादशाह शब्द का निकलना भी असम्भव है ॥ १ ॥ हे दीवाण (महाराणा) ! मैं अपनी मूंछों पर ताव दूं अथवा अपनी तलवार का अपने ही शरीर पर प्रहार करूं, इन दो में से एक बात लिख दीजिये ॥ २ ॥

सांग मूंड सहसी सको, समजस जहर सवाद ।

भड़ पीथल जीतो भलां बैण तुरक स्रं वार्द ॥ ३ ॥

यह उत्तर पाकर पृथ्वीराज बहुत प्रसन्न हुआ और महाराणा प्रताप का उत्साह बढ़ाने के लिए उसने नीचे लिखा हुआ गीत लिख भेजा—

नर जेथ निमाणा निलजी नारी,

अकबर गाहक बट अबट ॥

चोहटै तिण जायर चीतोड़ो,

बेचे किम रजपूत बट ॥ १ ॥

रोजायतां तणै नवरोजै,

जेथ मसाणा जणो जण ॥

हींदू नाथ दिलीचे हाटे,

पतो न खरचै खत्रीपण ॥ २ ॥

परपंच लाज दीठ नह व्यापण,

खोटो लाभ अलाभ खरो ॥

रज बेचवा न आवै राणो,

हाटे मीर हमीर हरो ॥ ३ ॥

पेखे आपतणा पुरसोतम,

रह अणियाल तणै बळ राण ॥

खत्र बेचिया अनेक खत्रियां,

खत्रबट थिर राखी खुम्माण ॥ ४ ॥

(१) आशय—(भगवान) 'एकलिंगजी' इस शरीर से (प्रतापसिंह के मुख से) तो बादशाह को तुर्क ही कहलावेंगे और सूर्य का उदय जहां होता है वहां ही पूर्व दिशा में होता रहेगा ॥ १ ॥ हे वीर राठोड़ पृथ्वीराज ! जबतक प्रतापसिंह की तलवार यवनों के सिर पर है तबतक आप अपनी मूंछों पर खुशी से ताव देते रहिये ॥ २ ॥ (राणा प्रतापसिंह) सिर पर सांग का प्रहार सहेगा, क्योंकि अपने बराबरवाले का यश ज़हर के समान कटु होता है । हे वीर पृथ्वीराज ! तुर्क (बादशाह) के साथ के वचन-रूपी विवाद में आप भलीभांति विजयी हों ॥ ३ ॥

जासी हाट बात रहसी जग,
अकबर ठग जासी एकार ॥
है राख्यो खत्री ध्रम राणै,
सारा ले वरतो संसार ॥ ५ ॥

पृथ्वीराज की विष्णु-भक्ति की कई कथाएं प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि 'बेलि किसन रुकमणी री' को समाप्तकर जब वह उसे द्वारिका में श्रीकृष्ण के ही चरणों में अर्पित करने जा रहा था, तो मार्ग में द्वारिकानाथ ने स्वयं वैश्य के रूप में मिलकर उक्त पुस्तक को सुना था। श्रीलक्ष्मीनाथ का इष्ट होने से वह उसकी मानसिक पूजा किया करता था।

अकबर के पूछने पर उसने छः मास पूर्व ही बता दिया था कि मेरी मृत्यु मथुरा के विश्रान्त घाट पर होगी। कहते हैं कि बादशाह को इसपर विश्वास न हुआ और इस कथन को असत्य प्रमाणित करने की इच्छा से उसने पृथ्वीराज को राज्य-कार्य के निमित्त अटक पार भेज दिया। कुछ समय बीत जाने पर एक दिन एक भील कहीं से चकवा-चकई का एक

(१) आशय—जहां पर मानहीन पुरुष और निर्लज्ज स्त्रियां हैं और जैसा चाहिये वैसा ग्राहक अकबर है, उस बाज़ार में जाकर चित्तोड़ का स्वामी (प्रतापसिंह) रजपूती को कैसे बेचेगा ? ॥ १ ॥ मुसलमानों के नौरोज़ में प्रत्येक व्यक्ति लुट गया, परन्तु हिन्दुओं का पति प्रतापसिंह दिल्ली के उस बाज़ार में अपने क्षत्रिय-पन को नहीं बेचता ॥ २ ॥ हमीर का वंशधर (राणा प्रतापसिंह) प्रपंची अकबर की लज्जाजनक दृष्टि को अपने ऊपर नहीं पड़ने देता और पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा तथा अलाभ को अच्छा समझकर बादशाही दुकान पर रजपूती बेचने के लिए कदापि नहीं आता ॥ ३ ॥ अपने पूर्व पुरुषों के उत्तम कर्तव्य देखते हुए आप (महाराणा) ने भाले के बल से क्षत्रिय धर्म को अचल रक्खा, जब कि अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को बेच डाला ॥ ४ ॥ अकबररूपी ठग भी एक दिन इस संसार से चला जायगा और उसकी यह हाट भी उठ जायगी, परन्तु संसार में यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रियों के धर्म में रहकर उस धर्म को केवल राणा प्रतापसिंह ने ही निभाया। अब पृथ्वी भर में सब को उचित है कि उस क्षत्रियत्व को अपने बर्ताव में लावें अर्थात् राणा प्रतापसिंह की भांति आपत्ति भोगकर भी पुरुषार्थ से धर्म की रक्षा करें ॥ ५ ॥

जोड़ा पकड़कर राजधानी में बेचने के लिए लाया। पक्षियों का यह जोड़ा मनुष्य की भाषा में बोलता था। बादशाह अकबर ने इसे मंगाकर देखा और आश्चर्य प्रकट किया। नवाब खानखाना उस समय मौजूद था, उसने बादशाह को प्रसन्न करने के लिए दोहे का एक चरण बनाकर कहा—

सज्जन बारूँ कोड़धां या दुर्जन की भेंट।

पर इसका दूसरा चरण बहुत प्रयत्न करने पर भी न बन सका। उस अवसर पर बादशाह को पृथ्वीराज की याद आई और उसने उसी समय उसे बुलाने के लिए आदमी भेजे। अभी बताई हुई अवधि में पन्द्रह दिन शेष थे। ठीक पन्द्रहवें दिन पृथ्वीराज मथुरा पहुंचा, जहां दोहे का दूसरा चरण लिखकर बादशाह के पास भिजवाने के अनन्तर उसने विश्रान्त घाट पर प्राण-त्याग किया। यह घटना वि० सं० १६५७ (ई० सं० १६००) में हुई। पृथ्वीराज का कहा हुआ दूसरा चरण इस प्रकार है—

रजनी का मेला किया बेह (विधि) के अच्छर भेट ॥

‘वेलि किसन सकमणी री’ पृथ्वीराज की सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। इस ग्रन्थ-रत्न का निर्माण वि० सं० १६३७ (ई० सं० १५८०) में हुआ था। इसके अतिरिक्त उसके राम-कृष्ण सम्बन्धी तथा अन्य फुटकर गीत एवं छन्द भी उपलब्ध हैं, जो अपने ढंग के अनोखे हैं।

पृथ्वीराज के वंश के पृथ्वीराजोत्त बीका कहलाते हैं, जो ददेवा के पट्टेदार हैं और छोटी ताज़ीम का सम्मान रखते हैं।

राव कल्याणमल बड़ा दूरदर्शी, दानी और वीरों का सम्मान करने-वाला व्यक्ति था। जिन मुसलमानों की सहायता से वह अपना गया हुआ राज्य पीछा पा सका था, उनकी शक्ति को वह खूब अच्छी तरह से समझ गया था। वह समय मुगलों के उत्कर्ष का था, जिनका प्रबल प्रवाह बरसाती

राव कल्याणमल का
व्यक्तित्व

नदी के समान अपने आगे सब को बहाता हुआ बहुधा भारत में बड़े वेग से फैल रहा था। बड़े-बड़े राज्य तक उनकी अधीनता स्वीकार करते

जा रहे थे और जिन्होंने ऐसा नहीं किया था वे भी उनकी बढ़ती हुई शक्ति से भय खाते थे। राजपूताने के विभिन्न राज्यों की दशा भी बड़ी कमजोर हो रही थी। परस्पर ऐक्य का सर्वथा अभाव था। ऐसी परिस्थिति में दूरदर्शी कल्याणमल ने मुगलों की बढ़ती हुई शक्ति से मेल कर लेने में ही भलाई समझी और बादशाह अकबर के नागौर में रहते समय वह अपने पुत्र रायसिंह के साथ उसकी सेवा में उपस्थित हो गया। वास्तव में राव कल्याणमल का यह कार्य बहुत बुद्धिमानी का हुआ, जिससे अकबर और जहांगीर के समय शाही दरबार में जयपुर के बाद बीकानेर का ही बड़ा सम्मान रहा।

उसके दान की प्रशंसा का उल्लेख 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में मिलता है। राज्य के हितैषी वीरों का वह बड़ा आदर करता था और ऐसे व्यक्तियों को उसने जागीर और खिताब आदि देकर सम्मानित किया। उसमें साहस और धैर्य का प्रचुर मात्रा में समावेश था। राव जैतसी के हाथ से राज्य चला जाने पर भी वह एक क्षण के लिए हताश न हुआ और उसकी पुनः प्राप्ति के उद्योग में निरन्तर लगा रहा। वह शरीर से इतना स्थूल था कि घोड़े पर कठिनता से बैठ सकता था।

महाराजा रायसिंह

महाराजा रायसिंह का जन्म वि० सं० १५६८ श्रावण वदि १२ (ई० सं० १५४१ ता० २० जुलाई) को हुआ था^१ और अपने पिता का देहांत होने पर वि० सं० १६३०

जन्म और गद्दीनशीनी

(१) येन दानादिघर्मेण कलिः कृतयुगी कृतः ।

.....॥ २२७ ॥

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २४ । धीरविनोद; भाग २, पृ० ४८५ । चंद के यहां का जन्मपत्रियों का संग्रह ।



महाराजा रायसिंह



(ई० स० १५७४) में वह बीकानेर का स्वामो हुआ तथा उसने अपनी उपाधि महाराजाधिराज और महाराजा रक्खी ।

(१) मुहय्योत नैयसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६६ । टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ११३२ ।

दयालदास की ख्यात (जिल्द २, पत्र २४) तथा पाउलेट के 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' (पृ० २४) में रायसिंह का वि० सं० १६२८ वैशाख सुदि १ (ई० स० १६७१ ता० २५ अप्रैल) को बीकानेर की गद्दी पर बैठना लिखा है, जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि राव कल्याणमल की स्मारक-छत्री के लेख से वि० सं० १६३० (ई० स० १६७४) में उस (कल्याणमल) की मृत्यु होना निश्चित है ।

(२) संवत् १६३१ वर्षे श्रावणसुदि ८ सोमदिने घटी १६ पल ३५ विशाखा नक्षत्रे घटी ३१ । ४४ ब्रह्मनामयोगे घटी ५४ । १० अचलदास खीची री वचनिका ॥ महाराजाधिराय (ज) महाराय (जा) श्रीराइसींघजी विजैराज्ये ॥

(बा० देसीटोरी; बारडिक एण्ड हिस्टोरिकल मेन्युस्क्रिप्ट्स, सेक्शन २, पोहदरी, बीकानेर स्टेट; पृ० ४१) ।

संवत् १६५० वर्षे आसा (ठ) मा (से) शु (कलप) क्षे नवम्यां तिथौ रव (वि) वारे घटिका ५१ चि (त्रा) नक्षत्रे घटिका १ ऊ (प) रांत स्व (स्वा) ति नक्षत्रे महाराजाधिराज महाराजा श्रीश्रीश्रीरायसिंघजी वि (जइ) रा (ज्ये) । फल (व) र्धि (कानगर) भुरज कराविता ।

(ज० पृ० सो० बं०, न्यू सीरीज़; ई० स० १६१६; जि० १२, पृ० ६६) ।

..... अथ संवत् १६५० वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे षष्ठ्यां गुरौ रेवतीनक्षत्रे साध्यनाम्नि योगे महाराजाधिराजमहाराजश्रीश्रीश्री २ रायसिंहेन दुर्गप्रतोली संपूर्णकारिता ॥

[बीकानेर दुर्ग के सूरजपोख दरवाजे की बड़ी प्रशस्ति का अंतिम भाग;

ज० पृ० सो० बं० (न्यू सीरीज़) जि० १६, पृ० २७६] ।

मुसलमान इतिहासलेखक हिन्दू राजा महाराजाओं को सदा तुच्छ दृष्टि से देखते थे । इसीलिए वे अपनी पुस्तकों आदि में उनको 'राय', 'राव', 'राय्या' आदि शब्दों से संबोधन करते थे । मुसलमान बादशाहों के क्रूरमानों में भी प्रायः सभी राजा-

राम के ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी, जोधपुर के राव मालदेव ने, अपनी भाली राणी स्वरूपदे पर विशेष अनुराग होने के कारण उससे उत्पन्न तीसरे पुत्र चन्द्रसेन को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। तब राम केलवा (मेवाड़) गांव में जा रहा और उससे छोटे उदयसिंह को मालदेव ने निर्वाह के लिए फलौंभी दे दिया। वि० सं० १६१६ (ई० सं० १५६२) में राव मालदेव की मृत्यु होने पर चन्द्रसेन जोधपुर की गद्दी पर बैठा, परन्तु कुछ ही दिनों में उसके दुर्व्यवहार से वहां के कुछ सरदार उससे अप्रसन्न रहने लगे और उन्होंने इसकी सूचना राम, उदयसिंह तथा रायमल (जो मालदेव का चौथा पुत्र था) के पास भेज उन्हें गद्दी लेने के लिए उकसाया। तब वे सब चन्द्रसेन के इलाकों पर आक्रमण करने लगे, परन्तु इसमें उन्हें सफलता न मिली। इसपर सरदारों की सलाह से राम बादशाह अकबर के पास पहुंचा और वहां से सैनिक सहायता लाकर उसने जोधपुर का गढ़ घेर लिया। १७ दिन बाद प्रतिष्ठित सरदारों के बीच में बहने से परस्पर सन्धि हो गई, जिसके अनुसार राम को सोजत का इलाका मिल गया और शाही सेना वापस चली गई। उसी वर्ष हुसेन-कुलीखान की अध्यक्षता में शाही सेना ने पुनः जोधपुर में प्रवेश किया,

महाराजाओं को ज़मींदार ही लिखा है, परन्तु उन (राजा-महाराजाओं) के शिलालेखों में उनकी पूरी उपाधि मिलती है। वे अपनी-अपनी उपाधि के अनुसार अपने को राजा, महाराजा, महाराणा, राव और महाराव ही लिखते रहे और प्रजा भी उन्हें वैसा ही मानती रही। बीकानेर के राजाओं के शिलालेखों में बीका, लूणकर्ण और जैतसी को सर्वत्र 'राव' ही लिखा है। जैतसी के उत्तराधिकारी कल्याणमल के स्मारक लेख में उसे 'महाराजाधिराज महाराज' और रायसिंह के सब लेखों में उसे 'महाराजाधिराज महाराज' लिखा है, जिससे सिद्ध है कि राज्यासन पर बैठते ही रायसिंह ने अपनी उपाधि 'महाराजाधिराज महाराज' रख ली थी, जैसा कि ऊपर के अवतरणों से प्रकट है।

(१) हुसेनकुली बेग, बली बेग जुबुद्ध का पुत्र तथा बैरामखान का सम्बन्धी था। जब सरकार मेवात में बैरामखान को शाही सेना के आगमन का समाचार

तब ४००००० रुपये देने का वादा कर चन्द्रसेन ने उससे सुलह कर ली। जब तीसरी बार हुसेनकुलीखाँ की अध्यक्षता में शाही सेना जोधपुर में आई तब चन्द्रसेन ने ससैन्य उसका सामना किया, परंतु अंत में उसे गढ़ छोड़ना पड़ा और मुगलों का जोधपुर पर अधिकार हो गया।

वि० सं० १६२७ (ई० सं० १५७०) में बादशाह नागोर गया, उस समय जोधपुर की गद्दी के हकदार राम और उदयसिंह दोनों बादशाह के पास गये तथा राव चन्द्रसेन भी पुनः राज्य पाने की आशा से अपने पुत्र रायसिंह सहित बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। वह कई दिनों तक वहाँ रहा, परन्तु जब राज्य पीछा मिलने की कोई आशा न देखी तब वह अपने पुत्र को शाही सेवा में छोड़कर भाद्राजूण लौट गया। उसी वर्ष अपने पिता की विद्यमानता में ही, बीकानेर का रायसिंह भी बादशाह की सेवा में चला गया था, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। अकबर के सत्रहवें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६२८=ई० सं० १५७१) में गुजरात में बड़ी अव्यवस्था फैल गई। उधर मेवाड़ के महाराणा प्रताप का आतंक भी बढ़ने लगा। अतएव ता० २० सफ़र हि० सं० ९८० (वि० सं० १६२९ श्रावण वदि ७=ई० सं० १५७२ ता० २ जुलाई) को उस(अकबर)ने गुजरात विजय करने के लिए फ़ौज के साथ प्रस्थान किया। इस अवसर पर

मिला तो वह हुसेनकुली बेग के हाथ अपने पद के सब चिह्न बादशाह के पास भिजवाकर मक्का जाने के बहाने पंजाब की तरफ़ चला गया। बादशाह ने हुसेनकुली बेग की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे खानेजहां का खिताब दिया।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८१-८८।

अकबरनामे में भी अकबर के ८ वें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६१९=ई० सं० १५६३) में हुसेनकुलीखाँ-द्वारा जोधपुर पर चढ़ाई होने और वहाँ पर मुगलों का अधिकार हो जाने का उल्लेख है (बेवरिज-कृत अरुवाद; जि० २, पृ० ३०५)।

जोधपुर राज्य की ख्यात में तीन बार अकबर की सेना की चढ़ाई होने पर जोधपुर छूटना लिखा है, परन्तु अकबरनामे में एक ही चढ़ाई होने का उल्लेख है।

रायसिंह भी मुगल सेना के साथ था। ता० १५ रबीउलअव्वल (भाद्रपद वदि १=ता० २६ जुलाई) को अजमेर पहुंचने पर अकबर ने मीरमुहम्मद खानेकलां को तो कुछ फौज के साथ आगे खाना कर दिया और आप पीछे रहकर ता० ६ जमादिउलअव्वल (आश्विन सुदि १०=ता० १७ सितंबर) को नागौर पहुंचा। मार्ग में ही उसे तीसरे शाहजादे के जन्म का शुभ सम्बाद प्राप्त हुआ। अजमेर में शेख दानियाल के यहां शाहजादे का जन्म होने से, उसने उसका नाम भी दानियाल रक्खा। मेड़ता पहुंचने पर उसे ज्ञात हुआ कि सिरोही से मीरमुहम्मद खानेकलां के पास मेल करने के लिए गये हुए दूतों में से एक ने उसपर धोखे से धार कर दिया, परन्तु सौभाग्य से घाव गहरा न लगा था। जब बादशाह सिरोही पहुंचा तो १५० राजपूतों ने उसका सामना किया, परन्तु वे सब के सब मारे गये। विद्रोह की अग्नि को आरंभ में ही रोकना आवश्यक था। अतएव रायसिंह को अकबर ने जोधपुर देकर गुजरात की तरफ भेजा, ताकि राणा कीका (प्रतापसिंह) गुजरात के मार्ग को रोककर हानि न पहुंचा सके^१।

(१) मीर मुहम्मद, शम्सुद्दीन मुहम्मद अल्काश्वी का ज्येष्ठ भ्राता था। वह हुमायूँ तथा कामरां की सेवा में रहा था तथा अकबर के राज्य-काल में उसकी काफ़ी पद-वृद्धि हुई। जब वह पंजाब का हाकिम था तो गख़स्रों के साथ के युद्ध में उसने बड़ी ख्याति पाई। अकबर के तेरहवें राज्यवर्ष (वि० सं० १६२५=ई० स० १५६८) में उसे पंजाब से बुला लिया और सम्मल की जागीर दी गई। गुजरात की विजय के पश्चात् अकबर ने उसे पटन का हाकिम नियुक्त किया, जहाँ वि० सं० १६३२ (हि० स० ६८३=ई० स० १५७५) में उसकी मृत्यु हो गई। वह एक वीर योद्धा होने के साथ ही बड़ा अच्छा कवि भी था। अकबर के समय में उसे पांच-हज़ारी मनसब प्राप्त था।

(२) तबकात-इ-अकबरी—इजियट; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० ५, पृ० ३४०-१। अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ५३८-४४ तथा जि० ३, पृ० ६८। अजबदायूनी; मुन्तख़ुबुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १४३-४। अजरानदास; मन्साबुल उमरा; पृ० ३५५। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ४७८ (इस ग्रन्थ में दिये हुए संवत्तों और बेवरिज-कृत अकबरनामे के अनुवाद में खगमन एक वर्ष का अन्तर है)।

बादशाह (अकबर) ने गुजरात के अन्तिम सुलतान मुजफ्फर-शाह (तीसरा) से गुजरात को फ़तह कर उसे मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया था । कुछ ही समय बाद उधर मिर्ज़ा-बन्धुओं ने उपद्रव खड़ा किया । मालवे से जाकर इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा ने बड़ोदा, मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा ने

रायसिंह की इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा पर चढ़ाई

जोधपुर राज्य की ख्यात में वि० सं० १६२६ (ई० स० १५७२) में बादशाह-द्वारा रायसिंह को जोधपुर दिया जाना लिखा है (जि० १, पृ० ८८) ।

जोधपुर पर रायसिंह का अधिकार कब तक रहा, यह फ़ारसी तबारीखों से स्पष्ट नहीं होता । दयालदास की ख्यात में लिखा है कि वहाँ उसका तीन वर्ष तक अधिकार रहा और वहाँ रहते समय उसने ब्राह्मणों, चारणों, भाटों आदि को बहुत से गांव दान में दिये (जि० २, पत्र ३०) । ख्यात में दिये हुए संवत् टीक न होने से समय के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता ।

उक्त (दयालदास की) ख्यात में यह भी लिखा है—‘उदयसिंह (राव मालदेव का कुंवर) ने महाराजा रायसिंह से मिलकर कहा—“जोधपुर सदा आपके पास नहीं रहेगा । आप भाई हैं और बड़े हैं तथा बादशाह आपका कहना मानता है । अपने पूर्वजों का बांधा हुआ जोधपुर का राज्य अभी तो अपना ही है, पर संभव है पीछे से बादशाह के खालसे में रह जाय और अपने हाथ से चला जाय ।” महाराजा ने जाना कि बात ठीक है; अतएव उसने बादशाह के पास अर्जों भेजकर वि० सं० १६३६ (ई० स० १५८२) में जोधपुर का मनसब उदयसिंह के नाम करा उसको ‘राजा’ का खिताब दिला दिया (जि० २, पत्र ३०), परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है । उस (महाराजा) के वि० सं० १६४४ माघ वदि ५ (ई० स० १५८८ ता० ५ जनवरी) के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसने चारण माला सादू को सरकार नागौर की पट्टी का गांव भदहरा सासण में दिया था (मूल ताम्रपत्र के फोटो से) । इससे स्पष्ट है कि रायसिंह का अधिकार नागौर और उसके आसपास तो बहुत वर्षों तक रहा था ।

(१) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा तैमूर के वंशज मुहम्मद सुलतान मिर्ज़ा का पुत्र और कामरां का दामाद था । अपने अन्य भाइयों के साथ जब वह विद्रोही हो गया तो हि० स० १७५ (वि० सं० १६२४ = ई० स० १५६७) में बादशाह अकबर के हुक्म से सम्मल के क़िले में कैद कर दिया गया; परन्तु कुछ ही दिनों बाद वह वहाँ से निकल भागा । वह हि० स० १८१ (वि० सं० १६३० = ई० स० १५७३) में फिर शाही सेना-द्वारा बन्दी बना लिया गया और मखसूसख़ां-द्वारा मार डाला गया ।

(२) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का बड़ा भाई ।

सूरत तथा शाह मिर्जा^१ ने चांपानेर पर अधिकार कर लिया। बादशाह ने उन तीनों पर अलग-अलग सेनाएं भेजीं। जब उसको यह ज्ञात हुआ कि इब्राहीम हुसेन मिर्जा ने भड़ोच के किले में रुस्तमखान रूमी^२ को मार डाला है और वह विद्रोह करने पर कटिबद्ध है, तब उसने आगे गई हुई फौजों को वापस बुला लिया और आप (बादशाह) सरनाल (तत्कालीन अहमदाबाद की सरकार के अन्तर्गत) की ओर अग्रसर हुआ, जहां उसे इब्राहीम हुसेन मिर्जा के होने का पता लगा था। शाही सेना के आक्रमण से इब्राहीम हुसेन मिर्जा की फौज के पैर उखड़ गये और वह भाग गई। वहां से भागकर वह ईडर में मुहम्मद हुसेन मिर्जा और शाह मिर्जा के पास पहुंचा, परन्तु उनसे कहा सुनी हो जाने के कारण, वह अपने भाई मसऊद^३ को साथ लेकर जालौर होता हुआ नागोर पहुंचा। खानेकलां का पुत्र फर्रुखखान उन दिनों वहां का शासक था। इब्राहीम हुसेन मिर्जा ने उसे घेर लिया और निकट था कि नागोर पर उसका अधिकार हो जाता, परन्तु ठीक समय पर रायसिंह को जोधपुर में इसकी सूचना मिल गई, जिससे उसने नागोर की ओर फौज लेकर प्रस्थान किया। इस अवसर पर भीरक कोलाबी, मुहम्मद हुसेन शेख, राय राम (मालदेव का पुत्र) आदि कई अफसर भी उस (रायसिंह) के साथ थे। इब्राहीम हुसेन मिर्जा को जब उसके आने की खबर मिली तो वह घेरा उठाकर भाग गया। ता० ३ रमजान (वि० सं० १६३० पौष सुदि ४ = ई० स० १५७३ ता० २८ दिसम्बर) सोमवार को रायसिंह नागोर पहुंचा, जहां फर्रुखखान भी उससे आकर मिल गया। अन्य सरदारों का इरादा तो इब्राहीम हुसेन मिर्जा का पीछा करने का न था, परन्तु रायसिंह के जोर देने पर उसका पीछा किया गया और कठौली नामक

(१) इब्राहीम हुसेन मिर्जा का पांचवां भाई।

(२) शाही अफसर, गुजरात में भड़ोच के किले का हाकिम।

(३) मसऊद को बाद में ग्वालियर के किले में कैद कर दिया गया था, जहां कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई।

स्थान में वह शाही सेना-द्वारा घेर लिया गया । वहां की लड़ाई में मुगल सेना की स्थिति डावां-डोल हो ही रही थी, कि रायसिंह, जो पीछे था, पहुंच गया, जिससे मिर्जा भागकर पंजाब की तरफ चला गया^१ ।

गुजरात के विद्रोहियों का दमन कर तथा मिर्जा अजीज कोकल्लाश^२ को वहां का हाकिम नियुक्त कर बादशाह फ़तहपुर लौट गया, परन्तु उसके उधर प्रस्थान करते ही विद्रोहियों ने फिर सिर उठाया । मुहम्मद हुसेन मिर्जा को जब दौलताबाद में इस बात की सूचना मिली तो वह भी गुजरात में चला आया और इक़्तियारुलमुल्क^३ आदि उपद्रव-कारियों से मिल गया । बादशाह को जब इस उपद्रव का समाचार मिला तो हि० सं० ६८१ ता० २४ रबीउलआख़िर (वि० सं० १६३० भाद्रपद वदि ११=ई० सं० १५७३ ता० २३ अगस्त) रविवार को उसने स्वयं फ़तहपुर से प्रस्थान किया और चार सौ कोस का लम्बा सफ़र, केवल ६ दिन में ही समाप्त कर वह विद्रोहियों के सम्मुख जा पहुंचा । रायसिंह भी, जो गुजरात के निकट था, बादशाह की सेना से मिल गया । मुहम्मद हुसेन मिर्जा ने अपनी फ़ौज के साथ शाही सेना का मुकाबला किया, परन्तु वह अधिक देर तक ठहर न सका और शाही सैनिकों-द्वारा बन्दी कर लिया गया ।

(१) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १५-११ । तबक़ात-इ-अकबरी—इलियद् हिस्ती अॉव् इंडिया; जि० ५, पृ० ३५४ । बदायूनी; मुन्तख़बु-त्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १५३-४ । ब्रजरत्नदास; भग्नासिरुज् उमरा (हिन्दी); पृ० ३५५ । मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ५२ ।

(२) यह शम्सुद्दीन मुहम्मद अल्काज़ा का पुत्र और अकबर का एक सरदार था । इसकी एक पुत्री का विवाह शाहज़ादे मुराद से हुआ था । जहांगीर के १६ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६८१=ई० सं० १६२४) में इसकी अहमदाबाद (गुजरात) में मृत्यु हुई ।

(३) यह अबीसीनिया का निवासी तथा गुजरात का एक अमीर था और इसी युद्ध में शाही सैनिकों-द्वारा मार डाला गया ।

रायसिंह ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई। बादशाह ने बन्दी मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा को उस (रायसिंह) के सुपुर्द कर दिया, ताकि वह उसे हाथी पर बिठाकर नगर में ले जाय। ठीक इसी समय इस्तियारुलमुल्क ५००० सेना के साथ शाही सेना पर चढ़ आया। बादशाह ने भी युद्ध के नक़ारे बजवा दिये और रायसिंह तथा राजा भगवानदास^१ के कहने से उसी समय मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा क़त्ल करवा दिया गया^२।

१६ वें राज्य वर्ष (वि० सं० १६३०=ई० स० १५७४) के आरंभ में जब बादशाह अजमेर में था, उसे चन्द्रसेन (मालदेव का पुत्र) के विद्रोही हो जाने का समाचार मिला। चन्द्रसेन ने उन दिनों सिवाना के गढ़ को, जिसे उसने अपना निवास स्थान बना लिया था और भी दृढ़ कर लिया था। बादशाह ने तत्काल रायसिंह को शाहकुलीखां महरम^३, शिमालखां^४, केशोदास (मेड़ते के जयमल का पुत्र), जगतराय (धर्मचन्द का पुत्र) आदि सरदारों के साथ चन्द्रसेन को दंड देने के लिए भेजा। उस समय सोज़त पर क़त्ला^५ का अधिकार था, जो शाही सेना के पहुँचते ही

(१) अमेर के राजा भारमल कछवाहे का पुत्र। हि० स० ६६८ (वि० सं० १६४६=ई० स० १५८९) के आरंभ में लाहौर में इसका देहांत हुआ।

(२) अकबरनामा—बेवारजि-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ५६-६२, ७३, ८१-२, ८५-६।

आईने अकबरी (ग़लाक़मैन-कृत अनुवाद; जि० १, पृष्ठ ४६३) में रायसिंह के हाथ से मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा का मारा जाना लिखा है। मुंतख़ुत्तवारीख़ (जो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १७२) में उसका रायसिंह के नौकरों-द्वारा मारा जाना लिखा है।

(३) अकबर का एक प्रसिद्ध पाँच-हज़ारी मनसबदार। वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में इसका आगरे में देहांत हुआ।

(४) यह अकबर का गुलाम और शक़-वाहक था। बाद में एक हज़ारी मनसबदार बना दिया गया। हि० स० १००१ (ई० स० १५६३) के पूर्व ही इसका देहांत हो गया।

(५) जोधपुर के राव मालदेव का पौत्र और राम का पुत्र।

सिरबारी (सिरयारी) को भाग गया । शाही सैनिकों ने जब उसका पीछा करके वह गढ़ भी जला दिया तो वह वहां से भागकर गोरम के पहाड़ों में चला गया । शाही सेना के वहां भी उसका पीछा करने पर, जब उस- (कल्ला) ने देखा कि अब बचना कठिन है, तो वह शाही अफसरों से मिल गया और उसने अपने भाई केशोदास को उनके साथ कर दिया । इस प्रकार जब चन्द्रसेन की शक्ति घट गई तो शाही सेना ने सिवाने की ओर प्रस्थान किया, जो उस समय चन्द्रसेन के सेवक रावल सुख (मेघ) राज के अधिकार में था । चन्द्रसेन ने सूजा देवीदास आदि को उसकी सहायता के लिए भेजा, परन्तु रायसिंह के राजपूतों ने गोपालदास की अध्यक्षता में उनपर आक्रमण कर उन्हें मार लिया । पराजित रावल अपने पुत्र को विजेताओं के पास भेज वहां से भाग गया । तब शाही सेना सिवाने के गढ़ पर पहुंची । चन्द्रसेन ने इस अवसर पर गढ़ के भीतर रहना उचित न समझा और राठोड़ पत्ता एवं मुंहता पत्ता के अधिकार में गढ़ छोड़कर वह वहां से हट गया । शाही सेना ने गढ़ को घेर लिया, परन्तु गढ़ के सुदृढ़ होने और शाही सेना कम होने के कारण जब गढ़ विजय न हो सका तो रायसिंह ने अजमेर में बादशाह के पास उपस्थित होकर अधिक सेना भेजने के लिए निवेदन किया । इसपर बादशाह ने तय्यबखां, सैय्यदवेग तोकवाई, सुभानकुली तुर्क खर्रम, अज़मतखां, शिवदास आदि अफसरों को चन्द्रसेन पर भेजा, तो भी दो वर्ष तक सिवाने का गढ़ विजय न हो सका । तब बादशाह ने रायसिंह आदि को पीछा बुला लिया और उनके स्थान पर शहबाज़खां को इस कार्य पर नियुक्त किया, जिसने

(१) मुहम्मद ताहिरखां मीर फ़रासत का पुत्र ।

(२) इसका छठा पूर्वज हाजी जमाल, मुलतान के शेख बहाउद्दीन ज़करिया का शिष्य था । शहबाज़खां का प्रारम्भिक जीवन बड़ी सादगी में बीता था, परन्तु बाद में अकबर इसकी सेवाओं से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने इसे अपना अमीर तक बना लिया । हि० स० १६२ (वि० सं० १६४१=ई० स० १५८४) में बादशाह ने इसे बंगाल का शासक नियुक्त किया । ७० वर्ष की अवस्था में हि० स० १००८ (वि० सं० १६५६=ई० स० १५९९) में इसकी मृत्यु हुई ।

कुछ ही दिनों में उक्त गढ़ को जीत लिया ।

२१ वें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६३३=ई० स० १५७६) के आरम्भ में जब बादशाह को खबर मिली कि जालोर का ताजख़ां एवं सिरौही का बादशाह का रायसिंह को सुरताण देवड़ा विद्रोहियों (राणा प्रताप) के साथ देवड़ा सुरताण पर भेजना मिलकर उपद्रव कर रहे हैं, तो उसने रायसिंह,

(१) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ११३-४, १२२, २३७-८ । मुन्शी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ५६-६१, ६४-७४ । उमराउ-हनुद; पृ० २१३ । अजरतनदास; मन्नासिरुल उमरा (हिन्दी); पृष्ठ ३२२-६ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में भी वि० सं० १६३२ (ई० स० १५७५) में चन्द्रसेन का शहबाज़ख़ां को सिवाने का गढ़ सौंपना लिखा है (जि० १, पृ० ६०) ।

सिवाना छूटने पर राव चंद्रसेन पिपलूंद के पहाड़ों में चला गया, तो भी शाही सेना बराबर उसका पीछा करती रही । तब वह सिरौही इलाक़े में चला गया, जहां वह लगभग डेढ़ वर्ष तक रहा । जब उसे वहां भी शाही सेना पहुंचने का सम्वाद मिला, तब वह झुंगरपुर में अपने बहनोई आसकरण के यहां जा रहा । इतने में शाही सेना झुंगरपुर इलाक़े के निकटवर्ती मेवाड़ प्रदेश में पहुंच गई, तो वह वहां से वांस्वाड़े में पहुंचा । कुछ दिनों वहां रहने के उपरान्त वह महाराणा प्रतापसिंह के अधीनस्थ भोमत प्रदेश में जाकर रहा, जहां एक वर्ष से अधिक समय तक वह ठहरा । फिर मारवाड़ में आकर वह सिचियायी की गाल में रहने लगा, जहां वि० सं० १६३७ माघ सुदि ७ (ई० स० १५८१ ता० ११ जनवरी) को उसका देहांत हुआ ।

सिंढायच दयालदास, बीकानेर राज्य की ख्यात में लिखता है कि पीछे से जालोर ? की तरफ़ से होता हुआ जोधपुर का राव चंद्रसेन अपने राजपूतों के साथ मारवाड़ में आया । पिपल्लाणा के पास उसका महाराजा रायसिंह के भाई रामसिंह से युद्ध हुआ, जिसमें वह (चंद्रसेन) भाग गया । उसका नक़्ारा रामसिंह के हाथ लगा (जिल्द २, पत्र ३०) । इस युद्ध का जोधपुर राज्य की ख्यात में कुछ भी उल्लेख नहीं है, परंतु यह नक़्ारा (जोड़ी) बीकानेर राज्य में अब तक सुरक्षित है । नक़्ारे की जोड़ी ताँबे की कुंडी पर चमड़े से मढ़ी हुई है और उसपर निम्नलिखित लेख है—

राव चंदसेन राठोडाऊ नर

राव चंदसेन राठोडाऊ

तरसूखां', सैय्यद हाशिम बारहा^२ आदि को उनपर भेजा । शाही सेना के जालोर पहुंचते ही, ताजखां ने अधीनता स्वीकार कर ली । फिर वे लोग सिरोही की ओर अग्रसर हुए । सुरताण ने भी इस अवसर पर मेल करना ही उचित समझा, अतएव वह भी रायसिंह के पास उपस्थित हो गया और ताजखां के साथ बादशाह की सेवा में चला गया । ताजखां तो बादशाह की आज्ञानुसार पट्टन (गुजरात) में गया और रायसिंह तथा सैय्यद हाशिम नाडोल^३ में ठहर गये, जहां के विद्रोहियों का दमन कर उन्होंने मेवाड़ के राणा के राज्य से उधर आने-जाने के मार्ग बन्द कर दिये ।

कुछ दिनों पश्चात् सुरताण बादशाह की आज्ञा के बिना ही अपने देश चला गया, जिससे बादशाह ने रायसिंह तथा सैय्यद हाशिम आदि को पुनः उसपर भेजा । गढ़ को घेरने के उपरान्त, रायसिंह ने बीकानेर से अपने परिवार को बुलाने के लिए मनुष्य भेजे । सुरताण ने मौका देख-कर रायसिंह के आते हुए परिवार के लोगों पर आक्रमण कर दिया, परन्तु रायमल के साथ के राठोड़ों ने उस (सुरताण) को भगा दिया तो वह (सुरताण) आवू में जा रहा । शाही सेना-द्वारा वहां भी पीछा होने पर उसने आवू का क़िला रायसिंह के सुपुर्द कर दिया । इसकी सूचना बादशाह के पास ता० १६ अस्फन्दारमज़ (वि० सं० १६३३ फाल्गुन सुदि १०=ई० सं० १५७७ ता० २७ फ़रवरी) को पहुंची । बाद में योग्य व्यक्तियों को आवू के गढ़ की व्यवस्था के लिए छोड़कर, रायसिंह सुरताण को

(१) शाह मुहम्मद सैफुलमुल्क की वहिन का पुत्र । पहले यह बैरामखां की सेवा में था । अकबर के समय में इसे पांच हज़ारी मनसब मिला । हि० सं० १६१२ (वि० सं० १६४१=ई० सं० १५८४) में मासूमज़ां ने इसे मार डाला ।

(२) सैय्यद महमूदखां, कुन्डलीवाल का पुत्र । अहमदाबाद के निकट सर-किच (सरखेज) के युद्ध में मारा गया ।

(३) फ़ारसी तवारीखों में नादोल लिखा है, परन्तु यह स्थल नाडोल होना चाहिये, जो आजकल जोधपुर राज्य के गोदवाड़ ज़िले में है ।

साथ लेकर बादशाह के पास चला गया।

अकबर के २५ वें राज्य वर्ष के अन्तिम दिनों (वि० सं० १६३७-ई० सं० १५८१) में उसके सौतेले भाई हकीम मिर्जा^२ (मिर्जा मुहम्मद

रायसिंह का काबुल
पर जाना

हकीम) ने, जो काबुल का शासक था, अपने बड़े भाई से विरोधकर भारतवर्ष की तरफ भी पैर बढ़ाये। उन दिनों मुहम्मद यूसुफ़ां सिन्धु के निकटवर्ती प्रदेश पर नियुक्त था, परन्तु उसका प्रबन्ध ठीक न होने के कारण बादशाह ने उसे हटाकर कुंवर मानसिंह^३ को उसके स्थान पर भेजा। स्यालकोट से चलकर जब मानसिंह रावलपिंडी पहुँचा तो उसे पता लगा कि हकीम मिर्जा का एक सेनापति शादमान ससैन्य सिन्धु के तट तक आ गया है। मानसिंह ने शीघ्रता से पहुँचकर उसका अवरोध किया। तब शादमान घायल होकर भाग गया और उसकी मृत्यु हो गई। अकबर को जब यह समाचार मिला तो उसने उसी समय मान लिया कि युद्ध की यहीं इतिश्री नहीं हुई है और रायसिंह, जगन्नाथ^४, राजा गोपाल^५

(१) अकबरनामा—वेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० २६६-७, २७८-९। उमरा-ए-हनुद; पृ० २१३-४। ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल उमरा (हिन्दी); पृ० ३५६-७। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ८४-७।

निज़ामुद्दीन की 'तबकाल-इ-अकबरी' और बदायूनी की 'मुंतख़बुत्तवारीख़' में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(२) हुमायूँ का पुत्र और अकबर का सौतेला भाई। ता० १५ जुमादिउल-अव्वल हि० सं० १६१ (वि० सं० १६११ ज्येष्ठ वदि १ = ई० सं० १५५४ ता० १८ अप्रैल) को इसका काबुल में जन्म हुआ था और अकबर के ३० वें राज्य वर्ष में ता० १६ अमरदाद (वि० सं० १६४२ आषण सुदि ३=ई० सं० १५८५ ता० २६ जुलाई) को वहीं इसकी मृत्यु हुई।

(३) आमेर के राजा भगवानदास कछवाहे का पुत्र।

(४) राजा भारमल का पुत्र। जहांगीर के समय में इसे पाँच हज़ारी मनसब प्राप्त था।

(५) अकबर का दो हज़ारी मनसबदार।

आदि को फ़ौज के साथ आगे रवाना किया एवं सिन्धु-प्रदेश पर नियुक्त मानसिंह को ख़बर भेजी कि मिर्ज़ा हकीम यदि नदी पार करने के लिए बड़े तो उसे रोका न जाय तथा युद्ध टाला जाय । ता० १४ बहमन (हि० स० ६८८ ता० १७ जिलहिज्ज=वि० सं० १६३७ फाल्गुन वदि ३=ई० स० १५८१ ता० २३ जनवरी) को जब बादशाह को मिर्ज़ा के पंजाब पहुँचने का समाचार मिला, तो राजधानी का समुचित प्रबन्ध कर हि० स० ६८६ ता० २ मुहर्रम (वि० सं० १६३७ फाल्गुन सुदि ३=ई० स० १५८१ ता० ६ फ़रवरी) सोमवार को उसने स्वयं पंजाब की ओर प्रस्थान किया । मिर्ज़ा को बादशाह के आगमन की सूचना मिलते ही, वह वहाँ से अपनी फ़ौज लेकर भाग गया । बादशाह ने योग्य व्यक्तियों को उसे समझाने के लिए भेजा, परन्तु जब उसने उनके कथन पर कुछ ध्यान न दिया तो ता० ११ तीर (हि० स० ६८६ ता० २१ जमादिउल्अव्वल=वि० सं० १६३८ प्रथम श्रावण वदि ७=ई० स० १५८१ ता० २३ जून) को उसने शाहज़ादे मुराद को मानसिंह, रायसिंह आदि के साथ मिर्ज़ा को समझाने के लिए और यदि इस कार्य में सफलता न मिले तो उसे परास्त करने के लिए भेजा । मिर्ज़ा ने बादशाह की अधीनता स्वीकार करने के बजाय शाही सेना का मुक़ाबला करना आरम्भ किया, परन्तु ता० २० अमरदाद (वि० सं० १६३८ द्वितीय श्रावण सुदि ३=ई० स० १५८१ ता० २ अगस्त) बुधवार को उसे हारकर भागना पड़ा । ता० २६ अमरदाद (वि० सं० १६३८ द्वितीय श्रावण सुदि १२=ई० स० १५८१ ता० ११ अगस्त) को बादशाह भी काबुल के क़िले में पहुँच गया । हकीम मिर्ज़ा के गत अपराधों को क्षमाकर उसने काबुल का अधिकार फिर उस (मिर्ज़ा) को सौंप दिया और स्वयं भारतवर्ष को लौट आया । ता० २६ आबान (हि० स० ६८६ ता० १३ शव्वाल=वि० सं० १६३८ मार्गशीर्ष वदि १=ई० स० १५८१ ता० ११ नवम्बर) को बादशाह सरहिन्द पहुँचा, जहाँ से रायसिंह तथा भगवानदास आदि पंजाब में रहे

(१) कछवाहा, आमेर के स्वामी राजा भारमल का पुत्र । इसे अकबर के समय में 'अमीरुलुमरा' का खिताब प्राप्त था ।

हुए सरदार अपने-अपने ठिकानों को लौट गये^१ ।

महाराणा उदयसिंह ने अपने ज्येष्ठ कुंवर प्रतापसिंह को अपना उत्तराधिकारी न बनाकर अपनी प्रीतिपात्र राणी भटियाणी से उत्पन्न छोटे

कुंवर जगमाल को अपना युवराज बनाया था, परंतु
 रायसिंह का राव सुरताण से
 आधी सिरोही लेना यह बात मेवाड़ की प्रचलित प्रथा के विरुद्ध होने
 से महाराणा उदयसिंह की मृत्यु होने पर सरदारों

आदि ने उस (उदयसिंह) के ज्येष्ठ कुंवर प्रतापसिंह को मेवाड़ का महाराणा बनाया । इससे जगमाल अप्रसन्न होकर बादशाह की सेवा में जा रहा । इधर सुरताण (सिरोही के स्वामी) का सारा राज-कार्य बीजा देवड़ा के हाथ में था, जिसको कुछ दिनों बाद उसने निकाल दिया । तब वह अपनी बसी (ठिकाना) में जा रहा । इसी अवसर पर रायसिंह बादशाह की तरफ से सोरठ को जाता था । मार्ग में सिरोही के राव सुरताण ने उसकी खूब खातिरदारी की । देवड़ा बीजा ने भी रायसिंह के पास पहुंचकर उसको कई प्रकार से लालच दिखलाया, परन्तु उसने उसकी बात न मानी । राव सुरताण से बात कर रायसिंह ने सिरोही का आधा राज्य बादशाह का रक्खा और आधा राव का तथा बीजा को सिरोही के इलाक़े से निकाल दिया । बादशाह के पास जब इसकी खबर रायसिंह ने पहुंचाई तब उसने सिरोही राज्य का आधा हिस्सा राणा उदयसिंह के पुत्र जगमाल को दे दिया । बीजा देवड़ा भी बादशाह की सेवा में गया हुआ था, पर उसकी कुछ सुनवाई न हुई तब वह भी जगमाल के साथ सिरोही चला गया । राव सुरताण ने आधा राज्य जगमाल के सुपुर्द तो कर दिया पर धीरे-धीरे उनमें वैमनस्य बढ़ता गया, जिससे जगमाल को पुनः बादशाह की सेवा में जाना पड़ा । इसवार बादशाह ने उसके साथ चन्द्रसेन के पुत्र रायसिंह आदि को कर दिया । इसपर

(१) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३; पृ० ४६३-४, ४०८, ४१८, ४४२, ४४६ । उमराए हनुद; पृ० २१४ । ब्रजरत्नदास; मन्नासिख्ख उमरा (हिन्दी); पृ० ३५७-८ । मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ११८-२१ ।

राव सुरताण सिरोही छोड़कर पहाड़ों में चला गया। जगमाल ने सेना के कई भाग कर अलग-अलग रास्तों से सुरताण पर भेजे, पर वि० सं० १६४० कार्तिक सुदि ११ (ई० सं० १५८३ ता० १७ अक्टोबर) को जब दताणी के रणक्षेत्र में जगमाल आदि थे, सुरताण उनपर आ दूटा और वे मारे गये^१।

अकबर के ३० वें राज्य वर्ष (वि० सं० १६४२=ई० सं० १५८५) में जब बलूचिस्तान के निवासियों के विद्रोही हो जाने का समाचार मिला तो

रायसिंह का बलूचियों
पर भेजा जाना

बादशाह ने उनका दमन करने के लिए इस्माईल-कुलीखान^२ को रायसिंह, अबुलक़ासिम तमकिन (नम-किन)^३ आदि सहित भेजा। शाही सेना के पहुंचने

पर पहले तो बलूचिस्तान के जागीरदारों ने अधीनता स्वीकार न की, परन्तु पीछे से गाज़ीखान, बहादुरखान, नसरतखान आदि वहां के सब सरदार रायसिंह तथा इस्माईलकुलीखान आदि के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गये और उनकी प्रार्थना के अनुसार उनकी जागीरें पुनः उन्हें सौंप दी गई^४।

(१) मुहम्मद नैयसी की ख्याल; जि० १, पृ० १३१-३।

(२) खानजहां हुसैनकुलीखान का साह। अकबर की अनेकों चढ़ाइयों में यह शाही सेना का अध्यक्ष था। ४२ वें राज्य वर्ष (वि० सं० १६४४=ई० सं० १५८७) में बादशाह ने इसे चार हजार का मनसब दिया था।

(३) यह पहले काबुल के मिर्जा मुहम्मद हकीम की सेवा में था। अकबर की सेवा में प्रविष्ट होने पर पंजाब में भिरह तथा खुशब इसको जागीर में मिले। जहांगीर के राज्यकाल में इसे तीन हज़ारी मनसब प्राप्त हुआ।

(४) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ७१६-३६। तबकात-इ-अकबरी—इलियद; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ५, पृ० ४५०-५३। बदायूनी; मुत्तख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३६०-६४ (इसमें रायसिंह के स्थान पर रायसिंह दरबारी लिखा है, जो ठीक नहीं है)। बज़रतनदास; मश्रासिरुख़ उमरा (हिन्दी); पृ० ३५८।

वि० सं० १६४३ (ई० स० १५८६) में बादशाह ने जब शासन-प्रबन्ध में परिवर्तन किये तो रायसिंह को राजा रायसिंह की लाहौर में नियुक्ति भगवानदास के साथ लाहौर में नियत किया^१ ।

सन् जलूस ३२ (वि० सं० १६४४ = ई० स० १५८७) में क़ासिमखां^२ ने, जिसे बादशाह ने काश्मीर विजय करने के लिए भेजा था,

उस प्रदेश को अधीनकर वहां के विद्रोहियों को दंड दे, बादशाह का अधिकार पीछा स्थापित किया, परन्तु पीछे से जब वह स्वयं वहां के निवासियों पर अत्याचार करने लगा तो फिर अशान्ति का सूत्रपात हुआ । इस-लिए विद्रोहियों का दमन करने में क़ासिमखां को फिर व्यस्त होना पड़ा ।

काश्मीर में रायसिंह के चालीस श्रंग का काम आना

शाही सेना की विद्रोहियों के द्वारा जिस समय बड़ी क्षति हो रही थी उस समय रायसिंह के काका श्रंग (भूकरकावालों का पूर्वज) ने वीरोचित साहस एवं निर्भीकता का परिचय दिया और अपने चालीस राजपूतों सहित विद्रोहियों का सामना करता हुआ मारा गया । वास्तव में उसी की अद्भुत वीरता के कारण शाही सेना को दूसरे दिन विजय प्राप्त हुई । बाद में अकबर का भेजा हुआ यूसुफ़खां^३ वहां पहुंच गया, जिसने सारा प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर क़ासिमखां को दरबार में भेज दिया^४ ।

(१) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ७७६ ।

(२) मीर बहूर चम्मनाराय (?) खुरासान, मिर्जा दोस्त की भगिनी का पुत्र । अकबर ने तख्त पर बैठने के बाद इसे तीन हज़ारी मनसबदार बनाया था ।

(३) मीर अहमद-इ-रजवी का पुत्र । अकबर ने अपने ३०वें राज्यवर्ष में इसे ढाई हज़ारी मनसब दिया था । हि० स० १०१० (वि० सं० १६५८ = ई० स० १६०१) में जालनापुर में इसका देहान्त हुआ ।

(४) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ७६६-८ । मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० १७२ ।

अबुलफ़ज़ल तथा मुंशी देवीप्रसाद ने श्रीरंग (श्रंग) को रायसिंह का चचेरा भाई लिखा है, जो ठीक नहीं है । वह राव कल्याणमल का भाई और महाराजा रायसिंह का काका था, नैसा कि ऊपर लिखा गया है ।

वि० सं० १६४५ फाल्गुन वदि ६ (ई० सं० १५८६ ता० ३० जनवरी) बृहस्पतिवार को बीकानेर के वर्तमान ^{रायसिंह का नया किला} बनवाना किले का सूत्रपात हुआ । फाल्गुन सुदि १२ (ई० सं० १५८६ ता० १७ फरवरी) सोमवार को नींव रखी जाकर वि० सं० १६५० माघ सुदि ६ (ई० सं० १५९४ ता० १७ जनवरी) बृहस्पतिवार को गढ़ सम्पूर्ण हुआ । यह काम मन्त्र कर्मचन्द्र के निरीक्षण में हुआ ।

(१) बीकानेर के राजा रायसिंह की प्रशस्ति—

.....अथ संवत्सरेऽस्मिन्नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् संवत् १६४५ वर्षे शाके १५१० प्रवर्तमाने महामहप्रदायिनि फाल्गुने मासे कृष्णपक्षे नवम्यां तिथौ बृहस्पतिवासरे अनुराधानक्षत्रे व्याघातयोगे श्रीदुर्गस्य प्रथमं सूत्रपातः कृतः ॥ ततो दशमी १० शुक्रवारे ज्येष्ठानंतरं मूलनक्षत्रे दिनमुक्तघटिका २३ । ५५ उपरि दुर्गस्य खातः कृतः ॥ अथ संवत् १६४५ वर्षे फाल्गुनसुदि १२ द्वादश्यां सोमे पुष्यनक्षत्रे शोभननाम्नि योगे दुर्गस्य शिलान्यासः कृतः ॥ अथ संवत् १६५० वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे षष्ठ्यां गुरौ रेवतीनक्षत्रे साध्यनाम्नि योगे महाराजाधिराज महाराज श्री श्री श्री २^३ रायसिंहेन दुर्गप्रतोलीसंपूर्णीकारिता सा च सुचिरस्थायिनी भवतु ॥

(जनरल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; न्यू सीरीज १६, ई० सं १६२०, पृ०-२७६)

दयालदास की ख्यात में रायसिंह का बुरहानपुर से अपने मन्त्री कर्मचन्द्र के गढ़ बनवाने के लिए आज्ञा देना लिखा है (जि० २, पृ० ३०) । उक्त पुस्तक में गढ़ निर्माण करने का समय वि० सं० १६४५ वैशाख सुदि ३ से वि० सं० १६५० तक दिया है । रायसिंह की प्रशस्ति के अनुसार वि० सं० १६४५ (ई० सं० १५८६) फाल्गुन मास में गढ़ का शिलान्यास हुआ, जो अधिक विश्वसनीय है ।

राव बीका का बनवाया हुआ गढ़ शहर के भीतर होने से रायसिंह ने शहर बाहर एक विशाल और सुदृढ़ दुर्ग बनवाया (इसके विस्तृत हाल के लिए देखो पृ० ४४-४६) ।

वि० सं० १६४६-४७ (ई० सं० १५६०) में रायसिंह बादशाह से आज्ञा लेकर बीकानेर गया। इसके कुछ ही दिनों बाद (सन् जुलूस ३६ में)

रायसिंह के भाई
अमरा का विद्रोही होना

रायसिंह का भाई अमरा (अमरसिंह) बादशाह का विरोधी हो गया। भिंभर के जागीरदार हमज़ा ने जब उसे उपयुक्त दंड दिया, तो एक दिन

अचसर पाकर उसका पुत्र केशोदास बदला लेने के लिए, हमज़ा के पुत्र के धोखे में करमवेग को मारकर अपने साथियों सहित निकल भागा।

इसकी सूचना मिलते ही चतुर मनुष्य उस (केशोदास) के पीछे भेजे गये। देपालपुर तथा कनूला के बीच में नौशहरा नामक स्थान में उन्होंने विद्रोहियों को धेर लिया। इस अवसर पर रायसिंह के कुछ राजपूत एवं खानखाना के आदमी भी पीछा करनेवालों से मिल गये। फलस्वरूप केशोदास अपने पांच सहायकों सहित मारा गया और शेष तीन कैद कर लिये गये^३।

(१) शेरवेग का पुत्र ।

दयालदास की ख्यात (जि० २, पृ० ३३) और कप्तान पाउलेट के 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' (पृ० २८, टिप्पण) में लिखा है कि अमरसिंह ने अरबख़ां को मारा। इसपर अरबख़ां के साथी शाही अफ़सर ने अमरसिंह को मार डाला। तब अमरसिंह का पुत्र केशवदास उसका बदला लेने के लिए तैयार हुआ और उसने एक शाही अफ़सर को मार डाला।

(२) वैरामख़ां का पुत्र मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना । इसका जन्म हि० सं० १६४ ता० १४ सफ़र (वि० सं० १६१३ माघ वदि १ = ई० सं० १५२६ ता० १७ दिसम्बर) को लाहौर में हुआ था और अकबर तथा जहांगीर की अधिकांश बर्दी चढ़ाइयों में इसने सेना का संचालन किया था। जहांगीर के २१ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६२३=ई० सं० १६२७) में इसका देहांत हुआ।

(३) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ६०८ । दयालदास की ख्यात (जि० २, पृ० ३२-३) में भी अमरा के विद्रोही हो जाने तथा बाद में शाही सेना-द्वारा युद्ध में मारे जाने का उल्लेख है।

बादशाह ने पहले खानखाना को कन्दहार विजय करने के लिए नियुक्त किया था, परन्तु जब दरबारियों ने ठठा के वैभव का उल्लेख

किया तो बादशाह ने उसे उधर भेज दिया। खान-
 रायसिंह का खानखाना
 की सहायतार्थ भेजा जाना खाना ने सर्वप्रथम लाखी पर अधिकार करके
 शेवां के गढ़ पर आक्रमण किया। ठठा के स्वामी

जानीवेग ने भी उसका सामना करने का आयोजन किया और अपनी रक्षा के लिए नसीरपुर के दर्रे के निकट एक गढ़ बना लिया। इसी अवसर पर रायसिंह का पुत्र दलपत और जैसलमेर का रावल भीम भी अमरकोट के रास्ते से होते हुए खानखाना से जा मिले। वे अमरकोट को विजयकर वहां के स्वामी को भी अपने साथ लेते गये। जानीवेग ने जल और स्थल दोनों मार्ग से शाही सेना पर आक्रमण किया, परन्तु अंत में उसकी पराजय हुई तथा उसे अपने बनाये हुए गढ़ में शरण लेनी पड़ी। शाही सेना ने ता० ६ आज़र इलाही सन् ३६ (हि० स० १००० ता० १४ सफ़र=वि० सं० १६४८ पौष सुदि १ = ई० स० १५६१ ता० २१ नवम्बर) को उस स्थान पर भी आक्रमण किया। पर जानीवेग सतर्कता के साथ युद्ध टालता हुआ वर्षा ऋतु के आगमन की वाट देखने लगा जब कि उसे शाही सेना का सामना करने में हर प्रकार से सुविधा होने की संभावना थी। इधर शाही सेना की शक्ति दिन पर दिन क्षीण होने लगी, जिससे खानखाना को बादशाह के पास से सहायता मंगवानी पड़ी। इसपर बादशाह ने धन, जन तथा अन्य युद्ध की सामग्री के अतिरिक्त ता० २१ आज़र (हि० स० १००० ता० २६ सफ़र=वि० सं० १६४८ पौष वदि १३ = ई० स० १५६१ ता० ३ दिसंबर) को अपने

(१) मिर्जा जानी वेग तर्खान यह अपने दादा मिर्जा मुहम्मद बाकी की मृत्यु पर हि० स० १६३३ (वि० सं० १६४१=ई० स० १५८४) में सिन्ध के अवशेष भाग का स्वामी हुआ। इसकी एक पुत्री का विवाह खानखाना (अब्दुर्रहीम) ने अपने पुत्र के साथ किया। बाद में इसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। हि० स० १००८ (वि० सं० १६२६ = ई० स० १५६६) में डुरहानपुर में इसकी मृत्यु होने पर ठठा की जागीर इसके पुत्र मिर्जा गाजी को दी गई।

चार हजार मनसबदार^१ रायसिंह को उस (खानखाना) की सहायता के लिए भेजा^२।

रायसिंह की एक पुत्री का विवाह बान्धोगढ़ (रीवां) के रामचन्द्र बघेला के पुत्र वीरभद्र से हुआ था। जब रामचन्द्र की मृत्यु हो गई तो बादशाह ने उसके पुत्र वीरभद्र को अपना राज्य संभालने के लिए भेजा, परन्तु दुर्भाग्यवश मार्ग में वह पालकी से नीचे गिर पड़ा और कुछ समय बाद खुर्जा पहुँचने पर उसके प्राण पखेरु उड़ गये। जब बादशाह के पास यह दुःखद समाचार पहुँचा तो ता० १२ अमरदाद सन् जलूस ३८ (हि० स० १००१ ता० ५ जूलाई = वि० सं० १६५० श्रावण सुदि ८ = ई० स० १५६३ ता० २५ जुलाई) को उसने रायसिंह के पास जाकर हार्दिक शोक प्रकट किया। वीरभद्र की राणी सती होना चाहती थी, परन्तु बादशाह ने उसके वच्चों की बाल्यावस्था के कारण उसे ऐसा करने से रोक दिया^३।

(१) तबकात-इ-अकबरी—इलियद्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ५, पृ० ४६२।
बदायूनी; मुंतख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३६२।

इससे स्पष्ट है कि अकबर के ३७ वें राज्य-वर्ष से पूर्व किसी समय रायसिंह को चार-हजारी मनसब प्राप्त हो गया था, पर इसका ठीक-ठीक समय फ़ारसी तवारीख़ों से निश्चित नहीं होता। दयालदास ने वि० सं० १६३४ (ई० स० १५७७) में रायसिंह को बादशाह की तरफ़ से ४००० का मनसब ५२ परगने एवं राजा का खिताब मिलना लिखा है (जि० २, पत्र २५)।

(२) अकबरनामा—वेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ६१६, ६२४, ६२५।
तबकात-इ-अकबरी—इलियद्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ५, पृ० ४६१-२। बदायूनी;
मुंतख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३६२। ब्रजरत्नदास; मअ़ासिरुल् उमरा
(हिन्दी); पृ० ३५८।

(३) अकबरनामा—वेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ६२५। मुंशी
देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २१४-६। उमराए हकूद; पृ० २१४। ब्रजरत्नदास;
मअ़ासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३५८-६।

वि० सं० १६५० (ई० सं० १५६३) में शेख फ़ैज़ी^१, मीर मुहम्मद अमीन आदि दक्षिण की तरफ़ गये हुए अफ़सर वापस लौटे। बुरहानुल्मुल्क^२ को कई अवसर पर शाही सहायता तथा सम्मान प्राप्त हो चुका था, परन्तु उन दिनों उसने प्रचुर मात्रा में शाही सेवा में नज़राना न भेजा। इस अवज्ञा का दंड देने के लिए बादशाह की इच्छा स्वयं आगरे जाकर उसपर फ़ौज भेजने की थी; परन्तु वहां रसद आदि की मंहगाई होने के कारण, उसने विवश होकर ता० २५ मेहर (हि० सं० १००२ ता० २२ मुहर्रम = वि० सं० १६५० कार्तिक वदि ६ = ई० सं० १५६३ ता० ८ अक्टोबर) को शाहज़ादे सुलतान दानियाल^३ को ७०००० सवारों^४ के साथ उसके विरुद्ध भेजा। इस अवसर पर रायसिंह, खानखाना आदि भी उसके साथ थे तथा शाहज़ादे मुराद^५ को भी दक्षिण की ओर अग्रसर होने का

(१) नागोर के शेख़ मुबारक का पुत्र तथा शेख़ अबुलफ़ज़ल का ज्येष्ठ आता। इसका पूरा नाम अबुलफ़ैज़ था और हि० सं० ६२४ ता० १ शाबान (वि० सं० १६०४ आश्विन सुदि २ = ई० सं० १५४७ ता० १६ सितम्बर) को इसका जन्म हुआ था। यह इतिहास, वेदान्त और हिकमत आदि का प्रकांड पंडित होने के अतिरिक्त उच्च कोटि का कवि भी था। यह सबसे पहला मुसलमान था, जिसने हिन्दी साहित्य एवं विज्ञान का अध्ययन किया। कई संस्कृत पुस्तकों के अतिरिक्त इसने 'लीलावती' एवं बीजगणित का भी अनुवाद किया था। आगरे में हि० सं० १००४ ता० १० सफ़र (वि० सं० १६५२ आश्विन सुदि १२ = ई० सं० १५६५ ता० ५ अक्टोबर) को इसकी मृत्यु हुई।

(२) अहमदनगर का शासक।

(३) अकबर का तीसरा पुत्र। अत्यधिक मदिरा सेवन के कारण बुरहानपुर में हि० सं० १०१३ ता० १ जिलाहिज (वि० सं० १६६२ वैशाख सुदि २ = ई० सं० १६०५ ता० १० अप्रैल) को इसकी मृत्यु हुई।

(४) तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ५, पृ० ४६७। बदायूनी; मुंतज़बुत्तवारीख़—लो कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ४०३।

(५) अकबर का दूसरा पुत्र। हि० सं० ६७८ (वि० सं० १६२७ = ई० सं० १५७०) में सीकरी में इसका जन्म हुआ था। हि० सं० १००७ ता० १५ शबवाल

आदेश भेजा गया। लाहौर से ३५ कोस सुल्तानपुर की नदी तक बादशाह स्वयं इस सेना के साथ गया। खानखाना भी सरहिन्द तक पहुंच गया था। उसे बुलाकर उससे परामर्श करने के उपरान्त बादशाह ने केवल खानखाना को इस सेना का अध्यक्ष बनाकर भेज दिया और दानियाल को पीछा बुला लिया^१।

अकबर का रायसिंह को
जूनागढ़ देना

उसी वर्ष बादशाह ने आजमखान^२ के नाम फरमान भेजकर उसे दरबार में बुला लिया और जूनागढ़ का प्रदेश (दक्षिणी काठियावाड़), जिसे उस (आजमखान) ने जीता था, रायसिंह के नाम कर दिया^३।

कुछ समय पहले रायसिंह के एक कृपापात्र सेवक ने किसी पर अत्याचार किया था^४, जिसकी शिकायत होने पर बादशाह ने रायसिंह से जवाब तलब किया, परन्तु उस (रायसिंह) ने नौकर को छिपा लिया और बादशाह से कहला दिया कि वह भाग गया। इसपर बादशाह उससे अप्रसन्न रहने लगा और उसने कुछ दिनों के लिए उसका मुजरा

अकबर की रायसिंह से अप्र-
सन्नता तथा बाद में उसे सोरठ
देकर दक्षिण भेजना

(वि० सं० १६५६ ज्येष्ठ वदि १ = ई० स० १५६६ ता० १ मई) को दक्षिण में इसक देहान्त हुआ।

(१) अकबरनामा—देवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ६६४-५। तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ् इंडिया; जि० ५, पृ० ४६७। वदायूनी; मुन्तल्ल-बुत्तवारील्ल—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ४०३।

(२) खानआजम, मिर्जा अजीज कोका (देखो ऊपर पृ० १६६, टिप्पण २)।

(३) वदायूनी; मुन्तल्लबुत्तवारील्ल—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ४००।

(४) फारसी तवारीखों में इस घटना का स्पष्टीकरण नहीं किया है। दयालदास की ख्यात में एक स्थल पर लिखा है कि वि० सं० १६५४ (ई० स० १५६७) में महाराजा रायसिंह भटनेर गया था। उसके वहां रहते समय बादशाह (अकबर) का श्वसुर नसीरखान भी वहां जाकर ठहरा। उसके वहां की किसी एक लड़की से अनुचित छेड़-छाड़ करने पर रायसिंह के इशारे से उसके सेवक तेजा ने उसको पीटा। वहां रहते समय तो उस (नसीरखान) ने कुछ न कहा, परन्तु दिल्ली पहुंचने पर उसने बादशाह से

बन्द कर दिया। अंत में बादशाह ने उसका अपराध क्षमा कर दिया और सोरठ (सौराष्ट्र, सारा दक्षिणी काठियावाड़) की जागीर उसे प्रदान कर दक्षिण में भेजा, परन्तु उधर प्रस्थान न कर वह (रायसिंह) बीकानेर जाकर बैठ रहा। कई बार समझाये जाने पर भी जब उसने कुछ ध्यान न दिया तो बादशाह ने सलाहुद्दीन को उसके पास भेजकर कहलाया कि यदि उसे दक्षिण में न जाना हो तो शाही सेवा में उपस्थित हो। इसपर ता० २६ दे सन् जुलूस ४१ (हि० स० १००५ ता० २७ जमादिउलअव्वल = वि० सं० १६५३ माघ वदि १४ = ई० स० १५६७ ता० ६ जनवरी) को वह बादशाह के पास उपस्थित हो गया। पीछे से उसका अपराध क्षमाकर ता० ५ वहमन (हि० स० १००५ ता० ५ जमादिउस्सानी = वि० सं० १६५३ माघ सुदि ७ = ई० स० १५६७ ता० १४ जनवरी) को बादशाह ने उसे दक्षिण में भेज दिया^२।

अकबर के ४५ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५७ = ई० स० १६००) के आरंभ

शिकायत कर दी। इसपर बादशाह ने महाराजा को तेजा की सौंप देने का हुक्म दिया, पर उसने नहीं सौंपा। पीछे से मटनेर तथा कसूर आदि परगने उससे तालीर होकर दलपतसिंह के पट्टे में कर दिये गये (जि० २, पत्र ३२)। किसी अज्ञात कवि की बनाई हुई 'राजा रायसिंहजी की वेल' (बेलिया गीत में लिखा हुआ काव्य) में भी इस घटना का उल्लेख है (डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑफ़ चार्टर्ड एण्ड हिस्टोरिकल मैन्युस्क्रिप्ट्स; सेक्शन २, भाग १, बीकानेर स्टेट; पृ० ५६)।

फ़ारसी तवारीख़ों के अनुसार रायसिंह की डयोदी बादशाह ने बन्द करवा दी थी। इससे स्पष्ट है कि उसका अपराध काफ़ी बड़ा रहा होगा। दयालदास का उपर्युक्त कथन इसी घटना से सम्बन्ध रखता है, पर उसमें दिया हुआ संवत् ग़लत है।

(१) बादशाह अकबर के रायसिंह के नाम के सन् जुलूस ४२ ता० ६ दे (हि० स० १००६ ता० २० जमादिउलअव्वल = वि० सं० १६५४ पौष वदि ७ = ई० स० १५६७ ता० २० दिसम्बर) के फ़रमान में सोरठ एवं अन्य जागीरें उसे पुनः दी जाने का उल्लेख है। उक्त फ़रमान में अकबर की प्रसन्नता का भी वर्णन है।

(२) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३; पृ० १०६८-६९। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २४५। उमराए हनुद; पृ० २१५। मजरतदास; मन्नासि-रुख़ उमरा (हिन्दी); पृ० ३५६।

दलपत का भागकर
बीकानेर जाना

में मुज़फ्फ़र हुसेन मिर्ज़ा' विद्रोही हो गया और एक दिन अवसर पाकर भाग निकला। रायसिंह का पुत्र दलपत उसे खोजने के वहाने बीकानेर चला गया। वास्तव में उसका उद्देश्य भी बीकानेर जाकर फ़साद करने का था^१।

उसी वर्ष (वि० सं० १६५७ = ई० स० १६०० में) बादशाह ने माधोसिंह को अकबर का रायसिंह को नागोर आदि परगने देना को दृष्टाकर नागोर आदि परगने रायसिंह को जागीर में दिये^२। / *NE*

अहमदनगर विजय हो जाने पर भी दक्षिण की अराजकता का अन्त नहीं हुआ था। अतएव खानखाना तो अहमदनगर भेजा गया और बादशाह ने शेख अबुल-फ़ज़ल^३ को ता० २३ वहमन (हि० स० १००६ ता० ६ शावान = वि० सं० १६५७ माघ सुदि ८ = ई० स० १६०१ ता० ३१

(१) ऊपर पृ० १६७ में आये हुए इनाहीम हुसेन मिर्ज़ा का पुत्र।

(२) अकबरनामा—वेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ११५१। मुंशी देवी-प्रसाद; अकबरनामा; पृ० २६८। अजरसदास; अशासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३६०।

(३) राजा भगवंतदास कछवाहे का ज्येष्ठ पुत्र तथा अकबर का तीन हज़ारी मनसबदार। शाहजहाँ के तीसरे राज्य-वर्ष (वि० सं० १६८६-७ = ई० स० १६३०) में यह अपने दो पुत्रों के साथ दक्षिण में मारा गया।

(४) अकबर का इलाही सन् ४५ ता० ३ आवान (हि० स० १००६ ता० १७ रबीउलसानी = वि० सं० १६५७ कार्तिक वदि ४ = ई० स० १६०० ता० १५ अक्टोबर) का क्रूरमान।

(५) नागोर के शेख़ सुवारक़ का दूसरा पुत्र तथा शेख़ फैज़ी का छोटा भाई। इसका जन्म हि० स० ९५८ (वि० सं० १६०८ = ई० स० १५५१) में हुआ था और अकबर के १६वें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६३० = ई० स० १५७४) में यह उसकी सेवा में प्रविष्ट हुआ। इसने 'अकबरनामा' एवं 'आईने अकबरी' नामक अकबर के राज्यकाल से सम्बन्ध रखनेवाले दो बृहद् ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना की। हि० स० १०११ ता० ४ रबीउलअव्वल (वि० सं० १६५६ भाद्रपद सुदि ६ = ई० स० १६०२ ता० १३ अगस्त) को यह वीरसिंहदेव बुंदेला के हाथ से मारा गया।

जनवरी) को नासिक जाने का आदेश दिया। इस अवसर पर रायसिंह, राय दुर्गा^१, राय भोज^२, हाशिमबेग^३ आदि को भी उसके साथ जाने की आज्ञा हुई। सन् जुलूस ४६ ता० १४ उर्दीबहिश्त (हि० स० १००६ ता० २६ शव्वाल=वि० सं० १६५८ वैशाख सुदि १=ई० स० १६०१ ता० २३ अप्रैल) को अपने देश की तरफ बखेड़े की खबर पाकर रायसिंह आज्ञा लेकर उधर चला गया।

वि० सं० १६५६ (ई० स० १६०२) में जब अबुलफ़ज़ल नरवर की ओर से अपने साथियों सहित जा रहा था, शाहज़ादे सलीम के इशारे पर बीरसिंहदेव बुन्देला^४ ने उसे मार डालने का जाल फैलाया। जब अबुलफ़ज़ल के साथियों को इस बात का पता लगा तो उन्होंने उस (अबुलफ़ज़ल) से रायसिंह तथा रायराया^५ की शरण में जाने की सलाह दी, जो उस समय केवल दो कोस

(१) चित्तोड़ के निकट के रामपुरा परगने का सीसोदिया स्वामी तथा अकबर का डेढ़ हज़ारी मनसबदार। जहांगीर के दूसरे राज्य-वर्ष (वि० सं० १६६४=ई० स० १६०७) के आसपास इसकी मृत्यु हुई।

(२) राय सुर्जन हाड़ा का पुत्र। जब दूदा (भोज का बड़ा भाई) से बूझी ली गई तो वहां का अधिकार भोज को दिया गया। वि० सं० १६६४ (ई० स० १६०७) के आसपास इसने आत्महत्या कर ली।

(३) कासिमख़ां का पुत्र। अकबर के राज्य-काल में इसे डेढ़ हज़ारी मनसब प्राप्त था, जो जहांगीर के समय में तीन हज़ार हो गया।

(४) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ११७३ और ११८४; मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २७५-६। उमराए हन्द; पृ० २१५। बजरत्नदास; मआसिरुल उमरा; (हिन्दी); पृ०-३५६-१।

(५) ओरछे का स्वामी।

(६) खत्री हरदासराय, जिसे अकबर ने रायरायां का खिताब दिया था। बाद में जहांगीर ने इसको राजा विक्रमाजीत का खिताब दिया। अकबर के समय में पहले यह हाथियों का हिंसाव रवखा करता था, परन्तु बाद में अपनी योग्यता के कारण दीवान बना दिया गया। जहांगीर ने इसे तोपखाने का अफ़सर भी बना दिया था।

की दूरी पर २००० सवारों के साथ आंतरी में थे, परन्तु अबुलफ़ज़ल ने उनकी सलाह पर ध्यान न दिया, जिसके फलस्वरूप वह मारा गया^१।

पहले की बादशाह की नाराज़गी तो दूर हो गई थी, परन्तु फिर कुछ मनमुटाव हो गया था, जिसके मिटने पर बादशाह ने उसे अपनी सेवा में बुला लिया, परन्तु उसका पुत्र दलपत अब तक पिता के विरुद्ध आचरण करता था अतएव उसके लिए आधा हुई कि जब तक वह अपने पिता को प्रसन्न न कर लेगा उसे शाही सम्मान प्राप्त न होगा^२।

बादशाह ने अपने ४८ वें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६६० = ई० सं० १६०३) में दशहरे के दिन शाहज़ादे सलीम को फिर मेवाड़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी और एक बड़ी सेना उसके साथ कर दी, जिसमें रायसिंह, जगन्नाथ, राधोसिंह, राय दुर्गा, राय भोज, दलपतसिंह, मोटे राजा का पुत्र सकतसिंह आदि कितने ही राजपूत सरदार भी थे। शाहज़ादा अपने पिता की आज्ञा को टाल नहीं सकता था, इसलिए वहां से ससैन्य चला, परन्तु उसको मेवाड़ की चढ़ाई का पहले कटु अनुभव हो चुका था, इसलिए वह इस बला को अपने 'सिर से टालना' चाहता था। वह फ़तहपुर में जाकर ठहर गया। वहां से उसने अपनी सेना तैयार न होने का बहाना कर बादशाह के पास अर्ज़ों भेजी कि मुझे अधिक सेना तथा खज़ाने की आवश्यकता है, अतएव ये दोनों बातें स्वीकार की जावें या मुझे अपनी ज़मीर इलाहाबाद जाने की आज्ञा

(१) तकमील-इ-अकबरनामा (शेख़ इनायतुल्ला-कृत)—इलियद्; हिन्दी ऑब् इंडिया; जि० ६, पृ० १०७। अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२१८। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २६२-३।

(२) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२१२। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २६४।

दी जाय । बादशाह समझ गया कि वह फिर महाराणा (अमरसिंह) से लड़ना नहीं चाहता है, इसलिए उसने उसे इलाहाबाद जाने की आज्ञा दे दी^१ ।

बादशाह ने अपने ४६ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६६१=ई० सं० १६०४) में परगना शम्साबाद के दो भाग—एक शम्साबाद तथा रायसिंह को परगना शम्साबाद मिलना दूसरा नूरपुर—कर दिये और उन्हें रायसिंह को जागीर में दे दिया^२ ।

वि० सं० १६६२ के आश्विन (ई० सं० १६०५ सितम्बर) में बादशाह की तबियत खराब हो गई और वह बहुत क्षीण हो गया । इस अवसर पर बादशाह की बीमारी पर रायसिंह का बुलवाया जाना तथा बादशाह की मृत्यु शाहजादे सलीम ने रायसिंह को बुलाने के लिए निशान भेजा, जिसमें उसे बिना रुके हुए शीघ्रानि-शीघ्र आने को लिखा था^३ । रायसिंह को इतनी शीघ्रता से इस अवसर पर बुलाने में भी एक रहस्य था, जिसका उल्लेख मुंशी देवीप्रसाद ने इस प्रकार किया है—‘ता० २० जमादिउल्लअव्वल को बादशाह बीमार हुआ । उस वक्त दरबार में राजा मानसिंह (कछवाहा) और खानआज़म कर्त्ता-धर्त्ता थे । खुसरो आमेर के मानसिंह का भानजा और खानआज़म का जामाता था, इसलिए ये दोनों बादशाह के पीछे खुसरो को तख्त पर बिठाने के जोड़-तोड़ में लगे हुए

(१) तकमील-इ-अकबरनामा—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ६, पृ० ११० । अकबरनामा—वेवरिज-कृत अनुवाद; पृ० १२३३-४ । मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ३०४-५ । ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३६० ।

(२) अकबर का इलाही सन् ४६ ता० २१ खुरदाद (हि० सं० १०१३ ता० ११ सुहरम=वि० सं० १६६१ ज्येष्ठ सुदि १४=ई० सं० १६०४ ता० ३१ मई) का क्रम ।

(३) जहांगीर का इलाही सन् ५० ता० २६ मेहर (हि० सं० १०१४ ता० ७ जमादिउस्सानी = वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदि १०=ई० सं० १६०५ ता० ११ अक्टोबर) का निशान ।

की दूरी पर २००० सवारों के साथ आंतरी में थे, परन्तु अयुलक़ज़ल ने उनकी सलाह पर ध्यान न दिया, जिसके फलस्वरूप वह मारा गया^१।

पहले की बादशाह की नाराज़गी तो दूर हो गई थी, परन्तु फिर कुछ मनमुटाव हो गया था, जिसके मिटने पर बादशाह ने उसे अपनी सेवा में बुला लिया, परन्तु उसका पुत्र दलपत अब तक पिता के विरुद्ध आचरण करता था अतएव उसके लिए आशा हुई कि जब तक वह अपने पिता को प्रसन्न न कर लेगा उसे शाही सम्मान प्राप्त न होगा^२।

बादशाह ने अपने ४८ वें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६६० = ई० सं० १६०३) में दशहरे के दिन शाहज़ादे सलीम को फिर मेवाड़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी और एक बड़ी सेना उसके साथ कर दी, जिसमें रायसिंह, जगन्नाथ, माधोसिंह, राय दुर्गा, राय भोज, दलपतसिंह, मोटे राजा का पुत्र सकतसिंह आदि कितने ही राजपूत सरदार भी

रायसिंह की सलीम के साथ मेवाड़ की चढ़ाई के लिए नियुक्ति

थे। शाहज़ादा अपने पिता की आज्ञा को टाल नहीं सकता था, इसलिए वहां से ससैन्य चला, परन्तु उसको मेवाड़ की चढ़ाई का पहले कटु अनुभव हो चुका था, इसलिए वह इस चला को अपने सिर से टालना चाहता था। वह फ़तहपुर में जाकर ठहर गया। वहां से उसने अपनी सेना तैयार न होने का बहाना कर बादशाह के पास अर्ज़ों भेजी कि मुझे अधिक सेना तथा खज़ाने की आवश्यकता है, अतएव ये दोनों बातें स्वीकार की जावें या मुझे अपनी जंगीर इलाहाबाद जाने की आज्ञा

(१) तकमील-इ-अकबरनामा (शेख़ इनायतुल्ला-कृत)—इलिचट्; हिस्ती ऑव् इंदिया; जि० ६, पृ० १०७। अकबरनामा—वेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२१८। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २६५-६।

(२) अकबरनामा—वेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२१५। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २६४।

दी जाय । बादशाह समझ गया कि वह फिर महाराणा (अमरसिंह) से लड़ना नहीं चाहता है, इसलिए उसने उसे इलाहाबाद जाने की आज्ञा दे दी ।

बादशाह ने अपने ४६ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६६१=ई० सं० १६०४) में परगना शम्साबाद के दो भाग—एक शम्साबाद तथा रायसिंह को परगना शम्साबाद मिलना दूसरा नूरपुर—कर दिये और उन्हें रायसिंह को जागीर में दे दिया^२ ।

वि० सं० १६६२ के आश्विन (ई० सं० १६०५ सितम्बर) में बादशाह की तबियत खराब हो गई और वह बहुत क्षीण हो गया । इस अवसर पर बादशाह की बीमारी पर रायसिंह का बुलवाया जाना तथा बादशाह की मृत्यु शाहजादे सलीम ने रायसिंह को बुलाने के लिए निशान भेजा, जिसमें उसे बिना रुके हुए शीघ्रान्ति-शीघ्र आने को लिखा था^३ । रायसिंह को इतनी शीघ्रता से इस अवसर पर बुलाने में भी एक रहस्य था, जिसका उल्लेख मुंशी देवीप्रसाद ने इस प्रकार किया है—‘ता० २० जमादिउल्अव्वल को बादशाह बीमार हुआ । उस वक्त दरबार में राजा मानसिंह (कछवाहा) और खानआज़म कर्त्ता-धर्त्ता थे । खुसरो आमेर के मानसिंह का भानजा और खानआज़म का जामाता था, इसलिए ये दोनों बादशाह के पीछे खुसरो को तख्त पर बिठाने के जोड़-तोड़ में लगे हुए

(१) तकमील-इ-अकबरनामा—इलियद्; हिस्ती आँव् इंडिया; जि० ६, पृ० ११० । अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; पृ० १२३३-४ । मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ३०४-५ । ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३६० ।

(२) अकबर का इलाही सन् ४६ ता० २१ खुरदाद (हि० सं० १०१३ ता० ११ सुहर्रम=वि० सं० १६६१ ज्येष्ठ सुदि १४=ई० सं० १६०४ ता० ३१ मई) का फ़रमान ।

(३) जहांगीर का इलाही सन् ५० ता० २६ मेहर (हि० सं० १०१४ ता० ७ जमादिउस्सानी = वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदि १०=ई० सं० १६०५ ता० ११ अक्टोबर) का निशान ।

थे तथा जो लोग शाह सलीम को नहीं चाहते थे वे सब इनके सहायक थे। शाहजादे ने यह सब हाल देखकर किले में आना-जाना छोड़ दिया था।^१ इससे यह स्पष्ट है कि ऐसे समय में रायसिंह ही एक ऐसा व्यक्ति था, जिसकी सहायता पर सलीम भरोसा कर सकता था। दुश्मनों से भरे हुए दरबार में उसे रायसिंह ही विश्वासपात्र दिखाई पड़ता था, इसलिए उसने अपना पक्ष दृढ़ करने के लिए रायसिंह को शीघ्रातिशीघ्र आने को लिखा था। लगभग एक मास बाद वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदि १४ (ई० स० १६०५ ता० १५ अक्टोबर) मंगलवार को १४ घड़ी रात गये आगरे में अकबर का देहांत हो गया^२।

अकबर के देहावसान के पश्चात् सलीम जहांगीर के नाम से हि० स० १०१४ ता० २० जमादिउस्सानी (वि० सं० १६६२ मार्गशीर्ष वदि ७ = ई०

रायसिंह के मनसब में वृद्धि

स० १६०५ ता० २४ अक्टोबर) बृहस्पतिवार को

लगभग ३८ वर्ष की अवस्था में आगरे में सिंहासना-

रुढ़ हुआ। हि० स० १०१४ ता० ११ जिल्काद

(वि० सं० १६६३ प्रथम चैत्र वदि १२ = ई० स० १६०६ ता० ११ मार्च)

मंगलवार को पहले जुलूस के उत्सव में उसने अपने बहुतसे आफ़सरो के मनसब आदि में वृद्धि की। अकबर के जीवनकाल में रायसिंह का मनसब चार हज़ारी था, जो इस अवसर पर बढ़ाकर पांच हज़ारी कर दिया गया^३।

जहांगीर के पहले राज्य-वर्ष के मध्य में शाहजादा खुसरो वागी होकर पंजाब की तरफ़ भाग गया। पहले तो बादशाह ने अन्य आफ़सरो को उसके पीछे भेजा, परन्तु बाद में उसने स्वयं प्रस्थान किया। इस

(१) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० १६।

(२) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२६०।

(३) तुलुक-इ-जहांगीरी—राजर्से और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० १ और ४६। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २२ और ५२। उमराए हनूद; पृ० २१५। मजरलदास; मन्नासिरुज्ज उमरा (हिन्दी); पृ० ३६०।

रायसिंह का बादशाह की
भाषा के बिना बीकानेर
जाना

अबसर पर रायसिंह को उसने यह कहकर आगरे
में रक्खा था कि जब वेगमों को बुलवाया जाय तो
वह उनको लेकर आवे^१। वेगमों के बुलवाये जाने
पर दो-तीन मंज़िल तक तो वह उनके साथ गया,

पर मथुरा में कुछ अफ़वाहें^२ सुनते ही वह उनका साथ छोड़कर बीकानेर
चला गया और वहाँ से खुसरो की गति-विधि लक्ष्य करने लगा^३।

जब बादशाह को, नागौर के पास दलपत के वाशी हो जाने का
समाचार मिला, तो उसने राजा जगन्नाथ, मुइज्जुल्मुल्क^४ आदि को
शाही सेना-द्वारा दलपत उसपर भेजा। इसके कुछ ही दिनों बाद उसे सूचना
की पराजय मिली कि ज़ाहिदखां^५, अब्दुरहीम^६, राणा

(१) अन्य तवारीखों (इक़्बालनामा; पृ० ६, मआसिर-इ-जहांगीरी; पृ०
७१, फ़ज़वीनी; पृ० ४२) से पाया जाता है कि इस अबसर पर जहांगीर, शेख़ सलीम
के पौत्र शेख़ अलाउद्दीन, मिर्जा गयासुद्दीन तेहरानी, दोस्तमुहम्मद क़वाजाजहां और
रायसिंह की एक सम्मिलित फ़ौज वनाकर राजधानी की हिफ़ाज़त करने के लिए छोड़
गया था और शाहज़ादा ख़ुर्रम इस फ़ौज का अध्यक्ष बनाया गया था।

(२) 'तुलुफ़-इ-जहांगीरी' में आगे चलकर लिखा है कि बादशाह अकबर की मृत्यु
हो जाने पर जब शाहज़ादा खुसरो बागी होकर भागा और जहांगीर उसके पीछे गया
तो रायसिंह ने मानसिंह सेवदा (जैन साधु) से पूछा कि जहांगीर का राज्य कबतक
रहेगा। उसके यह उत्तर देने पर कि अधिक से अधिक दो वर्ष तक रहेगा, रायसिंह
इसपर विश्वास कर शाही आज्ञा प्राप्त किये बिना ही बीकानेर चला गया। परन्तु जब
बादशाह सिकुशल राजधानी को लौट आया तब वह शाही सेवा में उपस्थित हो गया
(राजर्स और बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० १, पृ० ४३७-८)।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ६७।

(४) बारवर्ज ('आर्हने अकबरी' में मशअद दिया है) का सैय्यद।

(५) हिरात के बाकर के पुत्र सादिक़खां का पुत्र। अकबर के समय में इसे
सादे तीन सौ का मनसब प्राप्त था, जो जहांगीर के समय में दो हज़ार हो गया।

(६) शेख़ अबुलफ़ज़ल का पुत्र तथा जहांगीर का दो हज़ारी मनसबदार।
बाद में इसे अफ़ज़लखां का खिताब दिया गया था। जहांगीर के आठवें राज्यवर्ष में
ता० १० खुरदाद (वि० सं० १६७० ज्येष्ठ सुदि ११ = ई० सं० १६१३ ता० २० मई)
को इसकी मृत्यु हुई।

शंकर^१ (सगर) आदि ने दलपत के नागौर के पास होने का पता पा उस-
पर चढ़ाई कर दी और उसे घेर लिया है। दलपत ने कुछ देर तक तो शाही
सेना का सामना किया परन्तु अंत में उसे भागना पड़ा^२।

हि० स० १०१६ ता० ६ शावान (वि० सं० १६६४ माघ सुदि
८ = ई० स० १६०८ ता० १४ जनवरी) को रायसिंह अमीर-उल्-उमरा^३ के
साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ।
रायसिंह का शाही-सेवा में उपस्थित होना ✓ बादशाह ने उसे क्षमा प्रदान की तथा अमीर-उल्-
उमरा के कहने से उसका पुराना पद तथा जागीरें
बहाल रखी गई^४।

जहांगीर के तीसरे राज्यवर्ष में ता० २२ जमादिउल्-अव्वल हि० स०
१०१७ (वि० सं० १६६५ द्वितीय भाद्रपद वदि १० = ई० स० १६०८ ता० २४
दलपत का खानजहां की शरण में जाना अगस्त) को दलपत ने भी खानजहां^५ की शरण
ली, जिसपर उसके अपराध क्षमा कर दिये गये^६।

(१) राणा उदयसिंह का पुत्र तथा राणा अमरसिंह का चाचा। आगे चलकर
इसका मनसब तीन हज़ारी हो गया।

(२) तुजुक-इ-जहांगीरी (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृ० ८४। मुंशी
देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ६६ और ७०।

(३) अबदुस्समद का पुत्र शरीफ़खां। जहांगीर ने इसे पांच हज़ारी मनसब
प्रदान कर अमीर-उल्-उमरा का खिताब दिया। जहांगीर के ७ वें राज्यवर्ष में ता०
२७ आबान (हि० स० १०२१ ता० २३ रमज़ान = वि० सं० १६६६ मार्गशीर्ष वदि १० =
ई० स० १६१२ ता० ८ नवम्बर) रविवार को इसका बुरहानपुर में देहांत हुआ।

(४) तुजुक-इ-जहांगीरी (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृष्ठ १३०-१। मुंशी
देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृष्ठ ६७।

(५) पीरखां लोदी, जिसे जहांगीर ने अपने राज्यकाल में पांच हज़ारी
मनसब तथा खानजहां का खिताब दिया था।

(६) तुजुक-इ-जहांगीरी (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृ० १४८। मुंशी
देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० १०६। अपने हि० स० १०१५ (वि० सं० १६६४ = ई० स०
१६०७) के फ़रमान में जहांगीर ने रायसिंह को लिखा कि दलपत के पिता के विरुद्ध
चढ़ाई करने का समाचार मिला है। यदि यह खबर सच हो तो रायसिंह क़ौरन उसे
सूचित करे ताकि शाही-सेना दलपत को दंड देने के लिए भेजी जाय।

फ़ारसी तवारीखों आदि से जो कुछ वृत्तान्त रायसिंह का ज्ञात हुआ वह ऊपर दिया जा चुका है । अब हम ख्यातों के आधार पर उसके सम्बन्ध की उन घटनाओं का वर्णन करेंगे, जिनका उल्लेख ऊपर नहीं आया है । अधिकांश ख्यातें बहुत पीछे की लिखी हुई होने से उनमें कुछ बातें जनश्रुति के आधार पर भी लिख दी गई हैं, तो भी उनसे कई नई बातों पर प्रकाश पड़ता है, इसलिए उनका उल्लेख करना नितान्त आवश्यक है ।

ख्यातों से पाया जाता है कि वि० सं० १६३३ (ई० सं० १५७६) में कुंवर मानसिंह (अमेर का कछवाहा) के कहलाने पर रायसिंह बादशाह अकबर की सेवा में गया । फिर ६-७ मास दिल्ली रहने पर जब वह बीकानेर लौटा तो उसने नागौर के तोगमखां पर चढ़ाई की, जो उस समय बादशाह का विरोधी हो रहा था । फिर मानसिंह के अकेले पठानों का दमन करने में असमर्थ होने पर बादशाह ने रायसिंह को उसकी सहायतार्थ भेजा, जहां से सफल होकर लौटने पर वि० सं० १६३४ (ई० सं० १५७७) में उसे राजा का खिताब, चार हज़ारी मनसब एवं ५२ परगने दिये गये । पर उपर्युक्त कथन कल्पनामात्र ही प्रतीत होता है, क्योंकि रायसिंह तो वि० सं० १६२७ (ई० सं० १५७०) में अपने पिता की विद्यमानता में ही उसके साथ बादशाह की सेवा में प्रविष्ट हो गया था । फिर उसके तोगमखां को परास्त करने एवं मानसिंह की सहायतार्थ अटक जाने की पुष्टि भी किसी फ़ारसी तवारीख से नहीं होती ।

आगे चलकर ख्यातों में लिखा है कि बादशाह ने फिर उसे अहमदाबाद के स्वामी अहमदशाह पर भेजा, जिसे परास्त कर उसने कैद कर लिया । इस युद्ध में उसके छोटे भाई रामसिंह ने बड़ी वीरता दिखाई । साथ

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २५ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० २४ ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २५-६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० २४ ।

ही उसकी तरफ़ के कितने ही वीरों ने वीर गति पाई' । संभवतः ख्यातकार का आशय अहमदशाह से ऊपर लिखे हुए मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा से हो, परन्तु वह तो वि० सं० १६३० (ई० सं० १५७३) में ही मार डाला गया था ।

वि० सं० १६५२ (ई० सं० १५९५) में मंत्री कर्मचन्द्र अन्य कई मनुष्यों से मिलकर, रायसिंह को गद्दी से उतारने का उद्योग करने लगा । उसका उद्देश्य रायसिंह के पुत्रों में से दलपत को गद्दी पर बैठाने का था, परन्तु इसकी सूचना रायसिंह को मिल जाने से उसने ठाकुर मालदे को उसे (कर्मचन्द्र) मारने के लिए नियत किया । कर्मचन्द्र को किसी प्रकार इसका पता लग गया, जिससे वह सपरिवार भागकर बादशाह-अकबर की सेवा में चला गया^२ ।

दयालदास लिखता है—'वि० सं० १६५४ (ई० सं० १५९७) में बादशाह ने रायसिंह से अप्रसन्न रहने के कारण^३ भटनेर, कसूर आदि की

(१) दयालदास की ख्यात में दिये हुए कुछ नाम ये हैं—

- १—साहोर के रतनसिंह के वंश के अर्जुनसिंह का पुत्र जसवन्त ।
- २—शृंग का वंशज भगवान, भूकरके का स्वामी ।
- ३—नारण का वंशज भोपत, एवारे का स्वामी ।
- ४—नारण का वंशज जैमल, तिहाणदेसर का स्वामी ।
- ५—नारण भीमराज का पुत्र, राजपुर का स्वामी ।
- ६—नाँवा का वंशज सादूल, घोणदे का स्वामी ।
- ७—तेजसिंह के वंशज मानसिंह का पुत्र रायसल, जैतासर का स्वामी ।
- ८—राजसिंह के वंशज सोमसिंह का पुत्र गौरीसिंह, हांसासर का स्वामी ।
- ९—मानसिंह का पुत्र माधोसिंह, पारवे का स्वामी ।
- १०—घड़सी के वंशज अमरसिंह का पुत्र भाण, घड़सीसर का स्वामी ।
- ११—बीदावत केशवदास का पुत्र गोयंददास, बीदासर का स्वामी ।

इनके अतिरिक्त बहुत से दूसरे राठोड़ तथा भाटी सरदार आदि भी काम आये (जि० २, पृ० २६) ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पृ० ३२ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि वीकानेर स्टेट; पृ० २८ ।

(३) ख्यात में दिया हुआ इस नाराज़गी का विस्तृत हाल ऊपर पृ० १८४ टिप्पण ४ में किया है ।

जागीर दलपतसिंह को दे दी, पर शाही सेवा करने के बजाय वह बीकानेर पर चढ़ गया। इसमें उसे सफलता न हुई और बादशाह ने उसकी जागीर खालसे कर ली। इसपर वह दिल्ली गया, जहां बादशाह ने उसका अपराध क्षमा कर उसे फिर मनसब दिया। कुछ दिनों बाद दलपत ने फिर बीकानेर पर चढ़ाई की। रायसिंह के सरदारों ने उसका सामना किया, पर उनकी पराजय हुई और वहां दलपत का अधिकार हो गया। उन दिनों महाराजा रायसिंह दिल्ली में था। वहां से रखसत लेकर वह बीकानेर गया। उसने नागौर से दलपत को बुलाकर गांव आदि दिये, पर कोई परिणाम न निकला और नागौर के पास लड़ाई होने पर महाराजा की पराजय हुई। महाराजा ने एक बार फिर उसे समझाने का प्रयत्न किया, पर इसी बीच दिल्ली से फ़रमान आने पर उसे उधर जाना पड़ा। अनन्तर दलपतसिंह को पता लगा कि सिरसा पर जोहियों, भाटियों व राजपूतों को मारकर जावदीख़ां ने अधिकार कर लिया है, जिसपर उसने वहां जाकर जावदीख़ां को परास्त कर वहां से निकाल दिया। बादशाह को इसकी ख़बर जावदीख़ां द्वारा मिलने पर उसने कछवाहे मनोहरसिंह, हाड़ा रायसाल, हाड़ा परशुराम आदि के साथ एक फौज़ दलपत के विरुद्ध नागौर भेजी। इसपर दलपत भागकर मारोठ चला गया। जब शाही सेना ने वहां भी उसका पीछा किया तब वह फिर भटनेर चला गया, जहां वह शाही सेना द्वारा बन्दी कर लिया गया। बाद में खानजहां की मारफ़त वह छूटा। फ़ारसी तवारीख़ों में जहांगीर के राज्यकाल में दलपत का रायसिंह के विरुद्ध होना, बाद में शाही सेना द्वारा उसका परास्त होना एवं खानजहां के कहने से माफ़ किया जाना लिखा है। संभव है ख्यात का उपर्युक्त कथन उसी घटना से सम्बन्ध रखता हो। इस हिसाब से ख्यात का दिया हुआ समय ठीक नहीं हो सकता।

जहांगीर ने रायसिंह की नियुक्ति दक्षिण में कर दी थी, जिससे वह बीकानेर से सूरसिंह को साथ लेकर बुरहानपुर चला गया। कुछ दिनों

रायसिंह की मृत्यु पश्चात् वह सख्त बीमार पड़ा । उस समय सूरसिंह ने, जो उसके पास ही था, उससे पूछा कि आपकी अभिलाषा क्या है मुझसे कहें । रायसिंह ने उत्तर दिया कि मेरी यही अभिलाषा है कि मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र करनेवालों का समूल नाश कर दिया जाय । सूरसिंह ने उसी समय प्रतिज्ञा की कि यदि मैं बीकानेर का स्वामी हुआ तो आपकी इस आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करूंगा^१ । अनन्तर वि० सं० १६६८ माघ वदि ३० (ई० स० १६१३ ता० २२ जनवरी) बुधवार को उस (रायसिंह) का बुरहानपुर में देहांत हो गया^२ ।

रायसिंह का एक विवाह महाराणा उदयसिंह की पुत्री जसमादे के साथ हुआ था^३ । 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं' से पाया जाता है कि इस राणी से भूपति और दलपत नामक दो पुत्र हुए^४, जिनमें से भूपसिंह (भूपति) कुंवरपदे में ही मर गया^५ । रायसिंह का दूसरा विवाह वि० सं० १६४६ (ई० स० १५६२) में जेसलमेर के रावल हरराज की पुत्री गंगा से हुआ था, जिससे

विवाह तथा सन्तति

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३४ : पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३० ।

(२) श्रीविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १६६८ वर्षे महामहदायिनि माघे मासे कृष्णपक्षे अमावास्यायां बुधे..... श्रीराठोड़ान्वये महाराजा-धिराजमहाराजाश्रीश्रीरायसिंहो देववशात् धर्मध्यानं कुर्वन् सन् दिवंगतस्तेन सहेताः स्त्रियः सत्यो बभूवुः ।.....द्रौपदा । सोढी भाणा । भटियाणी अमोलक ॥

टॉड ने वि० सं० १६८८ (ई० स० १६३१) में रायसिंह के बाद कर्णसिंह का गद्दी बैठना लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३५) । उसने दलपतसिंह तथा सूरसिंह के नामों का उल्लेख तक नहीं किया, जो भूख ही है ।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २६ ।

(४) भूपतिदलपतिनामकसुतौ च असंवत्तदेविजौ यस्य ॥३३॥

(५) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३४ ।

सूरसिंह का जन्म हुआ। उसी वर्ष माघ सुदि १५ को तीसरी राणी निरवाण से किशनसिंह का जन्म हुआ। इनके अतिरिक्त सोढ़ी भाणमती, भठियाणी अमोलक तथा तंवर द्रौपदी नाम की तीन राणियाँ और थीं, जिनके सती होने का उल्लेख रायसिंह की स्मारक छत्री में है।

वैसे तो बीकानेर के राजाओं का मुसलमानों से मेल शेरशाह के समय से ही हो चुका था, परन्तु उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध महाराजा रायसिंह

के समय से प्रारम्भ होता है। जिस सम्बन्ध का रायसिंह का शाही सम्मान

सूत्रपात राव कल्याणमल ने अकबर के १५ वें राज्यवर्ष में उसकी सेवा में उपस्थित होकर किया, उसको रायसिंह ने उत्तरोत्तर बढ़ाया। अकबर बड़ा ही योग्य शासक था और योग्य व्यक्तियों का सम्मान करने में वह हमेशा तत्पर रहता था। रायसिंह अकबर के वीर तथा कार्य-कुशल एवं राजनीति-निपुण योद्धाओं में से एक था। बहुत थोड़े समय में ही वह उस(अकबर)का प्रीतिपात्र बन गया। अकबर के राज्य का हम उसे एक सुदृढ़ स्तंभ कह सकते हैं। अधिकांश लड़ाइयों में अकबर की सेना का रायसिंह ने सफलतापूर्वक संचालन किया। गुजरात, काबुल, दक्षिण, हर तरफ़ उसने अपने वीरोचित गुणों का प्रदर्शन किया। फलस्वरूप कुछ ही दिनों में वह अकबर का चार हज़ारी मनसबदार हो गया। फिर जहांगीर के गद्दी बैठने पर उसका मनसब पाँच हज़ारी हो गया। अकबर के समय हिन्दू नरेशों में जयपुर के बाद बीकानेरवालों का ही सम्मान बढ़ा-चढ़ा था।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३१-३२।

‘कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं’ में भी निर्वाणकुल की स्त्री से कचरा नाम के पुत्र होने का उल्लेख है (श्लोक ३३३)।

किशनसिंह को राजा सूरसिंह ने सांखु की जागीर दी। इसके वंशज किशनसिंहोंत बीका कहलाये।

रॉड ने रायसिंह के केवल एक पुत्र कर्ण का होना लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३५), परन्तु कर्ण तो रायसिंह का पौत्र था।

अकबर और जहांगीर का विश्वासपात्र होने के कारण विशेष अवसरों पर रायसिंह की नियुक्ति हुआ करती थी और समय-समय पर उसे बादशाह की ओर से जागीरें भी मिलती रहीं। वि० सं० १६५४ (ई० सं० १५९७) से पहले ही जूनागढ़ और सोरठ के ज़िले रायसिंह को जागीर में मिल गये थे।

पाउलेट ने 'गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट' में अकबर के ४३ वें राज्यवर्ष के रबीउलअव्वल (वि० सं० १६५६ = ई० सं० १५९९) के उस फ़रमान का उल्लेख किया है, जिसमें रायसिंह को निम्नलिखित परगने मिलना लिखा है'—

बीकानेर

बीकानेर	३२५०००० दाम
वाटलोद	६४०००० „
	<hr/>
	३८९०००० „

हिसार

वारथल	६०००३२ „
सीदमुख	७२१५२ „
	<hr/>
	१०५२१८४ „

सूबा अजमेर

द्रोणपुर	७८१३८६ „
	<hr/>
	७८१३८६ „

भटनेर

भटनेर (सरकार हिसार में)	६३२७४२ „
---------------------------	----------

(१) पृ० २५ । दयालदास ने भी अपनी ख्यात में नागरी-लिपि में कई फ़रमानों की फ़ारसी-इबारत की प्रतिलिपि दी है (जि० २, पन्ना २८-३०) ।

मारोठ (सरकार मुल्तान में)

२८०००० दाम

१२१२७४२ ,,

सरकार सूरत (सोरठ)

जूनागढ़ तथा अन्य ४७ परगने

३३२६६६६२ ,,

३३२६६६६२ ,,

कुलजोड़ ४०२०६२७४ दाम^२

(अर्थात् अनुमान १००५१५७ रुपये)।

वि० सं० १६५७ (ई० सं० १६००) में सरकार नागोर आदि के परगने भी उसकी जागीर में शामिल कर दिये गये^३। वि० सं० १६६१ (ई० सं० १६०४) में परगना शम्सावाद के दो भाग कर दोनों ही रायसिंह को दे दिये गये। बादशाह अकबर रायसिंह को कितना मानता था यह इसी से स्पष्ट है कि जब एक चार रायसिंह ने शाही सेवा में पन्नादि भेजना बंद कर दिया तो शाहजादे सलीम की मुहर का निम्नलिखित आशय का निशान उसके पास पहुंचा^४—

“साम्राज्य के विश्वासपात्र, शाही सम्मानों के योग्य राय रायसिंह ने, जिसे शाही कृपाओं तथा उपकारों की प्रतिष्ठा प्राप्त है, अपनी गत

(१) यह सोरठ ही होना चाहिये। फारसी लिपि की अपूर्णता के कारण ही यह भ्रमता आ गई है।

(२) तत्कालीन प्राचीन तांबे का सिक्का, जिसका मूल्य आजकल के रुपये के चालीसवें अंश के बराबर था। उस समय राज्यों की आमदनी बहुत कम थी।

(३) अकबर का इलाही सन् ४५ ता० ३ आबान (हि० सं० १००६ ता० १७ द्वाबिउस्सानी=वि० सं० १६५७ कार्तिक चदि ४=ई० सं० १६०० ता० १५ अक्टोबर) का फरमान।

(४) इलाही सन् ४७ ता० ४ आज़र (हि० सं० १०११ ता० ११ जमादि-उस्सानी=वि० सं० १६५६ मार्गशीर्ष सुदि १२=ई० सं० १६०२ ता० १६ नवम्बर) का निशान।

सेवाओं को भूलकर, शाह को अपनी स्मृति देलाना बन्द कर दिया है।

“तथापि (उसकी लापरवाही का कुछ भी विचार न करके) शाह के हृदय में साम्राज्य के सब से बड़े शुभचिंतक (रायसिंह) की प्रायः दरेक शुभ अवसर पर स्मृति आती रही है।

“अतएव, रायसिंह को उचित है कि गत समय के आचरण के विरुद्ध, वह अब से सदैव पत्र भेजा करे, जिनके उत्तर में उसे शाही कृपा-पत्रों से सम्मानित किया जायगा।”

यही नहीं बादशाह अकबर के रुग्ण होने पर वि० सं० १६६२ (ई० सं० १६०५) में शाहज़ादे सलीम की मुहर का, नीचे लिखे आशय का एक और निशान उसे प्राप्त हुआ—

“साम्राज्य के आधार-स्तम्भ, शाही कृपाओं के योग्य तथा बहुत-से उपहारों से सम्मानित रायसिंह को सूचित किया जाता है कि शाहशाह गत कुछ दिनों से बहुत कमज़ोर हो गये हैं और उनकी कमज़ोरी अब तक वैसी ही बनी हुई है।

“अतएव यह आवश्यक है कि साम्राज्य का आधार (रायसिंह) शाही दरबार में शीघ्रातिशीघ्र रात और दिन अधिक से अधिक चलकर पहुंच जावे। किसी भी कारण से उसे रुकना नहीं चाहिये।”

बाद में जब शाहज़ादा सलीम जहांगीर के नाम से गद्दी पर बैठा और शाहज़ादे खुसरो के पीछे गया तो उसने बेगमों के साथ आने के लिए रायसिंह को आगरे में रख दिया था। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक विषय में रायसिंह का इन बादशाहों के दिल में बड़ा सम्मान और विश्वास था। साथ ही रायसिंह के पुत्रों तथा रिश्तेदारों को भी शाही दरबार में सम्मानित स्थान प्राप्त था।

महाराजा रायसिंह के नाम के तेरह फ़रमान तथा निशान हमारे देखने में आये हैं।

(१) इलाही सन् ५० ता० २६ मेहर (हि० सं० १०१४ ता० ७ जमादि-उस्त्रानी = वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदि १० = ई० सं० १६०५ ता० ११ अक्टोबर) का निशान।

ख्यातों में रायसिंह की दानशीलता का बहुत उल्लेख मिलता है ।
 उदयपुर और जैसलमेर में अपने विवाह के समय उसने चारणों आदि
 को बहुत कुछ दान दिया था । इसके अतिरिक्त
 उसने कई अबसरों पर अपने आश्रित कवियों
 और ख्यातकारों को करोड़ और सवा करोड़
 पसाव दिये थे । मुंशी देवीप्रसाद ने लिखा है—‘यदि चारणों की बातें
 मानें और बीकानेर के इतिहास को सत्य जानें तो यह (रायसिंह) राज-
 पूताने के कर्ण ही थे ।’ उसके समय में कवियों और विद्वानों का
 बड़ा सम्मान होता था और वह स्वयं भी भाषा और संस्कृत दोनों
 में उच्च कोटि की कविता कर लेता था । उसके आश्रय में कई
 अति उत्तम ग्रन्थों का निर्माण हुआ । उसने स्वयं भी ‘रायसिंह

(१) ऐसा प्रसिद्ध है कि एक बार रायसिंह ने शंकर वारहट को करोड़ पसाव
 देने का हुक्म दिया । दीवान ने रुपये खजाने से निकलवा तो दिये, परन्तु देखकर दिलवाये
 जाने की प्रार्थना की । रायसिंह उसके मन्तव्य को समझ गया और उसने रुपये देखकर कहा
 कि बस करोड़ रुपये यही हैं । मैं तो समझता था कि बहुत होते हैं । सवा करोड़ दिये जावें ।

(२) राजसनामृत; पृ० ३६ ।

(३) महाराजा रायसिंह के समय बीकानेर में रहकर जैन साधु ज्ञानविमल ने
 कार्तिकादि वि० सं० १६२४ आषाढ सुदि २ (चैत्रादि वि० सं० १६२५ = ई० सं०
 १६२६ ता० २५ जून) रविवार को महेश्वर के ‘शब्दभेद’ की टीका समाप्त की थी—

श्रीमद्विक्रमनगरे राजच्छीराजसिंहनृपराज्ये ।

संक्षोभचक्रवाकप्रमोदसूर्योदये सम्यक् ॥ २४ ॥

चतुराननवदनैन्द्रियरसवसुधासंमिते लसद्दर्भे ।

श्रीमद्विक्रमनृपतौ निःक्रान्ते (१६५४) तीव्रकृतहर्षे ॥ २५ ॥

शुभोपयोगे शुभयोगयुक्ते चरे द्वितीयादिवसेतिशुद्धे ।

आषाढमासस्य विशुद्धपक्षे पुष्यर्तुसंयुक्तगमस्तिवारे ॥ २६ ॥

संदब्धा वृत्तिरियं विद्वज्जनवृंदवाच्यमाना वै ।

तावन्नंदतु वसुधा चंद्रादित्यादयो यावत् ॥ २७ ॥

शुभिः कृतकम् ॥

महोत्सव' और 'ज्योतिष रत्नाकर' (रत्नमाला)^२ नाम के दो अमूल्य ग्रन्थ लिखे। इनमें से पहला ग्रन्थ बहुत बड़ा और वैद्यक का तथा दूसरा ज्योतिष का है, जो रायसिंह की तद्विषयक योग्यता प्रकट करते हैं।

एक बार दक्षिण में नियुक्त होने पर उस निर्जन स्थान में एक 'फोग' का वूटा देखकर उसने निम्नांकित भावमय दोहा कहा था—

तू सैदेशी रूखड़ा, मैं परदेशी लोग ।

महाँने अकबर तोड़िया, तू क्यों आयो 'फोग' ॥

यह पुस्तक जैसलमेर के जैन पुस्तक-भंडार में सुरक्षित है।

किसी अज्ञात कवि ने महाराजा रायसिंह की प्रशंसा में बेलिया गीतों में 'राजा रायसिंह री बेल' नामक पुस्तक की रचना की थी। इसमें कुल ४३ गीत हैं, जिनमें उसकी गुजरात की लड़ाइयों आदि का उल्लेख है।

(टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑफ् वार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनु-स्क्रिप्ट्स; सेक्शन २, पार्ट १; पृ० ५६, बीकानेर)।

(१) इति श्रीराठोडान्वयकमलकाननविकाशनदिनकरमहा-
राजाधिराजमहाराजाश्रीरायसिंहविरचिते श्रीरायसिंहोत्सवे वैद्यकसारसंग्रहा-
परनामनि ग्रंथे मिश्रवर्गकथननामचतुःषष्टितमो विश्रामः ॥ ६४ ॥

(मूल ग्रन्थ का अन्तिम भाग)।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में राव सीहा (सिंह) से लगाकर रायसिंह तक की संस्कृत श्लोकों में वंशावली देकर रायसिंह का भी कुछ वृत्तान्त दिया है। यह पुस्तक बीकानेर-दुर्ग के राजकीय पुस्तक-भंडार में सुरक्षित है।

(२) मुंशी देवीप्रसाद ने इस पुस्तक का नाम 'ज्योतिषरत्नाकर' लिखा है, जो ठीक नहीं है। मूल पुस्तक के देखने से पाया जाता है कि श्रीपति-रचित 'ज्योतिष रत्नमाला' की उस (महाराजा रायसिंह) ने 'बालबोधिनी' नाम की भाषाटीका की थी। वि० सं० १६४१ पौष वदि ११ (ई० स० १५८४ ता० १७ दिसम्बर) गुरुवार की उक्त पुस्तक की हस्तलिखित प्रति के अन्त में लिखा है—

इतिश्री श्रीपतिविरचितायां ज्योतिषरत्नमालायां भाषाटीकायां परम-
कारुणिकमहाराजाधिराजमहारायश्रीरायसिंहविरचितायां बालावबोधिन्यां
देवप्रतिष्ठा प्रकरणं विंशतितमं ॥ २० ॥

आदर करता और समय-समय पर उन्हें सहायता देकर प्रोत्साहन देता था। उसके आश्रय में रहकर कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों और टीकाओं का निर्माण हुआ। उसने स्वयं 'रायसिंहमहोत्सव' और 'ज्योतिषरत्नमाला' की भाषा टीका की रचना की। बीकानेर दुर्ग के भीतर की उसकी खुदवाई हुई बृहत् प्रशस्ति इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्व की है। वह बड़ा दानशील भी था। ख्यातों आदि में विवाह तथा अन्य अवसरों पर उसके चारणों आदि को सवा करोड़ पसाव तक देने का उल्लेख है।

उसको भवन निर्माण का भी बड़ा शौक था। बीकानेर का सुदृढ़ और विशाल किला उसकी आज्ञा से उसके मंत्री कर्मचंद ने बनवाया था। ख्यातों से पाया जाता है कि उसके बनवाने में पांच वर्ष का दीर्घ समय लगा था। रायसिंह स्वभाव का बड़ा नम्र, उदार और दयालु था। प्रजा के कष्टों की ओर भी उसका ध्यान सदैव बना रहता था। वि० सं० १६३५ (ई० सं० १५७८) के सर्वदेशव्यापी दुर्भिक्ष में राज्य की तरफ से तेरह महीने तक अन्नसत्र खुला रहा और जुधा एवं रोगग्रस्त प्रजाजनों के कष्ट दूर करने तथा उन्हें आराम पहुंचाने का हर एक प्रयत्न किया गया। हिन्दू धर्म में उसकी आस्था अधिक होने पर भी वह इतर धर्मों का समादर करता था। उसका मंत्री कर्मचंद्र जैन धर्मावलम्बी था, जिसके उद्योग से उस (रायसिंह) के समय में अनेकों जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार

(१) आत्रयोदशमासं यः पंचत्रिंशेऽथ वत्सरे ।

पवित्रं सत्रमारेभे दुर्भिक्षे सार्वदेशिके ॥ १६८ ॥

रोगग्रस्ताबलक्ष्णीजनानां यः कृपानिधिः ।

पञ्चौषधप्रदानं च निर्ममस्तत्र निर्ममौ ॥ १६९ ॥

अतिसारामयग्रस्तान् त्रस्तान् कूरकरंभकैः ।

प्रीणयामास पुण्यात्मा सर्वशालासु मानवान् ॥ १७० ॥

(कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्) ।

हुआ'। प्रसिद्ध है कि जब तरसूखां (तुरसमखां) ने सिरोही पर आक्रमण कर उसे लूटा, उस समय वहां के जैन मंदिरों से सर्वधातु की बनी हुई एक हजार जैन मूर्तियां वह अपने साथ ले गया। उनको गलवाकर उनमें से वह स्वर्ण निकालना चाहता था। यह बात ज्ञात होते ही महाराजा रायसिंह ने बादशाह से निषेदन कर वे सब मूर्तियां हस्तगत कर लीं और अपने मंत्री कर्मचंद्र के पास पहुंचा दीं, जिसने उनको बीकानेर के जैन मंदिर में रखवा दिया^१। 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं' में उसे 'राजेन्द्र' कहा है और उसके सम्बन्ध में लिखा है कि वह विजित शत्रुओं के साथ भी बड़े सम्मान का व्यवहार करता था^३।

महाराजा दलपतसिंह

ख्यातों से रायसिंह के ज्येष्ठ कुंवर दलपतसिंह का जन्म वि० सं० १६२१ फाल्गुन वदि ८ (ई० स० १५६५ ता० २४ जनवरी) को होना पाया जाता है^५। अपने पिता की विद्यमानता में उसने जो-जो कार्य किये उनका वर्णन रायसिंह के साथ

(१) शत्रुंजये मध्वपन्ने जीर्णोद्धारं चक्रार यः ।

येनैतत्सदृशं पुण्यकारणं नास्ति किञ्चन ॥ ३१३ ॥

(कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्) ।

(२) ये मूर्तियां अब तक बीकानेर के एक जैन मंदिर के तहखाने में रखी हुई हैं और जब कभी कोई प्रसिद्ध जैन आचार्य आता है, तब उनका पूजन-अर्चन होता है। पूजन में अधिक व्यय होने के कारण ही वे पीछी तहखाने में रख दी जाती हैं।

(३) चतुःपर्वी समग्रोपि कारुलोको यदाज्ञया ।

पास्तयामास राजेन्द्रराजसिंहस्य मंडले ॥ ३१८ ॥

या बंदी निजसैन्ये समागता वैरिविषयसंभूता ।

मस्त्राज्ञदानपूर्व सा नीता येन निजगेहे ॥ ३२५ ॥

(कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्) ।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३४। पाठलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३० ।

यथास्थान कर दिया गया है।

दलपतसिंह के ज्येष्ठ होने पर भी अपनी भटियाणी राणी गंगा पर विशेष प्रेम होने के कारण रायसिंह की इच्छा थी कि उसके बाद उसका

पुत्र सूरसिंह बीकानेर का स्वामी हो। अतएव

जहांगीर का दलपतसिंह

को टीका देना

उसने उस(सूरसिंह)को ही अपना उत्तरा-

धिकारी नियत किया था। रायसिंह का दक्षिण में

देहांत हो जाने पर दलपतसिंह बीकानेर की गद्दी पर बैठा। जहांगीर के

सातवें राज्यवर्ष की ता० १६ फ़रवरदीन (हि० सं० १०२१ ता० ४ सफ़र=वि०

सं० १६६६ चैत्र सुदि ६=ई० सं० १६१२ ता० २८ मार्च) को वह बादशाह

की सेवा में उपस्थित हुआ, जिसने उसे राय का खिताब देकर खिलअत

प्रदान की। सूरसिंह भी इस अवसर पर दरबार में उपस्थित था। उसने

उद्वंड भाव से कहा कि मेरे पिता ने मुझे टीका दिया है और अपना

उत्तराधिकारी बनाया है। जहांगीर इस वाक्य को सुनकर बड़ा रुष्ट

हुआ और उसने कहा कि यदि तुझे तेरे पिता ने टीका दिया है तो मैं

दलपतसिंह को टीका देता हूँ। इसपर उसने अपने हाथ से दलपतसिंह

के टीका लगाकर उसका पैतृक राज्य उसे सौंप दिया^१।

कुछ दिनों बाद जब ठट्टा में एक अफ़सर भेजने की आवश्यकता

हुई, तो बादशाह ने मिर्ज़ा रुस्तम^२ के मनसब में वृद्धि कर ता० २ शहरेवर

(१) वि० सं० १६६८ चैत्र वदि ४ से १६६९ चैत्र वदि १४ (ई० सं० १६१२ ता० १० मार्च से ई० सं० १६१३ ता० ६ मार्च) तक।

(२) तुजुक-इ-जहांगीरी— राजसंकृत अनुवाद; जि० १, पृ० २१७-८। उमरा-ए-हन्द; पृ० १६४। ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३६१-२। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० १५२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८८।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में दलपतसिंह का वि० सं० १६६८ में पाट बैठना लिखा है (जि० २, पृ० १६६)।

(३) यह फ़ारस के बादशाह शाह इस्माइल के पौत्र मिर्ज़ा सुलतान हुसेन का पुत्र था, जो हि० सं० १००१ (वि० सं० १६४६=ई० सं० १५९२) में बादशाह अकबर की सेवा में प्रविष्ट हुआ। इसकी साम्राज्य के अमीरों में गणना होती थी और बड़े-बड़े

दलपतसिंह का ठट्ठा
भेजा जाना

(हि० स० १०२१ ता० २६ जमादिउस्सानी = वि०
सं० १६६६ भाद्रपद वदि १३ = ई० स० १६१२ ता०
१४ अगस्त) को उसे वहां का हाकिम बनाकर

भेजा । इस अवसर पर दलपतसिंह का मनसब भी बढ़ाकर 'डेढ़ हज़ारी'
से दो हज़ारी' कर दिया गया तथा बादशाह ने उसे भी मिर्ज़ा खुस्तम का
सहायक बनाकर ठट्ठा भेजा^१ । 'उमराए हनुद' में लिखा है—'इस अवसर
पर दलपतसिंह ठट्ठा जाने के बजाय सीधा बीकानेर चला गया'^२ । इससे
बादशाह की उसपर फिर अप्रसन्नता हो गई और वह उसके विरुद्ध
हो गया ।

आसपास के भाटियों पर अधिक नियन्त्रण रखने के लिए दलपत-
सिंह ने चूड़ेहर (वर्तमान अनूपगढ़ के निकट) में एक गढ़ बनवाना

आरम्भ किया, परन्तु इस कार्य का भाटी बराबर
दलपतसिंह का चूड़ेहर में गढ़
बनवाने का असफल प्रयत्न
विरोध करते रहे, जिससे वह कृतकार्य न हो सका ।
वि० सं० १६६६ मार्गशीर्ष वदि ३ (ई० स० १६१२
ता० १ नवंबर) को भाटियों ने वहां का थाना भी उठवा दिया^३ ।

कार्य इसे सौंपे जाते थे । हि० स० १०५१ (वि० सं० १६९८ = ई० स० १६४१)
में आगरे में इसका देहांत हुआ ।

(१) अकबर के समय में इसका मनसब केवल पांच सौ था । संभव है बाद
में बढ़कर डेढ़ हज़ारी हो गया हो, पर ऐसा कब हुआ इसका पता नहीं चलता ।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा पृ० १५६ । उमराए हनुद; पृ० १६४ ।
मजरलदास; मथ्यासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३६२ ।

'तुजुक-इ-जहांगीरी' (राजर्स और वेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० २२६) में
'ठट्ठा' के स्थान में 'पटना' लिखा है । मुंशी देवीप्रसाद के मतानुसार 'पटना' पाठ अशुद्ध
है, शुद्ध पाठ 'ठट्ठा' होना चाहिये ।

(३) उमराए हनुद; पृ० १६४ ।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३४ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव्
बीकानेर स्टेट; पृ० ३१ ।

रायसिंह ने सूरसिंह को ८४ गांवों के साथ फलोधी दी थी, जहां वह रहता था। दलपतसिंह ने अपने मुसाहब पुरोहित मानमहेश के कहने में आकर फलोधी के अतिरिक्त अन्य सब गांव खालसा कर लिये। अन्य लोगों ने इस सम्बन्ध में उसे बहुत समझाया, परन्तु उसके दिल में उनकी बात न जमी। तब सूरसिंह एक बार पुरोहित मानमहेश से मिला, परंतु वहां से भी जब उसे निराशा हुई तब वह दो मास वीकानेर ठहरकर फिर फलोधी चला गया, जहां से उसने पुरोहित लक्ष्मीदास को बादशाह की सेवा में भेजा^१।

जिन दिनों सूरसिंह वीकानेर में था उन दिनों उसकी माता ने सोरम (सोरों) की यात्रा करने की इच्छा प्रकट की थी, अतएव चार मास फलोधी में रहने के उपरान्त वह फिर वीकानेर गया और वहां से अपनी माता को साथ ले उसने सोरम तीर्थ की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में वह सांगानेर में ठहरा जहां कछुवाहे राजा मानसिंह से उसका मिलना हुआ। चार दिन बाद मानसिंह तो आगे चल गया और सूरसिंह अपनी माता-सहित सीधा सोरों पहुंचा। उसी स्थान पर उसके पास बादशाह का फरमान पहुंचा, जिसके अनुसार वह दिल्ली गया जहां बादशाह ने वीकानेर का राज्य उसे दे दिया तथा दलपतसिंह को गद्दी से हटाने के लिए नवाब जावदीनखां (ज़ियाउद्दीनखां) एक विशाल सैन्य के साथ उसकी सहायता को भेजा गया^२।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३४-५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि वीकानेर स्टेट; पृ० ३१।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि वीकानेर स्टेट; पृ० २१।

‘उज्जुफ-इ-जहांगीरी’ में इसका उल्लेख नहीं है।

सूरसिंह के शाही फ़ौज के साथ आने पर दलपतसिंह भी अपनी सेना सहित छापरे में आया। दोनों दलों में युद्ध होने पर जावदीन (ज़ियाउद्दीन) खां भाग गया और दलपतसिंह की विजय हुई। तब जावदीन खां ने दिल्ली से और सहायता मंगवाई। इस अवसर पर

दलपतसिंह का हारना और कैद होना

सूरसिंह ने बड़े साहस और बुद्धिमत्ता से कार्य लिया। उसने दलपतसिंह के प्रायः सभी सरदारों को, जो उसके दुर्व्यवहार के कारण पहले से ही असन्तुष्ट थे, अपनी तरफ़ मिला लिया। केवल ठाकुरसी जीवणदासोत, जो उस समय दलपतसिंह की ओर से भटनेर का शासक था, उसका पक्षपाती बना रहा। दूसरे दिन लड़ाई छिड़ने पर दलपतसिंह हाथी पर चढ़कर युद्धक्षेत्र में आया। उस समय उसके पीछे खवासी में चूरु का ठाकुर भीमसिंह बलभद्रोत बैठा था। सेनाओं की मुठभेड़ होते ही विरोधी सरदारों ने इशारा किया, जिसपर भीमसिंह ने पीछे से दलपतसिंह के हाथ पकड़ लिये। फिर वह (दलपतसिंह) कैद कर हिसार भेजा गया, जहाँ से अजमेर पहुँचाया जाकर बन्दी कर दिया गया।

‘तुजुक-इ-जहांगीरी’ में लिखा है कि आठ वें राज्यवर्ष^२ में हि० सं० १०२२ ता० ११ रज्जब (वि० सं० १६७० भाद्रपद सुदि १३=ई० सं० १६१३ ता० १८ अगस्त) को बादशाह के पास सूरसिंह द्वारा, जिसे उसने विद्रोही दलपतसिंह को हटाने के लिए नियुक्त किया था, उस (दलपतसिंह) के हराये जाने का समाचार पहुँचा। फिर दलपतसिंह ने हिसार की सरकार में उपद्रव करना शुरू किया, जिससे खोस्त के हाशिम एवं अन्य जागीरदारों ने उसे गिरफ़्तार करके बादशाह की सेवा में भेज दिया। दलपतसिंह के साम्राज्य-

जहांगीर-द्वारा दलपतसिंह का मरवाया जाना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २; पत्र ३५-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८६-६०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३१।

(२) वि० सं० १६६६ चैत्र वदि अमावास्या से वि० सं० १६७१ चैत्र सुदि १० (ई० सं० १६१३ ता० ११ मार्च से ई० सं० १६१४ ता० १० मार्च) तक।

विरोधी आचरण से बादशाह पहले से ही उसपर कुपित था, अतएव उसे मृत्यु-दंड दे दिया गया। सूरसिंह की सेवाओं के बदले में उसका मनसब पहले से पांच सौ अधिक कर दिया गया।^१

दलपतसिंह की मृत्यु के विषय में ख्यातों में यह लिखा है कि हिसार से अजमेर भेजे जाने पर दलपतसिंह वहां पर ही (आनासागर के बंद के नीचे के जहांगीरी महलों में) सौ सैनिकों के निरीक्षण में कैद कर दिया गया। उन्हीं दिनों अपनी ससुराल को जाता हुआ चांपावत हाथीसिंह

ख्यातों और दलपतसिंह
की मृत्यु

(गो गालदासोत) दलपतसिंह के बन्दीगृह के निकट ठहरा। दलपतसिंह ने उससे मिलने की अभिलाषा प्रकट की, परन्तु चौबदारों ने आज्ञा न दी। तब हाथीसिंह ने कहा कि मैं ससुराल से लौटते समय अवश्य मिलूंगा। इसपर दलपतसिंह ने कहा कि मैं उस समय तक जीवित रहूंगा इसमें मुझे सन्देह है। तब तो हाथीसिंह ने अपने राठोड़ों से सलाह की कि जीवन-सार्थक करने का ऐसा अवसर फिर न जाने कब आवे। हम भी राठोड़ हैं और यह भी राठोड़, अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम इसके लिए प्राण दे दें। ऐसा विचार कर वि० सं० १६७० फाल्गुन वदि ११ (ई० सं० १६१४ ता० २५ जनवरी) को केसरिया घाना पहनकर वे सब दलपतसिंह के रक्तकों पर दूट पड़े और उन्हें मारकर उसे निकाल अपने साथ ले चले। जब अजमेर के सूबेदार को इस घटना की खबर मिली तो उसने चार हज़ार फौज के साथ उनको घेर लिया। फलस्वरूप दलपतसिंह, हाथीसिंह^२

(१) जि० १, पृ० २५८-६। उमराए हनुद (पृ० १६४) में भी ऐसा ही लिखा है।

अपने ८ वें राज्यवर्ष ता० २ बहमन (हि० सं० १०२२-ता० १० जिलाहज = वि० सं० १६७० माघ सुदि ११ = ई० सं० १६१४ ता० ११ जनवरी) के क्रूरमान में जहांगीर ने दलपत की पराजय और सूरसिंह की वीरता का उल्लेख किया है।

(२) इस खैरखवाही के बदले में हरसोलाव (मारवाड़) के ठाकुर बीकानेर में सूरजपोल तक घोड़े पर सवार होकर जा सकते हैं। दूसरे सरदार, जिनको सवारी पर बैठकर भीतर जाने की इज़्जत नहीं है, किले के बाहर ही घोड़े से उतर जाते हैं।

आदि सब राठोड़ मारे गये । दलपतसिंह के मारे जाने की सूचना भटनेर पहुँचने पर उसकी छः राखियां सती हो गईं ।

महाराजा सूरसिंह

महाराजा रायसिंह के दूसरे कुंवर सूरसिंह का जन्म वि० सं० १६५१ पौष वदि १२ (ई० सं० १५६४ ता० २८ नवंबर) को होना ख्यातों से जन्म और गद्दीनशीनी पाया जाता है^२ । बादशाह (जहांगीर) की आज्ञा से अपने बड़े भाई दलपतसिंह को परास्त कर वि० सं० १६७० (ई० सं० १६१३) में वह बीकानेर की गद्दी पर बैठा^३ ।

अनन्तर सूरसिंह दिल्ली गया, जहाँ बादशाह ने उसके मनसब में वृद्धि की । कर्मचन्द्र के वंशज लक्ष्मीचन्द्र, भागचन्द्र (सोभागचन्द्र) आदि उस समय दिल्ली में ही थे; उनकी बहुत खातिर कर वहाँ से लौटते समय सूरसिंह उन्हें अपने संग बीकानेर ले गया और दीवान के पद पर नियुक्त

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३५ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४६०-१ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३१-२ ।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी भटनेर समाचार पहुँचने पर दलपतसिंह की ६ राखियों का सती होना लिखा है (जि० २, पृ० १६६) ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३२ ।

चंद्र के यहाँ से मिले हुए प्राचीन जन्मपत्रियों के संग्रह में भी यही समय दिया है ।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३२ ।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी सूरसिंह का वि० सं० १६७० (ई० सं० १६१३) में बीकानेर का स्वामी होना लिखा है (जि० २, पृ० १६६) ।

‘तुजुक-इ-जहांगीरी’ से भी पाया जाता है कि वि० सं० १६७० में सूरसिंह ने दलपतसिंह को परास्त किया, जिसकी सूचना बादशाह के पास हि० सं० १०२३

कर दिया। मरते समय कर्मचन्द्र ने अपने पुत्रों का सूरसिंह की तरफ से सचेत कर दिया था, परन्तु वे उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में फंस गये। सूरसिंह को अपने पिता के अन्त समय की हुई अपनी प्रतिज्ञा याद थी। अतएव दो मास बीतने पर चार हजार सैनिक भेजकर उसने उनके मकानों को घेर लिया। लक्ष्मीचन्द्र तथा भागचन्द्र के पास उस समय ५०० राजपूत थे। जब उन्होंने देखा कि अब बचकर निकल जाना कठिन है, तो अपने परिवार की स्त्रियों को मारकर तथा अपनी सम्पत्ति नष्टकर वे अपने ५०० राजपूतों सहित वीकानेर के सैनिकों पर दूट पड़े और वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारे गये। केवल उनके वंश का एक बालक, जो उन दिनों अपनी ननिहाल (उदयपुर) में था, बच गया, जिसके वंशज 'उदयपुर में अब तक विद्यमान हैं'।

फिर सूरसिंह ने उसी वर्ष पुरोहित मान महेश^१ और वारहट चौथ^२ की जागीरें जूत कर लीं। इसका विरोध करने के लिए वे वीकानेर गये,

परन्तु जब कुछ सुनवाई नहीं हुई, तो दोनों चिता पिता के साथ विश्वासघात करनेवालों को मरवाना लगाकर जल मरे। उसी दिन से तोलियासर के पुरोहितों से 'पुरोहिताई' तथा वारहटों से 'पोलपात' और उनके 'नेग' का हक जाता रहा एवं उनके स्थान में डांडसर के चारण को वह हक मिलने लगा। पिता के विरुद्ध विद्रोह करनेवालों में से सारण भरथा (जाट) बच रहा था उसे भी उसने द्रोणपुर के

ता० ११ रज्जव (वि० सं० १६७० भाद्रपद सुदि १२ = ई० सं० १६१३ ता० १७ अगस्त) को पहुंची, तब सूरसिंह का मनसब बढ़ाया गया (जि० १, पृ० २५८-६)।

(१) इनके विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास,' जि० २, पृ० १३११-२३।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पृ० ३६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१-२।

(३-४) ये दोनों भी रायसिंह के विरुद्ध किये हुए पट्टन में कर्मचन्द्र के सहायक थे।

गोपालदास सांगावत^१ के हाथ से मरवा डाला^२। इस प्रकार अपने पिता के विरोधियों को उपयुक्त दंड दे, खुरसिंह ने उसकी मृत्यु-शैय्या के निकट की हुई अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

दयालदास लिखता है कि जब शाहज़ादा खुर्रम^३ बागी होकर दिल्ली से निकल गया और दक्षिण के सूबों में उसके उपद्रव करने का समाचार

(१) ठाकुर बहादुरसिंह की लिखी हुई बीदावतों की ख्यात में भी लिखा है कि सारण भरथा एवं ईसर को मारने के लिए गोपालदास की नियुक्ति हुई थी। गोपालदास बीदा के वंश के संसारचन्द के पुत्र सांगा का तीसरा पुत्र था। बाद में यही द्रोणपुर का स्वामी हुआ (भाग १, पृ० १३६)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४६२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३३।

(३) शाहज़ादा खुर्रम जहांगीर का बड़ा ही प्रिय पुत्र था, जिसकी उसने बहुत प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। उसको वह अपना उत्तराधिकारी भी बनाना चाहता था, परन्तु बादशाह अपने राज्य के पिछले वर्षों में अपनी प्यारी बेगम नूरजहां के हाथ की कठपुतली सा हो गया था, जिससे वह जो चाहती वही उससे करा लेती थी। नूरजहां ने अपने प्रथम पति शेर अफ़ग़ान से उत्पन्न पुत्री का विवाह शाहज़ादे शहरयार से किया था, जिसको वह जहांगीर के पीछे बादशाह बनाना चाहती थी। इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त करने के लिए वह खुर्रम के विरुद्ध बादशाह के कान भरने लगी और उसने उसको हिन्दुस्तान से दूर भिजवाना चाहा। उन्हीं दिनों ईरान के शाह अब्बास ने कंधार का क़िला अपने अधीन कर लिया था, जिसको पीछा विजय करने के लिए नूरजहां ने खुर्रम को भेजने की सम्मति बादशाह को दी। तदनुसार बादशाह ने उसको बुरहानपुर से कंधार जाने की आज्ञा दी। शाहज़ादा भी नूरजहां के प्रपंच को जान गया था, जिससे उसने वहां जाना न चाहा। वह समझ गया था कि यदि हिन्दुस्तान से बाहर जाना पड़ा और हिन्दुस्तान का कोई भी प्रदेश मेरे हाथ में न रहा, तो मेरा प्रभाव इस देश में कुछ भी न रहेगा। वह बादशाह की आज्ञा न मानकर वि० सं० १६७६ (ई० सं० १६२२) में उसका विद्रोही बन गया और दक्षिण से मांझ जाकर सैन्य सहित आगरे की ओर बढ़ा, जहां के अमीरों की सम्पत्ति छीनता हुआ वह मथुरा की तरफ़ गया। फिर आगे बढ़ने पर वह बिलोचपुर की लड़ाई में शाही सेना से हारा और भागते समय आंबेर के पास पहुंचकर उसने उसे लूटा। फिर वहां से वह उदयपुर में महाराणा कर्णसिंह के पास गया, क्योंकि उन दोनों में परस्पर स्नेह था।

सरसिंह का खुर्रम पर
भेजा जाना

बादशाह के पास पहुंचा तो उस (बादशाह) ने
सूरसिंह को फौज के साथ उसपर भेजा । खुर्रम
ने बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था, अतएव उससे कई

लड़ाइयां कर सूरसिंह ने वहां बादशाह का सिका जमाया^१ ।

‘मश्नासिरुल् उमरा’ (हिन्दी) से पाया जाता है कि बादशाह जहां-
गीर के समय सूरसिंह का मनसब तीन हजार ज्ञात और दो हजार सवार

सूरसिंह के मनसब में वृद्धि तक पहुंच गया^२ । हि० स० १०३७ ता० २८ सफ़र
(वि० सं० १६८४ कार्तिक वदि अमावास्या =
ई० स० १६२७ ता० २८ अक्टोबर) को जहांगीर का काश्मीर से लाहौर

कुछ समय तक वहां रहकर मेवाड़ के सेनाध्यक्ष कुंवर भीमसिंह के साथ वह
बड़ी सादड़ी में होता हुआ मांझ पहुंचा । फिर मांझ से नर्मदा को पारकर असीरगढ़
और बुरहानपुर होता हुआ गोलकुंडे के मार्ग से उड़ीसा और बंगाल में पहुंचा । वहां
ढाका और अकबरनगर आदि की लड़ाइयों में विजय पाकर उसने बंगाल पर अधिकार
कर लिया । इसके बाद उसने बिहार, अवध और इलाहाबाद को जीतने का विचार
कर भीमसिंह को पटना पर भेजा, जहां का शासक परवेज़ की तरफ से दीवान मुख-
लिसखां था । भीमसिंह के वहां पहुंचते ही वह बिना लड़े ही पटना छोड़कर इलाहाबाद
की तरफ भाग गया और किले पर भीमसिंह का अधिकार हो गया । वहां से खुर्रम ने
उसको अब्दुल्लाखां के साथ इलाहाबाद की ओर भेजा और स्वयं भी उसके पीछे गया ।
उसने टोंस नदी के किनारे कम्पत के पास डेरा डाला । उधर से शाहजहादे परवेज़ की
अध्यक्षता में शाही सेना लड़ने को आई । यहां लड़ाई हुई, जिसमें भीमसिंह के
वीरतापूर्वक प्राणोत्सर्ग कर चुकने पर खुर्रम हारकर पटना होता हुआ दक्षिण को
लौट गया ।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३७ ।

‘वीरचिनोद’ में भी लिखा है कि जब बागी खुर्रम और उसके भाई परवेज़ का
मुकाबला हुआ, उस समय सूरसिंह भी शाही सेना के साथ था (भाग २, पृ० ४६२),
परन्तु फ़ारसी तबारीखों में सूरसिंह का उल्लेख नहीं मिलता ।

(२) ब्रजरत्नदास; मश्नासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ४५६ ।

मुंशी देवीप्रसाद; ने ‘जहांगीरनामे’ के प्रारम्भ में दी हुई मनसबदारों की सूची
में सूरसिंह का मनसब दो हजार ज्ञात और दो हजार सवार दिया है (पृ० १६) ।

आते हुए देहांत हो गया'। शाहज़ादे खुर्रम को इसका पता मिलते ही वह दक्षिण से आगरे आकर शाहजहां नाम धारण कर तख्त पर बैठ गया। उस समय उसने बहुत से रुपये बांटे और अपने अफसरों के मनसबों में वृद्धि की। इस अवसर पर सूरसिंह (बीकानेरी) का मनसब बढ़ाकर चार हजार ज़ात और ढाई हजार सवार कर दिया गया तथा उसे हाथी, घोड़ा, नक्कारा, निशान आदि मिले^१।

उसी वर्ष बुखारे के इमाम कुलीखां के भाई नज़र मुहम्मदखां ने काबुल पर चढ़ाई की। मार्ग में जुदाक के किलेदार खंजरखां ने उसे परास्त किया, परन्तु इससे वह अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ और ज्येष्ठ वदि २ (ई० स० १६२८ ता० १० मई) को उसने काबुल पर घेरा डाल दिया। अथ बादशाह के पास इसकी सूचना पहुंची तो उसने २०००० सवारों के साथ सूरसिंह, राव रतन हाड़ा^२, राजा जयसिंह^३, महावतखां खानखाना^४ और मोतमिदखां को उस (नज़र मुहम्मदखां) के मुक्ताबले पर भेजा, परन्तु उनके वहां पहुंचने से पूर्व ही, वि० सं० १६८५ भाद्रपद सुदि ११ (ई० स० १६२८ ता० २६ अगस्त) शुक्रवार को काबुल के सूबेदार लक्ष्मकरखां ने आक्रमण कर नज़र मुहम्मदखां को भगा दिया। तब

(१) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ५६६।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १; पृ० ६।

(३) बूंदी का स्वामी।

(४) फछवाहे राजा मानसिंह के पुत्र प्रतापसिंह के बेटे राजा महसिंह का पुत्र, जिसे मिर्जा राजा जयसिंह भी कहते थे।

(५) इसका वास्तविक नाम ज़मानाबेग था और यह काबुल के निवासी गोर-बेग का पुत्र था। अकबर के समय में इसका मनसब केवल ५०० था, पर जहांगीर के समय इसको उच्चतम सम्मान प्राप्त था। शाहजहां के राज्यकाल में भी यह उसी पद पर बहाल रहा। इसकी मृत्यु हि० स० १०४४ (वि० सं० १६६१ = ई० स० १६३४) में दक्षिण में हुई।

बादशाह ने सूरसिंह, महावतखां आदि को वापस बुला लिया^१ ।

शाहजहां के गद्दी पर बैठने पर जुझारसिंह बुंदेला भी उसकी सेवा में उपस्थित हुआ था पर बीच में वह बिना आज्ञा प्राप्त किये ही फिर

अपने देश चला गया । ओरछा में पहुंचने पर उसने युद्ध की तैयारी की । बादशाह को जब इसकी खबर लगी तो उसने एक बड़ी फौज लेकर

महावतखां को सैयद मुजफ्फरखां, दिलावरखां^२, राजा रामदास नरवरी^३, भगवानदास बुंदेला आदि के साथ उसपर भेजा । मालवे के सूबेदार खान-जहां लोदी को भी राजा विठ्ठलदास गौड़^४, अनीराय सिंहदलन^५,

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १५-८ । बजरत्नदास; मयासिंह उमरा (हिन्दी); पृ० ४५६ । उमराए हनुद; पृ० २५७ ।

(२) शाहजहां के दरबार का अमीर—वहादुरखां रूहेले का पुत्र ।

(३) दसवीं शताब्दी में नरवर तथा ग्वालियर पर कछवाहों का राज्य था । फिर वहां पड़िहारों का राज्य हुआ, जिनसे शाह अल्तमश ने उसे ले लिया । तैमूर की चढ़ाई के समय वहां तैवरों ने अधिकार फर लिया । ई० स० १५०७ (वि० सं० १५६४) के आसपास सिकंदर लोदी ने नरवर का दुर्ग जीत लिया फिर कछवाहों को दे दिया, जिनका वहां मुगलों के समय में भी अधिकार था ।

(४) राजा गोपालदास गौड़ का पुत्र ।

(५) अनीराय बड़गूजर-वंश का राजपूत था । उसके पूर्वज ज़मींदार थे, परन्तु उसका दादा गरीब हो जाने के कारण, बहुधा-हरियों को मार-मार कर उनके मांस से अपने कुटुम्ब का पालन किया करता था । एक दिन शिकार के समय उसने धोखे में बादशाह अकबर का शिकारी चीता मार डाला । इसका पता लगने पर शाही शिकारी उसको पकड़कर बादशाह के पास ले गये । बादशाह के पूछने पर जब उसने सारा हाल सच-सच निवेदन कर दिया, तो बादशाह ने उसकी हिम्मत और निशाना लगाने की कुशलता से प्रसन्न होकर उसे अपनी सेवा में रख लिया और शिकार में अधिक रुचि होने के कारण उसको उचित पद पर नियत किया । उसका पुत्र वीरनारायण हुआ । वीरनारायण का पुत्र अनूपसिंह था, जो पीछे से 'अनीराय सिंहदलन' के खिताब से प्रसिद्ध हुआ । अकबर के अंतिम दिनों में वह खवासों का अकसर बनाया गया । जहांगीर के समय कुछ काल तक वह उसी पद पर नियत रहा । अपने

राज्य के पांचवें वर्ष (वि० सं० १६६७ = ई० सं० १६१०) में एक दिन बादशाह जहांगीर बाढ़ी के परगने में चीतों का शिकार करने में लगा हुआ था । वहां कुछ दूर पर चीलों को एक वृक्ष पर बैठे हुए देखकर धनुष तथा बिना फलवाले तीर लेकर अनूपसिंह उधर बढ़ा । उस वृक्ष के निकट आधा खाया हुआ बैल उसे नज़र आया । समीप ही झाड़ी में से एक बड़ा और प्रबल शेर निकला । यद्यपि सन्ध्या होने में कुछ ही समय शेष था तथापि उसने और उसके साथियों ने शेर को घेरकर इसकी खबर बादशाह को दी । जहांगीर तुरन्त घोड़े पर सवार होकर उधर गया और बाबा खुर्रम, रामदास, एतमादराय, हयातखां तथा एक-दो और आदमी उसके साथ चले । शेर वृक्ष की छाया में बैठा था । उसने घोड़े से उतरकर शेर पर निशाना लगाया । दो बार निशाना लगाने पर भी शेर मरा नहीं वरन् एक शिकारी को घायल कर फिर अपनी जगह जा बैठा । तीसरी बार बादशाह बन्दूक चलातेवाला ही था कि इतने में गर्जना करता हुआ शेर उसपर झपटा । उसने बन्दूक चलाई तो गोली शेर के मुंह और दांतों में होकर निकल गई, लेकिन बन्दूक चलाई तो गोली शेर के मुंह और भी क्रुद्ध हो गया । बहुत से सेवक, जो वहां थे, डरकर एक दूसरे पर गिर गये । स्वयं बादशाह उनके धक्के से दो-कदम पीछे जा गिरा । दो-तीन आदमी तो उसकी छाती पर पांच रखकर ऊपर से निकल गये । ऐसी दशा में अनूपसिंह शेर के सामने गया तो वह फुर्ती से उसपर लपका । उस पुरुषसिंह ने वीरता से सामने जाकर दोनों हाथों से एक लाठी उसके सिर पर मारी । शेर ने मुंह फाड़कर उसके दोनों हाथ चबा डाले, परन्तु उसके हाथ में लाठी और कड़े होने से उसे बड़ा सहारा मिला और उसके हाथ बेकार न हुए । अनूपराय ने बल से अपने हाथ उसके मुख से छुड़ाकर उसके जबड़े पर दो-तीन धुंसे मारे और करवट लेकर वह घुटने के बल उठ खड़ा हुआ । शेर के दांत उसके हाथों के आर-पार हो गये थे, इसलिए उसके मुंह से खींचते समय वे फट गये । शेर के पंजे उसके दोनों कन्धों पर लग गये थे । जब वह खड़ा हुआ, तो शेर भी खड़ा हो गया और उसने अपने पंजों से उसकी छाती में प्रहार किया । ज़मीन ऊंची-नीची होने से वे दोनों कुश्ती लड़ते हुए पहलवानों की तरह लुढ़कते हुए, एक दूसरे के ऊपर-नीचे होते गये । शेर उसको जब छोड़कर भागने लगा तो अनूपसिंह खड़ा होकर उसके पीछे दौड़ा और उसने उसके सिर में तलवार का प्रहार किया । जब शेर ने उसकी ओर मुंह किया तो उसने अपनी तलवार का दूसरा वार उसके मुंह पर किया, जिससे उसकी आँखों पर की चमड़ी लटक गई । इसी बीच दूसरे लोगों ने आकर शेर को मार डाला । बादशाह अनूपसिंह के वीरतापूर्ण कार्य और स्वामिभक्ति से बहुत प्रसन्न हुआ और उसके अच्छे होने पर उसने उसे 'अनीराय सिंहदलन' के खिताब से सम्मानित किया तथा उसको अपनी तलवारों में से एक ख़ासा तलवार बख्शी और

राजा गिरधर^१, राजा भारत^२ आदि के साथ जुभारसिंह पर जाने को लिखा गया। इधर कन्नौज के सूबेदार अष्टदुल्लाखां को भी पूरब की तरफ से ओरछा जाने की आज्ञा हुई। इस फौज के साथ सरासिंह, बहादुरखां रुहेला, पहाड़सिंह बुंदेला^३, किशनसिंह भदोरिया^४ तथा आसफ़खां^५ भी थे। तीन ओर से आक्रमण होने पर जुभारसिंह ने तंग आकर महाबतखां की मारफ़त माफ़ी मांग ली और वह दरबार में हाज़िर हो गया^६।

वि० सं० १६८६ कार्तिक वदि १२ (ई० स० १६२६ ता० ३ अक्टोबर) शनिवार की रात को खानजहां लोदी^७ आगरे से भाग गया। तब बादशाह

उसका मनसब बढ़ाया। पुष्कर में बराहघाट के सामनेवाले तट की तरफ़, वर्तमान स्मशानों के निकट बना हुआ जहांगीरी महल, जो अब खंडहर के रूप में है, अनीराय की अध्यक्षता में ही बना था। पन्द्रहवें राज्यवर्ष में बंगश की चढ़ाई में महाबतखां की सिफ़ारिश से बादशाह ने उसको सेनापति नियत किया। वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में वह कोंगड़े का हाकिम नियत किया गया। शाहजहां के राज्य-समय उसके पिता वीरनारायण के मरने पर अनीराय को राजा का ज़िताब मिला और उसका मनसब तीन हज़ारी ज्ञात व डेढ़ हज़ार सवार का हो गया। वि० सं० १६६३ (ई० स० १६३६) में उसका देहांत हुआ। उसका पुत्र जयराम था।

(१) राजा रायसल दरबारी का ज्येष्ठ पुत्र।

(२) राजा मधुकर के पुत्र राजा रामचन्द्र का पौत।

(३) बुंदेले राजा वीरसिंहदेव का पुत्र।

(४) आगरे से तीन कोस पर एक स्थान भदावर है, जहां के रहनेवाले चौहान इस पदवी से प्रसिद्ध हैं।

(५) यह नूरजहां बेग़म का भाई तथा शाहजहां का स्वसुर था।

(६) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १५-२०। मजरतनदास; मन्नासिरुल उमरा (हिन्दी); पृ० ४५६।

(७) इसका ठीक-ठीक वंश-परिचय ज्ञात नहीं होता। जहांगीर के राज्यकाल में इसे पांच हज़ारी मनसब प्राप्त था।

सूरसिंह का खानजहां पर
भेजा जाना

ने सूरसिंह, राजा विठ्ठलदास गौड़, राजा भारत
बुंदेला, माधोसिंह हाड़ा^१, पृथ्वीराज राठोड़, राजा
वीरनारायण^२, राय हरचंद पड़िहार आदि के साथ
स्वाजा अब्दुलहसन को फौज देकर उसके पीछे भेजा । धौलपुर में
उन्होंने उसे जा घेरा । पहले तो कुछ दूर तक खानजहां ने लड़ाई की, पर
अंत में वह भाग गया और जुभारसिंह बुंदेले के मुल्क में पहुंचने पर उस
(जुभारसिंह) के बेटे ने उसे गुप्तमार्ग से बाहर निकाल दिया, जहां से
वह निजामुल्मुल्क के पास पहुंच गया^३ । तब बादशाह ने अपनी फौज को
वापस बुला लिया ।

उसी वर्ष चैत्र वदि ६ (ई० स० १६३० ता० २२ फरवरी) को शाहजहां
ने अलग-अलग तीन फौजें खानजहां लोदी पर भेजीं । एक फौज का संचा-

सूरसिंह का खानजहां
पर दूसरी बार भेजा जाना

लन दक्षिण के सूबेदार इरादतखां के हाथ में था;
दूसरी महाराजा गजसिंह^४ की मातहत में थी;
और तीसरी में अन्य अफसरों के अतिरिक्त सूर-

सिंह भी था । कुछ दिनों बाद राजोरी नामक स्थान में खानजहां से इन
फौजों का सामना हुआ । उस समय शाही फौज का हरावल राजा जयसिंह^५
था । उसके प्रबल आक्रमण से खानजहां हारकर भाग निकला । इस अवसर
पर कुछ लोग तो लूट-मार में लग गये, परन्तु शेष ने उसका पीछा किया;
जिसपर खानजहां ने पलटकर युद्ध किया, पर सूरसिंह आदि के आक्रमण
के आगे वह ठहर न सका और भाग गया^६ ।

(१) राव रत्नसिंह हाड़ा का दूसरा पुत्र ।

(२) राजा अनूपसिंह बड़गूजर (अनीराय सिंहदलन) का पिता ।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० २३-६ । ब्रजरत्नदास;
महासिंह टमरा (हिन्दी); पृ० ४५६ ।

(४) जोधपुर के राजा सूरसिंह का पुत्र ।

(५) राजा महासिंह कछवाहे का पुत्र ।

(६) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० २७-४० ।

ख्यातों से पाया जाता है कि सूरसिंह की एक भतीजी (रामसिंह की पुत्री) का विवाह जैसलमेर के रावल हरराज के पुत्र भीमसिंह^१ के साथ हुआ था । भीमसिंह की मृत्यु होने पर जैसलमेर के सरदारों ने उसके पुत्र को मारने का निश्चय किया । तब रानी ने अपने चाचा सूरसिंह से कहलाया कि मेरे पुत्र की रक्षा करो । इसपर सूरसिंह ने एक हज़ार राजपूतों के साथ जैसलमेर की ओर प्रस्थान किया, परन्तु मार्ग में लाठी गांव के पास उसे बालक की हत्या किये जाने का समाचार मिला । जैसलमेरवालों के इस नृशंस कार्य से उसका दिल उनसे हट गया और उसने प्रतिज्ञा की कि बीकानेर की किसी भी राजकुमारी का विवाह जैसलमेर में नहीं किया जायगा^२ । बीकानेर में इस प्रतिज्ञा का पालन अवतक होता है ।

रायसिंह ने अपने जीवनकाल में शाही दरबार में जो सम्मानित स्थान अपनी धीरता के कारण प्राप्त किया था, उसे दलपतसिंह ने अपने अनुचित आचरण से थोड़े समय में खो दिया । इसपर सूरसिंह और उसके नाम के शाही फरमान जहांगीर ने उस (दलपतसिंह) के छोटे भाई सूरसिंह को बीकानेर का राज्य सौंपा, जिसने अपने गुणों के कारण क्रमशः शाही दरबार में अपने पिता के जैसा ही सम्मान प्राप्त कर लिया । जहांगीर और शाहजहां के समय के उसके नाम के

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात में भीमसिंह का देहांत वि० सं० १६७३ (ई० सं० १६१६) में होना लिखा है (जि० २, पृ० ४४१) । अतएव यह घटना इस समय के कुछ ही बाद हुई होगी ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३१ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३४ ।

जैसलमेर की तवारीख (पृ० ५४) में भीमसिंह का राज्यकाल ग़लत दिया है । साथ ही इस घटना का उल्लेख भी दूसरे प्रकार से है । उसमें सूरसिंह की भतीजी के पुत्र का फलोधी में चेचक अथवा ज़हर से मरना लिखा है । उपर्युक्त तवारीख में भतीजी के स्थान पर बहन लिखा है ।

लगभग ५१ फ़रमान तथा निशान मिले हैं। सन् जुलूस ११ ता० २ अमरदाद (हि० स० १०२५ ता० ६ रज्जब = वि० सं० १६७३ श्रावण सुदि १०=ई० स० १६१६ ता० १४ जुलाई) के जहांगीर के समय के शाहज़ादा खुर्रम की मुहर के निशान में सूरसिंह को राजा के खिताब से सम्बोधित किया है, जिससे स्पष्ट है कि इसके पूर्व ही बीकानेरवालों को शाही दरबार से भी राजा का खिताब मिल गया होगा। आगे चलकर तो फिर कई फ़रमानों में उसे राजा लिखा है। हि० स० १०२६ ता० १५ जिलहिज (वि० सं० १६७४ पौष वदि २=ई० स० १६१७ ता० ४ दिसंबर) के निशान में शाहज़ादे खुर्रम ने उसे 'उच्चकुल के राजाओं में सर्वश्रेष्ठ' लिखा है। नूरजहां की मुहर का भी एक फ़रमान है, जिसमें उसे राजा ही लिखा है। अब हम यहां सूरसिंह से सम्बन्ध रखनेवाली उन घटनाओं का उल्लेख करेंगे, जिनका तवारीखों अथवा ख्यातों में कोई वर्णन नहीं है, परन्तु जिनपर इन फ़रमानों द्वारा काफ़ी प्रकाश पड़ता है।

(१) वि० सं० १६७१-७२ (ई० स० १६१४-१५) में नरवर के किसानों पर अत्याचार करके रघुनाथ, सुदर्शन, गोकुलदास, भगवान, कबी पठान तथा हुसेन कायमखानी ने वहां के ५२ गांवों पर अधिकार कर लिया और वे लूटमार करने लगे। जब बादशाह जहांगीर के पास इसकी शिकायत हुई, तो उसने फ़रमान भेजकर सूरसिंह को इस विषय की जांच करने के लिए और घटना के सत्य सिद्ध होने पर उपर्युक्त व्यक्तियों को कठोर दंड देने के लिए नियुक्त किया। प्रायः दो मास बाद ही विद्रोहियों का साहस इतना बढ़ा कि उन्होंने शाही खज़ाने पर भी हाथ साफ़ किया और लूणियां के निवासियों को लूटा। तब बादशाह ने हाशिम बेग चिश्ती को

(१) सन् जुलूस २१ ता० ११ आबान (हि० स० १०३६ ता० १३ सफ़र = वि० सं० १६८३ कार्तिक सुदि १५ = ई० स० १६२६ ता० २४ अक्टोबर) का फ़रमान।

(२) सन् जुलूस ६ ता० १ खुरदाद (हि० स० १०२३ ता० १२ रबी-उत्तानी = वि० सं० १६७१ प्रथम ज्येष्ठ सुदि १४ = ई० स० १६१४ ता० १२ मई) का फ़रमान।

उनका दमन करने के लिए नियुक्त किया और फ़रमान भेजकर सूरसिंह को भी उसके साथ कार्य करने का आदेश किया^१ । उन्हीं दिनों बारी और लुटेरा चन्द्रभान, केशू (विलोच) के हाथ से दंड पाने पर सूरसिंह की जागीर में चला गया । तब बादशाह ने उसे ज़िन्दा अथवा मुर्दा गिरफ़्तार करने के लिए सूरसिंह को उसपर सेना भेजने को लिखा^२ । सन् जुलूस ६ ता० ६ बहमन (हि० स० १०२३ ता० २८ जिलहिज = वि० सं० १६७१ माघ वदि अमावास्या = ई० स० १६१५ ता० १६ जनवरी) को बादशाह ने फ़रमान भेजकर सूरसिंह को दरबार में बुलवा लिया ।

(२) वि० सं० १६७८ (ई० स० १६२१) में बादशाह के पास किरकी की विजय का समाचार पहुंचा । इस स्थल पर सूरसिंह और दाराबखां भेजे गये थे और इस युद्ध में सूरसिंह ने बड़ी वीरता एवं सच्ची राज्यभक्ति का परिचय दिया^३ ।

(३) वि० सं० १६७६ (ई० स० १६२२) में सूरसिंह की नियुक्ति आमेर के निकट जालनापुर के थाने पर कर दी गई^४ ।

(४) वि० सं० १६८० (ई० स० १६२३) में आसकर्ण, केशोदास तथा भटनेर के अन्य कांधलोत तथा जोड़ियों ने मिलकर सिरसा पर धावा

(१) सन् जुलूस ६ ता० ५ अमरदाद (हि० स० १०२३ ता० २० जमादि-उस्तानी = वि० सं० १६७१ आषाढ वदि द्वितीय ७ = ई० स० १६१४ ता० १८ जुलाई) का फ़रमान ।

(२) सन् जुलूस ६ ता० ३१ अमरदाद (हि० स० १०२३ ता० १६ रजब = वि० सं० १६७१ भाद्रपद वदि ४ = ई० स० १६१४ ता० १३ अगस्त) का फ़रमान ।

(३) सन् जुलूस १२ ता० २८ उर्दाबहिस्त [अनुवाद में सन् १६ दिया है, जो ठीक नहीं प्रतीत होता] (हि० स० १०२६ ता० ११ जमादिउल्अव्वल = वि० सं० १६७४ वैशाख सुदि १२ = ई० स० १६१७ ता० ७ मई) का फ़रमान । डॉक्टर बेणीप्रसाद लिखित 'हिस्ट्री ऑफ़ जहांगीर' में भी किरकी की लड़ाई का उल्लेख है (पृ० २६६), जिसमें दाराबखां भी साथ था ।

(४) हि० स० १०३१ ता० ६ ज़ीकाद (वि० सं० १६७६ भाद्रपद सुदि ८ = ई० स० १६२२ ता० २ सितम्बर) का फ़रमान ।

किया और राय जल्लू आदि को मारकर वहां के निवासियों की सम्पत्ति लूट ली। जब इसकी खबर बादशाह को मिली तो उसने सूरसिंह के पास इस आशय का फ़रमान भेजा कि वह बागियों को दंड देकर वहां के निवासियों की सम्पत्ति वापस दिला दे।

(५) कुछ दिनों पहले से ही खुर्रम विद्रोही हो गया था और भारत के सिंहासन पर अधिकार जमाने के लिए अनेकों प्रकार के पड़यन्त्र रच रहा था। बंगाल और बिहार को अधीन कर उसने अवध और इलाहाबाद को भी अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया। उसने दरियाखां पठान को कुछ फ़ौज के साथ अवध में मानिकपुर की तरफ़ भेजा और अब्दुल्लाखां तथा राजा भीम (सीसोदिया) को फ़ौज की दूसरी टुकड़ी के साथ गंगा नदी के मार्ग से इलाहाबाद की तरफ़ रवाना किया। अब्दुल्लाखां के चौसाघाट पहुंचने पर खान आज़म का पुत्र जहांगीर क़लीखां इलाहाबाद में रुस्तम मिर्ज़ा के पास भाग गया। अब्दुल्लाखां ने उसका पीछा किया तथा भूंसी नामक स्थान में डेरा किया। नावों के सहारे वह आसानी से इलाहाबाद में पहुंच गया तथा उसने वहां के गढ़ को घेर लिया। रुस्तमखां भी तत्परता के साथ अपनी रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो गया। इस बीच में शाहज़ादे ने भी दरियाखां को वापस बुलाकर बिहार में छोड़ दिया था और वह स्वयं जौनपुर पर अधिकार कर कम्पत के जंगलों में ठहरा हुआ था। यहां तक तो उसके मनसूबे ठीक तरह से पूरे ही हो रहे थे, पर अब उनमें व्याघात होना शुरू हुआ। अकबर-नगर में इब्राहीमखां एवं इलाहाबाद में रुस्तमखां-द्वारा रुकावट डाले जाने के कारण शाहज़ादा परवेज़ तथा महाबतखां को इलाहाबाद की सीमा में पहुंचने का समय मिल गया। दक्षिण में सफलतापूर्वक कार्यनिर्वाह करने के अनन्तर वे दोनों शाही आज्ञा के अनुसार खुर्रम के विरुद्ध बादशाही रैय्यत की रक्षार्थ वि० सं० १६८१ चैत्र सुदि ७ (ई० सं०

(१) सन् जुलूस १८ ता० १७ तीर (हि० सं० १०३२ ता० १० रमज़ान = वि० सं० १६८० आपाठ सुदि १२ = ई० सं० १६२३ ता० २६ जून) का फ़रमान।

१६२४ ता० १६ मार्च) को बुरहानपुर से खाना हुप थे । विशाल शाही सैन्य का आगमन सुनते ही अब्दुल्लाखां घेरा उठाकर भूखी चला गया । बाद में दोनों दलों का सामना होने पर खुर्रम की पराजय हुई और वह भाग गया ।

खुर्रम के विरुद्ध इस लड़ाई में परवेज़ तथा महाबतखां की सहाय-
तार्थ सूरसिंह भी पहुँच गया था । सूरसिंह का नाम किसी फ़ारसी तबारीख में तो नहीं आया है; परंतु जहांगीर के सन् जुलूस १६ ता० २४ खुरदाद (हि० स० १०३३ ता० २६ शबान = वि० सं० १६८१ आषाढ वदि १३ = ई० स० १६२४ ता० ३ जून) के निम्नलिखित आशय के फ़रमान से उसका उनके साथ होना पूर्णतया सिद्ध है—

“अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त, कृपाओं तथा सम्मानों के योग्य राय सूरत(सूर)सिंह को ज्ञात हो कि उसकी राजभक्ति, उपयुक्त सेवाओं तथा इस वर्षा ऋतु में भी अनेकों कष्ट उठाकर मेरे पुत्र के समक्ष उपस्थित होने का समाचार शाहज़ादा परवेज़ और महाबतखां के पत्रों-द्वारा मालूम हो चुका है ।

“शाही अभिलाषा यही है कि उस अभागे का नामोनिशान मिटा दिया जाय, इसलिए सूरत(सूर)सिंह तथा अन्य राजभक्त व्यक्तियों का कर्तव्य है कि उस प्रतिकूल आचरण करनेवाले अभागे को दूर करने में अपनी पूरी शक्ति का उपयोग करें ।”

खुर्रम के भागजाने पर बादशाह जहांगीर ने अपने सन् जुलूस १६ ता० १४ आबान (हि० स० १०३४ ता० २३ मुहर्रम = वि० सं० १६८१ मार्ग-शीर्ष वदि १० = ई० स० १६२४ ता० २६ अक्टोबर) के फ़रमान में सूरज-
(सूर)सिंह की सेवाओं से प्रसन्नता प्रकट की है और बदले में उसके पास राजा जोरावर के हाथ घोड़ा और खिलअत भिजवाने का उल्लेख है ।

उपर्युक्त उद्धरण से यह निश्चित है कि विद्रोही खुर्रम के साथ की लड़ाई में सूरसिंह भी उपस्थित था और उसने अच्छा काम किया ।

(६) मलिक अम्बर^१ का देहांत हो जाने पर बादशाह ने सूरसिंह के नाम फ़रमान भेजा कि इस अवसर पर उसे तथा अन्य अफ़सरों को भाग्यहीन (ख़ुर्रम) की शक्ति दाय कर देने में पूरा उद्योग करना चाहिये^२ ।

(७) वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में बादशाह ने एक योग्य व्यक्ति को मुलतान भेजने का निश्चय किया । सूरसिंह की जागीर मुलतान के निकट होने के कारण वही इस कार्य के लिए चुना गया तथा वहां भेजे जाने के पूर्व दरबार में बुलाया गया^३ ।

(८) वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में बादशाह ने सूरसिंह की नियुक्ति बुरहानपुर में कर दी । प्रायः एक मास बाद ही फिर एक फ़रमान उसके नाम भेजा गया, जिसमें उसे शीघ्र जमाल मुहम्मद के साथ बुरहानपुर पहुंचने का आदेश किया गया था^४ ।

(९) वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२७) में नागौर का परगना तथा

(१) यह हबशी जाति का गुलाम था, जिसका धीरे-धीरे दक्षिण में बहुत प्रभुत्व बढ़ गया । जहांगीर ने सिंहासनारूढ़ होने पर कई बार इसे अधीन करने के लिए सेनाएं भेजीं पर मलिक अम्बर की स्वतन्त्रता में बाधा न पहुंची । पीछे से शाहजहाँ शाहजहाँ से मिल जाने पर इसने मुगलों से जीते हुए देश उसे दे दिये । यह अन्त तक शाहजहाँ का पक्षपाती बना रहा । अस्सी वर्ष की अवस्था में वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में इसका देहांत हुआ । इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र क्रतहज़ां हुआ ।

(२) सन् जुलूस २१ ता० २७ खुरदाद (हि० स० १०३५ ता० २२ रमज़ान = वि० सं० १६८३ आषाढ वदि ८ = ई० स० १६२६ ता० ७ जून) का बादशाह जहांगीर का फ़रमान ।

(३) सन् जुलूस २१ ता० ११ अमरदाद (हि० स० १०३५ ता० १० ज़ीकाद = वि० सं० १६८३ श्रावण सुदि ११ = ई० स० १६२६ ता० २४ जुलाई) का फ़रमान ।

(४) सन् जुलूस २१ ता० २७ मेहर (हि० स० १०३६ ता० २८ सुहर्रम = वि० सं० १६८३ कार्तिक वदि ३० = ई० स० १६२६ ता० १० अक्टोबर) का फ़रमान ।

अन्य कई स्थान अमरसिंह के हटाये जाने पर सूरसिंह को जागीर में दिये गये ।

(१०) हि० स० १०३७ ता० २ रबीउस्सानी (वि० सं० १६८४ कार्तिक सुदि ३ = ई० स० १६२७ ता० १ नवम्बर) के फ़रमान-द्वारा मारोठ का गढ़ सूरसिंह को जागीर में मिल गया ।

(११) जब लखी जंगल के मन्सूर और भट्टी आदि ने विद्रोही होकर लूट-मार करना शुरू किया तो बादशाह ने सूरसिंह को उनका दमन करने के लिए नियुक्त किया । इस संबन्ध का फ़रमान जहांगीर के राज्य-काल का है, परन्तु उसका संवत् ठीक पढ़ा नहीं जाता । इसके अतिरिक्त और भी कई फ़रमान जहांगीर के समय के हैं, पर उनके संवत् स्पष्ट नहीं हैं और न उनमें सूरसिंह की योग्यता, राज्यभक्ति और प्रशंसा के अतिरिक्त किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख है ।

(१२) जहांगीर की मृत्यु हो जाने पर आसफ़खां ने, जो शाहजहां का पत्न्याली था, नूरजहां को नज़र क़ैद कर दिया और बनारसी को सुदूर दक्षिण में शाहजहां के पास अपनी अंगूठी देकर भेजा । इस बीच में और कोई गड़बड़ न हो, इसलिए उसने खुसरो के पुत्र दावरबख़्श को क़ैद से निकालकर नाममात्र को तख़्त पर बैठा दिया । दावरबख़्श की मुहर का सन् जुलूस २२ ता० २० आबान (हि० स० १०३७ ता० ३ रबीउल्-अव्वल = वि० सं० १६८४ कार्तिक सुदि ४ = ई० स० १६२७ ता० २ नवम्बर) का फ़रमान सूरसिंह के पास पहुंचा, जिसमें उसने नूरजहां बैग़म तथा अन्य राज्य के अधिकारियों-द्वारा अपने तख़्तनशीन किये जाने का उल्लेख किया था और सूरसिंह को पहले की तरह राजकीय सेवा बजाने का आदेश किया था । इस फ़रमान से यह भी पाया जाता है कि दावरबख़्श ने सूरसिंह के मनुष्यों के हाथ उसके पास कुछ ज़बानी सन्देश भी भेजा

(१) सन् जुलूस २२ ता० १६ मेहर (हि० स० १०३७ ता० २८ मुहर्रम = वि० सं० १६८४ आश्विन वदि अमावास्या = ई० स० १६२७ ता० २६ सितम्बर) का फ़रमान ।

था, पर वह क्या था, इसका पता नहीं चलता। इसके अतिरिक्त एक क्रूरमान दावरबख्श का सूरसिंह के नाम का है, जिसमें शाही सेना-द्वारा शहरयार के परास्त तथा कैद किये जाने का उल्लेख है और ता० २६ (१२४) आबान (हि० स० १०३७ ता० १२ रबीउलअव्वल = वि० सं० १६८४ कार्तिक सुदि १४ = ई० स० १६२७ ता० ११ नवम्बर) को उस(दावरबख्श)-के गद्दी बैठने का उल्लेख है।

वाद में, आसफ़खां जो चाहता था वही हुआ और उसने अपने दामाद खुर्रम (शाहजहां) को भारत के सिंहासन पर बैठाया, जिसने दावर-बख्श को क़त्ल करवा दिया।

(१३) वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) में शाहजहां ने शेर ख्वाजा को ठट्ठा की ओर शीघ्रता से प्रस्थान करने की आज्ञा दी। इस अवसर पर सूरसिंह को भी मुलतान में उससे मिल जाने के लिए क्रूरमान भेजा गया तथा दोनों को मिलकर बाग़ी को ज़िन्दा अथवा मुर्दा शाही दरबार में उपस्थित करने की आज्ञा हुई^१। उन्हीं दिनों मिर्ज़ा ईसा तरखान-द्वारा उस(बाग़ी)के गिरफ़्तार कर लिये जाने पर बादशाह ने सूरसिंह को वापस बुलवा लिया^२।

(१४) सन् जुलूस ३ ता० ११ खुरदाद (हि० स० १०३६ ता० २२ शवान=वि० सं० १६८७ वैशाख वदि १० = ई० स० १६३० ता० २८ मार्च), के बादशाह शाहजहां के क्रूरमान से स्पष्ट है कि उसके विरुद्ध आचरण करनेवालों को दंड देने के लिए जो लोग भेजे गये थे, उनमें सूरसिंह भी था और उसने इस कार्य में बड़ी तत्परता एवं वीरता दिखलाई।

बुरहानपुर में ही वि० सं० १६८८ (ई० स० १६३१) में बौहरी गांव में सूरसिंह का देहांत हो गया^३, जिसकी सूचना शाहजहां के पास

(१) क्रूरमान में इसका नाम नहीं दिया है।

(२) वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२८) का क्रूरमान।

(३) वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२८) का दूसरा क्रूरमान।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३४।

सूरसिंह की मृत्यु

आश्विन सुदि ६ (ई० स० १६३१ ता० २१
सितंबर) को पहुंची^१ । सूरसिंह की स्मारक छत्री

से वि० सं० १६८८ आश्विन वदि अमावस्या (ई० स० १६३१ ता० १५
सितंबर) गुरुवार को उसका देहांत होना पाया जाता है^२ ।

सूरसिंह के तीन पुत्र—१—कर्णसिंह^३ २—शत्रुसाल, तथा ३—
संतति अर्जुनसिंह^४—हुए^५ ।

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ६१ (वीरविनोद; भाग २,
पृ० ४६३ (आश्विन सुदि ७ दिया है) ।

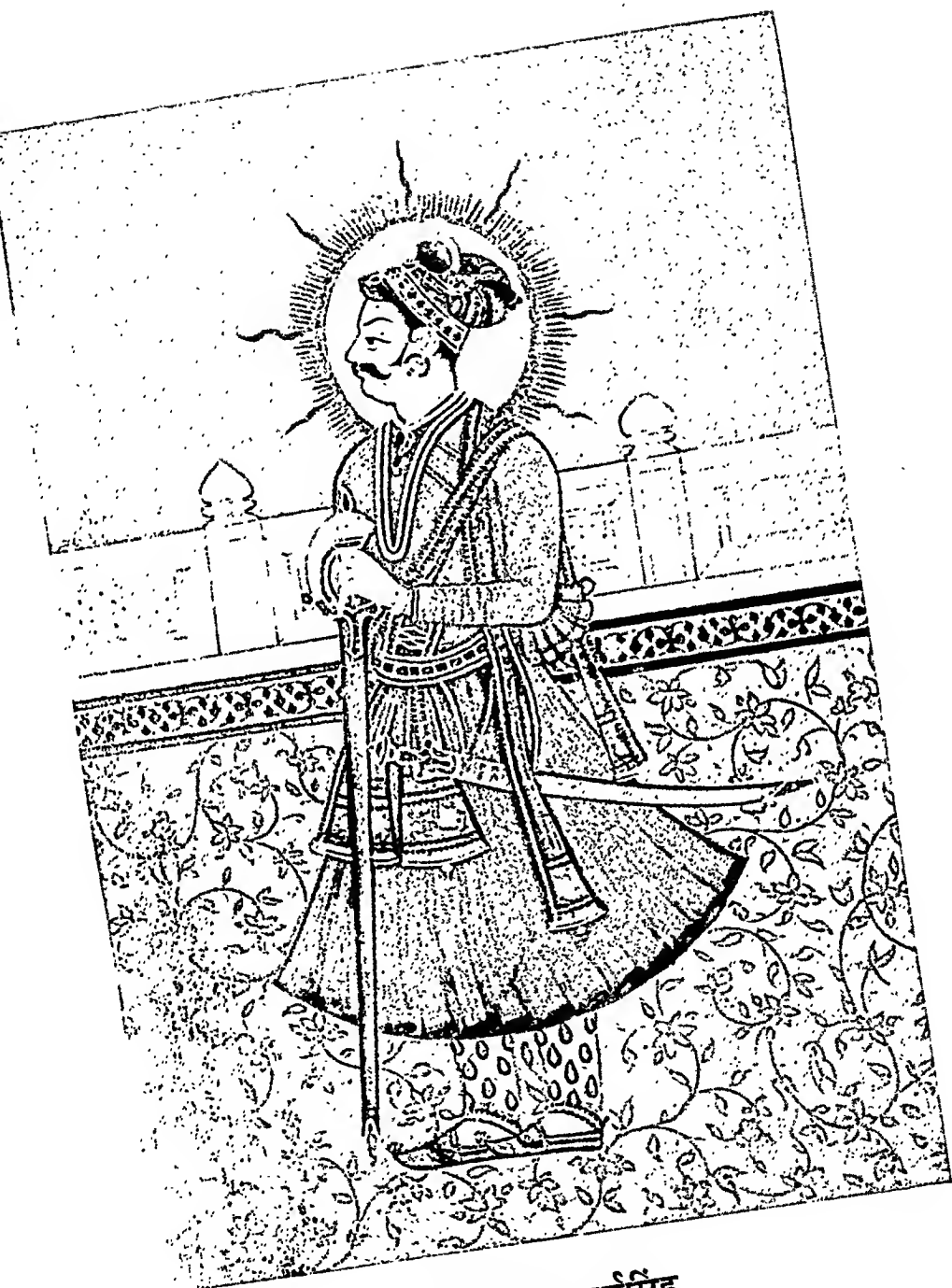
(२) अथ शुभसंवत्सरेऽस्मिन् श्रीनृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सस्वत्
१६८८ वर्षे शके १५५३ प्रवर्तमाने महामहप्रदायिनि आश्विनमासे
कृष्णपक्षे अमावस्यायां तिथौ गुरुवारे.....राठोड महाराजा-
धिराजमहाराजाश्री ४ रायसिंहस्तत्पुत्रस्त.....महाराजाधिराज-
महाराजश्रीशूरसिंह.....दिवं प्राप्तः..... ।

(३) इसका जन्म राजा मानसिंह के पुत्र हिम्मतसिंह की पुत्री स्वरूप दे के
गर्भ से हुआ था । दो और राणियाँ—भटियाणी मनरंगदे तथा रत्नावती—का उल्लेख
मुंहणोत नैणसी ने किया है, जो सूरसिंह की मृत्यु पर सती हो गई थीं (भाग २,
पृ० २००) । अन्य दो पुत्र किस राणी से पैदा हुए यह पता नहीं चलता ।

(४) अर्जुनसिंह के स्मारक लेख से वि० सं० १६८८ भाद्रपद वदि ७ (ई०
स० १६३१ ता० ६ अगस्त) शुक्रवार को उसका देहांत होना प्रकट है ।

(५) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६ । मुंहणोत नैणसी की ख्यात;
जि० २, पृ० २०० । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३४ । वीरविनोद
में केवल दो पुत्रों—कर्णसिंह तथा शत्रुसाल—का उल्लेख है (भाग २, पृ० ४६३) ।





महाराजा कर्णसिंह

छठा अध्याय

महाराजा कर्णसिंह से महाराजा सुजानसिंह तक

महाराजा कर्णसिंह

महाराजा सूरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह का जन्म वि० सं० १६७३
श्रावण सुदि ६ (ई० सं० १६१६ ता० १० जुलाई) बुधवार को हुआ था^१
जन्म और गद्दीनशीनी और पिता की मृत्यु होने पर वि० सं० १६८८
कार्तिक वदि १३ (ई० सं० १६३१ ता० १३ अक्टोबर)
को वह बीकानेर का स्वामी हुआ^२ ।

वि० सं० १६८८ आश्विन सुदि ६ (ई० सं० १६३१ ता० २१ सितंबर)
को शाहजहां के पास सूरसिंह की मृत्यु का समाचार पहुंचा । कुछ दिनों
बाद जब कर्णसिंह बादशाह की सेवा में उपस्थित
कर्णसिंह को मनसब मिलना हुआ तो उसे दो हजार ज़ात तथा डेढ़ हजार सवार

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४६३ । बीकानेर के एक प्राचीन जन्मपत्रियों के संग्रह में भी यही तिथि मिलती है, परन्तु चंद्र के यहां से मिले हुए जन्म-पत्र संग्रह में वि० सं० १६७२ भाद्रपद वदि (प्रथम) ११ (ई० सं० १६१५ ता० ६ अगस्त) बुधवार को कर्णसिंह का जन्म होना लिखा है । पाउलोट ने वि० सं० १६६३ (ई० सं० १६०६) तथा मुंशी सोहनलाल ने भी उसके आधार पर यही संवत् दे दिया है जो ठीक नहीं जंचता, क्योंकि उस समय तो उस (कर्णसिंह) के पिता की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी ।

टॉड के अनुसार कर्णसिंह, रायसिंह का एक मात्र पुत्र था (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३५), परन्तु उसका यह कथन ठीक नहीं है । वास्तव में वह (टॉड) बीच के दो राजाओं, दलपतसिंह एवं सूरसिंह, के नाम तक छोड़ गया है ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६ ।

का मनसब दिया गया। इस अवसर पर उसके भाई शत्रुसाल को भी पांच सौ ज़ात और दो सौ सवार का मनसब मिला^१।

वि० सं० १६८८ माघ सुदि १४ (ई० सं० १६३२ ता० २६ जनवरी)

कर्णसिंह का बादशाह को एक हाथी भेंट करना
को कर्णसिंह ने बादशाह की सेवा में एक हाथी भेंट किया^२।

अहमदनगर के मलिक अम्बर का देहांत हो जाने पर उसका पुत्र फ़तहख़ां उसका उत्तराधिकारी हुआ, परन्तु मुर्तज़ा निज़ामशाह^३

कर्णसिंह का फ़तहख़ां
पर भेजा जाना

(दूसरा) को उसपर भरोसा न था, अतएव उसने फ़तहख़ां को दौलताबाद के क़िल्ले में कैद कर दिया। अपनी बहन (मुर्तज़ा दूसरे की पत्नी) के प्रयत्न से जब वह छोड़ा गया और उसे पुराना पद प्राप्त हुआ तो उसने अवसर पाकर मुर्तज़ा को बन्दी कर लिया और शाहजहां की अधीनता स्वीकार कर उसकी सेवा में अर्ज़ी भेजी। बादशाह ने इसके उत्तर में उससे कैदी को मार डालने के लिए कहलाया। इसपर फ़तहख़ां ने मुर्तज़ा को ज़बर्दस्ती विष का प्याला पीने पर बाध्य किया और उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो जाने की विह्वलित कर उसने हुसेन नाम के एक दस वर्ष के बालक को मुर्तज़ा के स्थान में गद्दी पर बैठाया। तब शाहजहां ने उसे निज़ामशाह (मुर्तज़ा दूसरा) के समस्त रत्न तथा हाथी आदि शाही सेवा में भेजने को लिखा, परन्तु फ़तहख़ां इस विषय में आनाकानी करने लगा^४। अतएव वि० सं० १६८८ फाल्गुन वदि १०

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ६१। ब्रजरत्नदास; मथ्यासिरुल-उमरा (हिन्दी); पृ० ८५; तथा उमराए हनुद (पृ० २६८) में कर्णसिंह को दो हज़ार जात और एक हज़ार सवार का मनसब मिलना लिखा है।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ६६।

(३) अहमदनगर (दक्षिण) का नाममात्र का स्वामी; मुर्तज़ा निज़ामशाह (प्रथम) का पुत्र।

(४) डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑफ़ शाहजहां ऑफ़ देहली; पृ०

(ई० स० १६३२ ता० ५ फ़रवरी) को बादशाह ने वज़ीरख़ाँ को उसे दंड देने एवं दौलताबाद विजय करने के लिए भेजा । इस अवसर पर कर्णसिंह, राजा विठ्ठलदास (गौड़), माधोसिंह^२ और पृथ्वीराज भी उस (वज़ीरख़ाँ) के साथ भेजे गये^३ । फ़तहख़ाँ शाही सेना का आगमन सुनते ही घबड़ा गया और उसने अबुलफ़तह को भेजकर माफ़ी मांग ली तथा आठ लाख रुपये के रत्न, तीस हाथी और नौ घोड़े बादशाह की सेवा में भेज दिये^४ । इसपर वज़ीरख़ाँ तथा कर्णसिंह आदि वापस बुला लिये गये^५ । पर इतने ही से दक्षिण में शांति न हुई । एक ओर शाहजी^६ और दूसरी ओर बीजापुरवाले अहमदनगर के राज्य का पुनरोत्कर्ष करने में कटिबद्ध थे । साथ ही बादशाह को फ़तहख़ाँ की सच्चाई पर भी विश्वास न था, जिससे एक योग्य व्यक्ति का उस ओर रहना आवश्यक समझा गया । पहले तो बादशाह ने आसफ़ख़ाँ को वहां भेजना चाहा पर उसके इनकार कर देने पर उसने महाबतख़ाँ को वहां के प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया । जब शाहजी ने शाहजहां की अधीनता स्वीकार की, तो बादशाह ने उसे कुछ मंहाल (परगने) दिये थे, जो फ़तहख़ाँ के थे, परन्तु फ़तहख़ाँ के

(१) इसका वास्तविक नाम हकीम अलीमुद्दीन था और यह शाहजहां का प्रांच हज़ारी मनसबदार था ।

(२) राजा भगवानदास कछवाहे का पुत्र ।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ६७ । ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल उमरा (हिन्दी); पृ० ८५ । उमराए हनूद; पृ० २६८ ।

(४) डाक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली पृ० ३३७ ।

मुंशी देवीप्रसाद ने भी 'शाहजहांनामे' (भाग १, पृ० ६७) में फ़तहख़ाँ-द्वारा नज़राना भिजवाये जाने का उल्लेख किया है ।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ६७ । ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल उमरा (हिन्दी); पृ० ८५ ।

(६) सुप्रसिद्ध छत्रपति शिवाजी का पिता । फ़ारसी पुस्तकों में कहीं-कहीं उसे शाहूजी भी लिखा है ।

माफ़ी मांग लेने पर वह सब जागीर उसे लौटा दी गई, जिससे शाहजी मुंगलों के साथ-साथ फ़तहख़ां का भी विरोधी हो गया और उसने मुरारी पंडित के ज़रिये मुहम्मद आदिलशाह^१ से सम्बन्ध स्थापित कर दौलतावाद पर घेरा डलवा दिया। तब फ़तहख़ां ने महावतख़ां से सहायता की याचना की, जिसपर उसने अपने पुत्र खानज़मां को दौलतावाद की तरफ़ भेजा। पर इसी बीच मुहम्मद आदिलशाह के सेनाध्यक्ष रन्दोलाख़ां की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर फ़तहख़ां विरोधियों से जा मिला। इसपर महावतख़ां ने अपने पुत्र खानज़मां को फ़तहख़ां और रन्दोलाख़ां के बीच के सम्बन्ध को रोकने तथा दौलतावाद को घेर लेने की आज्ञा दी। विरोधियों ने शाही सेना को हटाने की बड़ी चेष्टा की, परन्तु जब रसद पहुँचने के सारे मार्ग बंद हो गये तो फ़तहख़ां ने अपने पुत्र अब्दुरसूल को महावतख़ां के पास भेजकर माफ़ी मांग ली और एक सप्ताह बाद वि० सं० १६६० (ई० सं० १६३३) में दौलतावाद का गढ़ उस (महावतख़ां) के हवाले कर वह वहाँ से चला गया^२। इस चढ़ाई में महाराजा कर्णसिंह भी शाही सेना के साथ था^३ और उसने महावतख़ां के आदेशानुसार वि० सं० १६६० चैत्र सुदि ८ (ई० सं० १६३३ ता० ८ मार्च) को खानज़मां तथा राव शत्रुसाल हाड़ा के साथ रहकर विपक्षियों का बहुतसा सामान लूटा^४ था।

(१) बीजापुर का स्वामी।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी; बादशाहनामा—इलियद; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० ३६-४१। डॉक्टर बनारसीप्रसाद; हिस्ट्री ऑफ़ शाहजहाँ ऑफ़ देहली; पृ० १३७-४१।

(३) ब्रजरत्नदास; मथ्यासिरुज्ज उमरा (हिन्दी); पृ० ८५। शाहजहाँ के सन् जुलूस ६ (वि० सं० १६८६ = ई० सं० १६३२ अप्रैल) के क्रमसे भी पाया जाता है कि दौलतावाद की चढ़ाई में कर्णसिंह खानखाना के साथ था। उपर्युक्त क्रमसे में कर्णसिंह की वीरता का बड़ा प्रशंसापूर्ण वर्णन है।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; भाग १, पृ० १००-१०१।

दौलताबाद का गढ़ विजय करने के उपरान्त महाबतख़ां की दृष्टि परेंडे के क़िले की तरफ़ गई। यह गढ़ पहले मिज़ामशाह के क़ब्ज़े में था, परन्तु वि० सं० १६८६ (ई० सं० १६३२) में आक्रां रज़ा ने इसे आदिलशाह के सुपुर्द कर दिया था। महाबतख़ां ने बादशाह की सेवा में अज़ीं भेजी कि दौलताबाद को जीत लेने से दक्षिण की शक्तियों में भय समा गया है, जिससे बीजापुर को अधीन करने का इस समय उपयुक्त अवसर है। मेरे सैनिक थक गये हैं, अतएव यदि कोई शाहज़ादा नई सेना के साथ भेजा जाय तो विजय निश्चित है। बादशाह ने तत्काल शाहज़ादे शुजा का मनसब १०००० ज़ात और १०००० सवार का कर उसे विशाल सैन्य के साथ दक्षिण में भेजा। इस शाही सेना के साथ सैय्यद ख़ानजहां, राजा जयसिंह, राजा विठ्ठलदास, अल्लहवर्दीख़ां, रशीदख़ां अन्सारी आदि भी थे। शाहज़ादे शुजा के बुरहानपुर पहुंचने पर मार्ग में महाबतख़ां उससे मिला और उसने उसे सीधे परेंडा की ओर अग्रसर होने की राय दी। मल्कापुर से ख़ानजमां बीजापुर के सीमान्त ज़िलों में भेजा गया ताकि वह उस ओर से परेंडे में सहायता न पहुंचने दे, पर इस चढ़ाई का काम वैसा सरल न निकला जैसा कि महाबतख़ां ने सोचा था।

(१) हैदराबाद (दक्षिण) के ओसमानाबाद ज़िले में ।

(२) बादशाह शाहजहां का दूसरा पुत्र ।

(३) मुंशी देवीप्रसाद ने शाहज़ादे शुजा को दक्षिण भेजने की तिथि वि० सं० १६९० भाद्रपद वदि ६ (ई० सं० १६३३ ता० १८ अगस्त) दी है (शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ११०-१) ।

(४) मुंशी देवीप्रसाद ने चंद्रमन बुंदेला, राजा रोज़ अक़जू, भीम राठौड़, राजा रामदास नरवरी के नाम भी दिये हैं (शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १११) ।

(५) डॉक्टर बनारसीप्रसाद सबसेना, हिस्ट्री ऑफ़ शाहजहां ऑफ़ देहली; पृ० १५६-६० । अब्दुलहमीद लाहौरी; बादशाहनामा—इलियद; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; भाग ४ पृ० ४३-४ ।

शाहजी ने निज़ामशाह के एक सम्बन्धी को, जो पजराली के किले में कैद था, साथ लेकर अहमदनगर और दौलताबाद विजय करने का निश्चय किया। उधर से आदिलशाह ने भी किशनाजी दत्त, रनदोला और मुरारी पंडित को धन एवं जन देकर उसकी सहायता के लिए भेजा। शाहजी ने जाफ़रनगर में मुगलों को रोका, पर शाहजादे ने उसी समय खवासख़ा की अध्यक्षता में कुछ आदमी उसे भगाने के लिए भेज दिये। खानज़मां भी अपने निर्वाचित स्थान पर पहुँच गया, पर उससे कोई विशेष लाभ न हुआ। अन्त में महावतख़ां स्वयं शाहजादे के साथ परेंडे की ओर बढ़ा। सारी मुगल सेना के एक ही स्थल पर एकत्र हो जाने के कारण रसद की कमी होने लगी। शत्रुदल भी इस अवसर पर उनके पास रसद पहुँचने के तमाम मार्ग बन्द करने पर कटिबद्ध हो गया।

एक दिन जब खानख़ाना स्वयं बास आदि लेने गया हुआ था, शत्रुओं ने उसपर आक्रमण कर दिया। उस समय महेशदास राठोड़, रघुनाथ भाटी आदि ने बड़ी वीरता के साथ उनका सामना किया, परंतु शत्रुओं की संख्या अधिक होने से वे सब मारे गये। इसी समय खान-दौरां शाही सेना की सहायतार्थ जा पहुँचा, जिससे शत्रुओं के पैर उसड़ गये^३।

वि० सं० १६६० माघ सुदि १० (ई० स० १६३४ ता० २८ जनवरी) की रात को शाहजादे की आज्ञा से कर्णसिंह, राजा जयसिंह, राजा विठ्ठलदास, राव शत्रुसाल आदि शत्रुओं के डेरे लूटने को गये,

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाननामा; भाग १, पृ० ११७-८।

(२) डाक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली; पृ० १६०-१।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाननामा; भाग १, पृ० ११८-१। डाक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली; पृ० १६२।

(४) मन्नासिक्ल् उमरा (हिन्दी, पृ० ८५) में भी परेंडे की चढ़ाई में कर्णसिंह के शाही सेना के साथ रहने का उल्लेख है।

परन्तु वे (शत्रु) सचेत थे, अतएव अधिक सामान हाथ न लगा । फिर भी उन्होंने शत्रुओं के बहुत से आदमियों को मौत के घाट उतार दिया । इस प्रकार के भगड़े बीच-बीच में कितनी ही बार हुए । उधर गढ़ को छुरंग खोदकर नष्ट करने के सारे प्रयत्न शत्रुओं ने व्यर्थ कर दिये । साथ ही खानखाना (महातबख़ां) एवं खानदौरा में मनमुटाव हो गया, जिससे शाही सेना में और गड़बड़ मच गई । खानखाना के उदंडतापूर्ण व्यवहार के कारण अधिकांश मनसबदार उससे अप्रसन्न रहने और उसके प्रत्येक कार्य का विरोध करने लगे, जिससे सफलता की कोई आशा न देख उसने गढ़ का घेरा उठवा दिया तथा शाहज़ादे के साथ घुरहानपुर की ओर प्रस्थान किया । चार दिन बाद जब शाही सेना घाटे से उतर रही थी, उस समय विपक्षियों ने उनपर तीरों की वर्षा की । खानज़मां ने शत्रुसाल, जगसज और कर्णसिंह आदि के साथ उनका मुकाबला किया । दाहिनी ओर से राजा जयसिंह भी उसकी सहायता को पहुँच गया, जिससे विपक्षी भाग गये । कुछ दिन बाद शाही सेना घुरहानपुर पहुँच गई । बादशाह को जब यह सब समाचार विदित हुआ, तो वह खानखाना के आचरण से बहुत रुष्ट हुआ और उसने शाहज़ादे को पीछा बुला लिया । इसके कुछ ही समय बाद खानखाना का देहांत हो गया ।

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; भाग १, पृ० १२२ ।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी; बादशाहनामा—इलियद; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० ४४ । मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; भाग १, पृ० १२३-४ । डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑफ़ शाहजहाँ ऑफ़ देहली; पृ० १६२ ।

ऊपरिलिखित 'बादशाहनामे' में घेरा उठाये जाने की हि० स० १०४३ तारीख ३ जिलहिज्ज (वि० सं० १६६१ ज्येष्ठ सुदि ४ = ई० स० १६३४ ता० २१ मई) दी है । मुंशी देवीप्रसाद ने वि० सं० १६६१ ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १६३४ ता० २२ मई) को घेरा उठाया जाना लिखा है ।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; भाग १, पृ० १२४-५ ।

(४) डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑफ़ शाहजहाँ ऑफ़ देहली; पृ० १६३ ।

सन् २ जुलूस (वि० सं० १६८५-६ = ई० सं० १६२६) में जुभारसिंह बुंदेले के गत अपराधों को क्षमाकर बादशाह ने उसकी नियुक्ति दक्षिण में कर दी थी। कुछ दिनों बाद वह महावतखां से विदा ले अपने पुत्र विक्रमाजित को अपने स्थान में छोड़कर देश चला गया। वहां पहुंचकर उसने गढ़ के ज़ामोदार प्रेमनारायण^१ पर चढ़ाई की और सन्धि करने के बहाने उसे बाहर बुलवाकर मरवा डाला तथा जोरागढ़^२ एवं उसकी सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। तब प्रेमनारायण के पुत्र ने मालवा से खानदौरा के साथ दरबार में उपस्थित हो बादशाह से सारी घटना अर्ज की। इसपर बादशाह ने सुंदर कविराय के हाथ निम्नलिखित आशय का फ़रमान जुभारसिंह के पास भेजा—

“बिना शाही आज्ञा के प्रेमनारायण पर चढ़ाई करके तुमने उचित नहीं किया है। इसका दंड यही है कि तुम उससे छीनी हुई सारी जागीर हमारे हवाले कर दो, साथ ही प्रेमनारायण के खज़ाने से मिले हुए धन में से दस लाख रुपये दरबार में भेज दो, परंतु यदि जीती हुई भूमि तुम अपने ही अधिकार में रखना चाहो तो अपनी जागीर में से तुम्हें उसके बराबर भूमि देनी होगी।”

उपर्युक्त आज्ञापत्र की सूचना अपने वकीलों के द्वारा जुभारसिंह को पहले ही मिल गई, जिससे उसने अपने पुत्र विक्रमाजित^३ को भाग आने के लिए कहलाया। विक्रमाजित के बालाघाट से अपने साथियों सहित भागने पर वहां के सूबेदार खानज़मां ने तो उसे नहीं रोका, परन्तु खानदौरा ने, जिसकी नियुक्ति महावतखां की मृत्यु के बाद

(१) फ़ारसी तबारीखों में कहीं-कहीं भीमनारायण भी लिखा है।

(२) कहीं-कहीं चौरागढ़ भी लिखा है। यह स्थान मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर ज़िले में गाढ़रवाड़ा स्टेशन से पांच कोस दक्षिण-पूर्व में है।

(३) इसे बादशाह की ओर से जगराज का खिताब मिला था, इसीसे तबारीखों आदि में इसे कहीं-कहीं जगराज भी लिखा है।

दक्षिण में हो गई थी, कर्णसिंह, राजा पहाड़सिंह, चन्द्रमणि बुंदेला^१, माधोसिंह हाड़ा, नज़रबहादुर और मीर फैजुल्ला आदि के साथ उसका पीछा किया और पांच दिन में मालवे में अष्टा के निकट जा घेरा। लड़ाई होने पर विक्रमाजित जल्मी होने पर भी भाग गया। मालवे का सूवेदार अल्लहवर्दीखां वहीं था, पर वह उसका पीछा न कर सका। फलस्वरूप विक्रमाजित धामूनी में अपने पिता से जा मिला^२। कुछ दिनों पीछे सुलतान (शाहज़ादा) औरंगज़ेब की अध्यक्षता में शाही सेना ने पिता-पुत्र का पीछा कर उन्हें मार डाला। जुम्हारसिंह के अन्य कई पुत्र आदि बन्दी करके शाही दरबार में भेज दिये गये। इस प्रकार बादशाह के इस विरोधी का अंत हुआ।

शाहजी के जीतेजी दक्षिण में शान्ति की स्थापना असंभव थी। उसने निज़ामुल्मुल्क के खानदान के एक बालक को निज़ामुल्मुल्क बना-

कर्णसिंह का शाहजी
पर भेजा जाना

कर दक्षिण का थोड़ा भाग दवा लिया था, अतएव बादशाह ने वि० सं० १६६२ फाल्गुन वदि ६ (ई० सं० १६३६ ता० १७ फ़रवरी) को खानदौरां और

खानज़मां को उसपर जाने का आदेश दिया। साथ ही उन्हें यह भी आज्ञा दी गई कि यदि आदिलखां शाही सेना से मिल जाय तो ठीक, नहीं तो उसपर भी चढ़ाई की जावे। खानदौरां तथा खानज़मां की मदद के लिए बड़े-बड़े मनसबदार उनके साथ भेजे गये। कुछ दिनों बाद जब बादशाह के पास खबर पहुँची कि आदिलखां ने शुभ रीति से उदैगढ़^३ और अड़से^४ के

(१) राजा वीरसिंहदेव बुंदेला का पुत्र तथा जुम्हारसिंह बुंदेले का भाई।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी; बादशाहनामा—इलियद्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० ४७। मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; भाग १, पृ० १४१-२। घज़रनदास; मअ़ासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० १८६-७। डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहाँ ऑव् देहली; पृ० ८३-४।

(३) हैदराबाद के अन्तर्गत बीदर ज़िले में।

(४) हैदराबाद के अन्तर्गत ओसमानाबाद ज़िले में।

किलेदारों को मदद पहुंचाई है और शाहजी की सहायतार्थ रनदोला को भेजा है, तो उसने सैय्यद खानजहां को भी उस (शाहजी) पर भेजा । इस अवसर पर महाराजा कर्णसिंह, हरिसिंह राठोड़, राजा रोज़ अफ़जुं का पुत्र राजा बहरोज़, राजा अनूपसिंह का पुत्र जयराम, राव रतन का पोता इन्द्रसाल आदि भी खानजहां के साथ थे । बादशाह का हुक्म था कि खानजहां, खानदौरां और खानज़मां भिन्न-भिन्न मार्गों से बीजापुर में प्रवेश कर रनदोला को शाहजी से मिलने से रोकें^१ । अन्ततः शाही सेना-द्वारा लगातार पीछा किये जाने पर आदिलख़ां (शाह), रनदोला तथा शाहजी ने क्रमशः आत्मसमर्पण करके बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली ।

जोधपुर के स्वामी गजसिंह (वि० सं० १६७६ से १६९५ = ई० स० १६१६ से १६३८ तक) का ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह था, परंतु कुछ कारणों से^२ उसे

(१) राजा संग्राम का पुत्र । पिता के मारे जाने के समय यह बहुत छोटा था, अतएव बादशाह ने इसे अपने पास रख लिया । बड़े होने पर इसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया । औरंगज़ेब के दसवें राज्यवर्ष (वि० सं० १७२२ = ई० स० १६३५) में इसका देहांत हुआ ।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी; बादशाहनामा—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० ५१-६० । मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १६६-७३ । डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑफ़ शाहजहां ऑफ़ देहली; पृ० १४४-८ ।

(३) दयालदास लिखता है कि एक बार अमरसिंह ने क्रोध में अपने बहनोई, रीवां के कुंवर को मार डाला । अमरसिंह का पिता बहुत पहले से ही इससे नाराज़ रहता था, अतएव उसने इसे देश से निकाल दिया (जि० २, पत्र ३६) ।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि अनारा नाम की अपनी विशेष प्रीतिपात्र पातर से अमरसिंह की सदा अनबन रहने के कारण गजसिंह ने जसवंतसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया तथा अमरसिंह को बादशाह से कहकर नागौर दिलवा दिया (जि० १, पृ० १७७-८) ।

फ़ारसी तबारीख़ों में लिखा है कि गजसिंह ने अपने छोटे बेटे जसवंतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने की बादशाह से अर्ज़ की, क्योंकि वह जसवंतसिंह की माता पर अधिक स्नेह रखता था (वीरचिनोद; भाग २, पृ० ८२१) ।

कर्णसिंह का अमरसिंह
पर फौज भेजना

अपना उत्तराधिकारी न बनाकर गजसिंह ने अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को गद्दी का स्वामी नियत किया। तब अमरसिंह बादशाह की सेवा में चला गया, जहां उसे राव का खिताब और नागोर की जागीर मिल गई। जोधपुर और बीकानेर की सीमा मिली हुई होने से उन दोनों राज्यों में परस्पर झगड़ा बना ही रहता था। कुछ दिनों बाद अमरसिंह ने बीकानेर की सीमा के जाखाणिया गांव पर भी अपना अधिकार कर लिया। जब कर्णसिंह को इसकी सूचना दिल्ली में मिली तो उसने अपनी सेना को वहां से उस- (अमरसिंह) का थाना उठवा देने की आज्ञा भेजी। उन दिनों मुहता जसवन्त बीकानेर का दीवान था। वह महाजन, भूकरका, सीधमुख आदि के सरदारों के साथ फौज लेकर नागोर पर चढ़ गया। अमरसिंह की तरफ से केसरीसिंह ससैन्य मुकाबिले के लिए जाखाणिया आया, परन्तु उसे हारकर भागना पड़ा। यह लड़ाई वि० सं० १७०१ (ई० सं० १६४४)

इसके अतिरिक्त ख्यातों आदि में और भी कई कारण अमरसिंह के निकलवाये जाने के मिलते हैं, पर यह कहना कठिन है कि उनमें से कौन अधिक विश्वासयोग्य है। संभव तो यही है कि जसवन्तसिंह की माता पर अधिक स्नेह होने के कारण उसको अपना उत्तराधिकारी बनाकर गजसिंह ने अमरसिंह को राज्य के अधिकार से वंचित कर दिया हो। ऐसे अनेक उदाहरण जोधपुर के इतिहास में मिलते हैं। जैसे राव मल्लीनाथ के छोटे भाई वीरमदेव का पुत्र चूंडा मंडोवर का स्वामी बना; राव चूंडा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल को निर्वासित कर कान्हा को गद्दी दी; राव मातादेव के बड़े बेटों रामसिंह तथा उदयसिंह से छोटा चंद्रसेन गद्दी का अधिकारी बनाया गया, आदि।

(१) इस लड़ाई के सम्बन्ध में यह भी जनश्रुति है कि बीकानेर की सीमा पर एक किसान ने मतीरे की बेल बोई जो फैलकर नागोर की सीमा में चली गई और फल भी उधर ही लगे। जब बीकानेर का किसान उधर अपने फल तोड़ने के लिए गया तो नागोर की तरफ के किसानों ने यह कहकर बाधा डाली कि फल हमारी सीमा में हैं, अतएव उनपर हमारा अधिकार है। इसपर उन किसानों में झगड़ा होने लगा। होते-होते यह खबर दोनों ओर के राज्याधिकारियों के पास पहुंची, जिससे इसका रूप और बढ़ गया तथा दोनों में लड़ाई हो गई। राजपूताने में इसे 'मतीरे की राढ़' कहते हैं।

में हुई और इसमें नागोर के कई राजपूत काम आये । जब अमरसिंह को दिल्ली में इसकी खबर मिली तो उसे बड़ा अफसोस हुआ और उसने वहां से जाने की आज्ञा मांगी, परन्तु उसी समय कर्णसिंह ने अमरसिंह के जाखणिया लेने तथा युद्ध होने का सारा हाल बादशाह से निवेदन कर दिया, जिसपर बादशाह ने अमरसिंह को दरवार ही में रोक रक्खा^२ ।

कुछ वर्षों बाद कर्णसिंह का अधीनस्थ पूगल का राव सुदर्शन भाटी (जगदेवोत) विद्रोही हो गया, जिससे उसने ससैन्य उसपर चढ़ाई

कर्णसिंह को पूगल
पर चढ़ाई

कर उसका गढ़ घेर लिया । प्रायः एक मास तक घेरा रहने पर एक रात्रि को अवसर पाकर सुदर्शन भागकर लखवेरा में चला गया । कर्णसिंह

ने उसके गढ़ को नष्टकर वहां अपना थाना बैठा दिया^३ और पड़िहार लूणा तथा कोठारी जीवनदास को वहां के प्रबन्ध के लिए छोड़कर उसने फौज के साथ लखवेरा में सुदर्शन का पीछा किया । वहां के जोड़ियों ने तत्काल उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और उसे पेशकशी दी, जिसे लेकर वह बीकानेर लौट गया^४ ।

(१) कविराजा बांकीदास के 'ऐतिहासिक बातें' नामक ग्रंथ में इस लड़ाई के होने का समय वि० सं० १६६६ (ई० सं० १६४२) दिया है और सीलवा नामक स्थान में इसका होना लिखा है (संख्या ६८६) ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६-४० । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३५ ।

फ़ारसी तवारीखों में इस घटना का उल्लेख नहीं है ।

(३) बीकानेर की ख्यातों में इस घटना का समय नहीं दिया है । मुंहणोत नैणसी ने वि० सं० १७२२ (ई० सं० १६६५) में कर्णसिंह-द्वारा सुदर्शन से पूगल का लिया जाना लिखा है (ख्यात; जि० २, पृ० ३८०) ।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४० । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४६६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३५ ।

बीकानेर और मुलतान के मध्य के ऊजड़ प्रदेश में स्थित होने पर भी पूगल सदा से एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भाटियों ने उसे पंचारों से लिया था। उस समय उसमें केवल २०० गांव पूगल का वंटवारा करना थे, जो कर्णसिंह के समय में बढ़कर ५६१ हो गये। बीका के श्वसुर शेखा के वंशजों ने अब उसका वंटवारा करने की प्रार्थना की। तदनुसार कर्णसिंह ने उसके कई भाग कर उनमें बांट दिये। शेखा के ज्येष्ठ पुत्र हरा के वंशज को पूगल तथा २५२ गांव; दूसरे पुत्र केवान के दो पुत्रों में से एक को भीखमपुर तथा ८४ गांव तथा दूसरे को वरसलपुर एवं ४१ गांव और तीसरे पुत्र बाघा के वंशज को रायमलवाली तथा १८४ गांव वंटवारे में मिले^१।

शाहजहां के २२ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १७०५-६=ई० स० १६४८-९) में कर्णसिंह का मनसब बढ़कर दो हजार ज़ात तथा दो हजार सवार का हो गया और सआदतखां के स्थान में वह बादशाह की ओर से दौलताबाद का किलेदार नियत हुआ। लगभग एक वर्ष बाद ही उसके मनसब में पुनः वृद्धि होकर वह ठाई हजार ज़ात और दो हजार सवार का मनसबदार हो गया^२।

सन जुलूस २६ (वि० सं० १७०६ = ई० स० १६५२) में कर्णसिंह का मनसब बढ़कर तीन हजार ज़ात और दो हजार सवार का हो गया^३।

अनन्तर जब मुलतान (शाहज़ादा) औरंगज़ेब की नियुक्ति बादशाह ने दक्षिण में की तो कर्णसिंह को भी उसके साथ रहने दिया। औरंगाबाद सूबे के

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४६७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३५।

(२) उमराए हनुद; पृ० २६८। ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल उमरा (हिन्दी); पृ० ८६।

(३) उमराए हनुद; पृ० २६८। ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल उमरा (हिन्दी); पृ० ८६।

अंतर्गत जवार का प्रांत लेना निश्चित हो चुका था, इस कारण पूर्वोक्त शाहजादे की सम्मति पर वहां का वेतन कर्णसिंह के मनसब में नियत करके उसे उस प्रांत में भेजा गया। वहां के जमींदार की सामर्थ्य कर्णसिंह का सामना करने की न थी, अतएव उसने धन आदि भेंट में देकर वहां की तहसील उगाहना अपने जिम्मे ले लिया और अपने पुत्र को ओल (जमानत) में उसके साथ कर दिया^१। तब कर्णसिंह वहां से लौटकर शाहजादे के पास चला गया^२।

हिजरी सन् १०६८ (वि० सं० १७१४-१५=ई० स० १६५७-५८) में शाहजहां के बीमार पड़ने पर सल्तनत का सारा कार्य दाराशिकोह^३ ने अपने हाथ में ले लिया, जिससे अन्य शाहजादों के दिल में खटका हो गया और प्रत्येक बादशाह बनने का उद्योग करने लगा। शाहजादा शुजा बंगाल से और औरंगजेब दक्षिण से अपने सब सैन्य के साथ चला। उधर मुराद भी गुजरात की तरफ से अपनी सेना के साथ खाना हुआ। औरंगजेब ने उस (मुराद) को बादशाह बनाने का लालच देकर अपने पक्ष में मिला लिया। उधर दाराशिकोह ने, जिसके हाथ में सल्तनत थी, शुजा के मुक्काबले में अपने शाहजादे सुलेमान शिकोह को और औरंगजेब तथा मुराद के सम्मिलित सैन्य को रोकने के लिए जोधपुर के महाराजा

(१) उमराए हनुद में केवल इतना लिखा है कि कर्णसिंह औरंगजेब के साथ की दक्षिण की प्रत्येक लड़ाई में शामिल था (पृ० २६८)।

दयालदास की ख्यात में भी बादशाह-द्वारा कर्णसिंह को जवारी का परगना मिलना एवं उसका वहां अपना थाना स्थापित करना लिखा है (जि० २, पत्र ४०); परन्तु उपर्युक्त ख्यात के अनुसार इस घटना का संवत् १७०१ (ई० स० १६४४) पाया जाता है, जो फारसी तवारीख के कथन से मेल नहीं खाता। साथ ही उसमें वहां के स्वामी का नाम नेमशाह लिखा है। 'मआसिरुल् उमरा' में ब्रैकेट में उसका नाम श्रीपति दिया है।

(२) ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ८६-७।

(३) बादशाह शाहजहां का ज्येष्ठ पुत्र।

जसवंतसिंह एवं फ़ासिमख़ां को ख़ाना क्रिया । औरंगज़ेब का युद्ध का विचार देख महाराजा कर्णसिंह ने स्वयं किसी शाहज़ादे का पक्ष न लेना चाहा और धर्मातपुर के युद्ध के पहले ही वह शाहज़ादे की आज्ञा बिना बीकानेर को चला गया^१ । महाराजा जसवंतसिंह पर धर्मातपुर (फ़तिहाबाद) में विजय पाकर दोनों शाहज़ादे आगे बढ़े और आगरे के पास ससूनगर में शाहज़ादे दाराशिकोह पर विजय पाकर औरंगज़ेब आगरे पहुंचा । फिर बुड़दे बादशाह शाहजहां को कैद कर वि० सं० १७१५ श्रावण सुदि ३ (ई० सं० १६५८ ता० २३ जुलाई) को वह सुगल साम्राज्य का स्वामी बन गया ।

महाराजा कर्णसिंह औरंगज़ेब के पक्ष में न रहकर बिना आज्ञा बीकानेर चला गया था । इसका ध्यान औरंगज़ेब के दिल में इतना रहा कि सिंहासनारूढ़ होने के तीसरे साल (वि० सं० १७१७ = ई० सं० १६६०) उसने अमीरख़ां ख़्वाफ़ी को कर्णसिंह पर भेजा, जिसके बीकानेर की सीमा पर पहुंचते ही वह (कर्णसिंह) अपने पुत्र अनूपसिंह तथा पद्मसिंह के साथ दरबार में उपस्थित हो गया । तब बादशाह ने उसका मनलव बहाल करके उसकी नियुक्ति दक्षिण में कर दी^२ ।

(१) फ़ारसी तबारीख़ों के उपर्युक्त कथन से तो यही सिद्ध होता है कि शाहजहां के चारों पुत्रों में राज्य के लिए परस्पर जो युद्ध हुआ उसमें कर्णसिंह ने किसी ओर से भाग नहीं लिया । इसके विपरीत अन्य पुस्तकों में यह लिखा मिलता है कि कर्णसिंह के दो पुत्र (केसरीसिंह तथा पद्मसिंह जो शाही सेवक थे) तक्ष्त के लिए होनेवाली लड़ाइयों में औरंगज़ेब की ओर से शामिल थे । उनमें से एक केसरीसिंह को उसकी वीरता के लिए औरंगज़ेब ने लाहौर से दिल्ली आते समय मार्ग में मीनाकारी के काम की एक तलवार भेंट की, जो राज्य में अब तक सुरक्षित है (पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३५) ।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग १, पृ० ५० । उमराए हनुद; पृ० २६८ । ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुज् उमरा; (हिन्दी); पृ० ८८ । सर जदुनाथ सरकार; हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० २६-३० (अगस्त ई० सं० १६६० में फौज भेजना लिखा है) ।

सन् जुलूस ६ (वि० सं० १७२३ = ई० स० १६६६) में बादशाह ने कर्णसिंह को दिलेरखां दाऊदज़ई के साथ चांदा के ज़मींदार को दंड देने के लिए भेजा । फिर कर्णसिंह से कुछ ऐसी बात हो गयी, जिससे उसे बादशाह का कोप-भाजन बनना पड़ा । बादशाह उससे इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने उसकी जागीर तथा मनसब ज़ब्त कर लिया और उसके स्थान में उसके ज्येष्ठ पुत्र अनूपसिंह को बीकानेर का राज्य तथा ढाई हज़ार जात एवं दो हज़ार सवार का मनसब दिया ।

फ़ारसी तवारीखों के उपर्युक्त कथन से ज्ञात होता है कि बादशाह कर्णसिंह पर बहुत ही रुष्ट हुआ, परंतु उसका कारण उनमें कुछ भी नहीं बतलाया है । ख्यातों में इस घटना से सम्बन्ध रखने-वाला जो वृत्तान्त दिया है उससे इसपर बहुत प्रकाश पड़ता है अतएव उसका उल्लेख करना आवश्यक है ।

वैसे तो कई मुसलमान बादशाहों की अभिलाषा इतर जातियों को मुसलमान बनाने की रही थी, परन्तु औरंगज़ेब इस मार्ग में आगे बढ़ना चाहता था । उसने हिन्दू राजाओं को मुसलमान बनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए काशी आदि अनेक तीर्थ-

(१) इसका असली नाम जलालखां था और यह बहादुरखां रहेला का छोटा भाई था । इसे आलमगीर के समय में पांच हज़ारी मनसब प्राप्त था । हिजरी सन् १०६४ (वि० सं० १७३६-४० = ई० स० १६८३) में दक्षिण में इसकी मृत्यु हुई ।

(२) उमराए हनूद; पृ० २६६ । वज़रलदास; मन्शासिरुल उमरा (हिन्दी); पृ० ८८ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४६८ ।

औरंगज़ेब के सन् जुलूस १० ता० १६ रबीउलअव्वल (हि० स० १०७८ = वि० सं० १७२४ आश्विन वदि ४ = ई० स० १६६७ ता० २७ अगस्त) के फ़रमान से भी फ़ारसी तवारीखों के उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है । इस फ़रमान से पाया जाता है कि बादशाह कर्णसिंह से अत्यन्त ही अप्रसन्न हो गया था, इसलिए उसने बीकानेर का राज्य और मनसब अनूपसिंह के नाम कर दिया ।

स्थानों के देवमंदिरों को नष्ट कर वहाँ मसजिदें बनवाना आरंभ किया। ऐसी प्रसिद्धि है कि एक समय बहुतसे राजाओं को साथ लेकर बादशाह ने ईरान(?) की ओर प्रस्थान किया और मार्ग में अटक में डरे हुए। औरंगज़ेब की इस चाल में क्या भेद था, यह उसके साथ जानेवाले राजपूत राजाओं को मालूम न होने से उनके मन में नाना प्रकार के सन्देह होने लगे, अतएव आपस में सलाहकर उन्होंने साहबे के सैय्यद फ़कीर को, जो कर्णसिंह के साथ था, बादशाह के असली मनसूबे का पता लगाने को भेजा। उस फ़कीर को अस्तख़ां से जब मालूम हुआ कि बादशाह सब को एक दीन करना चाहता है, तो उसने तुरंत इसकी ख़बर कर्णसिंह को दी। तब सब राजाओं ने मिलकर यह राय स्थिर की कि मुसलमानों को पहले अटक के पार उतर जाने दिया जाय, फिर स्वयं अपने-अपने देश को लौट जायें। वाद में ऐसा ही हुआ। मुसलमान पहले ही पार उतर गये। इसी समय आँवेर से जयसिंह की माता की मृत्यु का समाचार पहुँचा, जिससे राजाओं को १२ दिन तक और रुक जाने का अवसर मिल गया, परन्तु उसके बाद फिर वही समस्या उत्पन्न हुई। तब सब के सब कर्णसिंह के पास गये और उन्होंने उससे कहा कि आपके बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता। आप यदि सब नायें तुड़वा दें तो हमारा बचाव हो सकता है, क्योंकि ऐसा होने से देश को प्रस्थान करते समय शाही सेना हमारा पीछा न कर सकेगी। कर्णसिंह ने भी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और धर्मरक्षा के लिए बादशाह का कोप-भाजन बनना पसन्द किया। निदान ऐसा ही किया गया और इसके बदले में समस्त राजाओं ने कर्णसिंह को 'जंगल-धर पादशाह' का ख़िताब दिया। साहबे के फ़कीर को उसी दिन से

(१) जयपुर राज्य की ख़्यात में लिखा है—

‘बादशाह ने जयसिंह (मिर्ज़ा राजा) को कहा कि तुम सब राजाओं में बड़े हो, सो हम कहें वैसा करो। इसपर जयसिंह ने इस बात का भेद पाकर बादशाह को निवेदन किया कि सिर तो हमने बेचा, परन्तु धर्म बेचा नहीं। कई दिन पीछे सब राजाओं को साथ लेकर बादशाह अटक गया और राजाओं को आज्ञा दी कि सब अटक

उतरे। तब राजाओं ने जयसिंह के डेरे में इकट्ठे होकर सलाह की—बादशाह हमको अटक के पार क्यों ले जाता है, इसका कारण ठीक-ठीक ज्ञात नहीं। राजाओं ने जयसिंह से कहा कि इसका निश्चय आप से होगा। फिर जयसिंह ने सूरजमल भोमिये को बुलाकर सारे समाचार कहे। उसने कहा कि बादशाह तुम सब को अपने खाने में शामिल करेगा। यह बात जयसिंह ने राजाओं से कही तो उन्होंने मिलकर यह बात स्थिर की कि कल किसी बात की खुशी कर यहां डेरा रख दें और बादशाह को अटक पार हो जाने दें। फिर सब लोग अपने-अपने घर चल दें। बादशाह का हुक्म पहुंचा कि प्रातःकाल अटक के पार डेरा होगा। इसपर बीकानेर के राजा को कहलाया कि तुम खुशी कराओ और यह बात प्रसिद्ध करो कि मेरे महाराजकुमार का जन्म हुआ है। तब उसने सब राजाओं के यहां सूचना दिलवा, उनको अपने यहां बुलवाये।

‘जब यह खबर औरंगजेब ने सुनी और प्रातःकाल ही ताफीद की कि अवश्य हाज़िर हो, तो सब राजाओं ने मिलकर बादशाह से निवेदन कराया कि आप तो लवाजमे सहित अटक पार उतरे और हम सब कल हाज़िर होंगे। फिर सब मुसलमान तो अटक पार उतर गये और नावें इकट्ठी करवाकर आग लगवा दी। यह खबर बादशाह ने सुनी तो वह अपने वज़ीर के साथ बीकानेर के राजा के डेरे में आया। सब राजाओं ने उससे सलाम की। बादशाह ने कहा तुमने सब नावें जला दीं ? तब सब राजाओं ने अज़ा किया कि आपने मुसलमान बनाने का विचार किया, इसलिए आप हमारे बादशाह नहीं और हम आपके सेवक नहीं। हमारा तो बादशाह बीकानेर का राजा है, सो जो वह कहेगा हम करेंगे, आपकी इच्छा हो वह आप करें। हम धर्म के साथ हैं, धर्म छोड़ जीवित रहना नहीं चाहते। बादशाह ने कहा — तुमने बीकानेर के राजा को बादशाह कहा सो अब वह जंगलपति बादशाह है। फिर उसने सब की तसल्ली कर कुरान बीच में रख सौगंध खाई कि अब ऐसी बात तुमसे नहीं होगी तथा तुम कहोगे वैसा करूंगा, तुम सब दिल्ली चलो, तब वे दिल्ली गये।’

(जयपुर के पुरोहित हरिनारायण, बी० ए० के

संग्रह, की हस्तलिखित ख्यात से)।

कर्णसिंह को ‘जंगलधर पातशाह’ का खिताब मिलने की बात निर्मूल नहीं है (कारण चाहे जो हो), क्योंकि उसी के राज्यकाल में उसके विद्यानुरागी ज्येष्ठ कुंवर अनूपसिंह ने शुकससति (शुकसारिका) नामक संस्कृत पुस्तक का राजस्थानी भाषा में अनुवाद कराया, जिसके अनुवादकर्त्ता ने कर्णसिंह को ‘जंगल का पतसाह’ लिखा है—

करि प्रणाम श्रीसारदा अपनी बुद्धि प्रमाण ।

शुकसारिक वार्त्ता करुं द्यो मुक्त अक्षर दान ॥ १ ॥

बीकानेर राज्य में प्रतिघर प्रतिवर्ष एक पैसा उगाहने का हक्क है। अनन्तर सब अपने-अपने देश चले गये।

बादशाह को जब यह सारा समाचार चिदित हुआ तो वह कर्णसिंह पर बहुत नाराज़ हुआ और दिल्ली लौटने पर उसने उसके ऊपर सेना भेज

बादशाह का कर्णसिंह को
औरंगाबाद भेजना तथा
उसकी जागीर अनूपसिंह
को देना

दी। बाद में औरंगज़ेब ने सेना को वापस बुला लिया और एक अहदी भेजकर कर्णसिंह को दरबार में बुलवाया। कर्णसिंह के कुछ साथियों की राय थी कि इस अवसर पर उसे स्वयं न जाकर

अपने पुत्र अनूपसिंह को भेज देना चाहिये, परन्तु वीर कर्णसिंह ने इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया और वह स्वयं बादशाह की सेवा में गया। उसके साथ उसके दो पुत्र—केसरीसिंह तथा पद्मसिंह—भी गये। इसी बीच कर्णसिंह के अनौरस (पासवानिया) पुत्र वनमालीदास ने बीकानेर का राज्य मिलने के बदले मुसलमान हो जाने की अभिलाषा प्रकट की। बादशाह ने उसे आश्वासन देकर कर्णसिंह को दरबार में पहुंचते ही मरवा देने का प्रवन्ध किया, परन्तु कर्णसिंह के साथ केसरीसिंह तथा पद्मसिंह

विक्रमपुर सुहामणो सुख संपति की ठौर।

हिंदूस्थान हींदूधरम औसो सहर न और ॥ २ ॥

तिहां तपै राजा करण जंगल कौ पतिसाह।

ताको कुंवर अनूपसिंह दाता सूर दुवाह ॥ ३ ॥

(हमारे संग्रह की प्रति से)।

अतएव यह मानना पड़ेगा कि ख्यातों के इस कथन में सत्य का कुछ अंश अवश्य है।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३५-६।

(२) जोनाथन स्कॉट (Jonathan Scott) ने दतिया के राजा के यहां से प्राप्त राय दलपत बुंदेला के एक सेवक की लिखी हुई फ़ारसी तवारीख़ के अंग्रेज़ी अनुवाद में हि० स० १०७७ (ई० स० १६६७=वि० सं० १७२४) के प्रसङ्ग में लिखा है—

“बीकानेर का स्वामी राव कर्ण जो दो हज़ारी मनसबदार और कुछ समय तक

के भी आ जाने से उसका अभीष्ट सिद्ध न हो सका । तब बादशाह ने कर्णसिंह को औरंगाबाद में भेज दिया, जहां वह अपने नाम से बसाये हुए कर्णपुरा में रहने लगा ।

दौलताबाद (दक्षिण) में किलेदार भी रहा, इन दिनों शाही कार्य की तरफ बेपरवाही रखता है और उसके बुरे बरताव का हाल बादशाह तक पहुंच चुका है । उसके पुत्र ने अपने बाप से विरोध किया है और इस समय बीकानेर की ज़मींदारी अपने लिए प्राप्त कर ली है । इससे राव कर्णसिंह दिन-दिन सेवा से विमुख रहता है और इस समय दिलेरख़ां के साथ होने पर भी उसकी आज्ञा की उपेक्षा करता है, क्योंकि उसकी आय बन्द हो गई है । रुपयों के अभाव में वह रात्रि के समय अपने राजपूतों सहित शाही छावनी को और कूच के समय आसपास के गांवों को भी लूटता है । इस बात का सबूत मिलने पर दिलेरख़ां ने अपनी बदनामी होने के भय से डरकर बादशाह को उसकी शिकायत लिखी, जिसपर यह आज्ञा मिली कि यदि उसका फिर ऐसा विचार हो तो उसे मार डालें अथवा कैद करें । राव भावसिंह हाढ़ा (वृंदी का) के वकील ने, जो शाही दरबार में रहता था, यह ख़बर पाते ही तुरन्त अपने स्वामी को, जो दिलेरख़ां के साथ रहता था, सूचना दी ।

‘इस आज्ञा के पाते ही दूसरे दिन दिलेरख़ां शिकार का बहाना कर राव कर्ण के डेरों के पास होकर निकला और उससे कहलाया कि शिकार के आनन्द में वह सम्मिलित हो । राव कर्ण उसके छल से अपरिचित होने से हाथी पर सवार होकर अपने राजपूतों सहित ख़ान से जा मिला । सौभाग्य से राव भावसिंह इस बात की ख़बर पाते ही अपने राजपूतों सहित उसके पास पहुंचा और उसने अपने मित्र (कर्णसिंह) को ख़ान से अलग कर उसकी जान बचाई । दिलेरख़ां की इच्छा पूर्ण न होने से वह औरंगाबाद को चला गया, जहां यह दोनों राव (कर्णसिंह और भावसिंह) कुछ समय पीछे पहुंचे ।’

(हिस्ट्री ऑफ़ दि डेक्कन; जि० २, पृ० १६-२०

सन् १७६४ ई० का लन्दन का संस्करण) ।

(१) दयालदास की कथात; जि० २, पत्र ४६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३७-३८ ।

बादशाह औरंगज़ेब के सन् जुलूस ७ ता० १४ जमादिउस्सानी (हि० स० १०७५ = वि० सं० १७२१ माघ वदि १ = ई० स० १६६४ ता० २३ दिसंबर) के फ़रमान में भी लिखा है—‘औरंगाबाद सूबे के अन्तर्गत बनवारी और कर्णपुर के ज़िले राव कर्ण के हैं ।’

फ़ारसी तवारीख़ों में लिखा है कि औरंगाबाद पहुँचने के लगभग एक वर्ष बाद कर्णसिंह का देहांत हो गया^१। कर्णसिंह की स्मारक छतरी के लेख से पाया जाता है कि वि० सं० १७२६ मृत्यु
आषाढ सुदि ४ (ई० सं० १६६६ ता० २२ जून)
मंगलवार को उसकी मृत्यु हुई^२। मृत्यु से पूर्व एक पत्र में उसने

उपर्युक्त ज़िलों में उस (महाराजा कर्णसिंह) ने कर्णपुरा, केसरीसिंहपुरा और पद्मपुरा गांव नये बसाये थे । बीकानेर राज्य के पत्रों से ज्ञात होता है कि दक्षिण के इन दोनों परगनों में से एक गांव पनवाड़ी महाराजा अनूपसिंह के समय वि० सं० १७४३ (ई० सं० १६८६) में बल्लभ संप्रदाय के औरंगाबाद के गोकुलजी विठ्ठलनाथजी के मंदिर को भेंट कर दिया गया, जिसकी वार्षिक आय एक लाख दाम (ढाई हजार रुपये) थी । कर्णपुरा, केसरीसिंहपुरा और पद्मपुरा पर ई० सं० १६०४ (वि० सं० १६६०) तक बीकानेर राज्य का अधिकार रहा । वर्तमान महाराजा साहब के समय में जब अंग्रेज़ सरकार ने औरंगाबाद की छावनी को बढ़ाना चाहा, तब इन गांवों को लेने की आवश्यकता समझ, इनके बदले में उतनी ही आय के पंजाब ज़िले के दो गांव, रत्ताखेड़ा और वावलवास तथा पचीस हजार रुपये बीकानेर राज्य को नक़द देकर इन्हें अपने अधिकार में कर लिया ।

(१) उमराए हनूद; पृ० २६६ । ब्रजरत्नदास; मथ्यासिरूख़ उमरा (हिन्दी); पृ० ८६ । बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें' में भी कर्णसिंह का औरंगाबाद में मरना लिखा है (संख्या ११७) ।

डॉड ने बीकानेर में उसका मरना लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३६), जो ठीक नहीं है । पाउलेट लिखता है कि कर्णसिंह की मृत्यु के समय चूरू का ठाकुर कुशलसिंह उसके पास था (गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३८) ।

(२) अथ संवत्सरेऽस्मिन् नृपतिविक्रमादित्यराज्यात्
सं० १७२६ वर्षे शके १५६१ प्र० महामांगल्यप्रदआषाढमासे
शुक्लपक्षे तिथौ ४ भौमवारे
..... श्रीकर्णः श्रीविष्णुपुरं प्राप्तः ।

छपातों आदि में भी यही समय दिया है ।

अनूपसिंह को बनमालीदास के षड्यन्त्रों से सावधान रहने को लिखा था^१ ।

कर्णसिंह के आठ पुत्र हुए^२—

- (१) रुक्मांगद चन्द्रावत की बेटी राणी कमलादे से अनूपसिंह ।
 (२) खंडेला के राजा द्वारकादास की बेटी से केसरीसिंह । (३) हाड़ा
 वैरीशाल की बेटी से पद्मसिंह^३ । (४) श्रीनगर के
 राणियां तथा संतति राजा की पुत्री राणी अजयकुंवरी से मोहनसिंह—
 जन्म वि० सं० १७०६ चैत्र सुदि १४ (ई० सं० १६४६ ता० १७ मार्च) ।
 (५) देवीसिंह । (६) मदनसिंह । (७) अजयसिंह तथा (८) अमरसिंह ।

उसकी एक राणी उदयपुर के महाराणा कर्णसिंह की पुत्री थी^४ ।
 उससे नंदकुंवरी का जन्म हुआ, जिसका विवाह रामपुरा के चंद्रावत
 हठीसिंह से हुआ था । जब महाराणा जगत्सिंह की माता (कर्णसिंह की
 राणी) जांबुवती सौरों की यात्रा को गई, तब नंदकुंवरी भी उसके साथ
 थी । वहां जब उस (जांबुवती) ने चांदी की तुला की, उस समय अपनी
 दोहिती नंदकुंवरी को भी अपने साथ तुला में बिठलाया था^५ ।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४७ ।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०० । दयालदास की ख्यात;
 जि० २, पत्र ४१ और ४७ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३८ ।

(३) यह कोंकण में काम आया (बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ११७) ।

(४) यह विवाह महाराणा जगत्सिंह (प्रथम) के समय में हुआ था
 (मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० २, पृ० ८३०, टि० १) ।

(५) बीकानरेशकर्णस्य सुता राम पुरा प्रभोः ।

हठीसिंहस्य सत्पत्नी उदारा नंदकुंवरी ॥ ४१ ॥

मातामह्या जांबुवत्या संगेरूप्यां तुलां व्यधात् ।

पूर्वे वर्षे जांबुवत्या आज्ञया नंदकुंवरी ॥ ४२ ॥

राजप्रशस्तिमहाकान्य; सर्ग ५ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ५६० ।

मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० २, पृ० ८३८ ।

बीकानेर के शासकों में कर्णसिंह का स्थान बड़े महत्व का है, क्योंकि कट्टर मुगल शासक औरंगज़ेब से बीकानेर के राजाओं में सबसे पहले उसका ही सम्पर्क हुआ था। बादशाह शाहजहाँ के समय में उसका सम्मान बड़े ऊँचे दर्जे का था। फ़तहख़ां, शाहजी एवं परेंडे पर की चढ़ाइयों में उसने भी शाही सेना के साथ रहकर बड़ी वीरता दिखलाई थी। पीछे से जवारी का परगना लेने का निश्चय होने पर शाहजहाँ ने उसे ही वहाँ का शासक नियुक्त कर भेजा था। वह राजनीति का भी अच्छा ज्ञाता था। शाहजहाँ के बीमार पड़ने पर जब उसके चारों पुत्रों में राज्य-प्राप्ति के लिए लड़ाइयाँ होने लगीं, उस समय वह अपने देश लौट गया और चुपचाप युद्ध की गति-विधि देखने लगा। किसी एक का भी साथ देना, उसके असफल होने पर, कर्णसिंह के लिए हानिप्रद ही सिद्ध होता। शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ कई लड़ाइयों में रहने के कारण वह उसकी शक्ति से परिचित हो गया था। वह समझ गया था कि औरंगज़ेब ही अपने भाइयों में सबसे अधिक चतुर और बलशाली है, जिससे उसने अपने दो पुत्रों—पद्मसिंह और केसरीसिंह—को उसके संग कर दिया।

औरंगज़ेब की मनोवृत्ति और कुटिल चाल उससे छिपी न थी, इसलिए उसके सिंहासनारूढ़ होने पर वह उसकी तरफ़ से सदैव सतर्क रहा करता था। वह समय हिन्दुओं के लिए संकट का था। आये दिन मंदिर तोड़े जाते थे और हिन्दुओं को मुसलमान धर्म ग्रहण करने पर बाध्य किया जाता था। ख्यातों के कथन के अनुसार औरंगज़ेब की इच्छा हिन्दू राजाओं को मुसलमान बनाने की थी, परंतु कर्णसिंह ने उसकी यह इच्छा पूरी न होने दी। ऐसी विपदापन्न दशा में धर्म और जातिप्रेम में रंगा हुआ कर्णसिंह ही उन(राजाओं)की सहायतार्थ सामने आया। इस साहसिक कार्य के लिए समस्त राजाओं ने मिलकर उसे 'जंगलधर पादशाह' की उपाधि दी, जो अब तक उसके वंश में चली आती है। बाद में बादशाह-द्वारा बुलवाये जाने पर सरदारों के मना करने पर भी वह अपने दो छोटे पुत्रों

महाराजा कर्णसिंह का
व्यक्तित्व

के साथ दरबार में उपस्थित हुआ ।

कर्णसिंह स्वयं विद्वान्, विद्वानों का आश्रयदाता और विद्यानुरागी राजा था । उसके आश्रय में कई ग्रंथ बने, जिनमें से कुछ का व्योरा, जो हमें मालूम हो सका, नीचे लिखे अनुसार है—

(१) साहित्यकल्पद्रुम^१—यह ग्रंथ कई विद्वानों की सहायता से कर्णसिंह ने बनाया ।

(२) कर्णभूषण^२ (पंडित गंगानंद मैथिल रचित) ।

(१) ॥ इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीशूरसिंहसुघोदधिसंभवश्रीकर्ण-
सिंहविद्वत्संवर्द्धिते साहित्यकल्पद्रुमे अर्थालंकारनिरूपणं नाम दशम-
स्तवकः ॥ समाप्तश्चायं साहित्यकल्पद्रुमनिबन्धः ॥ शके १५८८ परा-
मवनामसंवत्सरे वैशाखशुद्ध ५ रविवारदिने लिखितं श्यामदास अंबष्ठ
काशीकोरेण मुक्ताम अवरंगावाद कर्णपुरा मध्ये लिखितं ॥

अलंकार सम्बन्धी यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है और बड़े-बड़े ३८३ पत्रों में लिखा हुआ है । इसके प्रारंभिक भाग में महाराजा रायसिंह से लगाकर महाराजा कर्णसिंह तक का वंशविवरण भी दिया है ।

(२) प्रारंभिक अंश—

.....अस्ति स्वस्तिवहादृशां निवसतिर्लक्ष्म्या भुवोर्भूषणं
वीकानेरिपुरी कुवेरनगरीसौभाग्यनिंदाकरीः ।
कैलासाचलचारुभास्वरपृथुप्रासादपालिङ्गुति-
व्याजेनोपहसत्युपर्युपगतां या राजधानीं हरेः ॥
तत्रास्ते धरणीपतिः पृथुयशाः श्रीकर्ण इत्याख्यया
गोविंदाङ्घ्रियुगारविंदविलसच्चिन्तालिरत्युन्नतः ।
राधेयभ्रममात्मनि त्रिजगतां चित्ते स्थिरी कुर्वता
दीयंतेऽर्थिगणाय येन सततं हेमाश्वहस्त्यादयः ॥
आज्ञया तस्य भूमिन्द्रोर्न्यायकाव्यकलाविदः ।
गंगानंदकर्वीद्वेण क्रियते कर्णभूषणं ॥

(३) काव्य डाकिनी^१ (पंडित गंगानन्द मैथिल रचित) ।

(४) कर्णवतंस^२ (भट्ट होसिहक-कृत) ।

(५) कर्णसन्तोष^३ (कवि मुद्रल-कृत) ।

(६) वृत्तसारावली^४ ।

ये ग्रंथ बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय में अब तक विद्यमान हैं । २५३

महाराजा अनूपसिंह

महाराजा कर्णसिंह के ज्येष्ठ कुंवर अनूपसिंह का जन्म वि० सं० १६६५ चैत्र सुदि ६ (ई० स० १६३८ ता० ११ मार्च) को हुआ था^५ । उसके पिता की

अंतिम अंश—

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीकर्णसिंहकारिते मैथिलश्रीगंगानंदकवि-
राजविरचिते कर्णभूषणे रसनिरूपणो नाम पंचमः परिच्छेदः ॥

(१) प्रारंभिक अंश—

काव्यदोषाय बोधाय कवीनां तमजानता ।

गंगानंदकवीन्द्रेण क्रियते काव्यडाकिनी ॥

अंतिम अंश—

संवत् १७२२ वर्षे वैशाख सुदि ४ दिने शनिवारे ॥ श्रीबीकानयरे
महाराजाधिराजमहाराजा श्री ७ कर्णसिंहजी विजयराज्ये ॥ श्री ॥ श्री
महाराजकुमार श्री ७ अनूपसिंहजी पुस्तक लिखापिता ॥

(२, ३, ४) ऊपर लिखे हुए ६ ग्रन्थों में से केवल पहले ३ हमारे देखने में आये, जिनके मूल अवतरण ऊपर उद्धृत किये गये हैं । अंतिम ३ (संख्या ४, ५, ६) के नाम प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रसाद के 'राजरसनामृत' (पृ० ४५-६) से लिये गये हैं ।

(५) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४१ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४६६ ।

टॉड ने अनूपसिंह को चौथा पुत्र लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३६), परन्तु उसका यह कथन कल्पित ही है, क्योंकि अन्य किसी तवारीख अथवा ख्यात से इस कथन की पुष्टि नहीं होती ।

विद्यमानता में ही बादशाह ने उसे दो हजार ज्ञात एवं जन्म और गद्दीनशीनी डेढ़ हजार सवार का मनसब प्रदान कर बीकानेर का राज्याधिकार सौंप दिया था^१। वि० सं० १७२६ (ई० स० १६६६) में कर्णसिंह की मृत्यु हो जाने पर वह गद्दी पर बैठा और औरंगाबाद तथा बीजापुर का स्वामी बना रहा^२। उसकी गद्दीनशीनी के समय बादशाह ने एक फ़रमान उसके पास भेजा, जिसमें भविष्य में योग्यतापूर्वक बीकानेर का राज्य-कार्य चलाने के लिए उसे लिखा^३।

छत्रपति शिवाजी^४ के आतंक के कारण दक्षिण में बादशाह का

(१) औरंगज़ेब का सन् जुलूस १० ता० १६ रबीउलअव्वल (हि० स० १०७८ = वि० सं० १७२४ आश्विन वदि ४ = ई० स० १६६७ ता० २७ अगस्त) का फ़रमान ।

दयालदास की ख्यात में लिखा है कि मुहता दयालदास, कोठारी जीवनदास, वैद राजसी आदि के दिल्ली जाकर उद्योग करने से बादशाह ने बीकानेर का मनसब अनूपसिंह को दे दिया (जि० २, पत्र ४७)। पाउलेट लिखता है कि कुछ ही दिनों पीछे बीकानेर का मनसब आदि बादशाह ने वनमालीदास के नाम कर दिया, जिसपर अनूपसिंह दिल्ली गया, जहां जाने से उसका पैतृक मनसब फिर उसे ही मिल गया (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३८)। यह कथन कहां तक ठीक है, यह कहा नहीं जा सकता, क्योंकि अन्य किसी तवारीख़ से इसकी पुष्टि नहीं होती। वनमालीदास का उल्लेख औरंगज़ेब के एक फ़रमान में आया है, पर उससे तो यही ज्ञात होता है कि शाही दरबार में उसका प्रवेश अनूपसिंह के ही कारण हुआ था। उक्त फ़रमान में स्पष्ट लिखा है कि उस कृपापात्र (अनूपसिंह) की सिकारिश से ही उस (वनमालीदास) का प्रवेश शाही दरबार में हुआ है (सन् जुलूस १० ता० १६ रबीउलअव्वल का फ़रमान)।

(२) डा० जेम्स बर्जेस; दि क्रोनोलोजी ऑव् मॉडर्न इंडिया; पृ० ११८।

(३) सन् जुलूस १२ ता० २२ सफ़र (हि० स० १०८० = वि० सं० १७२६ आश्विन वदि ६ = ई० स० १६६६ ता० ११ जुलाई) का फ़रमान ।

(४) इतिहास प्रसिद्ध मरहटा राज्य का संस्थापक—शाहजी का पुत्र। इसका जन्म वि० सं० १५८६ चैत्र वदि ३ (ई० स० १६३० ता० १६ फ़रवरी) शुक्रवार को हुआ था।

प्रभुत्व जमना कठिन हो रहा था। सूरत की लूट के बाद शिवाजी ने एक बड़ी सेना एकत्र कर ली थी, जिससे बादशाह को अपनी नीति में परिवर्तन कर वि० सं० १७२७ पौष वदि ११ (ई० सं० १६७० ता० २८ नवम्बर)^१ को महाबतख़ां को दक्षिण में भेजना पड़ा^२। इस अवसर पर महाराजा अनूपसिंह, राजा अमरसिंह आदि कई अन्य मनसबदारों को भी खिलअत आदि देकर बादशाह ने उसके साथ भेजा^३। महाबतख़ां की अध्यक्षता में मुग़लों ने नवीन उत्साह से मरहटों पर आक्रमण किया। पहले उन्हें कुछ सफलता मिली और औंध तथा पट्टा पर अधिकार कर उन्होंने ई० सं० १६७२ (वि० सं० १७२६) में सालहेर को घेर लिया। इस समाचार के ज्ञात होते ही शिवाजी ने मोरोपन्त पिंगले तथा प्रतापराव गूजर को सैन्य एकत्र कर सालहेर की रक्षार्थ जाने की आज्ञा दी। इधर महाबतख़ां ने भी इस्लामख़ां के साथ अपनी अधिकांश सेना को मरहटों का अवरोध करने के लिए भेजा। मरहटी सेना दो भागों में होकर आगे बढ़ रही थी; प्रतापराव गूजर पश्चिम की ओर से बढ़ रहा था तथा मोरोपन्त पिंगले सालहेर के पूर्व से। इस्लामख़ां ने दोनों के बीच में पड़कर उनका नाश करने की चेष्टा की, परन्तु उसका प्रयत्न निष्फल गया। प्रायः १२ घंटे की लड़ाई के बाद ही इस्लामख़ां को भारी क्षति उठाकर रणक्षेत्र छोड़ना पड़ा। बची हुई थोड़ी सी फ़ौज के बल पर सालहेर को घेरने से कुछ लाभ निकलता न देख महाबतख़ां औरंगाबाद चला गया। सालहेर को घेरने का नाशकारी परिणाम देखकर औरंगज़ेब विचलित हो गया, अतएव उसने तुरन्त

(१) सरकार; हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब; जि० ४, पृ० १६५।

(२) किंकेड एण्ड पार्सनीज़; ए हिस्ट्री ऑफ़ दि मराठा पीपुल; जि० १, पृ० २३४-५। डा० जेम्स बर्जेस; दि क्रोनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इण्डिया; पृ० ११५।

(३) उमराए हनुद, पृ० ६३। मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ३०।

महाबतख़ां को वापस बुला लिया^१ और उसके स्थान में बहादुरख़ां^२ की नियुक्ति दिलेरख़ां के साथ दक्षिण में कर दी। महाराजा अनूपसिंह पूर्व की भांति ही उन अफ़सरों के साथ दक्षिण में रहा।

प्रारंभ में, बहादुरख़ां दक्षिण में सुचारु प्रबन्ध न कर सका, परन्तु कुछ दिनों बाद अवसर पाकर मुग़लों ने डंडा राजापुरी (राजापुर) के बन्दरगाह में जाकर शिवाजी के बहुत से जहाज़ अनूपसिंह को बादशाह की तरफ़ नष्ट कर डाले और उसके २०० नाविकों को बन्दी कर लिया। फिर उन्होंने डंडा राजापुरी पर आक्रमण किया, जहाँ का अध्यक्ष राघो बल्लाल अत्रे उनका सामना न कर सका। वि० सं० १७२६ पौष सुदि ६ (ई० सं० १६७२ ता० १५ दिसम्बर) को बीजापुर के स्वामी अली आदिलशाह का देहांत हो गया। अली आदिलशाह के जीवनकाल में उसके राज्य के अधिकांश भाग पर मुग़लों और शिवाजी ने अधिकार कर लिया था। बीच में अली आदिलशाह तथा शिवाजी में सन्धि स्थापित हो गई थी, पर उसके मर जाने पर शिवाजी ने उस सन्धि को तोड़कर पन्हाला पर पुनः अधिकार कर लिया। उसका वास्तविक उद्देश्य हुवली को लूटने का था, अतएव अन्नाजी दत्तो की अध्यक्षता में एक मरहटी सेना वहाँ भेजी गई, जिसने बीजापुर के

(१) किंकेड एण्ड पार्सनीज़; ए हिस्ट्री ऑव् दि मराठा पीपुल; जि० १, पृ० २३५-७।

मुंशी देवीप्रसाद ने 'श्रीरंगजेवनामे' में लिखा है कि महाबतख़ां आगरे से हुज़ूर में पहुँचकर दक्षिण के युद्ध में भेजा गया था, लेकिन पठानों से सलूक रखने के कारण वह पीछा बुला लिया गया (भाग २, पृ० ४०)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद के 'श्रीरंगजेवनामे' में भी शाहज़ादे मुअज़्ज़म के वकीलों (महाबतख़ां आदि) के स्थान में बहादुरख़ां की नियुक्ति दक्षिण में होना लिखा है (भाग २, पृ० ४२)। बहादुरख़ां श्रीरंगजेव का धाय-भाई था। इसका पूरा नाम मलिकहुसेन था और यह मीर अबुल मआली इवाक्की का पुत्र था। पीछे से इसे ख़ान-जहाँ बहादुर कोकल्लाश ज़फ़रजंग का ख़िताब मिला। ई० सं० १६६७ (वि० सं० १७५४) में इसका देहांत हुआ।

सैनिकों को परास्त कर वहां खूब लूट मचाई। उस स्थान में अंग्रेजों का भी एक दलाल रहता था। इस लूट में अंग्रेजों का भी बड़ा नुकसान हुआ, जिसपर उन्होंने मरहटों से हरजाना मांगा। पूरा हरजाना न मिलने के कारण, उन्होंने मुगलों के उधर आने पर मरहटों से फिर हरजाने की मांग पेश की। वि० सं० १७३० (ई० सं० १६७३) में जब बीजापुरवालों ने पुर्तगाली तथा अंग्रेजों को लूटना आरम्भ किया तो शिवाजी ने बहादुरखां को धन देकर किसी ओर का पक्ष-ग्रहण न करने का वचन उससे ले लिया। फिर उस (शिवाजी) ने सेना सहित जल और स्थल दोनों मार्गों से बीजापुर पर स्वयं आक्रमण किया। पर्ली^१, सतारा, चन्दन, बन्दन, पांडवगढ़, नन्दगिरि, तथवाड़ा आदि^२ पर अधिकार करने के उपरान्त शिवाजी ने फोंदा^३ पर आक्रमण किया। मुसलमान सैनिक अपने इस अन्तिम आश्रय-स्थान की रक्षा करने में तत्पर थे। जिस समय शिवाजी उन्हें परास्त करने में व्यस्त था, सूरत के बन्दरगाह से मुगल बेड़े ने बाहर आकर काफ़ी उत्पात मचाया, परंतु मरहटों ने अंत में उन्हें भगा दिया।

फोंदा की बहुत दिनों तक रक्षा करने में समर्थ होने से उत्साहित होकर बीजापुरवालों ने पन्हाला^४ लेने की दृष्टि से बीजापुर के पश्चिमी प्रदेश के हाकिम अब्दुलकरीम को उधर भेजा। इस समय शिवाजी की ओर से अब्दुलकरीम^५ के मार्ग में पड़नेवाले स्थानों को लूटने के लिए प्रतापराव गूजर भेजा गया। इस कार्य में उसे इतनी सफलता मिली कि अब्दुलकरीम को मरहटों के आगे अवनत होना पड़ा और उनसे सुलह कर उस (अब्दुलकरीम) ने अपनी जान बचाई, पर बीजापुर पहुंचकर फिर उसने

(१) सतारा ज़िले में सतारा से ६ मील दक्षिण-पश्चिम में एक पहाड़ी गढ़।

(२) सतारा ज़िले के गढ़।

(३) पश्चिमी घाट का एक दुर्ग।

(४) बम्बई के कोल्हापुर राज्य का एक पहाड़ी क़िला।

(५) बहलोलखां का एक पठान सैनिक।

नई सेना एकत्र कर ली और पन्हाला की ओर अग्रसर हुआ। प्रतापराव गुजरा ने अब्दुलकरीम को अपने हाथ से निकल जाने दिया था, इससे शिवाजी उसपर बहुत रुष्ट था और उसने उस (प्रतापराव) से कहला दिया था कि अब्दुलकरीम के सैन्य का नाश किये बिना वह अपना मुंह न दिखावे। अतएव प्रतापराव बिना आगा-पीछा विचारे ही इस बार अपने साथियों सहित अब्दुलकरीम पर दूट पड़ा, परन्तु मुसलमानों की शक्ति अधिक होने से वह इसी युद्ध में मारा गया। तब विजेता दूने उत्साह से आगे बढ़े पर हांसाजी मोहिले-द्वारा आक्रमण किये जाने पर उन्हें फिर बीजापुर लौट जाना पड़ा^१।

फ़ारसी तबारीखों से पाया जाता है कि उपर्युक्त सब लड़ाइयों में अनूपसिंह मुसलमानों की ओर से बड़ी वीरता के साथ लड़ा था^२। बहादुरखां ने दक्षिण में शिवाजी से लड़ने में बड़ी वीरता का परिचय दिया और बीजापुर तथा हैदराबाद के स्वाभियों से पेशकशी वसूल करके शाही सेवा में भिजवाई, अतएव सन् जुलूस १८ ता० २४ रवीउल्लाखिर (वि० स० १७३२ श्रावण वदि ११ = ई० स० १६७५ ता० ८ जुलाई) को उसे खानजहाँ बहादुर ज़फ़रजंग कोकलताश का खिताब एवं बहुतसा पुरस्कार दिया गया^३। इस अवसर पर उसके साथ के अमीरों को भी खिलअत आदि दी गई तथा बीकानेर के अनूपसिंह को महाराजा का खिताब मिला^४।

(१) किंकेड एण्ड पार्सनीस; हिस्ट्री ऑफ़ दि मराठा पीपुल; जि० १, पृ० २३१-४३।

(२) उमराए हनुद; पृ० ६३। ब्रजरत्नदास; मन्नासिरु उमरा (हिन्दी); पृ० ३०।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ५५।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३६। अर्सेकिन; राजपूताने का गैज़ेटियर; पृ० ३२२।

उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने एक करोड़ से अधिक रुपये के व्यय से राजसमुद्र नामक विशाल तालाब बनवाकर वि० सं० १७३२ माघ सुदि ६ (ई० स० १६७६ ता० १४ जनवरी) को महाराणा राजसिंह का हाथी, घोड़े और सिरोंपाव भोजना वड़ी धूमधाम से उसकी प्रतिष्ठा की। इस अवसर पर उस (राजसिंह) ने अपने बहनोई बीकानेर के स्वामी अनूपसिंह (जो उस उत्सव में सम्मिलित न हो सका था) के लिए साढ़े सात हजार रुपये मूल्य का मनमुक्ति नाम का हाथी और पन्द्रह सौ रुपये मूल्य का सहणसिंगार घोड़ा तथा साढ़े सात सौ रुपये मूल्य का वैजनिधान नामक दूसरा घोड़ा एवं बहुतसे वस्त्राभूषण जोशी माधव के साथ बीकानेर भेजे^१।

कुछ समय बाद दिलेरखा^२ तथा बहलोलखा^३ ने बादशाह के पास शिकायत कर दी कि बहादुरखा^४ विपक्षियों से मिल गया है। इसपर बादशाह ने दिलेरखा को दक्षिण का हाकिम नियुक्त कर^५ बहादुरखा को वापस बुला लिया। अनूपसिंह पहले की तरह ही दक्षिण में रखा गया तथा उसने दक्षिण के युद्धों में दिलेरखा के साथ वीरता-पूर्वक भाग लिया^६।

(१) राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग; २०, श्लोक ६-१२।

(२) इसका वास्तविक नाम जलालखा था और यह बहादुरखा रोहिता का छोटा भाई था। इसकी मृत्यु दक्षिण में हि० स० १०६४ (वि० सं० १७४० = ई० स० १६८३) में हुई।

(३) मुंशी देवीप्रसाद के 'औरंगजेबनामे' में भी लिखा है कि सन् जुलूस १६ ता० ४ जिलाहिज (हि० स० १०८६ = वि० सं० १७३२ फाल्गुन सुदि ६ = ई० स० १६७६ ता० २६ फरवरी) को दिलेरखा खिलजत आदि पाकर दक्षिण की ओर रवाना हुआ (भाग २, पृ० ६१)।

स्टोरिया डो मोगोर—इर्विन:कृत अनुवाद: (जि० २; पृ० २३०) में भी बहादुरखा को हटाकर दिलेरखा को दक्षिण में नियुक्ति होना लिखा है।

(४) उमराए हनुद; पृ० ६३। बजरत्नदास; मन्नासिरु उमरा (हिन्दी); पृ० ६०।

दिलेरखां ने सर्वप्रथम गोलकुंडे पर आक्रमण किया^१, पर वहां उसे विशेष सफलता न मिली। फिर उसने बीजापुर पर आक्रमण कर आसपास के सारे प्रदेशों को उजाड़ दिया^२, परन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ, तब बादशाह ने वि० सं० १७३७ (ई० सं० १६८०) में उसे वापस बुला लिया और दूसरी बार बहादुरखां को दक्षिण का सूत्रेदार नियुक्त किया^३।

सन् जुलूस २१ (वि० सं० १७३४-५ = ई० सं० १६७७-८) में अनूपसिंह बादशाह की ओर से औरंगाबाद का शासक नियुक्त हुआ। उसी वर्ष शिवाजी ने उधर उत्पात करना शुरू किया। इसपर अनूपसिंह की औरंगाबाद में नियुक्ति अनूपसिंह अपनी सारी सेना एकत्र कर उसके मुकाबिले के लिए गया। इसी समय दक्षिण का हाकिम बहादुरखां भी अपनी सेना के साथ उसकी सहायता को जा पहुंचा, जिससे शिवाजी वहां से लौट गया^४।

अनन्तर अनूपसिंह की नियुक्ति आदुणी (दक्षिण) में हुई, जहां के विद्रोहियों का दमन करने के लिए वह सेना लेकर उनपर गया। इस चढ़ाई में उसको सफलता न मिली और उसकी पराजय होनेवाली ही थी कि उसी समय उसका भाई पद्मसिंह नई सेना के साथ उसकी सहायतार्थ आ गया, जिससे विपत्ती भाग गये^५।

जिन दिनों अनूपसिंह आदुणी में था, उसके पास खारयारा और रायमलवाली के भाटियों के विद्रोही हो जाने का समाचार पहुंचा। अनूपसिंह

(१) सर जदुनाथ सरकार; शार्ट हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब; पृ० २५२।

(२) वही; पृ० २५५-६।

(३) वही; पृ० २५८।

(४) उमराए हनुद; पृ० ६३। मजरलदास; मन्नासिख उमरा (हिन्दी); पृ० ६०।

(५) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४८।

इस घटना का फ़ारसी तवारीख़ों में उल्लेख नहीं है।

किया, पर इस बीच में ही वह पीछा हुआ लिया गया। वर्षाऋतु व्यतीत हो जाने पर वह फिर उधर भेजा गया, परन्तु पीछे से वह नासिक में बदल दिया गया। वि० सं० १७४० मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० सं० १६८३ ता० १३ नवम्बर) को बादशाह स्वयं अहमदनगर में पहुँच गया। उधर सिकन्दर ने भी भीतर ही भीतर अपनी रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर लिया और अपने पड़ोसी राज्यों के पास सहायता के लिए पत्र भेजे। मुगल सेना ने आगे बढ़कर वि० सं० १७४२ चैत्र सुदि ७ (ई० सं० १६८५ ता० १ अप्रैल) को बीजापुर घेरने का कार्य आरम्भ कर दिया। बादशाह ने भी इस अवसर पर निकट रहना उचित समझा, अतएव वि० सं० १७४२ वैशाख सुदि ३ (ई० सं० १६८५ ता० २६ अप्रैल) को अहमदनगर से रवाना होकर ज्येष्ठ सुदि १ (ता० २४ मई) को वह भी शोलापुर पहुँच गया^१। कुछ दिनों वहाँ ठहरने के उपरान्त हि० सं० १०६७ ता० २ श्रावण (वि० सं० १७४३ आषाढ सुदि ३ = ई० सं० १६८६ ता० १४ जून) को बादशाह आगे बढ़ा। ता० १४ श्रावण (श्रावण वदि १ = ता० २६ जून) को शाहज़ादा आज़म तथा बेदारबख्त^२ उसकी सेवा में उपस्थित हो गये, जिन्हें खिलअत आदि दी गई। इसी अवसर पर बहादुरखाँ तथा महाराजा अनूपसिंह भी शाही सेवा में उपस्थित हो गये। वहाँ से प्रस्थान कर ता० २१ श्रावण (श्रावण वदि ८ = ता० ३ जुलाई) को बीजापुर से ३ कोस दूर रसूलपुर में बादशाह के डेरे हुए^३।

बीजापुर की इस चढ़ाई में आरम्भ से ही शाहज़ादे शाह आलम ने, जो बादशाह के साथ था, बीजापुर तथा गोलकुंडे के स्वामियों से मैत्री का भाव बनाये रक्खा और सिकन्दर से पत्रव्यवहार भी किया। बादशाह को जब इसका पता लगा तो उसका दिल अपने ज्येष्ठ पुत्र की ओर से

(१) सरकार; हिस्ट्री ऑफ् औरंगज़ेब; जि० ४, पृ० ३००-१२।

(२) आज़मशाह का पुत्र।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग ३, पृ० ३३।

हट गया'। जब दो मास और १२ दिन^१ तक तोपों और बन्दूकों की मार से बीजापुर के बहुतसे आदमी मारे गये और क़िला तोड़ने का सारा प्रबन्ध मुग़लों ने कर लिया, तब तो सिकन्दर और उसके साथियों को पराजय का पूरा भय हो गया। अधिक खुद करने में हानि की संभावना ही विशेष थी, अतएव वि० सं० १७४३ आश्विन सुदि ४ (ई० स० १६८६ ता० १२ सितम्बर^२) को सिकन्दर ने आत्मसमर्पण कर दिया। बादशाह ने उसके क़सूर माफ़ कर दिये और खिलअत आदि देकर एक लाख रुपया सालाना उसके लिए नियत कर दिया^३।

उसी वर्ष बादशाह ने अनूपसिंह को सक्कर का शासक नियुक्त कर उधर भेज दिया^४।

(१) सरकार; हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब; जि० ४, पृ० ३१६-२०।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग ३, पृ० ३५।

(३) मुंशी देवीप्रसाद ने 'औरंगज़ेबनामे' में ता० १३ सितंबर दी है (भाग ३, पृ० ३५)।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग ३, पृ० ३५। सरकार; हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब; जि० ४, पृ० ३२३।

मुंतख़ुल्लुवाच (इलियद; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० ३२३) में लिखा है कि सिकन्दर दौलताबाद में कैद रखा गया।

ऊपर आये हुए वर्णन के विरुद्ध ख्यात में लिखा है कि जब बीजापुर का नवाब सिकन्दर विद्रोही हो गया तो अनूपसिंह शाही सेना के साथ उसपर भेजा गया। एक वर्ष तक घेरा रहने पर जब गढ़ में सामान का अभाव हो गया तो सिकन्दर बाहर आकर लड़ा और कैद कर लिया गया। बादशाह की आज्ञानुसार सिकन्दर दौलताबाद में रखा गया (दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४७-८)। ख्यात का यह कथन कुछ बढ़ाकर लिखा हुआ जान पड़ता है, परन्तु जैसा कि मुंशी देवीप्रसाद के 'औरंगज़ेबनामे' से प्रकट है, अनूपसिंह बीजापुर की इस चढ़ाई में बादशाह के साथ अवश्य था।

(५) उमराण हनुद; पृ० ६३। मजरइनदास; मन्नासिरुज् उमरा (हिन्दी); पृ० ६०। मुंशी देवीप्रसाद-कृत 'औरंगज़ेबनामे' (भाग ३, पृ० ३८) में सन् जुलूस ३० ता० ६ ज़िलहिज (हि० स० १०२७ = वि० सं० १७४३ कार्तिक सुदि ८ =

वि० सं० १७४२ (ई० सं० १६८५) में जब बादशाह बीजापुर पर आक्रमण करने में व्यस्त था, उसके पास गोलकुंडे के स्वामी अबुलहसन के भी विपरीत हो जाने का समाचार पहुंचा।
 औरंगजेब की गोलकुंडे पर चढ़ाई
 इसपर उसने उसी समय शाह आलम (शाहज़ादा) को एक विशाल सेना के साथ हैदराबाद पर भेजा।

गोलकुंडे की सेना ने शाही फ़ौज को रोकने का प्रयत्न किया, पर पीछे से अफ़सरों में मतभेद हो जाने के कारण, वह सेना लौट गई। अनन्तर शाह आलम के प्रयत्न से बादशाह और अबुलहसन के बीच सन्धि स्थापित हो गई। वि० सं० १७४३ आश्विन सुदि ५ (ई० सं० १६८६ ता० १२ सितम्बर) को बीजापुर विजय करने के बाद बादशाह की दृष्टि फिर गोलकुंडे की ओर गई। गोलकुंडे की विजय के बिना दक्षिण की विजय अधूरी ही रहती थी, अतएव वि० सं० १७४३ फाल्गुन वदि १० (ई० सं० १६८७ ता० २८ जनवरी) को बादशाह ससैन्य गोलकुंडे के निकट जा पहुंचा। इसपर अबुलहसन ने क़िले में आश्रय लिया, जिससे हैदराबाद पर आसानी से मुग़लों का अधिकार हो गया। कुलीचख़ाँ की अध्यक्षता में मुग़ल सेना ने गढ़ में घुसने का प्रयत्न किया, परन्तु इसी समय एक गोला लग जाने से उसकी मृत्यु हो गई। तब बादशाह ने अधिक दृढ़ता से घेरे का कार्य आगे बढ़ाया।

शाह आलम, बादशाह की इस चढ़ाई से प्रसन्न नहीं था, क्योंकि पहिले सन्धि स्थापित करने में उसी का हाथ था और अब उसी सन्धि का उल्लंघन किया जा रहा था। अबुलहसन के दूतों और उसके बीच गुप्त रीति से फिर सन्धि के विषय में बात-चीत चल रही थी। जब बादशाह को इस बात की ख़बर हुई तो उसने शाह आलम तथा उसके पुत्रों

ई० सं० १६८६ ता० १४ अक्टोबर) को अनूपसिंह का सख़र की क़िलेदारी पर जाना लिखा है। वीरविनोद; (जि० २, प्रकरण ६, पृ० ७०६) में भी इसका उल्लेख है।

(१) इसका वास्तविक नाम आबिदख़ाँ था और यह गाज़ीउद्दीनख़ाँ फ़ीरोज़जंग प्रथम का पिता तथा हैदराबाद के सुप्रसिद्ध निज़ामुल्मुल्क आसफ़ज़ाद का दादा था।

को धोखे से बुलाकर बन्दी कर लिया^१। लेकिन इतने ही से बाधाओं का अन्त नहीं हो गया। मुगल सेना के कितने ही शिया तथा सुन्नी अफसर भी यह नहीं चाहते थे कि एक मुसलमानी राज्य का इस प्रकार नाश किया जाय और उनमें से अधिकांश ने अपने-अपने पद से इस्तीफा दे दिया तो भी गढ़ को तोड़ने का कार्य जारी रहा। वि० सं० १७४४ ज्येष्ठ सुदि १४ (ता० १६ मई) को फ़ीरोज़जंग ने गढ़ लेने का प्रयत्न किया, पर उसे सफलता न मिली। इसी बीच अकाल पड़ जाने से मुगल सेना की बहुत हानि हुई। गोलकुंडे की फ़ौज ने भी ऐसे अवसर से लाभ उठा, कई बार उन्हें पीछे हटाया, परन्तु औरंगज़ेब अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ। इस प्रकार आठ महीने^२ बीत गये, पर क़िले में मुगल सेना का प्रवेश न हो सका। इस समय एक ऐसी बात हो गई, जिससे क़िला बिना युद्ध और रक्तपात के मुगलों के अधिकार में आ गया। बीजापुर की विजय के बाद अब्दुल्ला पानी^३ (सरदारख़ां) मुगल सेना में भर्ती हो गया था और इस चढ़ाई में भी वह साथ था। किसी कारणवश वह बीच में गोलकुंडेवालों का सहायक हो गया था। अब फिर वह मुगल सेना से जा मिला, जिसकी सहायता से वि० सं० १७४४ आश्विन वदि १० (ई० सं० १६ द० ता० २१ सितम्बर) को रुहल्लाख़ां गढ़ में घुस गया। शाहज़ादा आज़म भी दूसरी ओर से फ़ौज लेकर जा पहुँचा। इस अवसर पर गोलकुंडा के अब्दुर्रज़्ज़ाक ने सच्ची स्वामिभक्ति और वीरता का परिचय दिया, परन्तु उस एक से क्या हो सकता था? उसके घायल हो जाने पर अबुलहसन के लिए आत्मसमर्पण करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग न रहा। तब बादशाह

(१) मन्तूकी; स्टोरिआ डो मोगोर—इर्विन-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३०३-४।

(२) मुंशी देवीप्रसाद के 'औरंगज़ेबनामे' में ६ महीना दिया है (भाग ३, पृ० ४६)। दयालदास की ख्यात में घेरा रहने की अवधि ६ महीने दी है (जि० २, पन्ना ४८)।

(३) मुंशी देवीप्रसाद के 'औरंगज़ेबनामे' में इसका नाम तीरंदाज़ख़ां दिया है (भाग ३, पृ० ४८)।

ने ५०००० रु० सालाना नियत कर उसे दौलताबाद में क़ैद कर दिया' ।

गोलकुंडे की इस चढ़ाई के उपर्युक्त वर्णन में किसी हिन्दू राजा का नाम नहीं आया, परन्तु ख्यात के कथनानुसार इस चढ़ाई में अनूपसिंह ने भी भाग लिया था । दयालदास लिखता है—

ख्यात और गोलकुंडे
की चढ़ाई

‘जब गोलकुंडे का स्वामी तानाशाह^१ (?) विद्रोही हो गया तो औरंगज़ेब स्वयं सेना लेकर उसपर गया, परन्तु नौ मास तक गढ़ को घेरे रहने और गोलों की वर्षा करने पर भी, जब कोई फल न निकला तो बादशाह ने दीवान हस्तखां के पुत्र जुल्लिकारखां को, जो उन दिनों पेशावर में लड़ रहा था, सेना सहित दक्षिण में आने को लिखा । इसपर वह (जुल्लिकारखां) अनूपसिंह को भी साथ लेता हुआ बड़ी सेना के साथ गोलकुंडे पहुंचा और उन दोनों ने उस युद्ध में काफ़ी भाग लिया । अनन्तर तानाशाह पकड़ा गया और अनूपसिंह की वीरता के लिए बादशाह ने उस (अनूपसिंह) का मनसब बढ़ाकर तीन हज़ारी^३ कर दिया^४ ।’

ख्यात का उपर्युक्त कथन अतिरंजित अवश्य है, परन्तु यह भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह सत्य से रहित नहीं है । गढ़ पर बहुत दिनों तक घेरा रहने पर भी विफल होने पर अधिक संभव तो यही है कि बादशाह ने सहायता के लिए और सेना बुलवाई हो । दक्षिण की अधिकांश चढ़ाइयों में अनूपसिंह शाही सेना के साथ था जैसा कि ऊपर

(१) सरकार; शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब; पृ० २७१-८५ । मनुकी; स्टोरिया डो मोगोर—इर्विन-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३०१-८ । मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेब-नामा; भाग ३, पृ० ४०-४६ ।

(२) संभव है तानाशाह से ख्यातकार का आशय गोलकुंडे के स्वामी अबुल-हसन से हो, क्योंकि वही उस समय गोलकुंडे का स्वामी था और फ़ारसी तवारीख़ों से औरंगज़ेब का उसी पर जाना पाया जाता है ।

(३) इसकी अन्य किसी तवारीख़ से पुष्टि नहीं होती ।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४८ ।

लिखा जा चुका है। इस घटना के पहिले ही अनूपसिंह की सफर में नियुक्ति हो गई थी, अतएव पेशावर से सहायक सेना आने पर उसका भी साथ रहना असंभव नहीं कहा जा सकता।

सन जुलूस ३३ (वि० सं० १७४६ = ई० स० १६८६) में बाद-शाह ने अमृतियाज़गढ़ अदूनी की हकूमत पर अनूपसिंह को नियत किया^१। मन्नासिरुल् उमरा (हिन्दी) से पाया जाता है कि वहां पहले राव दलपत बुंदेला था, जिसकी जगह पर वह (अनूपसिंह) भेजा गया^२। लगभग दो वर्ष बाद सन् जुलूस ३५ (वि० सं० १७४८ = ई० स० १६८९) में अनूपसिंह उस पद से हटा दिया गया^३।

अनूपसिंह का पहला विवाह कुमारअवस्थामें ही वि० सं० १७०६ फाल्गुन वदि २ (ई० स० १६५३ ता० ४ फरवरी) को उदयपुर के महाराणा राज-सिंह की वहिन के साथ हुआ था^४। उस समय महाराणा ने अपने कुटुंब की और ७१ लड़कियों

विवाह और सन्तति

(१) उमराए हनुद; पृ० ६३ ।

(२) ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ६० ।

(३) उमराए हनुद; पृ० ६३ । ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ६० ।

(४) शते सप्तदशे पूर्णे नवाख्येन्दे करोत्तुलां ॥

रूप्यस्य चक्रे या फाल्गुने कृष्णपक्षके ॥ १ ॥

द्वितीया दिवसे.....राजसिंहो नरेश्वरः ॥

राज्ञो भूरटियाकर्णनाम्नो जेष्ठाय सूनवे ॥ २ ॥

अनूपसिंहाय ददौ स्वसारं विधिना नृपः ॥

क्षत्रेभ्योदाद्वन्धुकन्या एकसप्ततिसंमिताः ॥ ३ ॥

(राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ६) ।

दयालदास की ख्यात में वि० सं० १७३६ दिया है, जो निर्मूल है।

की शादी अनूपसिंह के कुटुंबी राठोड़ों के साथ की। उसका दूसरा विवाह जैसलमेर के रावल अखैसिंह की पुत्री अतिरंगदे से वि० सं० १७२० (ई० सं० १६६३) में हुआ था। उसी वर्ष उसका तीसरा विवाह लक्ष्मीदास सोनगरे की कन्या से गांव वाय में सम्पन्न हुआ^१। इनके अतिरिक्त उसके और भी कई राणियां थी, क्योंकि तंबर राणी का उसके साथ सती होना उसकी मृत्यु स्मारक छत्री में लिखा है और स्वरूपसिंह को ख्यात में सीसोदिया हरिसिंह जसवंतसिंहोत का दोहिता लिखा है^२। अनूपसिंह के पांच पुत्र—स्वरूपसिंह, सुजानसिंह, रूपसिंह, रुद्रसिंह और आनन्दसिंह—हुए^३।

वि० सं० १७५५ प्रथम ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० सं० १६९८ ता० ८ मई) रविवार^४:

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४८।

(२) वही; जि० २, पत्र ५८।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २००। दयालदास ने केवल चार पुत्रों के नाम दिये हैं, उसकी ख्यात में रूपसिंह का नाम नहीं है (जि० २, पत्र ५२)। वीरविनोद में भी चार पुत्रों के ही नाम हैं (भाग २, पृ० ४६६)। बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें' में भी चार ही नाम दिये हैं। उसमें एक पुत्र का नाम सुंदरसिंह दिया है (संख्या १०५३)। पाउलेट भी चार ही नाम देता है (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४२)। टॉड ने केवल दो पुत्रों—सुजानसिंह और स्वरूपसिंह—के नाम दिये हैं (जि० २, पृ० ११३७); जो ठीक नहीं है, क्योंकि मुंहणोत नैणसी की ख्यात से उसके पांच और अन्य से चार पुत्र होना स्पष्ट है।

(४) श्रीमन्नूपतिविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १७५५ वर्षे शाके १६२० प्रवर्त्तमाने प्रथमज्येष्ठमासे शुक्लपक्षे तिथौ नवम्यां रवौ.....
.....राठौडवंशावतंसश्रीकर्णसिंहात्मजमहाराजाधिराजमहाराज
श्री ३श्रीअनूपसिंहजीदेवाः श्रीजैसलमेरी अतिरंगदेजीश्रीतुंवरजी.....
.....सह ब्रह्मलोकमगमत् ।

(अनूपसिंह की बीकानेरवाली स्मारक छत्री से)।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी यही तिथि दी है (जि० २, पृ० २००)।

अनूपसिंह की मृत्यु

सती हुई।

को आदूणी में अनूपसिंह का देहांत हुआ। इस अवसर पर जैसलमेरी अतिरंगदे तथा तंवर राणी

महाराजा के भाइयों
की वीरता

महाराजा अनूपसिंह के भाई केसरीसिंह, पद्मसिंह और मोहनसिंह बड़े ही पराक्रमी हुए। ख्यातों आदि में उनकी वीरता की बहुतसी बातें लिखी हुई हैं, जिनमें से कुछ यहां लिखी जाती हैं—

केसरीसिंह—महाराजा कर्णसिंह का दूसरा पुत्र था। उसका उक्त महाराजा की कछवाही राणी के गर्भ से वि० सं० १६६८ (ई० सं० १६४१) में जन्म हुआ था। केसरीसिंह की वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह औरंगजेब ने, जब वह लाहौर की तरफ दाराशिकोह का पीछा कर रहा था, मार्ग में उसे मीनाकारी के काम की तलवार दी थी, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

कर्नल टॉड लिखता है—केसरीसिंह ने एक बड़े शेर को बाहु-युद्ध में मार डाला था, जिसपर प्रसन्न होकर बादशाह औरंगजेब ने उसे पच्चीस गांव (संयुक्त प्रांत में) जागीर में दिये थे। उसने दक्षिण में रहते समय एक हब्शी सरदार को, जो बहमनी सेना का अफसर था, युद्ध में वीरतापूर्वक मारा था।

वि० सं० १०७८ (वि० सं० १७२४ = ई० सं० १६६७) में बंगाल की तरफ फ़िसाद होने पर वह आमेर के राजा रामसिंह आदि सहित

(१) दयालदास (ख्यात; जि० २, पत्र ५२), चांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या ११७), मुंशी देवीप्रसाद (राजरसनामृत; पृ० ४६), पाउलेट (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४२) तथा अर्सेकिन (राजपूताना गैज़ेटियर; पृ० ३२२) ने अनूपसिंह की मृत्यु आदूणी में होना लिखा है। ब्रजरत्नदास-कृत 'मझासिंह उमरा' के अनुसार बादशाह औरंगजेब के ३५ वें राज्यवर्ष में अनूपसिंह आदूणी की अध्यक्षता से हटा दिया गया था, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है (देखो पृ० २७२)। संभवतः प्रीछे से वह फिर वहीं बहाल कर दिया गया हो।

(२) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ११३६, टि० १।

वहां भेजा गया'। वह बादशाह औरंगजेब के समय दक्षिण में ही रहा और वहां के युद्धों में उसने बड़ा भाग लिया। वि० सं० १७४१ चैत्र वदि ३ (ई० सं० १६८५ ता० १३ मार्च) शुक्रवार को उसका देहांत हो गया^१।

पद्मसिंह—महाराजा कर्णसिंह का तीसरा पुत्र था। उसका उक्त महाराजा की हाड़ी राणी स्वरूपदे से वि० सं० १७०२ वैशाख सुदि ८ (ई० १६४५ ता० २२ अप्रैल) को जन्म हुआ था। उसकी वीरता और अतुल पराक्रम की कई गाथाएं प्रसिद्ध हैं। वह भी धर्मातपुर, समूतगर आदि के युद्धों में अपने भाई केसरीसिंह के साथ रहकर औरंगजेब के पक्ष में लड़ा था। ऐसी प्रसिद्धि है कि शाहजहाँदे दाराशिकोह के मुक्ताबले में जब खजवा के युद्ध में विजय पाकर सब लोभ शाही सेना में पहुंचे, उस समय बादशाह औरंगजेब ने केसरीसिंह और पद्मसिंह का यहां तक सम्मान किया कि अपने खमाल से उनके बख्तरों की धूल को झाड़ा। फिर बादशाह ने उसको दक्षिण में नियत किया, जहां अपने पिता और भाई अनूपसिंह के साथ रहकर उसने कई बार वीरता के जौहर दिखलाये। वि० सं० १७२८ (ई० सं० १६७२) में जब उसका छोटा भाई मोहनसिंह, शाहजहाँदे मुअज्जम के साले मुहम्मदशाह भीर तोंज़क (जो वहां का कोतवाल था) के साथ भगड़ा होने पर औरंगाबाद में मारा गया तो पद्मसिंह ने क्रोधित होकर दीवान-खाने में पहुंच मुहम्मदशाह को मार डाला। उसके बड़े हुए क्रोध को:

(१.) वीरविनोद, भाग २, पृ० ७००।

(२.) अथास्मिन् शुभसंवत्सरे १७४१ चैत्रवदि ३ शुक्रवारे महाराजाधिराजमहाराजश्रीकर्णसिंहजीतत्पुत्रोमहावीरः क्षात्रधर्म-निष्ठः महाराजश्रीकेसरीसिंहजीवर्मा द्वाभ्यां धर्मपत्नीभ्यां सह देवलोकमगमत्।

(मूल लेख की नकल से)।

दयालदास की ख्यात (जि० २, पृ० ५७) तथा पाउलेट के गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट (पृ० ४५) में वि० सं० १७२७ में कांगड़े में उसकी मृत्यु होना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

देख किसी का साहस उसे रोकने का नहीं हुआ और जितने भी शाही सेवक वहाँ विद्यमान थे भाग गये' ।

इस घटना के सम्बन्ध में कर्नल टॉड ने लिखा है—'पद्मसिंह की तलवार के प्रहार से दीवानखाने का खंभा (?) तक टूट गया । जयपुर और जोधपुर के राजा उसके पक्ष में हो गये तथा वे इस घटना से शाहजादे की छावनी छोड़ वीस मील दूर चले गये । शाहजादे ने उनको बुलाने के लिए प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भेजा, परन्तु जब वे नहीं आये, तब स्वयं शाहजादा जाकर उनको लौटा लाया' ।

दक्षिण में तापती (तापी) नदी के तट पर मरहटों से युद्ध होने पर पद्मसिंह वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ, सावंतराय और जादूराय नामक मरहटा वीरों को कई आदमियों सहित मारकर वि० सं० १७३६ चैत्र वदि १२ (ई० सं० १६८३ ता० १४ मार्च)^३ को परलोक सिंघारा ।

उसके वीरतापूर्वक युद्ध कर प्राण त्याग करने की शाही दरबार में बड़ी ख्याति हुई और सन् जुलूस २६ ता० १७ रवीउस्सानी (हि० सं० १०६४ = वि० सं० १७४० चैत्र सुदि ५ = ई० सं० १६८३ ता० ५ अप्रैल) को स्वयं बादशाह ने फ़रमान भेज महाराजा अनूपसिंह के प्रति अत्यन्त ही सहानुभूति प्रकट करते हुए लिखा—“पद्मसिंह जो अपने सहयोगियों में सर्वश्रेष्ठ और उमरावों में शिरोमणि था, राजभक्ति एवं अनुपम वीरता के साथ युद्ध करता हुआ रणक्षेत्र में वीर-गति को प्राप्त हुआ । यह समाचार सुन हमें बड़ा भारी दुःख हुआ है, परन्तु उस स्वार्थत्यागी

(१) जोनाथन स्कॉट; हिस्ट्री ऑव् डेक्कन, जि० २, पृ० ३० ।

(२) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ११३६, हि० १ ।

(३) अथास्मिन् संवत् १७३६ चैत्रकृष्णपक्षे द्वादश्यां महाराजाधिराजमहाराजश्रीकर्णसिंहजीतत्पुत्रोदानवीरो युद्धशूरो महाराजपद्मसिंहजी एकया धर्मपत्न्या... सह..... देवलोकमगमत्.....

(मूल लेख की नक़ल से) ।

वीर ने अपने सम्राट के लिए युद्धक्षेत्र में प्राण त्याग किया है, अतः उसकी मृत्यु धन्य और गौरवपूर्ण हुई है, यही समझना चाहिये ।”

कर्नल पाउलेट लिखता है—‘पद्मसिंह बीकानेर का सर्वश्रेष्ठ वीर था और जनता के हृदय में उसका वही स्थान है, जो इंग्लैंड की जनता के हृदय में रिचर्ड दि लायन हार्टेड् (सिंह-हृदय रिचर्ड) का है ।’

घोड़े पर बैठकर उसे दौड़ाते हुए पद्मसिंह का एक बड़े सिंह को बल्लम से मारने का एक चित्र बीकानेर में हमारे देखने में आया । यह चित्र प्राचीनता की दृष्टि से दो सौ वर्ष से कम पुराना नहीं है । उस (पद्मसिंह) की वीरता की गाथाएं कपोलकल्पित नहीं कही जा सकती और निःसंकोच कहा जा सकता है कि वह बीकानेर के राजवंश में बड़ा ही पराक्रमी योद्धा हो गया है ।

सकेला की बनी हुई उसकी तलवार आठ पाँड वज़न की तीन फुट ११ इंच लंबी और ढाई इंच चौड़ी है । उसके शस्त्राभ्यास का खांडा (खड्ग) पच्चीस पाँड वज़न का चार फुट छः इंच लंबा और ढाई इंच चौड़ा है, जिसको आजकल का पहलवान सरलता से नहीं चला सकता । ये दोनों

(१) इंग्लैंड का बादशाह रिचर्ड प्रथम सिंह-हृदय रिचर्ड के नाम से प्रसिद्ध है । यह विजयी विलियम की पौत्री मटिल्डा का पौत्र और बादशाह हेनरी द्वितीय का तीसरा पुत्र था । इसने ई० स० ११८६ से ११९९ तक राज्य किया । यह पक्का सिपाही था और अपनी वीरता, साहसप्रियता, शारीरिक बल तथा सैनिक-पराक्रम के लिए यूरोप भर में प्रसिद्ध था । इसका सारा जीवन युद्ध करने में ही बीता । ईसाइयों का प्रसिद्ध तीर्थ जेरुसलेम उस समय मुसलमानों के अधिकार में था । उसे उनके हाथों से छुड़ाने के लिए जो तीसरा क्रूसेड (धर्मयुद्ध) हुआ, उसमें रिचर्ड ने प्रमुख भाग लिया था । वहाँ इसने बड़ी बहादुरी तथा साहस का परिचय दिया, पर आपस की फूट के कारण कोई फल न निकला । लौटते समय वह अपने शत्रु जर्मनी के सम्राट के हाथ में पड़ गया । वहाँ बहुत दिनों तक कैद रहने के बाद, बहुत बड़ी रकम देने पर कहीं इसका छुटकारा हुआ । चालुज दुर्ग के घेरे में कंधे में तीर लगने से ४२ वर्ष की अवस्था में, इसका देहांत हुआ था ।

(२) गैजेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४३ ।

बीकानेर के शस्त्रागार में सुरक्षित हैं और दर्शनीय वस्तु हैं। पद्मसिंह तलवार चलाने में बड़ा निपुण था, जिसके लिए यह दोहा प्रसिद्ध है—

कटारी अमरेस री, पदमे री तरवार ।

सेल तिहारो राजसी, सरायो संसार ॥

मोहनसिंह—महाराजा कर्णसिंह का चतुर्थ पुत्र था। उसका जन्म वि० सं० १७०६ चैत्र सुदि १४ (ई० सं० १६४६ ता० १७ मार्च) को हुआ था। शाहज़ादा मुअज़्ज़म उस (मोहनसिंह) पर अत्यन्त ही कृपा और स्नेह रखता था। इस कारण शाहज़ादे के सेवक उससे डाह रखते थे और उसको अपमानित करने का अवसर ढूँढते थे। औरंगाबाद में वि० सं० १७२८ (ई० सं० १६७२) में उसका शाहज़ादे के साले मुहम्मदशाह मीर तोज़क (जो कोतवाल था) से एक दिन झगड़ा हो गया, जिसने भीषण रूप धारण किया। इस सम्बन्ध में जोनाथन स्कॉट लिखता है—

‘शाहज़ादे के साले मुहम्मदशाह मीर तोज़क का हिरन भागकर मोहनसिंह के डेरे की तरफ़ चला गया था, जिसको मोहनसिंह के सेवक पकड़कर अपने डेरे में ले गये। उसको यह मालूम नहीं था कि यह हिरन किसका है। दूसरे दिन प्रातःकाल जब मोहनसिंह अन्य सेवकों के साथ शाहज़ादे के दीवानखाने में बैठा हुआ था तो मुहम्मदशाह उसके पास गया और भला बुरा कहने लगा। मोहनसिंह ने कहा मैं अपने स्थान पर जाते ही हिरन तुम्हारे यहां पहुँचा दूंगा, परन्तु इससे उसे संतोष नहीं हुआ और उसने कहा कि हिरन को अभी का अभी मंगवा दो, नहीं तो मैं तुम्हें उठने न दूंगा। मोहनसिंह इसपर क्रुद्ध होकर खड़ा हो गया और उसने अपनी तलवार पर हाथ डाला। दोनों तरफ़ से तलवारें चलने लगीं, जिससे दोनों के बड़े घाव लगे। अंत में शाहज़ादे के कितनेक सेवक मोहनसिंह की तरफ़ दौड़े। उस समय मोहनसिंह रक्त बहने से निस्तेज होकर दीवानखाने के थंभे के सहारे खड़ा था। एक दूसरे आदमी ने उसके सिर पर प्रहार किया, जिससे वह मूर्छित होकर ज़मीन पर गिर गया।

‘मोहनसिंह का बड़ा भाई पद्मसिंह, जो दीवानखाने की दूसरी तरफ बैठा हुआ था, अपने भाई के घायल होने का समाचार सुन दौड़ा और अपनी तलवार के एक प्रहार से ही उसने मुहम्मदशाह का काम तमाम कर दिया’, जिसपर शाहज़ादे के नौकर घबराकर इधर उधर भाग निकले। पद्मसिंह, मुहम्मदशाह के पास खड़ा रहा और उसने यह निश्चय किया कि इसको कोई उठाने के लिए आवे तो उसको भी मार डालूँ। फिर उसके भाई (मोहनसिंह) के बहुत से राजपूत पालकी लेकर आ पहुँचे, जिसमें वे मोहनसिंह को, जो अब तक जीवित था, रखकर ले चले। अनन्तर शाहज़ादे ने वहाँ आकर आज्ञा दी कि मोहनसिंह को मारनेवाले की पूरी जांच की जावे, किन्तु नौकरों ने उसे छिपा दिया। पद्मसिंह को यह भय था कि शाहज़ादा मुझ पर नाराज़ होगा, तो भी वह वहाँ से न हटा। इतने में राजा रायसिंह सीसोदिया (टोड़े का), जो पाँच हज़ारी मनसबदार था, आ पहुँचा और उसको मोहनसिंह के डेरे में ले गया। मोहनसिंह का डेरे पहुँचने

(१) सिंढायच दयालदास (ख्यात; जि० २, पत्र ५२) और कर्नल पाउलेट (गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४२) लिखते हैं कि मोहनसिंह और मुहम्मदशाह के बीच झगड़ा होने का हाल सुनकर पद्मसिंह दौड़कर पहुँचा और उसने मोहनसिंह को ज़मीन पर पड़ा हुआ देखकर कहा कि तुम वीर होकर इस तरह कायरों की भांति क्यों पड़े हो ? तब मोहनसिंह ने कहा कि मेरे पीठ पर के घावों को देखो। मुझे घायल करनेवाला कोतवाल अभी ज़िन्दा है। इसपर पद्मसिंह तलवार खींच थंभे के पास खड़े हुए कोतवाल पर दूट पड़ा और एक ही प्रहार में उसे मार डाला। पद्मसिंह की इस कुर्ती और वीरतापूर्ण प्रहार पर किसी कवि ने ऐसा कहा है—

एक घड़ी आलोच, मोहन रे करतो मरण ।

सोह जमारो सोच, करतां जातो करणवत ॥

भावार्थ—मोहनसिंह के मरण पर यदि एक घड़ी भर भी विचार करता रह जाता तो हे करणसिंह के पुत्र, तेरा सारा जीवन सोच करते ही बीतता।

इसका आशय यह है कि यदि उस समय पद्मसिंह एक घड़ी भर की भी देर कर देता तो मोहनसिंह का हत्याकारी भाग जाता, जिससे वह उसका बदला फिर नहीं ले सकता था और जीवन पर्यन्त उस (पद्मसिंह) को यही सोच बना रहता कि मैंने अपने भाई मोहनसिंह का बदला नहीं लिया।

के पूर्व ही देहांत हो गया और उसकी एक स्त्री सती हुई।^१

बीकानेर के देवी कुंड पर उसकी स्मारक छत्री है, जिसमें वि० सं० १७२८ चैत्र सुदि ७ (ई० सं० १६७१ ता० ७ मार्च) को उसका देहांत होना लिखा है^२ ।

वैसे तो अनूपसिंह के पहिले बीकानेर के कई शासकों—रायसिंह, कर्णसिंह आदि—की प्रवृत्ति विद्याप्रेम की ओर रही थी, परन्तु उसका विकास अनूपसिंह में अधिक हुआ था । अनूपसिंह का विद्यानुराग वह जैसा वीर था वैसा ही संस्कृत और भाषा का विद्वान्, विद्वानों का सम्मानकर्त्ता एवं उनका आश्रयदाता था । उसने स्वयं भिन्न-भिन्न विषयों पर संस्कृत में कई ग्रन्थ निर्माण किये थे, जिनमें 'अनूप-विवेक'^३ (तंत्रशास्त्र), 'कामप्रबोध'^४ (कामशास्त्र), 'श्राद्धप्रयोग चिन्तामणि'^५ और 'गीतगोविन्द' की 'अनूपोदय' नाम की टीका^६ का निश्चय रूप से पता

(१) जोनाथन स्कॉट; हिस्ट्री ऑफ् डेक्कन; जि० २, पृ० ३० ।

(२)संवत् १७२८ चैत्रमासे शुक्लपक्षे सप्तम्यां..... श्रीकर्णसिंहजीतत्पुत्रमहाराजश्रीमुहणसिंहजीवर्मा एकया धर्मपत्न्या सह देवलोकमगमत्..... ।

(३) आफ्फेक्ट; कैटेलाॅगस् कैटेलाॅगरम्; भाग १, पृ० १८ ।

(४) डॉक्टर राजेन्द्रलाल मित्र; कैटेलाॅग् ऑफ् संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दि लाइब्रेरी ऑफ् हिज् हाइनेस दि महाराजा ऑफ् बीकानेर; पृ० २३२, संख्या ११३३ । आफ्फेक्ट; कैटेलाॅगस् कैटेलाॅगरम्; भाग १, पृ० ६३ ।

(५) वही; पृ० ४७१, संख्या १०१३ । आफ्फेक्ट; कैटेलाॅगस् कैटेलाॅगरम् भा० १, पृ० ६६६ ।

(६) श्रीमद्राजाधिराजेंद्रतनयोऽनूपभूपतिः ।

व्याचक्रे जयदेवीयं सर्गोऽगात्तद्वितीयकः ॥

यह ग्रन्थ काश्मीर राज्य के पुस्तक भण्डार में है । डाक्टर एम० ए० स्ट्राइन; कैटेलाॅग् ऑफ् दि संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दि रघुनाथ टेम्पल लाइब्रेरी ऑफ् हिज् हाइनेस दि महाराजा ऑफ् जम्मू एण्ड काश्मीर; पृ० २८०-८१, संख्या १२८६ ।

चलता है। उसके आश्रय में कितने ही संस्कृत के विद्वान् रहते थे, जिन्होंने उसकी आज्ञा से अनेक विषयों के संस्कृत ग्रन्थ लिखकर उसका नाम अमर किया। उन विद्वानों के लिखे हुए बहुत से ग्रन्थ अब भी उपलब्ध होते हैं। श्रीनाथ सूरि के पुत्र विद्यानाथ (वैद्यनाथ) सूरि ने 'ज्योत्पत्तिसार' (ज्योतिष), गंगाराम के पुत्र मणिराम दीक्षित ने 'अनूपव्यवहारसागर' (ज्योतिष), 'अनूपविलास' या 'धर्मांशुधि' (धर्मशास्त्र), भद्रराम

(१) नत्वा श्रीमदनूपसिंहनृपतेराज्ञावशादद्भुतं
वक्ष्येशेषविशेषयुक्तिसहितं ज्योत्पत्तिसारपरं ॥ २ ॥

इति श्रीमन्निखिलभूपालमौलिमालामिलन्मुकुटतटनटन्मरीचिमञ्जरी-
पुञ्जपिञ्जरितमञ्जुपादाम्बुजयुगलप्रचण्डभुजदण्डचण्डिकाकर्णकुण्डलित-
कोदण्डताण्डवाखण्डवरदण्डखण्डतारिमुण्डपुण्डरीकमण्डितमहीमंडला-
खण्डलमहाराजाधिराजश्रीमदनूपसिंहभूपाज्ञया कारितेस्मिन् सकलागमा-
चार्यश्रीमत्श्रीनाथसूरिसूनुविद्यानाथविरचितेज्योत्पत्तिसारे वासनाध्यायः
समाप्तः ।

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, कैटेलॉग ऑव् संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी
ऑव् बीकानेर; पृ० ३०७, संख्या ६६१ ।

(२) कुर्वे श्रीमदनूपसिंहवचनात् स्पष्टार्थसं सूचकम् ।
चक्रोद्धारमहं मुहूर्त्तविषये विद्वज्जनानां मुदे ॥

इति श्रीगङ्गारामात्मजदीक्षितमणिरामविरचिते अनूपव्यवहारसागरे
नानाऋषिसम्मता ग्रहमुहूर्त्तचक्रोद्धाराख्या दशमी लहरी समाप्ता ।

वही; पृ० २६०, संख्या ६२२ ।

(३) यह पुस्तक अलवर के राजकीय पुस्तकालय में भी है ।

डा० राजेन्द्रलाल मित्र, कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी
ऑव् बीकानेर; पृ० ३६०, संख्या ७७८ । आफूक्ट; कैटेलॉगस् कैटेलॉगरम्; भाग १,
पृ० १८ । पिटर्सन; कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् हिज़
हाइनेस दि महाराजा ऑव् अलवर; पृ० ५४, संख्या १२४६ ।

ने 'अयुतलक्षहोमकोटिप्रयोग' (यज्ञ विषयक), अनन्तभट्ट ने 'तीर्थरत्नाकर' और श्वेताम्बर उदयचन्द्र ने 'पारिडत्यदर्पण'^३ नामक ग्रन्थों की रचना की थी। उस(अनूपसिंह)को राजस्थानी भाषा से भी बड़ी प्रीति थी, जिससे उसने अपने पिता के राजत्वकाल में ही 'शुकसारिका'^४ (सुआ

(१) इति ग्रहयज्ञत्रयसाधारणविधिः ।

इति श्रीमहाराजाधिराजमहाराजानूपसिंहाज्ञया होमिगोपनामकमद्र-
रामेण अयुतहोम-लक्षहोम-कोटि-होमास्तथाथर्वणप्रयोगाश्च ॥

डा० राजेन्द्रलाल मित्र; कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि लाइब्रेरी
ऑव् बीकानेर पृ० ३६५, संख्या ७८८ ।

(२) इति श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीमन्महाराजानूपसिंहस्याज्ञया मी-
मांसाशास्त्रपाठिना यदुसूनुना अनन्तभट्टेन विरचिते तीर्थरत्नाकरे सकलतीर्थ-
माहात्म्यनिरूपणं नाम कल्लोलः ।

वही; पृष्ठ ४७७, संख्या १०२५ ।

(३) इति सूर्यवंशावतंससदसत्ययोवि(र्वि)वेचनराजहंसमहारा[ज]
श्रीमदनूपसिंहदेवेनाज्ञप्तेन श्वेताम्बरोदयचन्द्रेण संदर्शिते पाण्डित्यदर्पणे प्रज्ञा-
मुकुटमण्डनादर्शो नाम नवमः प्रकाशः ।

सी० डी० दलाल; ए कैटेलॉग ऑव् मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि जैन भन्डारस पेद्
जैसलमेर; पृ० ५६ (गायकवाड् ओरिएण्टल लिब्रेरी; संख्या २१) ।

(४) करिप्रणांम श्रीसारदा अपणी बुद्धि प्रमाण ।

शुकसारिक वार्त्ता करुं द्यो मुक्त अक्षर दान ॥ १ ॥

विक्रमपुर सुहांमणो सुख संपति की ठौर ।

हिंदूस्थान हींदूधरम औसो सहर न और ॥ २ ॥

तिहां तपै राजा करण जंगल कौ पतिसाह ।

ताको कुंवर अनूपसिंह दाता सूर दुबाह ॥ ३ ॥

जोधवंस आखै जगत वंस राठौड़ विख्यात ।

अजै विजै थी ऊपना गोमती गंगामात ॥ ४ ॥

बहोत्तरी) की बहत्तर कथाओं का भाषानुवाद किसी विद्वान् से कराया। खेद का विषय है कि उक्त विद्वान् ने उस पुस्तक में कहीं अपना नाम नहीं दिया। उसके कुंवरपदे में ही उसकी प्रशंसा में चारण गाडण वीरभाण ठाकुरसीओत ने 'बेलिया' गीतों में 'राजकुमार अनोपसिंह री बेल' की रचना की। इसके गीतों की संख्या ४१ है। फिर उसके राज्य समय में 'वैताल-पचीसी' की कथाओं का कविता मिश्रित मारवाड़ी गद्य में अनुवाद हुआ तथा जोशीराय ने शुक्सारिका की कथाओं का संस्कृत तथा मारवाड़ी कविता मिश्रित मारवाड़ी गद्य में 'दंपतिविनोद' नाम से अनुवाद किया। इस ग्रन्थ

तिण मोकुं आग्या दर्ई सुप्रसन हुइकै एह ।

संस्कृत हुंती वारिता सुख संपति करि देह ॥ ५ ॥

[हमारे संग्रह की प्रति से] ।

(१) टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑफ् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनु-स्क्रिप्ट्स; सेक्शन २, पार्ट १, पृ० ६०, बीकानेर ।

(२) प्रणमूं सरसती माय बले विनायक वीनवूं ।

सिध बुद्ध दिवराय सनमुख थाये सरस्वती ॥ १ ॥

देश मरूधर देव नवकोटी मै कोट नव ।

बीकानेर विशेष निहचै मनकर जाणज्यो ॥ २ ॥

राज करै राठोड़ करण छरसुत करण रौ ।

मही क्षत्रीयां शिर मोड़ क्षत्रवट खुमांणो खरौ ॥ ३ ॥

.....॥ वारता ॥ दिक्षण देश रै विपै प्रस्थानपुर नगर । तठै विक्रमादित्य उजैणी नगरी रो धणी राज्य करै छै..... ।

(टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑफ् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स; सेक्शन १, पार्ट २, पृ० ५०-१ बीकानेर) ।

(३) समरूं देवी सरस्वती मत विस्तारण मात ।

वीणा पुस्तक धारणी विम्व हरण विख्यात ॥ १ ॥

गणपति वंदू चरण जुग.....

में पुरुषों तथा स्त्रियों के दूषणों का चित्रण किया गया है। इनके अतिरिक्त उस (अनूपसिंह) की आज्ञा से 'दूहा रत्नाकर' नाम से शृंगाररस-पूर्ण तथा अलग-अलग विषयों के दोहों का संग्रह हुआ। महाराजा अनूपसिंह के आश्रय में ही उसके कार्यकर्ता नाज़र आनन्दराम ने श्रीधर की टीका के आधार पर गीता का गद्य और पद्य दोनों में अनुवाद किया^१।

बीकानेर सुहावणो दिन दिन चढ़तौ दौर ।

हिन्दुस्थान मृजाद हृद नव कोटी सिर मौर ॥ ३ ॥

राज करै राजा तिहां कमधज भूप अनूप ।

सकबंधी करणोससुत राठौड़ां कुल रूप ॥ ४ ॥

देस राज सुभ देख कै मन मैं भयो हुलास ।

दंपतिविनोद की वार्त्ता कहिस कथा सविलास ॥ ५ ॥

॥ अथ कथा प्रारंभते ॥ अंकदा प्रस्थायै ग्रावू विपै विदग्धमण हूँ नाम सूचै रहे । माहा चतुर ग्याता । सर्व सासत्र प्रवीण । सासत्र जोवतां सांभलतां वैराग ऊपनौ जो स्त्री संसार बंधनौ कारण छै ।.....

(टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव चार्टर्ड एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स; सेक्शन १, पार्ट २, पृ० ५६ बीकानेर) ।

(१) टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव चार्टर्ड एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स; सेक्शन २, पार्ट १; पृ० ३१ बीकानेर ।

(२) इस पुस्तक की वि० सं० १८८३ की लिखी एक प्रति क्याना (भरतपुर राज्य) के बोहरा छाजूराम सनाढ्य ब्राह्मण के यहां मेरे देखने में आई । इसमें १६७ पन्ने हैं । इसका प्रारंभिक अंश नीचे लिखे अनुसार है—

ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥ श्रीगुरुपरमात्मने नमः ॥ अथ भगवद्गीता भाषा संयुक्त लिख्यते ।

॥ दोहा ॥

हरगौरी गणेश गुरु, प्रणवौ सीस नवाय ।

गीता भाषारथ करौं, दोहा सहित बनाय ॥ १ ॥

अनूपसिंह जैसा विद्वान् था वैसा ही संगीतज्ञ भी था । अकबर, जहांगीर और शाहजहां के दरबार में संगीतवेत्ताओं का बड़ा आदर रहा, परन्तु औरंगज़ेब ने गद्दी पर बैठने के बाद धार्मिक ज़िद में पड़कर अपने दरबार से संगीत की चर्चा उठा दी । तब शाही दरबार के संगीतवेत्ताओं ने जयपुर, बीकानेर आदि राज्यों में जाकर आश्रय लिया । उस समय शाहजहां के दरबार के प्रसिद्ध संगीताचार्य जनार्दनभट्ट का पुत्र भावभट्ट (संगीतराय) अनूपसिंह के दरबार में जा रहा, जहां रहते समय उसने 'संगीतअनूपांकुश',

सुथिर राज विक्रम नगर, नृपमनि नृपति अनूप ।
थिर थाप्यो परधान यह राज सभा को रूप ॥ २ ॥
नाज़र आनंदराम के, यह उपज्यो चित चाय ।
गीता की टीका करौं, सुनि श्रीधर के भाव ॥ ३ ॥
गीता ज्ञान गंभीर लखि, रची जू आनंदराम ।
कृष्णचरण चित लागि रह्यो, मन में अति अभिराम ॥४॥
आनंदन उच्छ्रव भयो, हरिगीता अवरेषि ।
दोहारथ भाषा करी, वानी महा विशेष ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच ॥ धृतराष्ट्र पूछते हैं ॥ संजय सौं कि हे संजय धर्म कौ क्षेत्र
ऐसौ जु कुरुक्षेत्र ॥ ताविएँ एकत्र भये हैं ॥ अरु युद्ध की इच्छा करते हैं ॥ ऐसे मेरे
अरु पांडव के पुत्र कहा करत भये ॥ दोहा ॥ धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में, मिले युद्ध के साज ।
संजय सो (आगे एक पंक्ति जाती रही है । फिर धर्म क्षेत्रे
संस्कृत श्लोक है । इसी तरह संपूर्ण गीता का गद्य और पद्य में अनुवाद है) ।

नाज़र आनन्दराम महाराजा अनूपसिंह का मुसाहिब था । उसके पीछे वह महाराजा स्वरूपसिंह तथा महाराजा सुजानसिंह की सेवा में रहा, जिसके समय में वि० सं० १७८६ चैत्र वदि ८ (ई० सं० १७३३ ता० २६ फरवरी) को वह मारा गया ।

(१) स्तोत्रं मुद्रामुरीकृत्य सा[र्धं]वर्षत्रयात्मिका ।

श्रीमदनूपसिंहस्याक्ष[ज्ञ]या ग्रंथद्वयं कृतं ॥ २ ॥

एकोनूपविलासाख्योनूपरत्नांक[कु]रः परः ।

अनूपांकुशनामायं ग्रंथो निःपाद्यतेधुना ॥ ३ ॥

‘अनूपसंगीतविलास’^१, ‘अनूपसंगीतरत्नाकर’^२, ‘नष्टोद्दिष्टप्रबोधकघ्नौपद-टीका’^३ आदि ग्रन्थों की रचना की। इनके अतिरिक्त और भी ग्रंथ स्वयं

इति चक्रवलिप्रबंधः इति श्रीमद्राठनु[ड]कुलदिनकरमहाराजा-धिराजश्रीकर्णसिंहात्म[ज]नयश्रीविराजमानचतुः[समुद्रमुद्रावच्छिन्नमेदिनी-प्रतिपालनचतुरवदान्मना[न्यता]तिशयनिर्जितचिंतामणिस्वप्रतापतापितारि-वगा[र्ग]धर्मावतारश्रीमहाराजाधिराजश्रीमदनूपसिंहप्रमा[मो]दितश्रीमहीमहे-न्द्र[मौलिमुकुटरत्नकिरणनीराजितचरणकमलश्रीसाहजा[साहिजहां]समा-मंडनसंगीतरायजनार्दनमदांग[भट्टांग]जागुष्ट[नुष्टु]प् चक्रवर्ती संगीतरायभाव-भट्टविरचिते संगीतानूपांकुशे प्रवधाध्यायः समाप्तः चतुर्थः..... ॥

यह ग्रन्थ काश्मीर राज्य के पुस्तक भंडार में है।

डॉक्टर स्याइन; कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि रघुनाथ टेम्पल लाइब्रेरी ऑव् हिज हाइनेस दि महाराजा ऑव् जम्मू एण्ड काश्मीर; पृ० २६७, संख्या १११५।

(१) इति श्रीमद्राठोरकुलदिनकरमहाराजाधिराजश्रीकर्णसिंहात्मज-जयश्रीविराजमानचतुःसमुद्रावच्छिन्नमेदिनीप्रतिपालनचतुरवदान्यातिशय-निचितचिन्तामणिस्वप्रतापतापितारिवर्गधर्मावतारश्रीमदनूपसिंहप्रमोदित-श्रीमहीमहीन्द्रमौलिमुकुटरत्नकिरणनीराजितचरणकमलश्रीसाहिजहांसमा-मण्डनसङ्गीतराजजनार्दनभट्टाङ्गजानुष्टुप्चक्रवर्तिसङ्गीतरायभावभट्टविरचिते-ऽनूपसङ्गीतविलासे नृत्याध्यायः समाप्तः ॥

डॉक्टर राजेन्द्रलाल मित्र; कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर; पृ० ५१०, संख्या १०६१।

(२) देखो ऊपर पृ० २८५ टिप्पण १।

(३) इति श्रीभावभट्टसङ्गीतरायानुष्टुप्चक्रवर्तिविरचितनष्टोद्दिष्टप्रबो-धकघ्नौपदटीका समाप्ता।

डॉक्टर राजेन्द्रलाल मित्र; कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर; पृ० ५१४, संख्या १०६७।

लिया और उसकी नज़र ललित की तरफ़ से फिर गई^१ ।

ललित ने जब यह दशा देखी तो वह सुजानासिंह तथा आनन्दसिंह से मिल गया और उसने उनकी मां से कहा कि सीसोदिणी राणी कुछ ही दिनों में आपके पुत्रों को मरवा देगी, अतएव अभी से इसका प्रबन्ध करना चाहिये । तब उसके कहने से उस(ललित)ने दोनों कुमारों को साथ लेकर बादशाह की सेवा में प्रस्थान किया^२ ।

तीन मंज़िल पहुंचने पर उनके डेरे हुए । वहां से भी वे आगे बढ़ना चाहते थे, परन्तु जैसलमेर के एक शकुन जाननेवाले भाटी के कहने से वे १६ पहर तक और ठहर गये । ठीक उसी समय स्वरूपसिंह की मृत्यु जब कि वे वहां से कूच करने का आयोजन कर रहे थे, दोक़ासिद शीघ्रतापूर्वक आते हुए दिखाई पड़े । ललित ने उन्हें पास बुला कर समाचार पूछा तो ज्ञात हुआ कि स्वरूपसिंह का आदूणी में शीतला^३ से देहांत हो गया और वे उसी की ख़बर देने बीकानेर जा रहे हैं । तब ललित आदि वहां से ही बीकानेर लौट गये^४ ।

स्वरूपसिंह की बीकानेरवाली स्मारक छतरी के लेख से पाया जाता है कि वि० सं० १७५७ मार्गशीर्ष सुदि १५ (ई० सं० १७०० ता०

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५८-६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०० । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४५ ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४५-६ ।

(३) टॉड लिखता है कि स्वरूपसिंह आदूणी लेने के प्रयत्न में मारा गया (जि० २, पृ० ११३७), परन्तु वह तो आदूणी का शासक ही था अतएव इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता ।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०० । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६ ।

१५ दिसम्बर) को उसका देहांत हुआ^१ ।

महाराजा सुजानसिंह

महाराजा स्वरूपसिंह के छोटी अवस्था में ही निःसन्तान मर जाने पर उसका छोटा भाई सुजानसिंह, जिसका जन्म वि० सं० १७४७ आषाढ सुदि ३ (ई० सं० १६६० ता० २८ जुलाई) सोमवार को जन्म और गद्दीनशानी हुआ था, वि० सं० १७५७ (ई० सं० १७००) में बीकानेर का स्वामी हुआ^२ ।

उन दिनों बादशाह औरंगज़ेब दक्षिण में था । वहां से उसने सुजानसिंह को बुलवाया, जिसपर वह (सुजानसिंह) अपने सरदारों के साथ बादशाह की सेवा में जा रहा^३ और करीब दस वर्ष वहां रहने के बाद बीकानेर लौटा ।

वि० सं० १७३६ (ई० सं० १६७६) में महाराजा जसवन्तसिंह^४ की मृत्यु हो जाने पर बादशाह ने मारवाड़ पर अधिकार करके वहां का प्रबन्ध करने के लिए शाही आफसर नियुक्त कर दिये थे^५ । वि० सं० १७६३ फाल्गुन वदि अमावास्या (ई० सं० १७०७ ता० २१ फरवरी) को अहमदनगर में औरंगज़ेब का देहांत हो जाने से साम्राज्य में बड़ी अव्यवस्था

(१) संवत् १७५७ मिति मिंगसर सुदि १५ महाराजाधिराज-महाराजश्रीअनोपसिंहजीतत्पुत्रमहाराजाधिराजमहाराजश्रीस्वरूपसिंहजी...
.....देवल्लोके गतः..... ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०० ।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६० । पाउलेट; गैजेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६ ।

(४) जोधपुर का स्वामी—गजसिंह का पुत्र ।

(५) सरकार; शार्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; पृ० १६१-७० ।

फैल गई' । इस अनुकूल परिस्थिति से लाभ उठाकर अजीतसिंह^१ ने वि० सं० १७६३ फाल्गुन सुदि १५ (ई० सं० १७०७ ता० ७ मार्च) को जोधपुर पंच जगज्जुलीवां को हटा दिया और इस भांति अपने पैतृक राज्य पर फिर अधिकार कर लिया^२ । औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल-साम्राज्य का शासनाधिकार बहादुरशाह^३ के हाथ में चला गया । सुजानसिंह पूर्व की भांति ही दक्षिण में रहा और बीकानेर का राज्य-कार्य मंत्री तथा अन्य सरदार करते रहे । सुजानसिंह की अनुपस्थिति में राज्य-विस्तार करने का अच्छा अवसर देखकर अजीतसिंह ने फ़ौज के साथ बीकानेर की ओर प्रस्थान किया और लाडणू में आकर डेरे किये । राज्य की सीमा के तेजसिंहोत बीदावत, सुजानसिंह से विरोध रखते थे, अजीतसिंह ने उन्हें लाडणू बुलाकर बातचीत की, जिससे उनमें से अधिकांश उसके सहायक हो गये, परन्तु गोपालपुरा के कर्मसेन तथा बीदासर के बिहारीदास ने इस दुष्कार्य में सहयोग देना स्वीकार न किया, जिससे अजीतसिंह ने उन्हें नज़र कैद कर दिया और भंडारी रघुनाथ को एक बड़ी सेना के साथ बीकानेर पर भेजा । कर्मसेन और बिहारीदास ने नज़र कैद होने पर भी इस चढ़ाई का समाचार गुप्त रूप से बीकानेर भिजवा दिया, परन्तु बीकानेरवालों की सामर्थ्य जोधपुरवालों का सामना करने की न पड़ी, जिससे वहां पर अजीतसिंह का अधिकार हो गया और नगर में उसकी दुहाई फिर गई । बीकानेर में रामजी नामका एक वीर, साहसी एवं राजभक्त लुहार रहता था । उसके हृदय को यह घटना इतनी असह्य हुई कि वह अकेला ही जोधपुर के सैनिकों से भिड़ गया और पांच आदमियों को मारकर मारा गया । इस घटना से बीकानेर के सरदारों

(१) सरकार; शार्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगजेब; पृ० ३८३ ।

(२) महाराजा जसवंतसिंह का पुत्र ।

(३) सरकार; शार्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगजेब; पृ० ३६७ ।

(४) औरंगजेब का दूसरा पुत्र मुथज्जम । बादशाह की मृत्यु होने पर यह काबुल से आकर कुतुबुद्दीन शाहआलम बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा ।

को भी जोर आया और भूकरका के ठाकुर पृथ्वीराज एवं मलसीसर के बीदावत हिन्दूसिंह (तेजसिंहोत्त) सेना एकत्रकर जोधपुर की फ़ौज के समक्ष जा डटे, जिससे जोधपुर की सेना में खलबली मच गई। विजय की सारी आशा काफ़ूर हो गई और जोधपुर के सारे सरदारों ने सन्धि कर लौट जाने में ही भलाई समझी। जब अजीतसिंह के पास यह समाचार पहुँचा तो उसने भी सेना का लौटना ही उचित समझा। फलतः जोधपुर की सेना जैसी आई थी वैसी ही लौट गई। अजीतसिंह ने वापस लौटते वक्त कर्मसेन तथा बिहारीदास को मुक्त कर दिया। अपनी अनुपस्थिति में बुद्धिमानी एवं वीरता-पूर्वक कार्य करने के लिए सुजानसिंह ने दक्षिण से लौटने पर पृथ्वीराज की प्रतिष्ठा बढ़ाई^१।

ख्यातों आदि में महाराजा सुजानसिंह की वरसलपुर पर चढ़ाई होने का वर्णन नहीं मिलता है, परन्तु मथेन (मथेरण) जोगीदास^२ रचित 'वरसलपुर विजय' अर्थात् 'महाराजा सुजानसिंह रो रासो' में इस चढ़ाई का वर्णन नीचे लिखे अनुसार मिलता है—

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६० । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में इस लड़ाई का उल्लेख नहीं है, परन्तु कविराजा श्यामलदास के 'वीरविनोद' नामक ग्रंथ में भी लिखा मिलता है कि औरंगज़ेब की मृत्यु होने पर, जोधपुर पर अधिकार करने के उपरान्त अजीतसिंह ने बीकानेर भी लेने का विचार किया, लेकिन उसका यह विचार पूरा न हुआ (भाग २, पृ० ५००) । इससे निश्चित है कि दयालदास का इस सम्बन्ध का वर्णन क़ोसी-कल्पना नहीं है ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६० ।

(३) मथेन (मथेरण) = गृहस्थी बने हुए जैन यति ।

इतिश्री श्रीमहाराजाधिराजमहाराजा श्री ५ श्रीसुजानसिंघजी वरसलपुर गढ़ विजयं नाम समयः । मथेन जोगीदासकृत समाप्तः ॥ संवत् १७६६ वर्षे माघ सुदि ५ दिने लिखतं ।

एक काफ़िला मुलतान से बीकानेर को जा रहा था, जिसको वरसलपुर की सीमा में वहां के भाटियों ने लूट लिया। जब काफ़िलेवालों ने महाराजा सुजानसिंह के दरबार में आकर शिकायत की तो प्रधान नाज़िर आनन्दराम आदि की सलाह से महाराजा ने अपनी सेना के साथ प्रयाण कर वरसलपुर को जा घेरा। वहां के राव लखधीर को लूटा हुआ माल पीछा दे देने के लिए उसने कहलाया, पर उसने न माना। इसपर महाराजा ने गढ़ पर आक्रमण कर उसे विजय कर लिया। अंत में भाटियों ने क्षमा मांगकर सेना-व्यय देना स्वीकार किया, तब वहां से वह पीछा लौट गया^१।

अनन्तर वि० सं० १७७६ आषाढ वदि ८ (ई० सं० १७१६ ता० २० मई) को सुजानसिंह झुंगरपुर गया, जहां महारावल रामसिंह की पुत्री रूपकुंवरी से उसका विवाह हुआ^२। वहां से लौटते समय वह सलूवर के रावत केसरीसिंह के यहां ठहरा। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) के आग्रह करने पर वह उदयपुर जाकर एक मास तक उसके साथ रहा। उसके घोड़े की कुदान देखकर महाराणा ने उसकी बड़ी प्रशंसा की, जिसपर उसने वह घोड़ा महाराणा को भेंट कर दिया। फिर नाथद्वारे में श्रीनाथजी का दर्शन करता हुआ वह बीकानेर लौट गया^३।

मुग़ल बादशाहों में औरंगज़ेब के समय मुग़ल-साम्राज्य का विस्तार

(१) यह चढ़ाई वि० सं० १७६७ और १७६९ के बीच होनी चाहिये क्योंकि वि० सं० १७६९ की लिखी हुई उपर्युक्त पुस्तक विद्यमान है।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५००। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५००। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७।

सब से अधिक बढ़ा, परन्तु उसकी कट्टर धार्मिकता के कारण अकबर की डाली हुई मुगल-साम्राज्य की नाँव हिलने लगी और उसे जीतेजी ही यह मालूम हो गया कि मेरे पीछे राज्य की दशा अवश्य बिगड़ जायगी। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। उसके पीछे शाह-आलम (बहादुरशाह) ने लगभग ५ वर्ष तक राज्य किया। फिर उसका पुत्र मुहम्मद मुर्दजुद्दीन (जहांदारशाह) तख्त पर बैठा, परन्तु नौ मास बाद ही वह अपने भतीजे फ़र्रुखसियर की आघात से मार डाला गया^१। फ़र्रुखसियर भी अधिक दिनों तक राज्य-सुख न भोग सका। वह तो नाम-मात्र का ही बादशाह रहा, राज्य का सारा काम उसके समय में सैय्यद-बन्धु अब्दुल्लाखां तथा हुसेनखां करते थे, जिन्होंने जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह को अपने पन्न में मिलाकर वि० सं० १७७६^३ (ई० स० १७१६) में उस (फ़र्रुखसियर) को मरवा डाला^५। फिर रफ़ीउद्दौला और रफ़ीउद्दौला क्रमशः दिल्ली के तख्त पर बैठे, परन्तु लगभग सात मास के अन्दर ही दोनों काल-कवलित हो गये^४। तदनन्तर बहादुरशाह का पौत्र तथा जहांदारशाह का पुत्र रोशनअख्तर, मुहम्मदशाह का विरुद्ध धारणकर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। कुछ दिनों बाद नवीन बादशाह (मुहम्मदशाह) ने सुजानसिंह को बुलाने के लिए अहदी (दूत) भेजे, परन्तु साम्राज्य की दशा दिन-दिन गिरती जा रही थी, ऐसी परिस्थिति में

(१) नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग ५, पृ० २६-७ ।

(२) वही; भाग ५, पृ० २८ ।

(३) दयालदास की ख्यात में वि० सं० १७६६ (ई० स० १७०६) दिया है, जो ठीक नहीं है। इसी प्रकार उक्त ख्यात में आगे चलकर मुहम्मदशाह की मृत्यु आदि के जो संवत् दिये हैं, वे भी ग़लत हैं ।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८४१-४२ ।

(५) नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग ५, पृ० ३१-२ ।

उसने स्वयं शाही सेवा में जाना उचित न समझा । फिर भी दिल्ली के बादशाह से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए उसने ख्वास आनन्दराम और मूँधड़ा जसरूप को कुछ सेना के साथ दिल्ली तथा मेहता पृथ्वीसिंह को अजमेर की चौकी पर भेज दिया^१ ।

जोधपुर के अजीतसिंह के हृदय में तो बीकानेर पर अधिकार करने की लालसा बनी ही थी । एक बार उसको पता लगा कि सुजान-महाराजा अजीतसिंह का सिंह केवल थोड़े से मनुष्यों के साथ नाल में है । कुछ दिनों पूर्व (वि० सं० १७७३ में) सुजानसिंह के दूसरे कुंवर अभयसिंह का जन्म हुआ था । इस अवसर पर उस (अजीतसिंह) ने अपने दूतों के हाथ कुंवर अभयसिंह के जन्म के उपलक्ष्य में वस्त्राभूषण भिजवाये, पर उन्हें गुप्त रीति से कह दिया कि यदि अवसर मिले तो सुजानसिंह को पकड़ लाना, नहीं तो यह भेंट देकर चले आना । अजीतसिंह के इस गुप्त उद्देश्य का पता किसी प्रकार सुजानसिंह को लग गया, जिससे वह तत्काल नाल का परित्याग कर गढ़ में चला गया । तब दूत बीकानेर में भेंट आदि देकर जोधपुर लौट गये । इस प्रकार अजीतसिंह का आन्तरिक उद्देश्य सफल न हो सका^२ ।

कुछ दिनों बाद भट्टियों और जोहियों ने उत्पात करना आरंभ किया, अतएव वि० सं० १७८७ (ई० सं० १७३०) में उनका दमन करने के लिए सुजानसिंह फौज एकत्र कर नोहर गया । उसका विद्रोही भट्टियों को दबाना आगमन सुनते ही भट्टियों ने भटनेर के गढ़ की तालियां उसे सौंप दीं तथा पेशकशी के बीस हजार रुपये उसे दिये । वहां का समुचित प्रबन्ध करने के उपरान्त

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६० । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७ ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६०-१ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७ ।

सुजानसिंह बीकानेर लौट गया^१ ।

सुजानसिंह के एक सुसाहब खवास आनंदराम तथा जोरावरसिंह में वैमनस्य होने के कारण वह (जोरावरसिंह) उसको मरवाकर उसके सुजानसिंह और उसके पुत्र जोरावरसिंह में मनमुटाव होना स्थान में अपने प्रीतिपात्र मेहता फ़तहसिंह के पुत्र बख़्तावरसिंह को रखवाना चाहता था। अपनी यह अभिलाषा उसने पिता के सामने प्रकट भी की, पर जब उधर से उसे प्रोत्साहन न मिला तो वह नोहर में जाकर रहने लगा, जहां अवसर पाकर उसने वि० सं० १७८६ चैत्र वदि ८ (ई० स० १७३३ ता० २६ फ़रवरी) को आधीरात के समय खवास आनंदराम को मरवा डाला। जब सुजानसिंह को इस अपकृत्य की सूचना मिली तो वह अपने पुत्र से अप्रसन्न रहने लगा। इसपर जोरावरसिंह ऊदासर जा रहा। तब प्रतिष्ठित मनुष्यों ने महाराजा सुजानसिंह को समझाया कि जो हो गया सो हो गया, अब आप कुंवर को बुला लें। इसपर सुजानसिंह ने कुंवर की माता देरावरी^२ तथा सीसोदणी राणी को ऊदासर भेजकर जोरावरसिंह को बीकानेर बुलवा लिया और कुछ दिनों बाद सारा राज्य-कार्य उसे ही सौंप दिया^३ ।

उन्हीं दिनों जैमलसर के भाटियों में विद्रोह का अंकुर उत्पन्न हुआ

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६१ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७ ।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि राणावत इन्द्रसिंह की कन्या राणी रत्नकुंवरी के गर्भ से जोरावरसिंह का जन्म हुआ था (जि० २, पृ० २०१), परंतु अन्य ग्रन्थों में उसका जन्म देरावरी राणी से ही होना लिखा है ।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६२ । वीरविनोद भाग २, पृ० ४०१ । पाउलेट; गैज़ेटियर; ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४८ । वीरविनोद में यह घटना जोधपुर के महाराणा अभयसिंह की चढ़ाई के बाद लिखी है; परन्तु जैसा कि दयालदास की ख्यात से प्रकट होता है यह उससे कुछ दिनों पहले की घटना है। जोधपुर की चढ़ाई से पहले ही पिता पुत्र के बीच का झगड़ा मिट गया था और जब यह चढ़ाई हुई तो जोरावरसिंह ने वीरतापूर्वक विरोधियों का सामना किया था ।

और वहां का स्वामी उदयसिंह विपरीत आचरण करने लगा, अतएव कुंवर जोरावरसिंह उसपर फौज लेकर गया। दोपहर तक लड़ाई होने के बाद उदयसिंह ने अपने सम्बंधी कुशलसिंह को भेजकर सन्धि कर ली तथा पीछे से स्वयं जोरावरसिंह के समक्ष उपस्थित होकर उसने दो घोड़े तथा पेशकशी के पांच हजार रुपये उसे दिये और अधीनता स्वीकार कर ली। तब जैमलसर का ठिकाना फिर उसे देकर, जोरावरसिंह, ऊदासर, पुनरासर होता हुआ लौट गया।

बादशाह फ़र्रुखसियर को मरवाने में सैय्यद अब्दुल्लाखां के साथ-साथ जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह का भी हाथ था। पीछे से अब्दुल्लाखां के मुहम्मदशाह से लड़कर बन्दी होने की खबर पाकर महाराजा ने अजमेर आदि बादशाही जिलों पर कब्ज़ा कर लिया। इसपर मुहम्मदशाह ने मारवाड़ पर फौज भेज दी। वि० सं० १७७६ (ई० सं० १७२२) में मेड़ते पर घेरा पड़ने पर महाराजा ने सुलह करके अपने ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह को दिल्ली भेज दिया। कुंवर अभयसिंह को महाराजा जयसिंह तथा अन्य मुग़ल सरदारों ने समझाया कि फ़र्रुखसियर को मरवाने में शामिल रहने के कारण बादशाह महाराजा से अप्रसन्न है; तुम यदि मारवाड़ का राज्य अपने कब्ज़े में रखना चाहते हो तो उसे मार डालो। तब कुंवर ने अपने छोटे भाई वस्तसिंह को लिख भेजा, जिसने अपने भाई के इशारे के अनुसार वि० सं० १७८१ आषाढ सुदि १३ (ई० सं० १७२४ ता० २३ जून) को ज़नाने में सोते समय अपने पिता को मार डाला। अभयसिंह ने जोधपुर का स्वामी होकर वस्तसिंह की इस सेवा के एवज़ में उसे राजाधिराज का खिताब एवं नागौर की जागीर दी।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६२ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४८ ।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८४२-४ ।

वि० सं० १७६० (ई० स० १७३३)^१ में जब जोधपुर की गद्दी पर अभयसिंह था, उसके छोटे भाई बख्तसिंह ने नागोर से एक बड़ी सेना लेकर बीकानेर पर अधिकार करने के विचार से प्रस्थान किया और स्वरूपदेसर के निकट आकर डेरे किये। उन दिनों सुजानसिंह का ज्येष्ठ पुत्र जोरावरसिंह अपनी सेना सहित नोडर में था। महाराजा (सुजानसिंह) के समाचार भिजवाने पर वह अमरसर में चला आया, जहां बीकानेर की और फ़ौज भी उससे मिल गई। इस सम्मिलित सेना के साथ जोधपुर की सेना का तालाब नाज़रसर पर मुक्ताबला होने पर, प्रथम आक्रमण में ही बख्तसिंह की सेना के पैर उखड़ गये और वह भागकर अपने डेरों में चली गई। अनन्तर बख्तसिंह के यह समाचार जोधपुर भेजने पर अभयसिंह स्वयं एक बड़ी सेना के साथ उससे आ मिला। फिर मोरचेबन्दी हुई और युद्ध जारी हुआ, परन्तु बीकानेरवालों ने गढ़ की रक्षा का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया था और इतनी दृढ़ता के साथ जोधपुरवालों का सामना कर रहे थे कि अभयसिंह को विजय की आशा न रही। फिर रसद आदि का पहुंचना भी जब बन्द हो गया तो अभयसिंह ने मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) से कहलाया कि आप अपने प्रतिष्ठित आदिमियों को भेजकर हमारे बीच सुलह करा दें, जिसपर महाराणा ने चूंडावत जगतसिंह (दौलतगढ़ का), मोही के भाटी सुरताणसिंह तथा पंचोली कानजी (सहीवालों का पूर्वज) को दोनों दलों में सुलह कराने के लिए भेजा। पहले तो जोधपुरवालों ने सेना के खर्च की भी मांग की, परन्तु बीकानेरवालों ने वह शर्त स्वीकार नहीं की। पीछे से इस शर्त पर सुलह हुई कि जब जोधपुरवाले पीछा लौटें तो बीकानेरवाले उनका पीछा न

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में बख्तसिंह का वि० सं० १७६१ (ई० स० १७३४) के भाद्रपद मास में बीकानेर पर चढ़कर जाना लिखा है (जि० २, पृ० १४२) जो ठीक नहीं है। वीरविनोद में भी वि० संवत् १७६० (ई० स० १७३३) ही लिखा है।

करें । तदनुसार फाल्गुन वदि १३ (ई० स० १७३४ ता० २० फ़रवरी) को दोनो भाई (अभयसिंह तथा बल्लसिंह) कूचकर नागोर चले गये ।

बल्लसिंह नागोर में निवास करता था । बीकानेर की प्रथम चढ़ाई के असफल होने पर भी उसने अभी आशा का परित्याग न किया था ।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६१ । वीरविनोद भाग २, पृ० ५००-१ । पाउलेट गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७ ।

यह घटना जोधपुर राज्य की ख्यात में इस प्रकार दी है—‘वि० सं० १७६१ के भाद्रपद (ई० स० १७३४ अगस्त) में बल्लसिंह ने बीकानेर पर चढ़ाई की और गोपालपुर खरबूजी पर अधिकार करता हुआ वह बीकानेर की सीमा पर जा पहुंचा । अनन्तर अभयसिंह भी जोधपुर से कूचकर खींवसर पहुंचा, जहां पंचोली रामकिशन, जिसे महाराज (अभयसिंह) ने एक लाख रुपया देकर फ़ौज एकत्र करने के लिए भेजा था, चार हज़ार सवारों के साथ उससे आ मिला । बल्लसिंह के मोरचे लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की तरफ़ लगे थे । बीकानेरवालों ने बाहर आकर लड़ाई की, परन्तु बल्लसिंह के राजपूतों ने उन्हें फिर गढ़ के भीतर शरण लेने पर बाध्य कर दिया । इस बीच अभयसिंह भी सेना सहित आ पहुंचा और नये सिरे से मोरचेवन्दी तथा युद्ध आरंभ हुआ । बीकानेर के महाराजा सुजानसिंह का पुत्र जोरावरसिंह भाद्रा की तरफ़ था, वह भी कांधलोत लालसिंह तथा अपनी ४००० सेना को साथ ले शहर में आ गया । चार महीने तक लड़ाई हुई, परन्तु बीकानेर की रक्षा के सुदृढ़ प्रबन्ध के कारण गढ़ दृढ़ता दिखाई न दिया । तब लालसिंह ने जोधपुरवालों को जाकर संमन्त्राया कि इस समय आपका चला जाना ही लाभप्रद होगा तथा उसने भविष्य में चढ़ाई होने पर सहायता करने का वचन भी दिया । इसपर अभयसिंह और बल्लसिंह नागोर लौट गये (जि० २, पृ० १४२) ।’

उपर्युक्त वर्णन में महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) के आदमियों द्वारा दोनों दलों में संधि स्थापित किया जाना नहीं लिखा है, परन्तु इसका उल्लेख ‘वीरविनोद’ में भी आया है (भाग २, पृ० ५०१), अतएव कोई कारण नहीं है कि इसपर विश्वास किया जाय ।

बीकानेर पर फिर अधिकार
करने का बख्तसिंह का
विफल षड्यन्त्र

बीकानेर के वंशपरंपरागत किलेदार नापा सांखला
के वंशज दौलतसिंह ने अपने स्वामी से कपट
करके बख्तसिंह से बीकानेर के गढ़ पर उसका
अधिकार करा देने के विषय में गुप्त मंत्रणा की।

बख्तसिंह तो यह चाहता ही था। दौलतसिंह के उद्योग से जैमलसर का
भाटी उदयसिंह, शिव पुरोहित, भगवानदास गोवर्धनोत्त और उसके दो पुत्र
हरिदास तथा राम एवं बीकानेर के कितने ही अन्य सरदार आदि भी विद्रो-
हियों से मिल गये। उदयसिंह के एक सम्बन्धी, पड़िहार राजसी के पौत्र
जैतसी की बीकानेर-राज्य में बहुत चलती थी। उन दिनों कुंवर जोरावर-
सिंह ऊदासर में था, उदयसिंह जैतसी को साथ ले उसके पास ऊदासर में
चला गया। इस प्रकार बीकानेर का गढ़ अरक्षित रह गया। ऊदासर में
एक रोज़ गोठ के समय उदयसिंह अधिक नशे में हो गया और ऐसी बातें
करने लगा, जिससे स्पष्ट पता चलता था कि उसके मन में कोई गुप्त भेद
है। जैतसी ने जब अधिक जोर दिया तो उसने सारी बातें खोलकर
उस(जैतसी)से कह दीं। जैतसी सुनते ही तुरन्त सावधान हो गया और
आसपास से सेना एकत्र करने को उसने ऊंट सवार भेजे। इतना करने के
उपरान्त वह गढ़ के उस भाग में गया जहां पड़िहार रक्षा पर थे और उनसे
रस्सी नीचे गिरवाकर वह गढ़ में दाखिल हो गया। अनन्तर उसने महाराजा
को इसकी सूचना दी। सुजानसिंह तत्काल जैतसी को लेकर सूरजपोल
पर पहुंचा तो उसने उसके ताले खुले हुए पाये। इसी प्रकार गढ़ के अन्य
दरवाजों के ताले भी खुले हुए थे। उसी समय सब दरवाजे मज़बूती से बंद
किये गये और गढ़ की रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर किले की तोपें दागी
गईं। सांखला नाहरखां, बख्तसिंह तथा उसके आदमियों को बुलाने गया
हुआ था, जो गढ़ के निकट ही सूचना मिलने की बाट जोह रहे थे। जब
उसने तोपों की आवाज़ सुनी तो समझ गया कि षड्यन्त्र का सारा भेद
खुल गया। बख्तसिंह ने भी जान लिया कि अब आशा फलीभूत
होना असम्भव है, अतएव अपने साथियों सहित वह वहां से

निकल गया। उधर गढ़ के भीतर के सांखले मार डाले गये तथा धायभाई को गढ़ की रक्षा का कार्य सौंपा गया। यह घटना वि० सं० १७६१ आषाढ वदि ११ (ई० स० १७३४ ता० १६ जून) को हुई^१।

सुजानसिंह का एक विवाह डूंगरपुर में हुआ था, जिसके सम्बन्ध में ऊपर विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है। अन्य दो राणियां देरावरी^२ और सीसोदिया^३ थीं, जिनका उल्लेख भी ऊपर आ गया है। सुजानसिंह के दो पुत्र हुए—देरावरी राणी के गर्भ से वि० सं० १७६६ माघ वदि १४ (ई० स० १७१३ ता० १४ जनवरी) को कुंवर जोरावरसिंह का जन्म हुआ तथा वि० सं० १७७३ (ई० स० १७१६) में उसके दूसरे कुंवर अभयसिंह का जन्म हुआ^३।

कुछ दिनों बाद भूकरका के ठाकुर कुशलसिंह तथा भाद्रा के ठाकुर लालसिंह में वैमनस्य उत्पन्न हो गया, जिससे गांव रायसिंहपुरे में उन दोनों में झगड़ा हुआ। जब सुजानसिंह को इस घटना की खबर हुई तो वह उधर गया, जिससे वहां शांति स्थापित हो गई। रायसिंहपुरे में ही सुजानसिंह रोगग्रस्त हुआ और वि० सं० १७६२ पौष सुदि १३ (ई० स० १७३५ ता० १६ दिसम्बर) मंगलवार को वहीं उसका देहावसान हो गया। पीछे यह दुःखद समाचार पौष सुदि

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६२-३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४८-६। 'वीरविनोद' में भी इस घटना का संक्षिप्त वर्णन है (भाग २, पृ० ५०१), परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं मिलता, जिसका कारण यह है कि इस चढ़ाई का सम्बन्ध केवल बल्लोसिंह से ही था, जोधपुर से नहीं। एक बार विफल प्रयत्न होने पर पुनः बीकानेर पर अधिकार करने के लिए पड़्यन्त्र करना कोई असम्भव कल्पना नहीं है।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात (जि० २, पृ० २०१)। सुजानसिंह के मृत्यु स्मारक लेख से पाया जाता है कि देरावरी राणी का नाम सुरताणदे था।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६०।

१५ (ता० १८ दिसम्बर) को बीकानेर पहुंचने पर उसकी देरावरी राखी सती हुई ।

~~~~~

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३ । वीरविनोद; भाग २, पृ० २०१ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६ ।

पीछे से बढ़ाये हुए मुंहणोत नैणसी की ख्यात के वृत्तान्त में वि० सं० १७६३ ( ई० स० १७३६ ) में सुजानसिंह की मृत्यु होना लिखा है ( जि० २, पृ० २०१ ), जो ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि सुजानसिंह की बीकानेर की स्मारक छत्री में वि० सं० १७६२ ( ई० स० १७३५ ) में ही उसकी मृत्यु होना लिखा है:—

अथ श्रीमन्नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १७६२ वर्षे शके १६५७ प्रवर्तमाने पौषमासे शुभे शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ भौमवासरे  
 .....राठोडवंशावतंसश्रीमदनूपसिंहात्मजमहाराजा-  
 धिराजमहाराज श्री ५ श्रीसुजाणसिंहजीदेवाः श्रीदेरावरीसुरताणदेजी-  
 धर्मपत्न्या सह..... ।

## सातवां अध्याय

### महाराजा जोरावरसिंह से महाराजा प्रतापसिंह तक

#### महाराजा जोरावरसिंह

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, जोरावरसिंह का जन्म वि० सं० १७६६ माघ वदि १४ ( ई० सं० १७१३ ता० १४ जनवरी ) को हुआ था<sup>१</sup> और वह वि० सं० १७६२ माघ वदि ६ ( ई० सं० १७३६ ता० २४ फ़रवरी ) को बीकानेर के सिंहासन पर आसीन हुआ<sup>२</sup> ।

अभयसिंह ने पिछली चढ़ाई के समय बीकानेर की दक्षिणी सीमा पर अपने कुछ थाने स्थापित कर दिये थे, जिनको बीकानेर के इलाके से जोधपुर के थाने उठाना जोरावरसिंह ने सिंहासनारूढ़ होने के बाद ही उठा दिया<sup>३</sup> ।

जोधपुर के महाराजा अभयसिंह तथा उसके छोटे भाई बख्तसिंह में अनबन हो जाने के कारण, अभयसिंह ने फ़ौज के साथ जाकर उस- ( बख्तसिंह ) की सीमा के पास डेरा किया । बख्तसिंह अकेला अपने भाई का सामना करने की सामर्थ्य न रखता था, अतएव उसने जोरावरसिंह

---

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०२ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६ ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६ ।

( ३ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६ ।

से मेल की बातचीत की। जब अभयसिंह को इस रहस्य की खबर मिली तो वह तत्काल जोधपुर लौट गया<sup>१</sup>।

अनन्तर जोरावरसिंह ने अपने राज्य के भीतर होनेवाली अव्यवस्था की ओर ध्यान दिया। चूरू के ठाकुर संग्रामसिंह इन्द्रसिंहोत के बदल जाने की आशङ्का बढ़ रही थी, अतएव उसने उसकी चूरू के ठाकुर को निकालना जागीर छीनकर जुभारसिंह (इन्द्रसिंहोत) को दे दी। इसपर संग्रामसिंह जोधपुर चला गया। जोरावरसिंह यह नहीं चाहता था कि उसका कोई भी अधीनस्थ सरदार किसी दूसरे का आश्रित होकर रहे, अतएव उसने चूरू का पट्टा फिर संग्रामसिंह के ही नाम कर दिया। संग्रामसिंह जोधपुर से लौटा तो अवश्य, पर बीकानेर में महाराजा के समक्ष उपस्थित न होकर सीधा चूरू चला गया, जिससे समस्या पहले जैसी ही हो गई और वह फिर पदच्युत कर दिया गया। संग्रामसिंह तथा भाद्रा के ठाकुर लालसिंह में बड़ी मित्रता थी। पदच्युत होने पर वह उस (लालसिंह) को भी साथ लेकर जोधपुर चला गया जहाँ महाराजा अभयसिंह ने उन दोनों का बड़ा सत्कार किया<sup>२</sup>।

वि० सं० १७६३ (ई० सं० १७३६) में जब महाराजा जोरावरसिंह लूणकरणसर गया हुआ था, देरावर का भाटी सूरसिंह एक डोला लेकर उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। विवाहोपरान्त भाटी सूरसिंह की पुत्री से विवाह तथा पलू के राव को दंड देना वि० सं० १७६३ मार्गशीर्ष सुदि २ (ई० सं० १७३६ ता० २३ नवम्बर) को वहाँ से प्रस्थान कर जोरावरसिंह ने पलू में डेरा किया, जहाँ के राव से उसने पेशकशी वसूल की। बीकानेर लौटने पर उसने अपनी माता को दौलतसिंह पृथ्वीराजोत, मेहता

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ६०२ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६ ।

इस घटना का जोधपुर राज्य की ख्यात में उल्लेख नहीं है ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६ ।

आनंदराम आदि के साथ व्रज को यात्रा एवं सोरम तीर्थ में स्नान करने को भेजा<sup>१</sup> ।

वि० सं० १७६६ ( ई० सं० १७३६ ) में जोधपुर की चढ़ाई बीकानेर पर हुई । भंडारी तथा मेड़तिये आदि दस हजार फ़ौज के साथ बीकानेर राज्य में प्रवेशकर उपद्रव करने लगे । पंचोली लाला, अभयसिंह की बीकानेर पर चढ़ाई अभयकरण दुरगादासोत तथा आसोप का ठाकुर कनीराम रामसिंहों भी एक बड़ी सेना के साथ फलोधी के मार्ग से कोलायत पहुंचे । तीसरी सेना पुरोहित जगन्नाथ आदि तथा साईदासोत लालसिंह की अध्यक्षता में बीकानेर पहुंच गई ।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है बख्तसिंह तथा जोरावरसिंह में मेल की बातचीत बहुत पहले से जारी थी तथा उस ( बख्तसिंह ) ने बारहट दलपत को इस विषय में बातचीत करने के लिए जोरावरसिंह के पास भेजा था<sup>२</sup>, परन्तु जोरावरसिंह को विश्वास न होता था, जिससे उसने प्रतीति के लिए प्रमाण मांगा । बख्तसिंह ने तत्काल मेड़ते पर अधिकार करके अपनी सत्यता का प्रमाण दिया, जिसके पश्चात् उसके तथा जोरावरसिंह के बीच मेल स्थापित हो गया । तब महाराजा ने कुशलसिंह ( भूकरका ), दौलतराम ( अमरावत बीका, महाजन का प्रधान ) आदि को बख्तसिंह के पास भेजा, जिन्होंने लौटकर बख्तसिंह और अभयसिंह में वास्तव में फूट पड़ जाने का निश्चित हाल उससे निवेदन किया । अनन्तर मेहता बख्तावरसिंह के अर्ज करने पर मेहता मनरूप एवं सिंढायच

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६ ।

( २ ) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि जब जोरावरसिंह गोपालपुर की गद्दी में था उस समय बख्तसिंह ने नागोर से चढ़कर उक्त गद्दी को घेर लिया । पीछे से खरबूजी की पट्टी कांधलोट लालसिंह को चाकरी में देकर जोरावरसिंह ने बख्तसिंह से सन्धि कर ली ( जि० २, पृ० १४७ ) । इस कथन में सत्य का अंश कितना है, यह कहा नहीं जा सकता, परन्तु इतना तो निश्चित है कि जोरावरसिंह तथा बख्तसिंह में मेल हो गया था, जिसकी वजह से अभयसिंह बीकानेर का बिगाड़ न कर सका ।

अजयराम बख्तसिंह के पास भेजे गये, जिन्होंने उससे जाकर अभयसिंह की चढ़ाई का सारा हाल निवेदन किया। तब बख्तसिंह ने जोरावरसिंह के पास लिख भेजा कि आप निश्चिन्त रहें। मैं यहां से जोधपुर पर चढ़ाई करता हूं, जिससे अभयसिंह को बाध्य होकर अपनी सेना को पीछा बुला लेना पड़ेगा, परन्तु आप मेरे साथ विश्वासघात न कीजियेगा। जोरावरसिंह की इच्छा स्वयं बख्तसिंह की सहायतार्थ जाने की थी, परन्तु अपनी आकस्मिक बीमारी के कारण उसे रुक जाना पड़ा और बख्तावरसिंह आठ हजार सेना के साथ इस कार्य पर भेजा गया। इसके बाद बख्तसिंह कापरदे पहुंचा तथा अभयसिंह बीसलपुर, जहां युद्ध की तय्यारी हुई; पर बाद में, संभवतः बीकानेर की सहायता बख्तसिंह को प्राप्त हो जाने के कारण उसने युद्ध से विमुख हो अपने प्रधानों को उस (बख्तसिंह) के पास भेज सन्धि कर ली, जिसके अनुसार मेड़ता उसे वापिस मिल गया तथा जालोर की मरम्मत का तीन लाख रुपया उसे बख्तसिंह को देना पड़ा। तदनन्तर बख्तसिंह नागोर लौट गया, जहां से उसने बीकानेर के सरदारों को सिरोपाव देकर विदा किया।

कुछ ही दिन बाद महाजन के ठाकुर भीमसिंह ने जोरावरसिंह से भटनेर पर अधिकार करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। बीकों की फौज, राव-

जोहियों से भटनेर  
लेना

तोतों की फौज तथा मेहता (राठी) रघुनाथ आदि इसी कार्य की पूर्ति के लिए एकत्र हुए, परन्तु प्रकट यह किया गया कि यह सेना राज्य के

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३-४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६।

वीरविनोद ( भाग २, पृ० ५०२-३ ) में भी इसका संक्षिप्त वर्णन दिया है। जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु उससे इतना पता अवश्य लगता है कि बख्तसिंह तथा अभयसिंह में मनमुटाव हो गया था, जिससे मेड़ते पर अधिकार करके बख्तसिंह जोधपुर की तरफ गया था और उस समय अभयसिंह के डेरे बीसलपुर में हुए थे, जैसा कि ऊपर के वर्णन में भी आया है ( जि० २, पृ० १४६ )।

सुप्रबन्ध के लिए एकत्रित की गई है। फिर अपने सरदारों से सलाहकर तलवाड़े के जोहिया स्वामी मला गोदारा (जिसके अधिकार में भटनेर था) को धोखे से मरवाने का निश्चय कर १२५ ऊटों पर युद्ध का सामान लादकर भटनेर को भेज दिया। अनन्तर महाजन के ठाकुर ने भी आगे बढ़कर जोहिया मला को तलवाड़े से बुलाया और एक दिन गोठ में उसको तथा उसके ७० साथियों को सोमल मिली हुई शराब पिलाकर बेहोश कर दिया और पीछे से मार डाला। यह घटना वि० सं० १७६६ फाल्गुन वदि १३ ( ई० सं० १७४० ता० १४ फरवरी ) को हुई। फिर भीमसिंह ने भटनेर के गढ़ पर चढ़ाई कर मला के पुत्रों आदि को भी मौत के घाट उतार दिया और इस प्रकार गढ़ तथा उसमें मिली हुई चार लाख की सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। सारी सम्पत्ति स्वयं हड़प जाने और उसमें से एक अंश भी किसी दूसरे को न देने के कारण, बीकानेर की सेना अप्रसन्न होकर लौट गई। इसकी खबर जोरावरसिंह को मिलने पर उसने हसनखां भट्टी को भटनेर पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। हसनखां भट्टी ने दस हजार फौज के साथ गढ़ घेर लिया। इस अवसर पर वहां की सारी प्रजा भी उसके साथ मिल गई, जिससे उसका कार्य सुगम हो गया। भीमसिंह ने अन्यत्र से सहायता मंगवाने की चेष्टा की, परन्तु उसका यह प्रयत्न विफल हुआ और अन्त में उसे भटनेर का गढ़ छोड़कर प्राण वचाने पड़े तथा वहां हसनखां भट्टी का अधिकार हो गया<sup>१</sup>।

बीकानेर पर की पिछली चढ़ाई की असफलता का ध्यान जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के हृदय में बना ही हुआ था। वि० सं० १७६७<sup>२</sup>

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६-५०।

( २ ) दयालदास की ख्यात में वि० सं० १७६६ का प्रारम्भ दिया है ( जि० २, पृ० ६४ ) जो ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि उक्त संवत् के फाल्गुन मास तक तो ठाकुर भीमसिंह का राज्य का पक्षपाती रहना उक्त ख्यात से सिद्ध है। जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार यह चढ़ाई श्रावणादि वि० सं० १७६६ (चैत्रादि १७६७) के वैशाख मास में हुई ( जि० २, पृ० १४६ ), जो ठीक जान पड़ता है।



अभयसिंह की बीकानेर पर  
दूसरी चढ़ाई

( ई० स० १७४० ) में उसने बीकानेर के विद्रोही  
ठाकुरों—ठाकुर लालसिंह ( भाद्रा ), ठाकुर संग्राम-  
सिंह ( चूरू ) तथा ठाकुर भीमसिंह ( महाजन )—

के साथ पुनः बीकानेर पर चढ़ाई कर दी । देशलोक पहुँचकर उसने  
करणीजी का दर्शन किया और वहाँ के चारणों से अपने आपको उसी तरह  
संबोधन करने को कहा, जिस प्रकार वे अपने स्वामी ( बीकानेर के राजा )  
को करते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा न किया । अनन्तर उसने बीकानेर (नगर)  
में प्रवेश कर तीन पहर तक लूट मचाई, जिससे लगभग एक लाख रुपये  
की सम्पत्ति उसके हाथ लगी । नगर की लूट का समाचार सुनकर कुंवर  
गजसिंह एवं रावल रायसिंह कितने ही साथियों के साथ विरोधी दल का  
सामना करने को आये, परन्तु जोरावरसिंह ने उन्हें भी गढ़ के भीतर बुला  
लिया । महाराजा अभयसिंह का डेरा लक्ष्मीनारायण के मंदिर के निकट  
पुराने गढ़ के खंडहरों की तरफ था, अनूपसागर कुण्ड के पास उसकी सेना  
के कर्मसोतों, देपालदासोतों एवं पृथ्वीराजोतों का एक मोरचा था; दूसरा  
मोरचा उसी कुण्ड के पूर्वी ढाल पर मनरूप जोगीदासोत व देवकर्ण भाग-  
चन्दोत आदि मंडलावतों का था; तीसरा मोरचा दंगल्या ( दंगली साधुओं  
के अखाड़े का स्थान ) के स्थान पर कूपावत रघुनाथ रामसिंहोत  
और जोधा शिवसिंह ( जूनियां ) का था तथा दूसरी तरफ पीपल के वृक्षों  
के नीचे तोपें, पैदल, रिसाला, भाटी हठीसिंह उरजनोत, पाता जोगीदास  
मुकुन्ददासोत, मेड़तिया जैमलोत, सांवलदास एवं पंचोली लाला आदि थे ।  
अन्य जोधपुर के सरदार भी उद्युक्त स्थलों पर नियुक्त थे । सूरसागर  
पूर्णरूप से आक्रमणकारियों के हाथ में था एवं गिन्नाली तालाब पर भी  
भाद्रा का विद्रोही ठाकुर लालसिंह तथा अनेक राठोड़ एवं भाटी आदि थे ।

उधर गढ़ के भीतर भी सारे बीका, बीदावत व रावतोत सरदार  
आदि महाराजा जोरावरसिंह की सेवा में गढ़ की रक्षार्थ उपस्थित थे और  
सारी सेना का संचालन भूकरका के ठाकुर कुशलसिंह के हाथ में था ।  
तोपों के गोलों की लगातार वर्षा से गढ़ का बहुत नुकसान हो रहा था ।

मुख्यतः एक 'शंभुबाण' नाम की तोप तो क्षण-क्षण पर अपनी विकरालता का परिचय दे रही थी। उसका नष्ट करना बहुत आवश्यक हो गया था, अतएव कुंवर गजसिंह की आज्ञानुसार एक पड़िहार ने 'रामचंगी' तोप के सहारे अन्त में उसका ध्वंस कर दिया, जिससे जोधपुरवालों का एक प्रबल नष्टकारी शस्त्र बेकार हो गया। अनन्तर खवास अजबसिंह आनंद-रामोत तथा पड़िहार जैतसिंह भोजराजोत, भाद्रा के ठाकुर लालसिंह के पास उसे अपनी ओर मिलाने के लिए भेजे गये। पीछे से महाराजा स्वयं गुप्त रूप से उससे मिला, परन्तु कोई परिणाम न निकला।

युद्ध दिन पर दिन उग्र रूप धारण कर रहा था। इसी अवसर पर नागोर से बख्तसिंह का भेजा हुआ केलण दूदा एक पत्र लेकर आया और उसने निवेदन किया कि मेरे स्वामी ने कहा है कि आप निश्चिन्त होकर गढ़ की रक्षा करें और अपना एक मनुष्य उनके पास भेज दें ताकि सहायता का समुचित प्रवन्ध किया जाय, परन्तु जोरावरसिंह ने इसपर कुछ ध्यान न दिया। कुछ दिनों पश्चात् दूसरा मनुष्य बख्तसिंह के पास से आने पर आनंदरूप उसके पास भेजा गया, जिसने जाकर निवेदन किया कि गढ़ में सामग्री तो बहुत है, परन्तु बाहर से सहायता प्राप्त हुए बिना विजय पाना असम्भव है<sup>२</sup>। बख्तसिंह ने उत्तर में कहा कि मैं तन-धन दोनों

( १ ) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि 'शंभुबाण' तोप वहां नष्ट नहीं हुई, वरन् अभयसिंह के घेरा उठाने के बाद पंचोली लाला तथा पुरोहित जग्गा उसको अपने साथ ला रहे थे, उस समय बैलों के थक जाने से उन्होंने उसे एक दूसरी तोप के साथ ज़मीन में गाड़ दिया। पीछे से उसे खुदवाकर मंगवाया गया (जि० २, पृ० १५०)।

( २ ) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि अभयसिंह के क़िला घेर लेने से, भीतर रसद की कमी हो गई तो जोरावरसिंह ने उसके पास आदमी भेजकर कहा- लाया कि यदि आप बारबरदारी दें तो हम क़िला छोड़ कर चले जायें, पर यह शर्त स्वीकार न हुई। इस बीच बख्तसिंह रसद आदि सामान नागोर से बीकानेरवालों के पास भेजता रहा। पीछे से जोरावरसिंह ने मेहता बख्तावरमल को उसके पास सहायता के लिए भेजा (जि० २, पृ० १४६)। दयालदास की ख्यात से इस वर्णन में थोड़ा अन्तर अवश्य है, जो स्वाभाविक ही है, परन्तु इससे ऐतिहासिक सत्य में कोई भेद नहीं पड़ता।

से तुम्हारे स्वामी की सहायता करने को प्रस्तुत हूँ। फिर उसी के परामर्शानुसार आनन्दरूप, धांधल कल्याणदास के साथ जयपुर के स्वामी सवाई जयसिंह के पास सहायता प्राप्त करने के लिए गया, पर जयसिंह को वस्तुसिंह की तरफ से कुछ सन्देह था, जिससे उसने कहलाया कि पहले आप मेड़ता ले लें; मैं भी निश्चय आऊंगा। यह संदेशा प्राप्त होते ही मेड़ता पर अधिकार करके वस्तुसिंह ने अपनी सचाई का प्रमाण दिया<sup>१</sup>। कुछ दिनों बाद आनन्दरूप ने जयसिंह से निवेदन किया कि आपने सहायता देना तो स्वीकार कर लिया है अब आप इस आशय का एक पत्र वीकानेर लिख दें। जयसिंह ने उसी समय महाराजा जोरावरसिंह के नाम खरीता लिखकर उसे दे दिया और हँसी में उससे पूछा कि तुम्हारी करणीजी और लक्ष्मीनारायणजी इस अवसर पर कहां चले गये? चतुर आनन्दरूप ने तुरंत उत्तर दिया कि उनका प्रवेश इस समय आप में ही हो गया है, क्योंकि आप हमारी सहायता के लिए कटिबद्ध हो गये हैं। जयसिंह आनन्दरूप की इस अनूठी उक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। इसी अवसर पर उस (जयसिंह) के पास सूचना पहुँची कि बादशाह मुहम्मदशाह<sup>२</sup> के पास से इस आशय का एक पत्र वीकानेर आया है कि यदि गढ़ पर अभयसिंह का अधिकार हो भी गया तब भी वह बाहर निकाल दिया जायगा, जिससे वीकानेरवालों में नई स्फूर्ति एवं साहस का संचार हो गया है।

अनन्तर महाराजा जयसिंह ने २०००० सेना के साथ राजामल खत्री को जोधपुर पर भेजा। वस्तुसिंह उस समय मेड़ते के पास गांव जालोड़े में था तथा मेड़ते में अभयसिंह की तरफ के पंचोली मेहकरण आदि १०००० फौज के साथ थे। राजामल के आने का समाचार सुनते ही, उन्होंने वस्तुसिंह पर

( १ ) जोधपुर राज्य की ख्यात से भी पाया जाता है कि वस्तुसिंह ने मेड़ते पर अधिकार कर लिया था और जयसिंह उससे उसी स्थान पर आकर मिले था ( जि० २, पृ० १५० ) ।

( २ ) दयालदास ने इसके स्थान पर अहमदशाह लिखा है जो ठीक नहीं है, क्योंकि उस समय दिल्ली के तख्त पर मुहम्मदशाह था ।

आक्रमण कर दिया, परन्तु उनको विजय प्राप्त न हुई। पीछे से राजामल भी चखतसिंह से आकर मिल गया। जयसिंह ने इसमें स्वयं अब तक कोई विशेष भाग नहीं लिया था। जब बार-बार उससे आग्रह किया गया तो उसने अपने सरदारों से इस विषय में राय ली। अधिकांश लोगों की तो राय यह थी कि अभयसिंह उसका सम्बन्धी (जामाता) है, दूसरे इस युद्ध में अपरिमित धन-व्यय होगा, अतएव चढ़ाई करना युक्तिसंगत न होगा, परन्तु शिवसिंह (सीकर) ने कहा कि जोधपुर का वीकानेर पर अधिकार हो जाना पड़ोसी राज्यों के लिए हानिकारक ही सिद्ध होगा, इसलिये प्रारम्भ में ही इसका कोई उपाय करना चाहिये। जयसिंह के हृदय में उसकी बात बैठ गई और उसने तीन लाख सेना के साथ जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। जब अभयसिंह को यह समाचार ज्ञात हुआ, तो उसने उदयपुर आदमी भेजकर वहाँ के प्रतिष्ठित मनुष्यों को वीकानेर के साथ संधि करा देने को बुलवाया। अभयसिंह यह चाहता था कि यदि वीकानेरवाले झुक जायें तो वह वापस चला जाय, परन्तु जब वीकानेरवालों ने यह अपमान-जनक शर्त स्वीकार न की और स्पष्ट कह दिया कि हमारी ओर से उत्तर जयसिंह देगा तो अभयसिंह को इतने दिनों के परिश्रम के बदले में फिर निराश होकर लौट जाना पड़ा। इस अवसर पर भागते हुए जोधपुर के सैन्य को वीकानेर की फौज ने बुरी तरह लूटा। अभयसिंह भागा-भागा एक हजार सवारों के साथ जोधपुर पहुँचा, क्योंकि उसे जयसिंह की ओर से पूरा-पूरा भय था, परन्तु जयसिंह अभी तक मार्ग में ही था। उसका वास्तविक उद्देश्य जोधपुर पर अधिकार करने का न था। वह तो केवल अभयसिंह को वीकानेर से हटाकर एवं उससे कुछ रुपये वसूल कर स्वदेश लौट जाना चाहता था। अभयसिंह के आते ही २१ लाख

( १ ) जोधपुर राज्य की रियासत में भी लिखा है कि जयसिंह ने यह सोचकर कि वीकानेर पर अधिकार कर लेने से अभयसिंह की शक्ति बढ़ जायगी, तत्काल उसे लिखा कि वीकानेर पर से घेरा उठा लो, परन्तु जब उसने ऐसा न किया, तो उस-  
( जयसिंह ) ने जोधपुर पर चढ़ाई कर दी ( जि० २, पृ० १४६-४७ )-१

रुपये पेशकशी के वसूलकर वह वहां से लौट गया' । इस धन में से ११ लाख के तो वे ही आभूषण थे, जो उसने विवाह के अवसर पर अपनी पुत्री को दिये थे, परन्तु उसने यह कहकर उन्हें भी स्वीकार कर लिया कि अब ये जोधपुर की निजी सम्पत्ति हैं अतएव इन्हें लेने में कोई दोष नहीं है<sup>१</sup> ।

वहां से प्रस्थान कर जयसिंह ने गांव घणार में डेरा किया जहां बीकानेर से जोरावरसिंह भी आकर उपस्थित हुआ और समय पर सहायता प्रदान करने के लिए उसे धन्यवाद दिया । पर जयसिंह ने यही कहा कि मैंने जो कुछ भी किया है उसका मूल्य 'कुछ नहीं' के बराबर है, क्योंकि आपके पूर्वज जैतसो ने हमारे पूर्वज सांगाजी की बड़ी सहायता की थी<sup>२</sup> ।

अन्तर दोनों के डेरे बीचम में हुए । वहां से वे बांधनवाड़े पहुंचे, जहां उनकी उदयपुर के महाराणा जगतसिंह (दूसरा) और कोटे के महाराव साईदासों का दमन करना दुर्जनसाल से मुलाकात हुई । फिर बीमार पड़ जाने से जोरावरसिंह कुछ दिनों के लिए जयपुर चला गया । इसी बीच बीकानेर राज्य में साईदासों के बखेड़ा करने पर उसने खाटू में जयसिंह के पास जाकर उनका दमन करने के लिए फौज

( १ ) जोधपुर राज्य की ख्यात में बीस लाख रुपया लिखा है ( जि० २, पृ० १५२ ) ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४-७ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५०-५१ ।

वीरविनोद ( भाग २, पृ० ५०२-३ ) में भी इस घटना का लगभग ऐसा ही संक्षिप्त वर्णन है । जोधपुर राज्य की ख्यात में भी कहीं-कहीं थोड़े अन्तर के साथ यह घटना दी है । इससे यह निश्चित है कि अभयसिंह की चढ़ाई जिस समय बीकानेर पर हुई थी, उस समय जयसिंह ने जोधपुर पर चढ़ाई की और वसुंतसिंह भी उसका सहायक हो गया, जिससे अभयसिंह को फौरन जोधपुर लौटना पड़ा ।

( ३ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६७ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५२ ।

भेजने को कहा, जिसपर दस हजार फौज के साथ जयपुर के शेखावत शार्दूलसिंह ( जगरामोत ) आदि मेहता बस्तावरसिंह के साथ उधर भेजे गये । उस समय लालसिंह वाय के किले में तथा संग्रामसिंह चूरु में था । रिणो से चलकर जब कछुवाहों की सेना वाय में पहुँची तो लालसिंह रात्रि के समय वहाँ से भागकर भाद्रा चला गया । अभयसिंह की दी हुई दस तोपें उसके पास थीं, जिनपर विजेताओं का अधिकार हो गया । जब भाद्रा में भी लालसिंह का पीछा किया गया तो उसने शेखावत शार्दूलसिंह की मारफ्त वातचीत की और पेशकशी का एक लाख रुपया देना ठहराकर मेल कर लिया । तब शार्दूलसिंह लालसिंह को लेकर जयपुर गया, जहाँ वि० सं० १७६७ कार्तिक वदि ११ ( ई० स० १७४० ता० ५ अक्टोबर ) को बह ( लालसिंह ) नाहरगढ़ में कैद कर दिया गया । जोरावरसिंह जब बीकानेर लौट रहा था तो मार्ग में संग्रामसिंह भी उसकी सेवा में उपस्थित हुआ और दंड के पचीस हजार रुपये देने का वचन दे विदा हुआ । इस प्रकार उस प्रदेश के विद्रोहियों का दमन होकर सुव्यवस्था का आविर्भाव हुआ ।

संग्रामसिंह इतना हो जाने पर भी ठीक रास्ते पर न आया था । उसके रहते शांति भंग होने की आशंका सदा विद्यमान रहती थी । अतएव बस्तावरसिंह जाकर उसको उसके भाई भोपतसिंह सहित सालू में ले आया, जहाँ वि० सं० १७६८ आषाढ वदि ४ ( ई० स० १७४१ ता० २३ मई ) को वे दोनों छल से मार डाले गये । अनन्तर जोरावरसिंह ने जाकर चूरु तथा वहाँ की सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया एवं उन समस्त वणीरोतों को बाहर निकाल दिया जो राजकीय सेवा में नहीं थे । लगभग छः महीने तक उस इलाके को अपने हाथ में रखने के बाद पुनः संग्रामसिंह के पुत्र

जोरावरसिंह का चूरु पर  
अधिकार करना

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६७ । पाउलेट-कृत 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' में केवल इतना लिखा है कि बीकानेर में उपद्रवी ठाकुरों का दमन करने में जयसिंह ने जोरावरसिंह की सहायता की ( पृ० ५२ ) ।

धीरतसिंह को ही उसने वहां का स्वामी बना दिया<sup>१</sup> ।

महाराजा जयसिंह की जोधपुर पर की विगत चढ़ाई में वज्रतसिंह को आशा हो गई थी कि इससे उसका जोधपुर की गद्दी पर अधिकार करने का अपना स्वार्थ भी सिद्ध होगा, परन्तु जब जयसिंह जयसिंह पर वज्रतसिंह की चढ़ाई के केवल कुछ धन प्राप्तकर लौट जाने से उसकी यह आशा भूल में मिल गई, तो वह जयसिंह का विरोधी हो गया और उसने अपने भाई अभयसिंह से मेल कर लिया । अनन्तर उसने ससैन्य हूंदाड़ पर चढ़ाई की । यह खबर जयसिंह को मिलने पर वह भी फौज के साथ उसका सामना करने को गया और कुछ देर की लड़ाई के बाद उसने उस (वज्रतसिंह) को भगा दिया । अभयसिंह उस समय आलणियावास में था, जहां वज्रतसिंह चला गया । जयसिंह ने अजमेर पहुँचकर अभयसिंह को युद्ध की चुनौती दी तथा मेहता आनंदरूप से कहा कि तुम अपने स्वामी (जोरावरसिंह) को लिखो कि नागौर पर चढ़ाई करे और शीघ्रतापूर्वक मुझ से आकर मिले । जोरावरसिंह तबतक चूरू में ही था, यह समाचार वहां पहुँचने पर उसने आगे बढ़कर नागौर का बड़ा विगाड़ किया, परन्तु जब कुछ दिन बीत जाने पर भी वह जयसिंह के शामिल नहीं हुआ, तो उस (जयसिंह) ने आनंदरूप से इसके बारे में कहा । तब आनंदरूप स्वयं जोरावरसिंह के पास गया, पर जब उसके प्रस्थान करने का विचार न देखा, तो वह लौटकर जयसिंह की सेना में गया, परन्तु मार्ग में ही तबियत खराब हो जाने से पुष्कर के पास गांव बसी में उसका देहांत हो गया<sup>२</sup> ।

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६७ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५३ ।

वीरविनोद (भाग २, पृ० ५०३) में भी संग्रामसिंह और भूपाल (भोपत) सिंह के मरवाये जाने का हाल है, पर उसमें यह घटना ता० ३ जून को होना लिखा है ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६७-८ । पाउलेट गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५३ ।

बीकानेर का समुचित प्रबन्ध करके जोरावरसिंह जयपुर गया और  
 ६ मास तक जयसिंह का मेहमान रहने के अनंतर  
 जोरावरसिंह का जयपुर जाना  
 वहां से लौटा<sup>१</sup> ।

भट्टियों और जोहियों का उत्पात फिर बढ़ रहा था, अतएव यह  
 निश्चय हुआ कि तुर्कों के इन दोनों दलों को निकालकर हिसार पर  
 अधिकार कर लेना चाहिये । इस विचार को  
 जोरावरसिंह का हिसार पर  
 अधिकार करने का विचार करना  
 कार्यरूप में परिणत करने के पूर्व कुंवर गजसिंह,  
 शेखावत नाहरसिंह तथा मेहता बख्तावरसिंह को  
 नोहर में छोड़कर जोरावरसिंह सकुटुम्ब करणीजी का दर्शन करने गया ।  
 ठाकुर कुशलसिंह सात हजार फौज के साथ कर्णपुरा के जोहियों पर गया  
 हुआ था, उसे जोरावरसिंह ने वापस बुला लिया<sup>२</sup> ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि अभयसिंह से मेलकर ५००० सेना के  
 साथ बख्तसिंह जयसिंह पर गया । उधर ५०००० सेना के साथ जयसिंह भी गंगवाणे  
 आया, जहां दोनों में युद्ध हुआ । इतनी थोड़ी सेना रहने पर भी बख्तसिंह अभूतपूर्व  
 वीरता के साथ लड़ा और दो-तीन बार कछवाहों की सेना के एक छोर से दूसरे छोर  
 तक निकल गया ( जि० २, पृ० १५२-३ ) । अन्यत्र इस सम्बन्ध में यह लिखा मिलता  
 है कि बख्तसिंह के पास ५-६ हजार सेना थी और जयसिंह के पास ३००००; जब  
 बख्तसिंह के पांच हजार आदमी कट गये तो उसने अपने बचे हुए साथियों के साथ  
 इतने प्रबल वेग से शत्रु-पक्ष पर आक्रमण किया कि जयसिंह को जयपुर की तरफ  
 भागना पड़ा, परन्तु यह केवल कल्पना-मूलक बात ही प्रतीत होती है । अपने से छः  
 गुना या उससे भी अधिक सैन्य का सामना करना तो माना जा सकता है, पर उसे  
 परास्त कर सकना कल्पना से दूर की बात है । वीरविनोद ( भाग २, पृ० ५०२-३ ) में  
 भी दयालदास की ख्यात जैसा ही वर्णन है, अतएव उसपर अविश्वास करने का कोई  
 कारण नहीं है । आगे चलकर जोधपुर राज्य की ख्यात में भी लिखा है कि भंडारी  
 रघुनाथ के उद्योग से जोधपुर और जयपुर में सन्धि हुई ( जि० २, पृ० १५४ ) ।

( १ ) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६८ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि  
 बीकानेर स्टेट; पृ० ५३ ।

( २ ) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६८ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि  
 बीकानेर स्टेट; पृ० ५३-४ ।



अनन्तर जब राजमाता सीसोदिणी ने बीकानेर में चतुर्भुज का का मंदिर बनवाया तो जोरावरसिंह ने उसकी प्रतिष्ठा की। वि० सं०

जोरावरसिंह का चांदी की तुला करना तथा सिरड पर अधिकार करना

१८०१ (ई० सं० १७४४) में महाराजा जोरावरसिंह ने कोलायत जाकर कार्तिक सुदि १५ (ता० ६ नवंबर) को चांदी की तुला की। फिर वहां से उसने मेहता रघुनाथ को फौज देकर सिरड भेजा,

जहां थोड़ी सी लड़ाई के बाद उसका अधिकार हो गया<sup>१</sup>।

कुछ समय पश्चात् रेवाड़ी के राव गूजरमल ने कहलाया कि हम और आप हिसार ले लें अतएव आप सेना भेजें। इसपर जोरावरसिंह ने वहां

गूजरमल की सहायता तथा चंगोई, हिसार, फतेहाबाद पर अधिकार करना

सेना भेजी। दौलतसिंह पृथ्वीराजोत (वाय) और मेहता बख्तावरसिंह फौज के साथ टिणी भेजे गये और जुभारसिंह आदि चणीरोतों की फौज लेकर मेहता साहबसिंह चंगोई गया, जिसने तारासिंह

(आनंदसिंहोत) से, जो बिना आह्वा के चंगोई पर अधिकार कर बैठा था, उस स्थान को फिर छीन लिया। इस बात से नाराज़ होकर आनंदसिंह के चारों पुत्र मलसीसर गये, जहां से गजसिंह जयपुर में ईश्वरीसिंह के पास होता हुआ नागोर में बख्तसिंह के पास गया। अनन्तर उपर्युक्त दोनों फौजें मिलकर राव गूजरमल के पास हांसी हिसार में गई, जहां उसका अमल हुआ। जोरावरसिंह स्वयं भी वहां गया और वहां से ही कुछ फौज फतेहाबाद के भट्टियों पर भेजी गई, जिनका दमन किया जाकर वहां जोरावरसिंह का अधिकार हो गया<sup>२</sup>।

वहां से लौटते समय मार्ग में जोरावरसिंह हसनखां भट्टी (भटनेर का) के पुत्र मुहम्मद से मिला और उससे पेशकशी ठहराई<sup>३</sup>। जिन दिनों

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६८।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५४।

( ३ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६९।

मृत्यु

यह अनूपपुर में ठहरा हुआ था, उसका शरीर अस्वस्थ हो गया और चार दिन की बीमारी के बाद वहीं उसका वि० सं० १८०३ ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० स० १७४६ ता० १५ मई) को निःसन्तान देहांत हो गया<sup>१</sup>। यह भी कहा जाता है कि उसकी मृत्यु विष प्रयोग से हुई। उसके साथ उसकी देरावरी और तंवर राणियां सती हुई<sup>२</sup>।

जोरावरसिंह वीर, राजनीतिज्ञ और काव्यमर्मज्ञ था। वह युद्ध से बढ़कर मेल का महत्व समझता था। इसी से अक्सर प्राप्त होने पर उसने जोधपुर और जयपुर से मेल करने में मुंह न मोड़ा। इसका परिणाम भी अच्छा ही हुआ। कुछ सरदार उसके विरोधी अवश्य थे, परन्तु शेष के साथ उसका सम्बन्ध बड़ा अच्छा था। वह समझता था कि सरदारों

महाराजा जोरावरसिंह का  
व्यक्तित्व

( १ ) अथास्मिन् शुभसम्बत्सरे श्रीमन्नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १८०३ वर्षे शाके १६६८ प्रवर्त्तमाने मासोत्तमेमासे ज्येष्ठमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ षष्ठ्यां गुरुवासरे.....महाराजाधिराज-महाराजश्रीजोरावरसिंहजीवर्मा देरावरीजीश्रीअखैकुंवर तंवरजी श्रीउमेद-कुंवरजी एवं द्वाभ्यां धर्मपत्नीभ्यां.....सह श्रीनारायणपरमभक्ति-संसक्तचित्तः परमधाममुक्तिपदं प्राप्तः.....

( जोरावरसिंह की बीकानेर की स्मारक छत्री से ) ।

स्मारक छत्री के उपर्युक्त लेख के तिथि, वार आदि का मिलान करने से वे वि० सं० १८०३ में ही पड़ते हैं, अतएव जोरावरसिंह की मृत्यु का यह संवत् ठीक होना चाहिये। इसके विपरीत ख्य तों में संवत् १८०२ ज्येष्ठ सुदि ६ दिया है जो आषाढादि अथवा श्रावणादि संवत् होने से तो स्मारक छत्री के लेख से मेल खा जाता है, परन्तु आगे चलकर ख्यात में गजसिंह की मृत्यु का समय वि० सं० १८४४ चैत्र सुदि ६ ( ई० स० १७८७ ता० २५ मार्च ) दिया है और यही उसकी स्मारक छत्री में भी है, जिससे यह निश्चित है कि ख्यात में दिये हुए संवत् भी चैत्रादि ही हैं। इस दृष्टि से ख्यात का दिया हुआ वि० सं० १८०२ ( ई० स० १७४५ ) ठीक नहीं माना जा सकता।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पृ० ६६ तथा जोरावरसिंह की स्मारक छत्री का लेख ।

पर ही राज्य का अस्तित्व निर्भर है और इसी कारण उन्हें विरोधी होने का मौक़ा कम देता था ।

मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार जोरावरसिंह संस्कृत और भाषा का अच्छा कवि था । उसके बनाये दो संस्कृत ग्रन्थ—‘वैद्यकसार’ और ‘पूजा-पद्धति’—वीकानेर के पुस्तकालय में हैं । भाषा में उसने ‘रसिकप्रिया’ और ‘कविप्रिया’ की टीकायें बनाई थीं । महाराजा अभयसिंह के द्वारा वीकानेर के घेरे जाने पर एक सफ़ेद चील को देखकर उसने यह दोहा कहा था—

डाढ़ाली डोकर थई, का तूँ गई विदेस ।

खून बिना क्यों खोसजे, निज वीका रां देस<sup>१</sup> ॥

### महाराजा गजसिंह

दयालदास लिखता है—‘जोरावरसिंह के निःसन्तान मरने के कारण गढ़ तथा नगर का सारा प्रबन्ध अचिलम्ब ठाकुर कुशलसिंह (भूकरका) और मेहता वस्तावरसिंह ने अपने हाथ में ले लिया । गजसिंह को गद्दी मिलना उसके किसी सुयोग्य सम्बन्धी को सिंहासनारूढ़ करने का विचार हो ही रहा था कि इतने में अमरसिंह, तारासिंह तथा गूदड़सिंह<sup>२</sup> नागोर से सेना लेकर लाडरूं में वीकानेर का घिगाड़ करने के लिए आ पहुंचे । ठाकुर कुशलसिंह ने वीका बलरामसिंह को भेजकर उन्हें बुलवाया, जिसपर वे गांव गाढ़वाला में एक शमी-वृक्ष के नीचे आ ठहरे । यह समाचार अमरसिंह के छोटे भाई गजसिंह को विदित होने पर उसने भी तुरन्त वीकानेर आकर भोमियादेव के शमी वृक्ष के नीचे डेरा किया । शकुन विचारनेवालों से जब राज्य के भावी स्वामी के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया, तो उन्होंने बतलाया कि भोमियादेव के वृक्ष के नीचे आकर ठहरनेवाला व्यक्ति ही राज्य का अधिकारी होगा । गजसिंह ही सभी में अधिक बुद्धिमान

( १ ) राजरसनामृत; पृ० ४६-५० ।

( २ ) नरोत्तमदास स्वामी; राजस्थान रा दूहा; भाग १, पृ० ६६ तथा २३७ ।

( ३ ) जोरावरसिंह के चाचा आनन्दसिंह के पुत्र ।



महाराजा गजसिंह



था, अतएव ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह के होते हुए भी, ठाकुर कुशलसिंह तथा मेहता बस्तावरसिंह एवं अन्य सरदारों आदि ने सलाह कर उस(गजसिंह)को ही गद्दी पर बैठाने का निश्चय किया और उसे बुलाकर उस समय तक के राज्यकोष का हिसाब न मांगने का वचन लेकर वि० सं० १८०२ आषाढ वदि १४ ( ई० सं० १७४५ ता० १७ जून ) को उसे बीकानेर के राज्यासिंहासन पर बिठलाया । अमरसिंह ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण निश्चिन्त था, परन्तु गजसिंह की गद्दीनशीनी का हाल मालूम होते ही वह वहां से चला गया<sup>१</sup> ।

दयालदास का दिया हुआ गद्दीनशीनी का उपर्युक्त संवत् ठीक नहीं है, क्योंकि महाराजा जोरावरसिंह के स्मारक लेख से वि० सं० १८०३ ज्येष्ठ सुदि ६ को उसकी मृत्यु होना निश्चित है<sup>२</sup> । संभव है उसमें दी हुई गजसिंह की गद्दीनशीनी की तिथि ठीक हो<sup>३</sup> ।

अभयसिंह उन दिनों अजमेर में था, जहां महाजन का ठाकुर भीमसिंह तथा अन्य बीकानेर के विरोधी उसके पास थे । लालसिंह(भाद्रा)को भी सवाई जयसिंह के मरने पर अभयसिंह ने छुड़वाकर अपने पास रख लिया था । अमरसिंह भी भागकर उस(अभयसिंह)के पास चला गया तथा अभयसिंह के साथ रहे हुए बीकानेर के विरोधी सरदारों ने उसे ही बीकानेर की गद्दी दिलाने का निश्चय किया । अनन्तर अभयसिंह ने अपने बहुत से सरदारों एवं भीमसिंह, लालसिंह अमरसिंह आदि के साथ एक विशाल सेना बीकानेर पर भेजी, जो मार्ग में लूटमार करती हुई सरूपदेसर के पास ठहरी । बीकानेरवाले जोधपुर के विगत हमलों से सतर्क रहने लगे थे । इस अवसर पर बीकों,

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५४-५ ।

( २ ) देखो ऊपर पृ० ३२१, टि० १ ।

( ३ ) मुंहणोत नैणसी की ख्यात के पीछे से बढ़ाये हुए अंश में गजसिंह की गद्दीनशीनी का समय वि० सं० १८०३ आश्विन वदि १३ ( ई० सं० १७४६ ता० २ सितम्बर ) दिया है ( जि० २, पृ० २०१ ), जो ठीक प्रतीत नहीं होता ।

वीदावतों, रावतों, वणीरोतों, भाटियों, रूपावतों, कर्मसोतों आदि की सेनाएं एकत्र होकर शत्रुपक्ष का सामना करने के लिए रामसर कुएं पर जाकर डटीं, परन्तु कई मास तक एक दूसरे के सम्मुख पड़े रहने पर भी केवल मुठभेड़ होने के अतिरिक्त कोई बड़ा युद्ध न हुआ। तब जोधपुर के सरदारों ने कहलाया कि यदि भूमि के दो भाग कर दिये जावें तो हम वापस लौट जावें, परन्तु गजसिंह ने यही उत्तर दिया कि हम इस तरह सुई की नोक के बराबर भूमि भी न देंगे और कल प्रातः तलवार से हमारी शान्ति की शर्तें तय होंगी। दूसरे दिन अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त कर गजसिंह शत्रुओं के सामने जा पहुंचा। वीदावतों, रावतों और वीका राठोड़ों की बीच की अनी में महाराजा स्वयं हाथी पर विद्यमान था। दाहिनी अनी में भाटी, रूपावत और मंडलावत थे तथा बाईं अनी में तारासिंह, चूरू का ठाकुर धीरजसिंह और मेहता वस्तावरसिंह आदि थे। हंरावल में कुशलसिंह (भूकरका), मेहता रघुनाथसिंह तथा दौलतसिंह (वाय) थे और चंदावल में प्रेमसिंह वाघसिंहोत वीका, महाराजा के अंगरक्षकों-सहित था। सुजानदेसर कुएं के पास शत्रुपक्ष में से कुछ ने एक वुर्ज बना ली थी, परन्तु वीकानेर की दाहिनी अनी ने हल्ला कर उन्हें वहां से भगा दिया और वहां अधिकार कर लिया। इसपर जोधपुर की सेना में से भंडारी रतनचन्द अपनी सारी फौज के साथ चढ़ गया। गजसिंह उस समय घोड़े पर सवार होकर लड़ रहा था; उस घोड़े के एक गोली लग जाने से वह मर गया, तब वह दूसरे घोड़े पर बैठकर लड़ने लगा। अमरसिंह उस समय तक यही समझ रहा था कि गजसिंह हाथी पर चढ़कर लड़ रहा है, अतएव उसने उधर ही आक्रमण किया। तारासिंह ने उधर घूमकर अमरसिंह पर वार किया। इसी बीच गजसिंह का दूसरा घोड़ा भी मर गया, जिससे वह फिर हाथी पर ही आरुढ़ हो गया। इतनी देर की लड़ाई में भंडारी (रतनचन्द), भीमसिंह तथा अमरसिंह इतने घायल हो गये कि उनके लिए अधिक लड़ना असम्भव हो गया। फिर महाराजा गजसिंह के हाथ से भंडारी रतनचन्द की आंख में तीर लगते ही शत्रु, बची हुई सेना के साथ रणक्षेत्र छोड़कर भाग

गये', परन्तु वीकानेर के जैतपुर के ठाकुर स्वरूपसिंह ने आगे बढ़कर बरछी के एक वार से भंडारी का काम तमाम कर दिया। इस युद्ध में जोधपुर की बड़ी हानि हुई। वीकानेर के भी कितने ही सरदार काम आये। जब इस पराजय का समाचार अभयसिंह के पास पहुँचा तो उसे बड़ा खेद हुआ और उसने एक दूसरी सेना भंडारी मनरूप की अध्यक्षता में भेजी, जो डीडवाणे तक आई, परन्तु इसी समय वीकानेर से सेना आ जाने के कारण वह वहाँ से लौट गई। यह घटना वि० सं० १८०४ (ई० सं० १७४७) में हुई<sup>२</sup>।

( १ ) यह घटना वि० सं० १८०४ के श्रावण मास में हुई, जैसा कि वीकानेर के भंडासर नामक जैनमन्दिर के पास से मिले हुए नीचे लिखे स्मारक लेख से पाया जाता है—

.....

स्वस्ति श्रीमत्शुभसंवत्सरे संवत् १८  
०४ वर्षे शाके १६६६ प्रवर्त्तमाने  
महामांगल्यप्रदमासोत्तममासे  
श्रावणमासे कृष्णपक्षे तिथौ  
तृतीयायां ३ सोमवासरे श्री-  
वीकानेर मध्ये महाराजा-  
धिराजमहाराजाश्रीगज-  
[सिं]घजीविजयराज्ये काश्यप-  
गोत्रे राठोड़कांधलवंशे वरणीरो-  
त राजश्रीअजवलंघजीतत्पु-  
त्रमोहकमसंघजीतस्यात्मज  
[स]वाईसंघजी जाधपुर री फो-  
ज भागी ताहीरा काम आया

( मूल लेख से ) ।

( २ ) दयालदास की ख्यात जि० ३, पृ० ६६-७१ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि वीकानेर स्टेट; पृ० ४४-६ ।



उन्हीं दिनों कतिपय वीदावतों का उत्पात बहुत ज्यादा बढ़ गया था इसलिए महाराजा गजसिंह ने छापर में निवास करते समय मुहम्मदसिंह विहारीदासोत वीदावत ( भागचन्दोत ), देवीसिंह उपद्रवी वीदावतों को मरवाना हिन्दूसिंहोत वीदावत तथा संग्रामसिंह दुर्जनसिंहोत वीदावत को अपने पास बुलवाकर मरवा डाला, जिससे देश में शान्ति हुई<sup>१</sup> ।

इसी बीच अभयसिंह और वस्तसिंह में वैमनस्य बढ़ गया, जिससे वस्तसिंह ने पड़िहार शिवदान आदि को बीकानेर भेजकर वस्तावरसिंह की मारफ़्त गजसिंह से मेल कर लिया । अनन्तर जोधपुर पर चढ़ाई करने का निश्चयकर वह दिल्ली में बादशाह मुहम्मदशाह<sup>२</sup> की सेवा में गया और

गजसिंह का वस्तसिंह की सहायता को जाना

जोधपुर राज्य की ख्यात ( जि० २, पृ० १५८-६ ) से भी पाया जाता है कि जोरावरसिंह के निःसन्तान मरने पर उसके भाई अनन्दसिंह के छोटे पुत्र गजसिंह को बीकानेर की गद्दी मिली । इसपर जोधपुर की सेना ने बीकानेर पर चढ़ाई की, जिसमें गजसिंह का बड़ा भाई अमरसिंह भी साथ था । इस लड़ाई का परिणाम तो उल्लेख्यता में नहीं दिया है, परन्तु आगे चलकर मंडारी मनरूप को चांपावत देवीसिंह (पोहकरण), ऊदावत कल्याणसिंह ( नीवाज ), मेढ़तिया शेरसिंह ( रीयां ) आदि सहित फिर बीकानेर पर भेजना लिखा है, जिससे यह निश्चित है कि पहले भेजी हुई सेना की पराजय हुई होगी । जोधपुर राज्य की ख्यात में मंडारी मनरूप की सेना में भी अमरसिंह का होना लिखा है । उसी ख्यात से पाया जाता है कि उन्हीं दिनों महाराराव होल्कर ने जयपुर पर चढ़ाई कर अभयसिंह से सैनिक सहायता मंगवाई, जिसपर मनरूप उधर भेज दिया गया ।

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७१ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५६ ।

( २ ) दयालदास की ख्यात में अहमदशाह नाम दिया है, जो ठीक नहीं है । जोधपुर राज्य की ख्यात में भी वस्तसिंह का मुहम्मदशाह के समय दिल्ली जाना तथा वहां से अहमदशाह के समय में लौटना लिखा है ( जि० २, पृ० १६० ) । वीरविनोद; ( भाग २, पृ० ५०४ ) में भी अहमदशाह ही दिया है । ख्यातों में 'म' के स्थान पर 'अ' हो जाना असम्भव नहीं है ।

पठानों के साथ के युद्ध में भाग लेने के पश्चात् वहां से एक बड़ी सेना सहायतार्थ प्राप्तकर सांभर में आकर ठहरा, जहां उसने गजसिंह को भी बुलाया। अभयसिंह को इसकी खबर मिलने पर उसने मल्हारराव होल्कर को अपनी सहायता के लिए बुलाया। गजसिंह के आ जाने से वज्रसिंह की सैनिक शक्ति बहुत बढ़ गई। इस सम्बन्ध में उसने गजसिंह से कहा भी था कि आपके मिल जाने से हम एक और एक दो नहीं बरन् ग्यारह हो गये हैं।

अभयसिंह ने मरहटों की सहायता के बल पर भाई पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया, परन्तु इसी समय जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह के भेजे हुए एक मनुष्य के आ जाने से वज्रसिंह और मल्हारराव होल्कर की बातचीत हो गई और उस (मल्हारराव) ने दोनों भाइयों में मेल करा दिया, पर इससे आन्तरिक मनोमालिन्य दूर न हुआ<sup>१</sup>।

तदनन्तर गजसिंह स्वदेश को लौटता हुआ डीडवाणें पहुंचा जहां मेहता भीमसिंह-द्वारा उसे अपने पिता (आनन्दसिंह) के रिणी में रोगशय्या पर पड़े रहने का समाचार मिला, परन्तु वीकानेर पहुंचने पर भी वह उधर नहीं गया, क्योंकि वीकमपुर के भाटियों का उपद्रव उन दिनों बहुत बढ़

वीकमपुर पर गजसिंह का  
अधिकार होना

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७१-२। वीरबिनोद; भाग २, पृ० ५०४। पाठलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि वीकानेर स्टेट; पृ० ५६-७।

जोधपुर राज्य की ख्यात ( जि० २, पृ० १६० ) में भी लिखा है कि भाई की इच्छा के विरुद्ध वज्रसिंह दिल्ली जाकर बादशाह की तरफ से पठानों से लड़ा तथा अहमदशाह के सिंहासनारूढ़ होने पर क़ौज खर्च तथा सांभर, डीडवाणा, नारनोल और गुजरात का सूया प्राप्तकर देश को लौटा। इसपर अभयसिंह मल्हारराव को सहायतार्थ बुलवाकर सांभर में, जहां वज्रसिंह के होने का समाचार मिला था, गया। अभयसिंह का हरादा जालोर छोड़ा लेने का था, परन्तु बाद में दोनों भाइयों के मिल जाने पर अभयसिंह अजमेर चला गया और वज्रसिंह नागौर, परन्तु उसने जालोर नहीं छोड़ा। उक्त ख्यात में वज्रसिंह के सहायकों में गजसिंह का होना नहीं लिखा है, परन्तु अधिक संभव तो यही है कि वह उस (वज्रसिंह) की सहायतार्थ गया हो, क्योंकि इससे पहले भी कई बार वीकानेर से उसे सहायता मिल चुकी थी।

रहा था, जिसे रोकना बहुत आवश्यक था। कोलायत पहुँचकर उसने मेहता भीमसिंह को फ़ौज देकर इस कार्य पर भेजा, जिसने मांडाल में डेरा किया। अनन्तर भाटी कुंभकर्ण की मारकत दस हजार रुपये पेशकशी के ठहराकर वीकमपुर के प्रधान ने गजसिंह से संधि कर ली, जिसपर गजसिंह वीकानेर लौट गया। इसी बीच वि० सं० १८०५ फाल्गुन सुदि १३ ( ई० सं० १७४६ ता० १६ फ़रवरी ) को आनन्दसिंह के स्वर्गवास होने का समाचार उसके पास पहुँचा, जिसे सुनकर उसे बहुत दुःख हुआ। द्वादशाह करने के उपरान्त वह रुकिया गया। वीकमपुर के पेशकशी के रुपये न दिये जाने के कारण कुंभकर्ण ने महाराजा से वीकमपुर पर अधिकार करने की आज्ञा प्राप्त की। कुछ ही समय के बाद वहाँ के राय स्वरूपसिंह को मारकर उसने वहाँ अधिकार कर लिया और इसकी सूचना गजसिंह को दी। तब गजसिंह ने एक सोने की मूठ की तलवार तथा सिरोंपाव देकर मेहता भीमसिंह और पड़िहार धीरजसिंह को वहाँ भेजा<sup>१</sup>।

गजसिंह जब गारवदेसर में था, उस समय वाय के दौलतसिंह आदि के प्रयत्न से महाजन का विद्रोही ठाकुर भीमसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हो गया। गजसिंह ने उसका अपराध क्षमा कर उसकी जागीर उसे सौंप दी। भीमसिंह ने अभय-सिंह से भिला हुआ 'गोकुलगज' नाम का हाथी इस अवसर पर महाराजा को भेंट किया<sup>३</sup>।

जिन दिनों गजसिंह कुछ ठाकुरों के भगड़े निवटाने में व्यस्त था, उसके पास भीखमपुर से समाचार आया कि जैसलमेर के रावल ने चढ़ाई

( १ ) 'वीरविनोद' में भी आनन्दसिंह की मृत्यु का यही समय दिया है ( भाग २, पृ० ५०४ )।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७२ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि वीकानेर स्टेट; पृ० ५७ ।

( ३ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७२ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि वीकानेर स्टेट; पृ० ५७ ।

वीकमपुर पर रावल अखैसिंह  
का अधिकार होना

कर दी है, अतएव आप शीघ्र सहायता को आवें।  
इसपर वह स्वयं सहायता के लिए चला, परन्तु  
मार्ग में श्रावणादि वि० सं० १८०५ (चैत्रादि १८०६)

आषाढ सुदि १५ (ई० सं० १७४६ ता० १६ जून) सोमवार को अजमेर में अभयसिंह का देहांत होने की खबर मिलते ही वह फिर वीकानेर लौट गया। श्रावण सुदि १०<sup>२</sup> को रामसिंह के जोधपुर की गद्दी पर बैठने पर जब वस्तसिंह ने उसके पास टीका भेजा तो उसने उसे यह कहकर लौटा दिया कि पहले जालोर छोड़ो तो वह स्वीकार किया जायगा। वस्तसिंह के इस बात को अस्वीकार करने पर उसने मेढ़तियों की सहायता से उस (वस्तसिंह) पर चढ़ाई कर दी<sup>३</sup>। तब वस्तसिंह ने आदमी भेजकर वीकानेर से सहायता मंगवाई। इसपर गजसिंह १८००० सेना लेकर उसकी सहायता के लिए गया। एक साथ दो स्थानों पर लड़ना कठिन कार्य था अतएव उसने वीकमपुर में रक्खी हुई सेना भी अपने पास बुला ली। ऐसा अच्छा अवसर देख जैसलमेर के रावल अखैराज ने वीकमपुर पर चढ़ाई कर कुंभकर्ण को छल से मार वहां अधिकार कर लिया। तब से वीकमपुर जैसलमेर राज्य में है<sup>४</sup>।

फिर गांव सरणवास में जाकर महाराजा गजसिंह वस्तसिंह से मिला। अनन्तर वस्तसागर होते हुए हीलोड़ी गांव में दोनों के डेरे हुए, वस्तसिंह की सहायता को जहां रुण में महाराजा रामसिंह के होने का जाना समाचार आने पर वस्तसिंह ने वहां पहुंच-

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में भी अभयसिंह की मृत्यु का यही समय दिया है (जि० २, पृ० १६१)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० १६३। दयालदास की ख्यात में वि० सं० १८०५ श्रावण वदि १२ दिया है, जो ठीक नहीं है।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में भी ऐसा ही उल्लेख है (जि० २, पृ० १६३-४)।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि वीकानेर स्टेट; पृ० ५७ (जालोर के स्थान पर नागौर दिया है, जो ठीक नहीं है)।

कर भंडारी मनरूप को दगा से मार डाला, परन्तु कोई बड़ी लड़ाई नहीं हुई। जब बख्तसिंह तथा गजसिंह मोड़ी में पहुंचे तो उन्हें पता लगा कि अमरसिंह तथा भाद्रा के लालसिंह ने सवाई आदि गांवों को लूटा और भगड़ा किया है। इसपर तारासिंह सेना सहित उनपर चढ़ा। रिणी पहुंचने पर उसने बड़ी वीरतापूर्वक विद्रोहियों का सामना किया, परन्तु अंत में अपने कितने ही साथियों सहित वह मारा गया, जिससे रिणी में अमरसिंह का अधिकार हो गया। इतना होने पर भी गजसिंह ने बख्तसिंह का साथ न छोड़ा, पर अपने कई सरदारों को सेना देकर उधर भेज दिया। पीछे से ऊंट सवारों के साथ मेहता मनरूप को भी बख्तसिंह ने उनकी सहाय्यार्थ रवाना कर दिया। रामसिंह की सेना में जयपुर के महाराजा ईश्वरीसिंह का भेजा हुआ राजावत दलेलसिंह निर्भयसिंहोत् ४००० सवारों के साथ था, उसने बख्तावरसिंह से बात कर बख्तसिंह के जालोर छोड़ देने एवं बदले में तीन लाख रुपये तथा अजमेर लेने की शर्त पर दोनों में सन्धि करा दी<sup>१</sup>। रुपया चुकाने की अवधि छः मास निश्चित हुई। अनन्तर रामसिंह वहां से लौट गया तथा गजसिंह भी दलेलसिंह से बातचीत कर बीकानेर चला गया<sup>२</sup>।

रिणी पर तब तक अमरसिंह का ही अधिकार था। बीकानेर लौटने

पर गजसिंह ने रिणी की ओर प्रस्थान किया, जिसकी खबर लगते ही अमरसिंह डरकर रिणी

अमरसिंह से रिणी छुड़ाना

( १ ) इसके विपरीत जोधपुर-राज्य की ख्यात में लिखा है कि ईश्वरीसिंह के पास से राजावत दलेलसिंह उसकी पुत्री के विवाह के नारियल लेकर रामसिंह के पास आया हुआ था। उसका इस सन्धि में कोई हाथ नहीं रहा। थोड़ी लड़ाई के बाद बख्तसिंह ने जालोर देने की शर्त कर संधि कर ली थी, परन्तु उसने जालोर से अपना अधिकार लड़ाई बंद होने पर भी नहीं हटाया ( जि० २, पृ० १६६ )। उक्त ख्यात से इस लड़ाई में गजसिंह का बख्तसिंह के पक्ष में होना नहीं पाया जाता, परन्तु उसका बख्तसिंह के शामिल होना अविश्वसनीय कल्पना नहीं है।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पृ० ७३-३ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव हि बीकानेर स्टेट; पृ० ५७-८।

छोड़कर फतहपुर होता हुआ जोधपुर भाग गया<sup>१</sup>।

जिन दिनों गजसिंह रिणी इलाके के गांव जोड़ी में ठहरा हुआ था, उसके पास बख्तसिंह ने कहलाया कि मैं बादशाह के बख्शी (सलाबतख़ां)

को सहायतार्थ लाने जा रहा हूं, आप भी शीघ्र आजावें। उधर जोधपुर के शासक रामसिंह के कुछ

ज़िद्दी होने के कारण और उसके अपमानपूर्ण व्यवहारों से तंग आकर कितने ही प्रमुख सरदार नागोर में बख्तसिंह से जा मिले। बादशाही सेना के पहुंचने के बाद ही गजसिंह भी अपने राज्य का समुचित प्रबन्ध कर सेना सहित बख्तसिंह से मिल गया। इस विशाल सैन्य का आगमन सुन रामसिंह ने जयपुर से महाराजा ईश्वरीसिंह के पास से सहायता मंगवाई। गांव सूरियावास में विपत्ती दलों में तोपों का भीषण युद्ध हुआ, जिसमें दोनों ओर के बहुसंख्यक लोग मारे गये। अनन्तर पीपाड़ में भी बड़ा युद्ध हुआ, जिसमें अमरसिंह (पीसांगण) आदि रामसिंह के कई सहायक सरदार मारे गये, परन्तु कुछ निर्णय न हुआ। युद्ध से होनेवाली भीषण हानि देखकर ईश्वरीसिंह मुसलमान सेनाधिपति से मिल गया और वे दोनों युद्धक्षेत्र छोड़कर अपने-अपने स्थानों को चले गये। प्रधान सहायकों के चले जाने पर युद्ध का जारी रखना हानिप्रद ही सिद्ध होता अतएव गजसिंह, बख्तसिंह तथा रामसिंह भी अपने-अपने स्थानों को लौट गये<sup>२</sup>।

वि० सं० १८०७ ( ई० सं० १७५० ) में ईश्वरीसिंह ज़हर खाकर मर गया और जयपुर की गद्दी पर उसका भाई माधोसिंह बैठा। ईश्वरीसिंह दूसरी बार बख्तसिंह की सहायता करना के मरने से रामसिंह का एक प्रधान सहायक जाता रहा। तब मारवाड़ के प्रमुख सरदारों ने, जो पहले

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७४:१ पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५८:१।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र:७४:१ पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५८ । जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस घटना का उल्लेख है ( जि० २, पृ० १७१ )। उक्त ख्यात में भी नन्नाव का नाम सलाबतख़ां दिया है।

से ही रामसिंह के विरुद्ध थे, वस्तुसिंह से जाकर निवेदन किया कि रामसिंह इस समय केवल थोड़े से साथियों सहित मेड़ते में है, अतएव चढ़ाई करने का उपयुक्त अवसर है। वस्तुसिंह के मन में भी यह बात जम गई। बीकानेर से गजसिंह को इससे पूर्व ही उसने अपने पास बुला लिया था। दोनों की सम्मिलित सेना ने खेदली होते हुए दूदासर तालाब पर पहुंचकर वि० सं० १८०७ मार्गशीर्ष वदि ६ ( ई० सं० १७५० ता० ११ नवम्बर ) को मेड़तियों को हराकर रामसिंह का डेरा इत्यादि लूट लिया। वहां से गजसिंह तथा वस्तुसिंह ने बीलाड़े जाकर एक लाख रुपये पेशकशी के वसूल किये। पीछे जब वे सोजत में थे, तब रामसिंह ने सैन्य एकत्र कर उनपर फिर आक्रमण किया, परन्तु उसे पराजित होकर भागना पड़ा। विजयी सेना ने उसके खेमे लूटकर उनमें आग लगा दी। इस अवसर पर ज़ालिमसिंह किशोरसिंहोत मेड़तिया ने उनको रोकने का प्रयत्न किया, पर विपक्षी सेना के अधिक होने से उसे अपने प्राण गंवाने पड़े। अनन्तर युद्ध करने में कोई लाभ न देख सन्धि कर रामसिंह जोधपुर चला गया और गजसिंह तथा वस्तुसिंह नागोर लौट गये।

उनके उधर प्रस्थान करते ही रामसिंह पुनः मेड़ते जा रहा, जिसकी खबर लगते ही गजसिंह तथा वस्तुसिंह ने वि० सं० १८०८ आषाढ सुदि ६ ( ई० सं० १७५१ ता० २१ जून ) को सीधे जोधपुर जाकर वहां चार प्रहर तक खूब लूट मचाई। गढ़ के भीतर भाटी सुजानसिंह तथा पोकरण के ठाकुर दैवीसिंह के श्वसुर थे, जो उनकी सेवा में उपस्थित हो गये और गढ़ उनके सुपुर्द कर दिया। तब किले में प्रवेश कर गजसिंह ने वस्तुसिंह को गद्दी पर बैठाया और इसकी वधाई दी। वस्तुसिंह ने इसके उत्तर में निवेदन किया कि यह आपकी समयोचित सहायता के वल पर ही संभव हो

वस्तुसिंह को जोधपुर  
का राज्य दिलाना

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७४-५ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५८-६ । जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस घटना का प्रायः ऐसा ही वर्णन है ( जि० २, पृ० १७३-८ ) ।

सका है। अनन्तर वहां से बिदा हो गजसिंह बीकानेर लौट गया<sup>१</sup>।

इसी समय जैसलमेर से रावल अखैराज के पास से उसके विवाह का सन्देश आया। गजसिंह ने इस खुशी के अवसर पर वस्तुसिंह को भी निमन्त्रित किया। युद्ध होने की आशंका से वह स्वयं तो न गया, परन्तु अपने पुत्र विजयसिंह को उसने भेज दिया, जो मार्ग में गांव ओढांणी में बरात के शामिल हो गया। वि० सं० १८०८ माघ सुदि ५ ( ई० स० १७५२ ता० १० जनवरी ) को गजसिंह ने जैसलमेर पहुंचकर रावल अखैराज की पुत्री चंद्रकुंवरी से विवाह किया। इस अवसर पर उसके साथ के बहुतसे सरदारों की शादियां भी वहां हुई<sup>२</sup>।

बीकानेर लौटने पर गजसिंह ने मेहताओं को पदच्युत कर उनके स्थान पर मूंथड़ों को नियुक्त किया। अनन्तर वि० सं० १८०६ (ई० स० १७५२) में उसने मूंथड़ा अमरसिंह को शेखावतों के शेखावतों का दमन करना गांव शिवदड़ा पर भेजा, क्योंकि वहां उपद्रव बढ़ रहा था। वहां वस्तुसिंह की आज्ञा से दौलतपुर (शेखावाटी) का नवाब भी आकर शामिल हो गया। इस सम्मिलित सैन्य ने गांव को लूटकर गद्दी को गिरा दिया और उपद्रवियों को पकड़कर वहां शान्ति

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०४। जोधपुर राज्य की ख्यात में वि० सं० १८०८ श्रावण चदि २ ( ई० स० १७५१ ता० २६ जून ) को जोधपुर पर वस्तुसिंह का अधिकार होना लिखा है। इस अवसर पर उसने अभयसिंह-द्वारा छीनी हुई बीकानेर की खरबूजी की पट्टी पीछी गजसिंह को दे दी ( जि० २, पृ० १८० )।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७५-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५६-६०।

इस विवाह का उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात ( जि० २, पृ० १८१ ) में भी है। लक्ष्मीचन्द्र लिखित 'जैसलमेर की तवारीख़' में भी चन्द्रकुंवरी का विवाह महाराजा गजसिंह के साथ होना लिखा है ( पृ० ६७ )।



स्थापित की<sup>१</sup> ।

कुछ दिनों बाद गजसिंह का डेरा रिणी में हुआ, जहां रहते समय बख्तसिंह के पास से समाचार आया कि रामसिंह दक्खिनियों की फौज लेकर अजमेर तक आ गया है, अतएव आप सहायताार्थ आइये । इसपर गजसिंह ने नागोर की ओर प्रस्थान किया । बख्तसिंह पहले ही अजमेर की ओर रवाना हो चुका था । लाड़पुरा में दोनों एकत्र हो गये । वहां से चलकर दोनों पुष्कर में ठहरे । उनका आगमन सुनते ही रामसिंह और मरहठे बिना लड़े वापस चले गये । तब गजसिंह विदा ले बीकानेर लौट गया<sup>२</sup> ।

हिसार का परगना बहुत दूर होने के कारण, बादशाह (अहमद-शाह) वहां का सुचारु प्रबन्ध नहीं कर सकता था और वहां के लोग

सदा उपद्रव किया करते थे, अतएव वह परगना

बादशाह की तरफ से  
गजसिंह को हिसार का  
परगना मिलना

गजसिंह के नाम कर दिया गया । उसने मेहता बख्तावरसिंह को ससैन्य भेज वि० सं० १८०६ ज्येष्ठ वदि २ ( ई० सं० १७५२ ता० १६ मई ) को

वहां अपना अधिकार स्थापित किया<sup>३</sup> ।

वि० सं० १८०६ भाद्रपद वदि १३ ( ई० सं० १७५२ ता० २६ अगस्त )

बख्तसिंह की मृत्यु

को अजमेर इलाक़े के सोनौली गांव में बख्तसिंह का स्वर्गवास हो गया और उसका पुत्र विजयसिंह

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६० ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०५ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६० । रामसिंह का मरहटों से भाई-चारा स्थापित करने एवं अजमेर आने का उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात में भी है ( जि० २, पृ० १८३-४ ) ।

( ३ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७७ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६१ ।

जोधपुर की गद्दी पर बैठा<sup>१</sup> ।

उन्हीं दिनों बादशाह अहमदशाह के पास से आज्ञापत्र आया कि वज़ीर मन्सूरअलीखां ( ? सफ़्दरजंग ) विद्रोही हो गया है, इसलिए शीघ्र सेना लेकर आओ । इसपर गजसिंह ने बादशाह की सेवा में सेना भेजी, जो हिसार में मेहता बख़्तावरसिंह के शामिल होकर दिल्ली पहुँची<sup>२</sup> । बख़्तावरसिंह ने बादशाह की सेवा में उपस्थित हो महाराजा की ओर से मोहरें आदि भेंट कीं । समय पर सहायता लेकर पहुँच जाने से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने गजसिंह का मनसब सात हज़ारी करके सिरोंपाव के साथ 'श्री राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजाशिरोमणि श्री गजसिंह' का खिताब प्रदान किया, जो बाद में उसके नाम की मुद्रा<sup>३</sup>

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०५ । जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० १८६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६१ ।

( २ ) सर यदुनाथ सरकार ने इस अवसर पर बीकानेर ( महाराजा गजसिंह ) से ७५०० सेना आना लिखा है ( फॉल ऑव् दि मुग़ल एम्पायर; जि० १, पृ० ४६२ का टिप्पण ) ।

( ३ ) वि० सं० १८२६ वैशाख वदि २ ( ई० स० १७६६ ता० २३ अप्रैल ) के नौहर क़स्बे से महाराजा गजसिंह और महाराजकुमार राजसिंह के लिखे हुए जोधपुर के ओम्ता रामदत्त के नाम के परवाने के ऊपर छः पंक्तियों की नीचे लिखी हुई मुद्रा लगी है—

श्रीलक्ष्मीनारायणजी-  
भक्त राजराजेश्वर म-  
हाराजाधिराज महारा-  
जशिरोमणि महारा-  
ज श्री गजसिंहानां मु-  
द्रेयं विजयते ॥ १ ॥

और शिलालेखों' में लिखा जाने लगा<sup>२</sup>। इस अवसर पर उसे माही मराठिय का श्रेष्ठ सम्मान भी प्राप्त हुआ और उसके कुंवर राजसिंह को चार हज़ारी मनसब<sup>३</sup> तथा मेहता वक्तावरसिंह को राव का खिताब दिया गया<sup>४</sup>। कितने ही दूसरे सरदारों आदि को भी सिरोपाव मिले<sup>५</sup>, जिनमें से प्रमुख के नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

|              |        |         |
|--------------|--------|---------|
| १—भोपतसिंह   | ठिकाना | बाय     |
| २—जोरावरसिंह | „      | कुंभाणा |
| ३—पेमसिंह    | „      | नीमा    |
| ४—सरदारसिंह  | „      | पारवा   |
| ५—सुखरूप     | „      | परावा   |
| ६—जालिमसिंह  | „      | वीदासर  |
| ७—दीपसिंह    | „      | कणवारी  |

( १ ) अथास्मिन् शुभसंवत्सरे श्रीविक्रमादित्यराज्यात् संवत् १८३६ वर्षे शके १७०१ प्रवर्त्तमाने मासोत्तमे माघमासे शुक्लपक्षे तिथौ द्वादश्यां .....पुनर्वसुनक्षत्रे.....श्रीराजराजेश्वरमहाराजाधिराज-महाराजशिरोमणिमहाराजश्री १०८ श्रीगजसिंहदेवैः चूडासागरस्य जीर्णोद्धारः कृतः.....

( चूडासागर के लेख की छाप से ) ।

( २ ) बादशाह अहमदशाह के सन् जुलूस ६ ता० २ शब्वाल ( हि० स० ११६६ = वि० सं० १८१० श्रावण सुदि ५ = ई० स० १७५३ ता० ३ अगस्त ) के क्ररमान में भी गजसिंह को सात हज़ार ज्ञात और पांच हज़ार सवार का मनसब मिलना लिखा है ।

( ३ ) उपर्युक्त टिप्पण २ की तारीख के एक दूसरे क्ररमान में गजसिंह के पुत्र राजसिंह को चार हज़ार ज्ञात और दो हज़ार सवार का मनसब मिलना लिखा है ।

( ४ ) उपर्युक्त टिप्पण २ में आई हुई तारीख के एक दूसरे क्ररमान में वक्तावरसिंह को चार हज़ार ज्ञात और एक हज़ार सवार का मनसब तथा 'राव' का खिताब मिलना लिखा है ।

( ५ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७७ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०५ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६१ ।

|                      |        |           |
|----------------------|--------|-----------|
| ८—धीरतसिंह           | ठिकाना | सांडवा    |
| ९—देवीसिंह           | „      | हरासर     |
| १०—विजयसिंह          | „      | चाहड़वांस |
| ११—धीरतसिंह          | „      | चुरू      |
| १२—शेखावत चांदसिंह   |        |           |
| १३—पुरोहित रणछोड़दास |        |           |

जिन दिनों महाराजा हिसार में था बीकानेर और जोधपुर की मिलाकर ५०००० फ़ौज उसके साथ थी। दिल्ली में मनसूरअलीखां (? सफ़्दरजंग)

विजयसिंह की सहायतार्थ  
जाना

का विद्रोह भी समाप्त हो चुका था। इसी समय गजसिंह से विजयसिंह ने यह कहलाया कि दक्खिनियों की सहायता से रामसिंह राज्य पर आक्रमण करनेवाला है, आप शीघ्र सहायता को आवें। इसपर उस (गजसिंह) ने खींवर के ठाकुर जोरावरसिंह उदयसिंहोत आदि कई सरदारों को ४००० सेना के साथ उधर रवाना किया। अनन्तर हिसार का प्रबन्ध मेहता रघुनाथ एवं द्वारकाणी (महाजन) के हाथों में देकर वह स्वयं रिणी गया।

वहां जैसलमेरी राणी से कुंवर सवलसिंह का जन्म हुआ, जिसका उत्सव मनाने के बाद मेहता भीमसिंह तथा पुरोहित को भी ससैन्य पीछे आने का आदेश कर वह नागौर पहुंचा। पीछे चली हुई भीमसिंह की सेना के भी शामिल हो जाने पर वह खजवाणा होता हुआ मेड़ता पहुंचा। इसी बीच मरहटों की सेना के व्रज की ओर चले जाने का समाचार मिला। तब गजसिंह ने अपनी अनुपस्थिति में हिसार के परगने में उपद्रव होने की आशंका देख उधर जाने की अनुमति मांगी, परन्तु जोधपुर का उपद्रव शांत हो जाने तक विजयसिंह ने उससे वहीं रहने का आग्रह किया और कहा कि इधर से निवृत्त होने पर हिसार पर फिर अधिकार कर लेंगे। इसपर गजसिंह वहीं ठहर गया और हिसार से थाना उठा लिया गया। अनन्तर उसने पूनियाण का प्रबन्ध कर सादार में अपना थाना स्थापित किया तथा सिवराण से पेशकशी वसूल की और मंडोली के विद्रोही जाटों को मारकर

उस प्रदेश में सुप्रबन्ध का आविर्भाव किया' ।

इसके थोड़े दिनों बाद ही जयआपा सिन्धिया ने मारवाड़ पर आक्रमण किया । गजसिंह ने इस अवसर पर स्वदेश से और सेना बुलवाई । अब सब मिलाकर उसकी सेना ४०००० हो गई; इसके अतिरिक्त ७०००० फ़ौज विजयसिंह की थी तथा ५००० सेना के साथ किशनगढ़ का राजा बहादुरसिंह भी सहायतार्थ आया हुआ था । रामसिंह के पास इसके दूने से भी अधिक सेना थी और उसका डेरा गंगारडा में था । उस- (रामसिंह) पर गजसिंह, विजयसिंह तथा बहादुरसिंह ने तीन बार चढ़ाई कर तोपों के गोलों की वर्षा की, जिससे शत्रु हटकर सात कोस दूर गांव चौरासण में चले गये । अपने सरदारों के परामर्शानुसार वि० सं० १८११ आश्विन सुदि १३ ( ई० स० १७५४ ता० २६ सितम्बर ) को फिर विजयसिंह ने अपने सहायकों सहित शत्रुओं पर पहले से प्रबल आक्रमण किया । सदा की भांति ही इस बार भी राठोड़ों ने अद्भुत वीरता का परिचय दिया, परन्तु शत्रु-सेना अधिक होने से उन्हें हारकर पीछा में लौटना पड़ा । इस आक्रमण में विजयसिंह के सरदारों के अतिरिक्त, गजसिंह की तरफ़ के वीदावत इन्द्रभाण मोहकमसिंहोत ( गांव ककू का ), वीका कीरतसिंह ( किशनसिंहोत ), नीवावत अखैसिंह नारायणदासोत, फ़तहपुर का अवाय एवं कई अन्य सरदार काम आये । बहादुरसिंह तो अपनी सारी सेना के कट जाने से किशनगढ़ लौट गया । सैन्य बहुत कम हो जाने से उस स्थल पर लड़ाई जारी रखना उचित न समझ गजसिंह तथा विजयसिंह नागौर की ओर चले । वहां से विजयसिंह ने गजसिंह को वीकानेर से रसद आदि सामान भेजते रहने के लिए कहकर विदा कर दिया और स्वयं नागौर के गढ़ में जा रहा । तब रामसिंह तथा जयआपा सिन्धिया ने

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७७-८ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६१ ।

( २ ) डॉ० कृत 'राजस्थान' में जोधपुर के प्रसंग में इस लड़ाई का विशद विवरण दिया है ( जि० २, पृ० ८७० तथा १०.६१-४ ) ।

मोरचाबन्दी कर नागौर को घेर लिया तथा ५०००० फ़ौज के साथ जयआपा के पुत्र जनकू ने जोधपुर पर आक्रमण किया। विजयसिंह ने मरहटों से लड़ने में कोई लाभ न देख महाराणा को लिखकर उदयपुर से चूडावत जैतसिंह कुबेरसिंहों (सलूंवर) को बुलवाया। जैतसिंह ने जयआपा से समझौते के सम्बन्ध में बातचीत की, परन्तु कोई परिणाम न निकला। ऐसे समय में महाराजा विजयसिंह की इच्छानुसार उसके दो राजपूतों ने जयआपा को छल से मार डाला। इसपर मरहटी सेना ने क्रुद्ध होकर राजपूतों पर हमला कर दिया, जिसमें जैतसिंह अपनी सेना सहित वीरता के साथ लड़ता हुआ निरर्थक मारा गया।

उधर जयपुर का महाराजा माधोसिंह भी इस उद्योग में था कि जोधपुर का राज्य रामसिंह को मिले तो अपने यश में वृद्धि हो, परन्तु इसी बीच विजयसिंह का आदमी आ जाने से उसने उसकी सहायता करने का निश्चय कर बीकानेर से भी सेना मंगवाई, जो बख्तावरसिंह की अध्यक्षता में डीडवाणें में जयपुर की सेना के शामिल हो गई। मरहटों ने इसकी सूचना पाते ही इस फ़ौज को घेरकर इसका आगे बढ़ना रोक दिया। चौदह मांस तक जब घेरा न उठा, तब अपने सरदारों से सलाह कर विजयसिंह एक सत्रि को एक हजार सवारों के साथ गढ़ छोड़कर बीकानेर की ओर चला गया और ३६ घंटे में देशणोक जा पहुंचा<sup>१</sup>।

उसके आगमन का समाचार बीकानेर पहुंचने पर गजसिंह ने उसके आदर-सत्कार का समुचित प्रबन्ध किया और मेहता रघुनाथसिंह आदि विजयसिंह का बीकानेर को उसका स्वागत करने के लिए भेजा। अनन्तर पहुंचना तथा वहां से गज-- परस्पर मिलकर शत्रुओं पर आक्रमण करने से पूर्व सिंह के साथ जयपुर जाना माधोसिंह की सहायता पाना आवश्यक समझ

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७८-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० २०५-६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६२।

जोधपुर राज्य की ख्यात ( जि० २, पृ० १८८-६५ ) में भी इस घटना का लगभग ऊपर जैसा ही उल्लेख है।

गजसिंह तथा विजयसिंह जयपुर गये<sup>१</sup>, जहां क्रमशः करौली के महाराजा गोपालसिंह तथा बूंदी के रावराजा कृष्णसिंह से उनकी भेंट हुई। कुछ ही दिनों बाद माधोसिंह के पुत्र उत्पन्न होने से उत्सव आदि के कारण उनके रहने की अवधि बढ़ती गई और जिस काम के लिए वे आये थे उसके सम्बन्ध में कुछ भी बात न हुई। एक दिन गजसिंह ने उपयुक्त अवसर देख विजयसिंह की सहायता की चर्चा माधोसिंह के आगे छेड़ी, परन्तु उसने कोई ध्यान न दिया। जब गजसिंह ने मेहता भीमसिंह आदि को इस सम्बन्ध में स्पष्ट उत्तर मांगने के लिए भेजा तो माधोसिंह की इच्छानुसार हरिहर वंगाली ने कहा कि यदि विजयसिंह को सहायता दी गई तो जयपुर को मरहटों से लोहा लेना पड़ेगा, जिसमें एक करोड़ रुपया खर्च होगा। इतना रुपया विजयसिंह दे तो उसे सहायता दी जा सकती है। इस उत्तर को पाकर गजसिंह तथा विजयसिंह ने वहां समय व्यर्थ गंवाना ठीक न समझा और वे माधोसिंह से विदा होने गये। इस अवसर पर माधोसिंह ने गजसिंह को एकान्त में ले जाकर दोनों राज्यों की परस्पर मैत्री का स्मरण दिलाते हुए कहा कि आपके राज्य के फलोधी आदि जो दूरे गांव अजीतसिंह ने जोधपुर में मिला लिये थे, वे सब मैं रामसिंह से कहकर वापस दिला दूंगा। रहा विजयसिंह, सो उसका प्रबन्ध यहां कर दिया जायगा (मरवाया या कैद किया जायगा), परन्तु गजसिंह ने यह वृणित बात मानने से इनकार कर दिया। माधोसिंह ने बहुत जोर दिया, पर वह (गजसिंह) अपने निश्चय पर स्थिर रहा। तब माधोसिंह ने उसका विवाह करने के बहाने उसे वहां रोकना चाहा, परन्तु उसने यही उत्तर दिया कि पहले विजयसिंह को सकुशल अपने राज्य की सीमा तक पहुंचा दूं तब लौट सकता हूं। फिर माधोसिंह ने गजसिंह से कहा कि आप पधारें, मैं विजयसिंह से बात कर लूं। गजसिंह के मन में शंका ने घर तो कर ही लिया था, उसने तुरन्त प्रेमसिंह किशनसिंहोत बीका तथा हठीसिंह वणीरोत को विजयसिंह की

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात ( जि० २, पृ० १२६ ) में भी विजयसिंह का बीकानेर तथा वहां से गजसिंह को साथ ले जयपुर जाना लिखा है।

रक्षा पर नियुक्त कर दिया<sup>१</sup> ।

विजयसिंह के पक्ष का रीयां का ठाकुर जवानसिंह सूरजमलोत जयपुर के नाथावत ठाकुरों के यहां ब्याहा था । उसकी नाथावत स्त्री ने जवानसिंह को उसके स्वामी पर चूक होने की सूचना दे दी । इसपर जवानसिंह अपने स्वामी को, जो माधोसिंह से बातें कर रहा था, सावधान करने के लिए गया । माधोसिंह ने पेशाब करने के बहाने वहां से हटने का प्रयत्न किया, परन्तु इसी समय बीकानेर के पूर्वोक्त ठाकुरों ने उसकी कमर में हाथ डाल उसे यह कहकर बैठा दिया कि महाराज हमें आशंका है अतएव आप न जावें । इसपर जयपुर के ठाकुर उनपर आक्रमण करने को उद्यत हुए, परन्तु माधोसिंह के मना करने से वे रुक गये । विजयसिंह भी पूर्वोक्त ठाकुरों के कहने से गजसिंह के पास चला गया । अनन्तर उन ठाकुरों ने माधोसिंह से क्षमा मांग ली । गजसिंह ने भी मेहता बस्तावरसिंह को उसके पास भेज उसे प्रसन्न कर लिया । फिर अपने जयपुर लौट आने तक के लिए मेहता भीमसिंह आदि को वहां छोड़कर गजसिंह तथा विजयसिंह ने प्रस्थान किया<sup>२</sup> ।

पाटण, पंचेरी और लोहार होते हुए वे दोनों रिणी पहुंचे । जहां नागोर से समाचार आया कि वि० सं० १८१२ माघ सुदि २ ( ई० स० १७५६ ता० २ फरवरी ) को बीस लाख रुपया लेना ठहराकर मरहटों ने वहां से घेरा उठा लिया है और जोधपुर भी विजयसिंह के बहाल हो गया

विजयसिंह को जोधपुर  
वापस मिलना

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७१-८१ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०६ । पांडलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६२-३ ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८१-२ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०६ । पांडलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६३-४ । जोधपुर राज्य की ख्यात में भी लिखा है कि पहले तो माधोसिंह विजयसिंह को सहायता देने के लिए प्रस्तुत हो गया था, परन्तु पीछे से बदल गया ( जि० २, ० ११७ ) ।



है' । इस समाचार से बड़ी प्रसन्नता हुई तथा गजसिंह ने बहुतसा सामान भेंट में देकर विजयसिंह को जोधपुर भेजा, जहां पहुंचने पर उसने वरतसिंह द्वारा तागीर किये हुए ५२ गांवों की सनद तथा सवा लाख रुपया नकद भेजा, जैसी कि उसने बीकानेर में रहते समय प्रतिज्ञा की थी<sup>१</sup> ।

उधर गजसिंह ने माधोसिंह से की हुई अपनी प्रतिज्ञा पालनार्थ

सांखू के ठाकुर को  
कैद करना

जयपुर की ओर प्रस्थान किया । मार्ग में उसने सांखू के विद्रोही ठाकुर शिवदानसिंह बहादुरसिंह को कैद कर उसकी जागीर प्रेमसिंह बाघ-

सिंहोत को दे दी<sup>३</sup> ।

अनन्तर माधोसिंह से मिल और वहां अपना विवाह कर, गजसिंह ने बीकानेर की ओर प्रस्थान किया । पूनियाण के दो गांव शेखावत हाथीराम

विद्रोही सरदारों का  
दमन करना

भूपालसिंहोत ने दवा लिये थे तथा शेखावत नवलसिंह ( जोरावरसिंहोत ) और भूपालसिंह किशनसिंहोत में सिंघाणे आदि की सीमा के

सम्बन्ध में झगड़ा चल रहा था । सांखू में डेरा रहते समय गजसिंह ने राव घस्तावरसिंह को इसका नियंत्रण करने के लिए भेजा, जो जाकर नवलसिंह के शामिल हो गया । इस झगड़े की खबर जयपुर पहुंचने पर वहां से कछवाहा रघुनाथसिंह ने आकर विद्रोही सरदारों को दवाया और उनके वे गांव बीकानेर के अधीन करा दिये<sup>५</sup> ।

महाराजा गजसिंह के जयपुरनिवास के समय वि० सं० १८१२ (ई० स०

( १ ) जोधपुर राज्य की ख्यात ( जि० २, पृ० १६८ ) में लिखा है कि ५१ लाख रुपये और अजमेर पाने की शर्त पर मरहटों ने घेरा उठा लिया ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८२ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ बीकानेर स्टेट; पृ० ६४ (इस पुस्तक में केवल ४२ गांवों की सनद भेजना लिखा है) ।

( ३ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८२ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ बीकानेर स्टेट; पृ० ६४ ।

( ४ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८४ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ बीकानेर स्टेट; पृ० ६५ ।

१७५५) में बीकानेर में बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। उस समय उसने मेहता भीमसिंह आदि को प्रजा का कष्ट-निवारण करने के लिए भेजा। उन्होंने सदाव्रत खुलवाये और राज्य में नई इमारतें बनवाना आरम्भ किया, जिससे जुधाग्रस्त मनुष्यों का बहुत भला हुआ। उन्हीं दिनों शहरपनाह का भी निर्माण हुआ<sup>१</sup>।

जयपुर से लौटने पर नारणोतों तथा मंघरासर के ठाकुर का, जो विद्रोही हो रहे थे, दमन कर उन्हें गजसिंह ने अपने अधीन बनाया। उन दिनों मलसीसर का बीदावत (भागचन्दोत) बीकानेर राज्य की आज्ञाओं की उपेक्षा करते थे इसलिए बख्तावरसिंह ने उसे भी राज्य के अधीन किया। इसके अतिरिक्त अन्य ठाकुरों से भी दंड के रुपये वसूल कर उन्हें महाराजा के अधीन बनाया<sup>२</sup>।

वि० सं० १८१३ (ई० सं० १७५६) में मेहता बख्तावरसिंह को पृथक् कर उसके स्थान में मेहता पृथीसिंह को गजसिंह ने अपना दीवान नियुक्त किया। उन्हीं दिनों सिक्खों ने नोहर में उत्पात मचाना आरम्भ किया, जिसपर दीलतसिंह पृथ्वीराजोत और मेहता माधोराय उधर का प्रबन्ध करने के लिए भेजे गये। अनन्तर गजसिंह स्वयं रिणी गया, जहां से उसने पुरोहित जगरूप तथा चौहान रूपराम को भाद्रा के ठाकुर लालसिंह पर भेजा। पीछे शेखावत नवलसिंह आदि भी ४००० सेना के साथ उधर गये और उस (लालसिंह) को राजसेवा स्वीकार करने पर बाध्य किया। महाराजा के अनूपपुर पहुंचने पर लालसिंह महाराजा के प्रतिष्ठित सरदारों के साथ उसकी सेवा में आ रहा था, परन्तु मार्ग में अपशकुन हो जाने से

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६५।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६५।

वह वापस लौट गया । इसपर क्रुद्ध होकर महाराजा ने अपनी सारी सेना एकत्र कर स्वयं उसपर चढ़ाई की और झुंगराणा के गढ़ को तोपों के गोलों से नष्ट कर दिया । उक्त गढ़ में सांवतसिंह दीलतरामोत था, जिसके प्रायः सारे सैनिक काम आये और वह स्वयं भी मारा गया तथा उस गढ़ पर गजसिंह का अधिकार हो गया । सांवतसिंह के बचे हुए कुटुम्बियों को उसने आदर के साथ भाद्रा पहुँचवा दिया । कालाणा के स्वामी सांवतसिंह का बेटा हिन्दूसिंह भी भागकर भाद्रा चला गया, जिससे वहाँ का बहुतसा अन्न आदि सामान विजेताओं के हाथ लग गया । तब तो लालसिंह को भी चेत हुआ और उसने गजसिंह के डेरे रासलाणे में होने पर शेखावत नवलसिंह की मार्फत उसकी सेवा में उपस्थित हो उसकी अधीनता स्वीकार कर ली । गजसिंह ने उसका अपराध क्षमाकर उसकी जागीर उसे सौंप दी ।

वहाँ से प्रस्थान करने पर महाराजा गजसिंह ने रावतसर पर घेरा डाला, जहाँ के स्वामी रावत आनन्दसिंह के अधीनता स्वीकार करने पर उससे दंड के २५००० रुपये वसूल कर उसके अपराध क्षमा कर दिये<sup>१</sup> ।

रावतसर पर चढ़ाई

फिर भट्टियों पर चढ़ाई की आज्ञा दी गई, जिसकी खबर मिलते ही भट्टी हुसेनमुहम्मद वीकों तथा कांधलोतों की मार्फत गजसिंह की सेवा में उपस्थित हो गया । उसके निवेदन करने पर महाराजा ने बल्लावरसिंह, ठाकुर सुरताणसिंह कुशलसिंहों आदि को फौज देकर उसके साथ कर दिया, जिन्होंने जाकर सोतर पर उसका अधिकार करा दिया<sup>३</sup> ।

भट्टियों की सहायतार्थ  
सेना भेजना

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८५-६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६५-६ ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६६ ।

( ३ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६ ।

उन्हीं दिनों बादशाह (आलमगीर दूसरा) के सिरसा पहुंचने पर बाय का ठाकुर दौलतसिंह तथा भाद्रा का लालसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने गजसिंह को भी शाही सेवा में उपस्थित होने के लिए लिखा, परन्तु वह न गया<sup>१</sup> ।

बादशाह का सिरसा में जाना

वि० सं० १८१४ ( ई० सं० १७५७ ) में गजसिंह ने नौहर के कोठ की नींव रखी, जो वि० सं० १८१७ ( ई० सं० १७६० ) में बनकर सम्पूर्ण हुआ<sup>२</sup> ।

जोधपुर से विजयसिंह के पास से आदमियों ने आकर निवेदन किया कि मरहटों के साथ की पिछली लड़ाई में अत्यधिक धन खर्च हो जाने के कारण राज्य की दशा संकटापन्न हो रही है, अतएव हमारे महाराजा ने आपसे धन की सहायता मांगी है । गजसिंह ने तत्काल ५०००० रुपये देकर उन्हें विदा किया और कहा कि जोधपुर की सहायता के लिए मेरा प्राण तक हाज़िर है<sup>३</sup> ।

जोधपुर को आर्थिक सहायता देना

वि० सं० १८१६ ( ई० सं० १७५९ ) में गजसिंह बीदासर गया, जहाँ पहुंचकर उसने बीदावतों पर 'भाछु' ( एक प्रकार का कर ) के छः हजार

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६६ ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६ ।

पाउलेट ( गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६६ ) ने, गढ़ का निर्माणकाल वि० सं० १८४० से १८७० ( ई० सं० १७८३ से १८१३ ) दिया है जो ठीक नहीं हो सकता ।

( ३ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६ । वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६६ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं मिलता ।

बीदावतों पर कर लगाना

रूपये नियत किये<sup>१</sup>, एवं खारवारा के ठाकुरों ने भाटियों का बहुतसा सामान लूट लिया था वह सेना भेजकर सब वापस दिलवाया<sup>२</sup>।

उधर जोधपुर से महाराजा विजयसिंह ने तीन हजार सेना खींवसर के विद्रोही जोरावरसिंह के ऊपर, जो मरहटों से मिला हुआ था, भेजी थी। जोरावरसिंह ने उस सेना का नाशकर जोधपुर और नागौर का भी बहुत विगाड़ किया। तब विजयसिंह ने गजसिंह के पास से सहायता मंगवाई।

विजयसिंह की सहायतार्थ  
खींवसर जाना

गजसिंह के भेजने पर मेहता ब्रह्मावरसिंह ने समझा-बुझाकर जोरावरसिंह को जोधपुर राज्य का विगाड़ करने से रोक दिया। कुछ ही दिनों बाद उस (जोरावरसिंह) के पुनः सिर उठाने पर विजयसिंह ने गजसिंह से स्वयं खींवसर आने का आग्रह कर कहलाया कि बिना आपके आये न तो पोकरण अधीन होगा और न जोरावरसिंह ही राह पर आवेगा। तब गजसिंह खींवसर पहुंचा, जहां विजयसिंह भी आकर उससे मिल गया। गजसिंह ने जोरावरसिंह को बुलाकर उसके चरणों में नमा दिया, तब वे दोनों (विजयसिंह और जोरावरसिंह) साथ-साथ जोधपुर लौटे<sup>३</sup>।

खींवसर से वापस लौटते समय गांव सवाई में महाजन के ठाकुर भगवानसिंह एवं शिवदानसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हुए। वि० सं०

महाजन की जागीर भीम-  
सिंह के पुत्रों में बांटना

१८१५ (ई० सं० १७५८) में भीमसिंह की मृत्यु के बाद से अब तक वहां की भूमि का बंटवारा नहीं हुआ

( १ ) ठाकुर बहादुरसिंह लिखित बीदावतों की ख्यात; (जि० १, पृ० २२७) में भी इसका उल्लेख है।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६६।

( ३ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८७-८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६६।

ठाकुर बहादुरसिंह की 'बीदावतों की ख्यात' ( जि० १, पृ० २२७ ) में भी विजयसिंह की सहायतार्थ गजसिंह का खींवसर जाना लिखा है।

था। सवाई में रहते समय गजसिंह ने महाजन की जागीर के दो भाग कर दोनों भाइयों में बांट दिये<sup>१</sup>।

वि० सं० १८१६ और १८१७ ( ई० सं० १७५६-१७६० ) के बीच में भट्टियों तथा जोहियों के उपद्रव में फिर वृद्धि हुई। हुसेन ने अमीमुहम्मद से भटनेर छीन लिया। इसकी खबर लगते ही महाराजा नौहर गया तथा मेहता बख्तावरसिंह ने साईदासों की सेना के साथ उधर प्रस्थान किया। तब हुसेन उससे जा मिला और उसने दोनों का भगड़ा निबटा दिया<sup>२</sup>।

उन्हीं दिनों सूचना मिली कि दाउद-पुत्रों ने अनूपगढ़ पर अधिकार कर लिया है। इसपर महाराजा ने बीकानेर पहुंचकर उनपर आक्रमण करने की तैयारी की। जोधपुर एवं लट्टी के मीर गुलामशाह (मियां गुलाम) की सेनाएं भी आकर सम्मिलित हो गईं। महाराजा की आज्ञा ले भाटी हिन्दूसिंह खन्ना-सेनोत ने रात्रि के समय ससैन्य मौजगढ़ पर आक्रमण कर वहां के स्वामी मीर हमज़ा को कैद किया तथा गढ़ को लूटा। हमज़ा के बीकानेर लाये जाने पर महाराजा ने उसका उचित सत्कार किया और जैमलसर का पट्टा उसके नाम कर दिया। अनन्तर महाराजा ने सेना सहित सुजानसर होते हुए अनूपगढ़ पर चढ़ाई की और विद्रोहियों को मार वहां अपना अधिकार कर लिया। फिर वहां के थाने पर मेहता शिवदानसिंह को नियत कर वह बीकानेर लौट गया। अनन्तर उसने मेहता भीमसिंह को भेजकर पूनियाण का वीरान परगना आबाद कराया<sup>३</sup>।

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६७।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८८। पाउलेट; गैज़ेटियर; ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६७।

( ३ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६७।

वि० सं० १८१८ ( ई० सं० १७६१ ) में पूगल के रावल ने अपने एक कामदार को मार डाला । इसपर उस ( रावल ) का पुत्र अमरसिंह उससे अप्रसन्न हो अपने साथ सहित बीकानेर चला गया । पूगल के रावल और रावत-सर के रावत को दंड देना अमरसिंह से पेशकशी लेकर गजसिंह ने पूगल की जागीर उसके नाम कर दी । वि० सं० १८१६ ( ई० सं० १७६२ ) में रावत आनन्दसिंह ( रावतसर ) के देश में बहुत चोरी-चकारी करने पर गजसिंह ने उसके विरुद्ध मेहता बस्तावरसिंह को भेजकर उससे पेशकशी ठहराई ।

वि० सं० १८२० ( ई० सं० १७६३ ) में मेहता बस्तावरसिंह, जो फिर दीवान बना दिया गया था, उस पद से हटा दिया गया और उसके स्थान में शाह मूलचंद वरडिया की नियुक्ति की । उन्हीं दिनों जैसलमेर के जोहियों और दाउद-पुत्रों से लड़ाई रावल मूलराज के भेजे हुए मेहता मानसिंह ने आकर निवेदन किया कि दाउदपुत्रों तथा इस्तिायारखां ने नौहर के कोट पर छल से अधिकार कर लिया है, अतएव आप सहायता के लिए पधारिये । गजसिंह ने उसे आश्वासन देकर और चढ़ाई करने के लिए कहकर विदा किया । कुछ ही दिनों बाद समाचार आया कि दाउद-पुत्रों तथा इस्तिायारखां ने बल्लर में नगर बसाना आरम्भ कर दिया है । तब शाह मूलचंद, सांडवे के बीदावत धीरजसिंह, भालेरी के राजावत बदनसिंह आदि को बीदावतों की सेना और अपनी १०००० फौज के साथ गजसिंह ने उधर भेजा । उनके अनूपगढ़ पहुंचने पर दाउदपुत्रों और जोहियों ने सन्धि की बातचीत की । उनका कहना था कि हम दरबार के चाकर हैं, हम पेशकशी तथा फौज का खर्चा देने के लिए प्रस्तुत हैं, अतएव पट्टा हमारे नाम कर दिया जाय, परन्तु बीकानेर से गये हुए सरदारों ने

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८८-६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६७ ।

( २ ) ठा० बहादुरसिंह लिखित 'बीदावतों की ख्यात' में धीरजसिंह नाम दिया है ।

यह स्वीकार न किया। तब जोहिये निराश होकर लौट गये और उन्होंने युद्ध करने का निश्चय किया। बीकानेरवाले उनकी ओर से ग्राफ़िल पड़े थे, इसलिए जब दूसरे दिन जोहियों ने तीन हजार फौज़ के साथ आक्रमण किया तो उन्हें जान बचाकर गढ़ में घुसना पड़ा। इस लड़ाई में धीरज-सिंह, वदनसिंह, सरदारसिंह तथा बहुत से दूसरे बीकानेर के सरदार और सैनिक काम आये और उनके खेमे भी जोहियों ने लूट लिये। ऐसी दशा में बाध्य होकर शाह मूलचन्द को उनसे मेल की बात करनी पड़ी। अनन्तर जोहिये गढ़ से हट गये और मूलचन्द वहां अधिकार कर बीकानेर लौट गया।

वि० सं० १८२१ (ई० सं० १७६४) में गजसिंह ने अपनी पौत्री के विवाह के नारियल महाराजा माधोसिंह के कुंवर पृथ्वीसिंह के लिए जयपुर भेजे।

कुछ सरदारों से नारा-  
जगी होना

उसी वर्ष गजसिंह ने बहुत से सरदारों को दरबार में बुला लिया। खुमाण (राव गणेशदास का पोता)

तथा सूरसिंह (पूगल का भाटी) में वैर होने से

खुमाण ने सूरसिंह को मार डाला और उपर्युक्त सरदारों के यहां जा रहा। बाद में गजसिंह के कहने से सरदारों को उसे दरबार को सौंप देना पड़ा, परन्तु उस कार्य से सरदार उससे अप्रसन्न हो गये। बल्लर के जोहियों ने इस बीच कोई उत्पात न किया और नौ हजार रुपये गजसिंह की सेवा में भेजे तथा अपने पिछले अपराधों के लिए क्षमा याचना करा ली।

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६७-८। ठाकुर बहादुरसिंह; बीदावतों की ख्यात; जि० १, पृ० २२८।

बीदावतों की ख्यात से पाया जाता है कि अपने पदच्युत किये जाने एवं मूलचंद के अपने स्थान पर दीवान बनाये जाने से बल्लारसिंह मूलचंद का दुश्मन बन गया था और उसी की साजिश से बीकानेर की इस विशाल सेना की केवल तीन हजार सेना के हाथों पराजय हुई।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६८।



वि० सं० १८२२ (ई० सं० १७६५) में पड़िहार दौलतराम तथा पुरोहित जग्गू के बीच में पड़ने से गजसिंह ने बख्तावरसिंह को पुनः दीवान के पद पर नियुक्त कर दिया<sup>१</sup>।

बख्तावरसिंह को पुनः  
दीवान बनाना

जिन दिनों गजसिंह बड़ी लुदी में ठहरा हुआ था, उसने अपने महाराजकुमार राजसिंह के नाम पर एक नगर 'राजगढ़' बसाने का विचार किया।

राजगढ़ बसाने का निश्चय  
तथा अजीतपुर के ठाकुर  
को दंड देना

इस काम के लिए उसने स्वयं स्थान का निर्वाचन किया। उन्हीं दिनों छानी और अजीतपुर आदि के झुरड (जाट) चोरी आदि कर वहां का बहुत नुकसान करते थे। अनूपपुर में डेरे होने पर गजसिंह ने उन्हें अलग-अलग अपने पास बुलाकर उनमें फूट पैदा कर दी, जिससे वे रातों-रात उस स्थान को छोड़कर चले गये। उन्हें आश्रय देने का सन्देह ठाकुर दीपसिंह पर था, जिससे गजसिंह ने दंड का २००० रुपया वसूल किया<sup>२</sup>।

वि० सं० १८२४ (ई० सं० १७६७) में जब गजसिंह बीकानेर में था, महाराजा माधोसिंह (जयपुर) के पास से किशनदत्त ने आकर निवेदन

विजयसिंह के जाटों से  
मिल जाने के कारण  
माधोसिंह का पक्ष  
ग्रहण करने का निश्चय

किया कि महाराजा विजयसिंह (जोधपुर) ने पुष्कर में भरतपुर के राजा जवाहरमल जाट से मेल स्थापित कर लिया है; यदि वह (जवाहरमल) जयपुर की सीमा से गुजरा तो हमारे महाराजा उसे बढ़ने से

रोकेंगे। इसी समय विजयसिंह के पास से व्यास गुलाबराय ने आकर निवेदन किया कि जोधपुर की भरतपुर के साथ की सन्धि के कारण आमेर (आंवेर) वाले लड़ाई करना चाहते हैं, अतएव आप सहायता करें। इसपर गजसिंह ने यह उत्तर देकर उसे विदा किया कि इतना बड़ा कार्य करते समय मुझ से

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६८ ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६-८० । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६८ ।

राय न लेने के कारण मैं माधोसिंह का पक्ष लूंगा, परन्तु मैं ऐसा प्रयत्न करूंगा, जिससे जोधपुर का भी बिगाड़ न हो। विजयसिंह ने दूसरी बार फिर आदमी भेजकर आग्रह करवाया, परन्तु गजसिंह ने कुछ ध्यान न दिया।

वि० सं० १८२३ (ई० स० १७६६) में राजगढ़ की नींव रखने के पश्चात् जब गजसिंह चूरु में ठहरा हुआ था तो महाराजा माधोसिंह की तरफ से सहायता की प्रार्थना आई। इसपर उसने फ़तहपुरी गिरधारीलाल को जयपुर भेजा। फिर भरतपुर के राजा जवाहरमल तथा महाराजा माधोसिंह की मावड़े में बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें भरतपुरवालों को रणक्षेत्र छोड़कर भागना पड़ा। तब विजयसिंह के पास से आदमी पुनः सहायता मांगने के लिए आये, परन्तु गजसिंह, उनसे यह कहकर कि बीकानेर जाकर इसपर विचार करेंगे, अपने देश लौट गया। वहां माधोसिंह के आदमी २५००० रुपये मार्ग-व्यय का लेकर उसकी सेवा में उपस्थित हुए। दोनों में से किसका साथ देना और किसका न देना यह एक जटिल प्रश्न था, इसलिए गजसिंह कुछ दिनों तक टालम-टूल करता रहा। इसी बीच फाल्गुन मास में माधोसिंह के स्वर्गवास हो जाने का समाचार उसके पास पहुंचा। तब सान्त्वना सूचक बातें जयपुर में आदमी भेजकर कहलाने के अनन्तर, गजसिंह ने जोधपुर की ओर प्रस्थान किया, परन्तु मेड़ते में विजयसिंह से मिलकर वह शीघ्र ही वि० सं० १८२५ आषाढ सुदि ६ (ई० स० १७६८ तारीख २३ जून) को बीकानेर लौट गया।

उसी वर्ष उसने अमीरमुहम्मद के पुत्र कमरुद्दीन जोहिया को बख़्तावरसिंह की मारफ़त सिरसा और फ़तेहाबाद का परवाना देकर भेजा।

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ६०६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६८।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६८-६।

सिरसा और फतेहाबाद पर  
सेना भेजना तथा  
पौत्री का विवाह

उसके साथ मेहता जैतरूप भी गया था, जो वहां  
उसका अधिकार कराके लौट आया । वि० सं०  
१८२७ ( ई० स० १७७० ) में उस( गजसिंह )की  
एक पौत्री का विवाह जयपुर के महाराजा पृथ्वीसिंह  
के साथ बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न हुआ । वरात के साथ अलवर राज्य का  
संस्थापक माचेड़ी का राव प्रतापसिंह भी था ।

उदयपुर के महाराणा राजसिंह ( दूसरा ) की निःसन्तान मृत्यु होने  
के समय उसकी भाली राणी गर्भवती थी, पर उसने अरिसिंह ( महाराणा  
जगतसिंह द्वितीय का दूसरा पुत्र ) के भय से सर-  
दारों के पूछने पर कहला दिया कि उसके गर्भ  
नहीं है । इसपर सरदारों ने अरिसिंह को ही वि०  
सं० १८१७ चैत्र वदि १३ ( ई० स० १७६१ ता० ३

अप्रैल ) को मेवाड़ की गद्दी पर बैठाया । महाराणा अरिसिंह स्वभाव  
का बहुत तेज़ और क्रोधी था । उसने गद्दी पर बैठते ही सरदारों का अपमान  
किया, जिससे वे उसके विरोधी हो गये । इसी बीच भाली राणी के गर्भ-  
वती होने का हाल कुछ-कुछ प्रकट हो गया था । कुछ समय बाद उसके  
रत्नसिंह नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी उसके मामा (गोगूदे के स्वामी)  
जसवंतसिंहने परवरिश की । सरदार महाराणा से अप्रसन्न तो थे ही, अब वे  
उसे पदच्युत कर रत्नसिंह को गद्दी बैठाने का उद्योग करने लगे । महाराणा  
ने यह अवस्था देखकर दमन नीति से काम किया, पर इसका परिणाम  
उलटा ही हुआ । बीच में और कई घटनायें ऐसी हुईं, जिनसे सरदारों का  
विरोध अधिक बढ़ गया और उन्होंने मरहटों से सहायता ली । माधवराव  
सिंधिया ने बिद्रोही सरदारों की सहायता कर क्षिप्रा नदी के निकट महा-  
राणा के सैन्य को पराजित किया । रत्नसिंह अधिक दिनों तक जीवित न  
रहा और सात वर्ष की अवस्था में उसका शीतला रोग से देहांत हो गया ।

इसपर विद्रोही सरदारों ने उसी अवस्था के एक दूसरे बालक को रत्नसिंह घोषित कर महाराणा को पदच्युत करने का अपना प्रयत्न जारी रखा। उनके सहायक माधवराव ने उदयपुर को घेर लिया, परन्तु नगर का समुचित प्रबन्ध होने के कारण छः मास तक घेरा रहने पर भी वह वहां अधिकार न कर सका। इधर उदयपुर में भोजन सामग्री का अभाव होने लगा, जिससे उदयपुरवालों ने सन्धि की चर्चा छोड़ी। माधवराव भी यही चाहता था। अन्त में ६३½ लाख रुपये लेकर उसने घेरा उठा लिया। इस अवसर पर किये गये शर्तनामे के अनुसार रत्नसिंह का मन्दसोर में रहना निश्चित होकर महाराणा ने उसके लिए ७५००० रुपये आय की जागीर निकाल दी, पर वह ( रत्नसिंह ) मन्दसोर में जाकर न रहा। इसके विपरीत वह तथा विद्रोही सरदार महापुरुषों की फौज के साथ मेवाड़ में लूट मार करने लगे। महाराणा ने यह खबर पाकर विद्रोहियों को हराकर भगा दिया। एक साल तक शान्त रहने के अनन्तर वे ( विद्रोही ) पुनः उत्पात करने लगे। रत्नसिंह का कुंभलगढ़ पर अधिकार था और वहां रहकर वह मेवाड़ के गोड़वाड़ जिले पर भी अधिकार करने का प्रयत्न करने लगा। इसपर महाराणा ने अपने काका बाघसिंह को दूसरे कई सरदारों और सेना के साथ उधर भेजा। उन्होंने विद्रोहियों पर विजय तो प्राप्त की पर कुंभलगढ़ पर रत्नसिंह का ही अधिकार बना रहा।

महाराज बाघसिंह ने गोड़वाड़ से रत्नसिंह का अधिकार उठाकर लौटने पर महाराणा अरिसिंह से निवेदन किया कि गोड़वाड़ पर अधिकार रखने के लिए वहां सदा सेना रखना जरूरी है। इसपर महाराणा ने जोधपुर के राजा विजयसिंह को लिखा कि रत्नसिंह को दवाने के लिए तीन हजार सेना कुछ दिनों के लिए नाथद्वारे में रख लो और जब तक वह

( १ ) ये दादूपन्थी साधु थे, जो जयपुर की सेवा में बड़ी संख्या में रहते थे और वहीं से रत्नसिंह के पक्षवाले उन्हें मेवाड़ में लाये थे। इनको महापुरुष भी कहते हैं। अब तक ये जयपुर की सेना में किसी क्रूर विद्यमान हैं। ये लोग विवाह नहीं करते।

सेना वहां रहे तब तक उसके वेतन के लिए गोड़वाड़ की आंय लेते रहो, परन्तु वहां के सरदार हमारे ही अधीन रहेंगे । इसपर महाराजा ने लिखा कि आमतौर से २०० सवार तथा ५०० सिपाही रहेंगे और लड़ाई के समय ३००० सेना पूरी कर दी जायगी । अनन्तर विजयसिंह ने नाथद्वारे में सेना भेजकर गोड़वाड़ अपने अधिकार में कर लिया, परन्तु रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से निकालने का प्रयत्न न किया । महाराणा के कई बार लिखने पर भी जब उसने न माना तो उसने उसको गोड़वाड़ का परगना छोड़ देने के लिए लिखा, परन्तु विजयसिंह ने इसे भी टाल दिया । वि० सं० १८२८ माघ ( ई० सं० १७७२ फरवरी ) में महाराजा विजयसिंह, बीकानेर का महाराजा गजसिंह और कृष्णगढ़ का राजा बहादुरसिंह तीनों नाथद्वारे गये तथा महाराणा भी वहां पहुंचा । गोड़वाड़ की चर्चा छिड़ने पर महाराजा गजसिंह ने महाराजा विजयसिंह को गोड़वाड़ का परगना छोड़ देने के लिए समझाया, परन्तु उसने लालच में आकर अपने वचन के विरुद्ध छोड़ना स्वीकार न किया । तब अपना समय व्यर्थ गंवाना उचित न समझ गजसिंह ने वहां से प्रस्थान करने का निश्चय किया । इस समय विजयसिंह के देश में रीयां का ज़ालिमसिंह बहुत बिगाड़ करता था । विजयसिंह के निवेदन करने पर गजसिंह ने दोनों में समझौता करा दिया और वहां से बीकानेर लौट गया ।

बीकानेर पहुंचने पर उसे पता चला कि रावतसर का अमरसिंह उत्पात करने लगा है तब वह ( अमरसिंह ) कैद किया जाकर नेतासर भेज दिया गया, परन्तु थोड़े ही दिन बाद वह वहां से निकल भागा और रावतसर में बिगाड़ करने लगा । इसपर गजसिंह ने स्वयं उधर प्रस्थान किया, परन्तु थानसिंह के पुत्र देवीसिंह आदि बीदावतों के वह काम अपने हाथ में ले

बिरोही ठाकुरों पर  
सेना भेजना

( १ ) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६७० ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६२-३ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि

बीकानेर स्टेट; पृ० ७० ।

लेने पर वह फिर लौट गया<sup>१</sup>। अनन्तर बीकानपुर के राव बांकीदास ने उसकी सेवा में उपस्थित हो निवेदन किया कि बारू तथा टेकरे के स्वामी देश में बड़े उपद्रव कर रहे हैं। इसपर बीदावतों आदि की सेना के साथ गजसिंह ने मेहता बख्तावरसिंह को उधर भेजा, जिसने टेकरे के गढ़ पर अधिकार कर उसमें निवास करनेवाले साठ लुटेरों को मार डाला<sup>२</sup>। इसी समय बारू के मालदोंतों ने उसके पास उपस्थित हो पेशकशी देनी ठहराई<sup>३</sup>।

वि० सं० १८३० (ई० स० १७७३) में भट्टी पुनः विद्रोही हो गयीं। गजसिंह ने उनका दमन करने के लिए सेना भेजी, तब भट्टी मुहम्मदहु-  
 सेनखां उसकी सेवा में उपस्थित हो गया और  
 भट्टियों का फिर विद्रोह करना ४००००० रुपये पेशकशी एवं प्रतिवर्ष आधी पैदा-  
 वार दरबार को देने की शर्त पर उसने संधि कर ली।  
 इस सम्बन्ध में देख रेख करने के लिए राजपुरे में राज्य की ओर से एक चौकी स्थापित कर दी गई<sup>४</sup>।

मेहता बख्तावरसिंह की अपनी स्त्री और पुत्रों से अनबन रहा करती थी, अतएव जब उसने एक कुआँ बनवाया तो उसकी प्रतिष्ठा के समय  
 उसने अपनी स्त्री को साथ लेने से इनकार कर  
 दिया। इसपर उसके पुत्रों ने गजसिंह से इस बात  
 की शिकायत की, जिसके चेतावनी देने पर बाध्य  
 होकर मेहता को अपनी स्त्री को भी इस पुण्यकार्य  
 राजसिंह के विद्रोह में  
 बख्तावरसिंह की गुप्त  
 सहायता

(१) ठाकुर बहादुरसिंह लिखित बीदावतों की ख्यात; (पृ० २३६) में भी इसका उल्लेख है।

(२) ठा० बहादुरसिंह; बीदावतों की ख्यात; पृ० २३६-७।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७१।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७१।

में सम्मिलित करना पड़ा, परन्तु गजसिंह के इस दवाव का परिणाम उलटा ही हुआ। बख्तावरसिंह भीतर ही भीतर उसके विरुद्ध आचरण करने लगा और गुप्त रूप से महाराजकुमार राजसिंह का, जो उन दिनों विद्रोही हो रहा था<sup>१</sup>, सहायक बन गया। राजसिंह के इस विद्रोह में नवलसिंह शेखावत (नवलगढ़, शेखावाटी का): चूरु का ठाकुर हरीसिंह, कुछ बीदावत तथा कुछ भाटी आदि उसके पक्ष में थे। इनमें से दूसरों ने तो क्रमशः उसका साथ छोड़ दिया, परन्तु हरीसिंह अन्त तक उसके साथ बना रहा। अंत में दोनों विद्रोही देशलोक करणीजी की शरण में जा रहे, जहां उन्होंने वि० सं० १८३२ से १८३७ ( ई० स० १७७५ से १७८० ) तक निवास किया<sup>२</sup>।

वि० सं० १८३६ ( ई० स० १७७९ ) में बख्तावरसिंह का देहांत होने पर उसका पुत्र मेहता स्वरूपसिंह उसके स्थान में बीकानेर का दीवान हुआ। कोठारी सांवतसिंह से उसका कुछ बैर था, जिससे कोठारी ने गजसिंह के पास भूठी शिकायत की कि स्वरूपसिंह गुप्त रीति से महाराजकुमार राजसिंह की सहायता करता है और देशलोक में उसके पास पूरा-पूरा हाल पहुंचाता रहता है। स्वरूपसिंह को यह बात ज्ञात होने पर उसने राजसिंह को सूचित किया, जिसने इसका खंडन किया और साथ ही असत्य का आश्रय लेनेवाले कोठारी को मौत के घाट उतारने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए उसने अपने चार राजपूतों को नियुक्त किया, जिन्होंने वि० सं० १८३७ ( ई० स० १७८० ) में एक दिन, जब वह दरबार से घर लौट रहा था, उसपर आक्रमण कर उसे मार डाला<sup>३</sup>।

( १ ) वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०७।

( २ ) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १३। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०७। पाउलेंड, गैजेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट, पृ० ७१।

( ३ ) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १३-४। पाउलेंड, गैजेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट, पृ० ७१।

वि० सं० १८३८ ( ई० सं० १७८१ ) में कुंवर राजसिंह देशलोक से कुंवर राजसिंह का जोधपुर नाकररहना जोधपुर चला गया, जहाँ विजयसिंह ने उसको बड़े सत्कार पूर्वक रक्खा<sup>१</sup> ।

महाराजा सुजानसिंह के समय वि० सं० १७६१ (ई० सं० १७३४) में जयनाथ के वंशज एक सांखला ने बीकानेर का गढ़ बल्लसिंह को दिला देने का पट्टयंत्र रचा था, तब उसके साथ गोवर्धनदास पुरोहित गोवर्धनदास का नाम का पुरोहित भी था। पट्टयंत्र विफल होने पर वह नागौर दिलाने के लिए (गोवर्धनदास) भागकर नागौर चला गया था, जहाँ गजसिंह को लिखना बल्लसिंह ने उसे दो गांव निर्वाह के लिए दे दिये ।

अब महाराजा विजयसिंह के राज्यकाल में वह नागौर का हाकिम नियुक्त हो गया था। कुंवर राजसिंह के जोधपुर निवास के समय में उसने बीकानेर के महाराजा गजसिंह के पास इस आशय की एक अर्जी लिख भेजी कि यदि मेरे पहले के अग्रज क्षमा कर दिये जायें तो मैं ५५५ गांवों के साथ नागौर आपको दिला दूँ। गजसिंह एक धर्मनिष्ठ एवं मैत्री को अन्त तक निवाहने-वाला व्यक्ति था, उसने तत्काल यह अर्जी विजयसिंह के पास भेज दी, जिसने गोवर्धनदास को बुलाकर जवाब तलब किया और अन्ततः उसे पदच्युत कर दिया<sup>१</sup> ।

वि० सं० १८४२ ( ई० सं० १७८५ ) में गजसिंह के पत्र लिखने पर विजयसिंह ने अपने बहुत से सैनिकों को साथ दे कुंवर राजसिंह को बीकानेर गजसिंह का राजसिंह को विदा किया। गजसिंह ने स्वयं तो उसका स्वागत न सुलाकर कैद कारवाना किया, परन्तु अपने दूसरे पुत्रों—सुलतानसिंह,

‘बीदावतों की ख्यात’ (पृ० २३७) में इसका उल्लेख है, परन्तु समय (वि० सं० १८३२) गलत दिया है ।

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४ । धीरविनोद; भाग २, पृ० ५०७ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२ ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२ ।



अजबसिंह और मोहकमसिंह—को भेजकर सीढ़ियां चढ़ते समय उसे क्रोध करवा दिया। जोधपुर से साथ आये हुए सरदारों ने लड़ाई करनी चाही, परन्तु विजयसिंह ने यह कहलाकर उन्हें वापस बुला लिया कि वह गजसिंह का कुंवर है और वह जो चाहे सो उसके साथ करे<sup>१</sup>। इसी वर्ष महाराजा ने बीकानेर के दुर्ग का दक्षिण की तरफ का प्राकार (जलेबकोट) नवीन बनवाकर शत्रुओं से और भी उसे सुरक्षित किया।

ख्यातों में गजसिंह के ६ राणियां होना लिखा है, जिनमें से कुछ का उल्लेख ऊपर आ चुका है। उसके अठारह पुत्र—राजसिंह, सूरतसिंह, छत्रसिंह, श्यामसिंह, अजबसिंह, मोहकमसिंह, रामसिंह, गुमानसिंह, सबलसिंह, भोपालसिंह, जगतसिंह, खुमाणसिंह, मोहनसिंह, उदयसिंह, जालिमसिंह, सुलतानसिंह, देवीसिंह और खुशहालसिंह—हुए<sup>२</sup>।

कुछ ही दिनों बाद महाराजा गजसिंह रोगग्रस्त हो गया। दिन-दिन बीमारी बढ़ने के कारण उसने कुंवर राजसिंह को क्रोध से मुक्तकर अपने समक्ष बुलाया और कहा कि अपने भाइयों को दुःख मत देना तथा अपनी जीवितावस्था में ही अपने सारे सरदारों को बुलाकर राज्य-कार्य उसके सुपुर्द कर दिया<sup>३</sup>। इसके ४ दिन बाद वि० सं० १८४४ चैत्र सुदि ६ ( ई० स० १७८७ ता० २५ मार्च ) रविवार को गजसिंह का देहावसान हो गया<sup>४</sup>।

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२।

( ३ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२।

( ४ ) ..... अथास्मिन् शुभसंवत्सरे श्रीविक्रमादित्यराज्यात् संवत् १८४४ वर्षे शाके १७०६ प्रवर्तमाने मासोत्तमेमासे चैत्रमासे शुभे शुक्ले पक्षे षष्ठ्यां रविवारे ..... भूमंडलाखंडलः श्रीमन्महा-

महाराजा गजसिंह की योग्यता और चतुरता देखकर ही सरदारों ने, बड़े भाइयों के रहते हुए भी महाराजा जोरावरसिंह के निःसन्तान मरने पर उसे ही बीकानेर का शासक नियत किया। वह वीर, राजनीतिज्ञ, प्रजापालक, मैत्री को निवाहने-वाला, स्पष्टवक्ता, कवि और साहित्यानुरागी था।

महाराजा गजसिंह का  
व्यक्तित्व

राजाधिराजः श्रीगजसिंहजीवर्मा.....वैकुण्ठ लोकं प्राप्तः.....।

[ गजसिंह की स्मारक छत्री के लेख से ] ।

दयालदास की ख्यात ( जि० २, पृ० ६४ ), वीरविनोद ( भाग २, पृ० १०७ ) आदि में भी गजसिंह की मृत्यु का यही समय दिया है।

( १ ) १—महाराजा गजसिंह के राज्यकाल में चारण गाढण गोपीनाथ ने 'ग्रन्थराज अथवा महाराजा गजसिंहजी रौ रूपक' नामक काव्यग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ महाराजा गजसिंह की प्रशंसा में लिखा गया था। इसमें उक्त महाराजा तक उसके पूर्वजों की वंशावली दी है, जिनमें से कई नरेशों के राज्यकाल की घटनाओं का विशद विवरण है। महाराजा गजसिंह के समय की जोधपुर के साथ की वि० सं० १८०७ तक की लड़ाइयों का इसमें हाल है। इस ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार के छन्दों का समावेश है, जो इसके रचयिता की योग्यता प्रकट करते हैं। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १८०३ में प्रारम्भ हुई थी ( टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑफ् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स; सेक्शन १, पार्ट २, पृ० ३४-४० बीकानेर स्टेट; )। दयालदास की ख्यात से पाया जाता है कि महाराजा गजसिंह के रिषी में रहते समय उक्त चारण ने यह ग्रन्थ उसे भेंट किया था, जिसने उस ( चारण ) को दो हजार रुपये, हाथी, घोड़ा, सिरोपाव आदि पुरस्कार में दिये ( जि० २, पृ० ७७ )।

२—उस ( महाराजा गजसिंह ) के समय में ही सिंढायच क्रतेराम ने भी 'महाराजा गजसिंह रौ रूपक' नामक काव्यग्रन्थ की रचना की। इसमें राव सीहा से लगाकर महाराजा गजसिंह तक बीकानेर के नरेशों की वंशावली दी है। इसमें गजसिंह के राज्य समय की अन्य घटनाओं के अतिरिक्त वि० सं० १८०४ की भंडारी रत्नचंद की अध्यक्षता में जोधपुर की बीकानेर पर की चढ़ाई का वर्णन है ( टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑफ् दि बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स; सेक्शन २, पार्ट १; पृ० ८२ बीकानेर स्टेट )।

३—सिंढायच क्रतेराम ने एक दूसरा काव्यग्रन्थ 'महाराजा गजसिंहजी रा

उसका सम्बन्ध अपने राज्यभक्त सरदारों के साथ बड़ा अच्छा था । जहां वह वीरों का आदर करने में प्रयत्नशील रहता था, वहां राज्य-विरोधी आचरण करनेवाले लोगों के साथ वह बड़ी दुरी तरह से पेश आता था । उपद्रवी बीदावत सरदारों को उसने जान से मरवाने में ज़रा भी आनाकानी न की । स्वयं अपने ज्येष्ठ कुंवर राजसिंह के विद्रोही हो जाने पर उसने सन्तान की ममता त्यागकर उसे बन्दीखाने में डलवा दिया । इसके साथ ही उसका हृदय आर्द्र भी कम न था । क्षमाप्रार्थी विद्रोही सरदारों को उसने सदैव क्षमा करके ही अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया । मित्र का क्या कर्तव्य होना चाहिये इससे वह सुपरिचित था और इस पवित्र शब्द को कलंकित करने का उसने कभी कोई कार्य नहीं किया । जोधपुर की उसने धन और जन दोनों से सहायता की । अवसर पड़ने पर जयपुर को भी उसने सहायता पहुंचाई, परन्तु जयपुर के स्वामी माधोसिंह की नीयत जब उसने जोधपुर के विजयसिंह की तरफ़ साफ़ न देखी तब वह उसके खिलाफ़ हो गया ।

शाही दरबार में वह स्वयं कभी न गया, इतना होने पर भी बादशाह की नज़रों में उसका सम्मान ऊंचे दर्जे का था । उसका मनसब सात हज़ारी था और उसे बादशाह की तरफ़ से सर्वप्रथम “श्रीराजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजाशिरोमणि” का खिताब और ‘माही मरातिब’ का सम्मान भी मिला था ।

प्रजा के कष्टों की ओर से वह कभी उदासीन नहीं रहता था । वि० सं० १८१२ ( ई० स० १७५५ ) में भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ने पर उसने जुधावस्तु लोगों को कार्य देकर सहारा दिया । इस अवसर पर इमारतों आदि के बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया, जिससे बहुतसे लोगों को कार्य मिला । बीकानेर की शहरपनाह भी इसी समय बनी थी ।

गीत कवित्त ‘दूहा’ नामक भी लिखा था, जो बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है ( देखियोगी, ए डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑफ़ दि वार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स, सेक्शन २, पार्ट १, पृ० ८३ बीकानेर स्टेट ) ।

उसने उचित करों के द्वारा राज्य की आमदनी बढ़ाने की चेष्टा की और जहां तक संभव हो सका प्रजा को सुख पहुंचाते हुए राज्य का शासन किया। राजपूताने के अन्य राज्यों में उसका बड़ा सम्मान था और जब कभी कोई झगड़ा होता तो उसको मध्यस्थ बनाकर झगड़ा मिटाने का उद्योग किया जाता था।

मुंशी देवीप्रसाद ने उसके सम्बन्ध में लिखा है—“महाराजा गजसिंह भी कवि थे। भजन खूब बनाते थे और कविता भी करते थे। इनकी कविता का एक गुटका बीकानेर के पुस्तकालय में है।”

### महाराजा राजसिंह

महाराजा राजसिंह का जन्म वि० सं० १८०१ कार्तिक वदि २ ( ई० स० १७४४ ता० १२ अक्टोबर ) को हुआ था और पिता की उत्तर किया आदि समाप्त कर वि० सं० १८४४ वैशाख वदि २ ( ई० स० १७८७ ता० ४ अप्रैल ) को वह बीकानेर की गद्दी पर बैठा<sup>१</sup>।

ख्यातों में केवल इतना ही लिखा मिलता है कि महाराजा गजसिंह की दग्ध क्रिया हो जाने के बाद देवीकुंड से ही उसके भाई सुलतानसिंह<sup>२</sup>,

( १ ) राजरसनामृत; पृ० २०।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२। वीरविनोद; भाग २, पृ० २०७-८।

( ३ ) दयालदास ने अपनी ख्यात में सुलतानसिंह को महाराजा गजसिंह का पन्द्रहवां पुत्र लिखा है, परन्तु पाउलेट के गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट में, ताज़ीमी राजवी ठाकुर और खवासवालों की पुस्तक में तथा अन्य जगह उसे गजसिंह का दूसरा पुत्र लिखा है। सुलतानसिंह बीकानेर से जोधपुर और वहां से उदयपुर गया था, जहां महाराणा भीमसिंह ने उसे जागीर देकर अपने यहां रक्खा। मेवाड़ में रहते समय उसने अपनी पुत्री पद्मकुंवरी का उक्त महाराणा से विवाह किया था, जिसने पीछोला तालाब के तट पर भीमपद्मेश्वर नामक शिवालय बनवाया। उक्त शिवालय की प्रशस्ति में उसके पितृपक्ष की महाराजा रायसिंह से लगाकर गजसिंह तक की वंशावली दी

महाराजा के भाई सुलतान-  
सिंह आदि का बीकानेर  
छोड़कर जाना

मोहकमसिंह<sup>१</sup> और अजबसिंह<sup>२</sup> जोधपुर चले गये ।  
स्वयं बीमार रहने के कारण महाराजा ने राज्य-कार्य  
मनसुख नाहटा की सौंप दिया था। उस(राजसिंह)के  
एक भाई सूरतसिंह ने उसकी गिरफ्तारी के समय

कोई भाग नहीं लिया था, अतएव वह बीकानेर में ही बराबर राज्य-कार्य  
में भाग लेता रहा ।

इक्कीस दिन राज्य करने के पश्चात् वि० सं० १८४४ वैशाख सुदि ८<sup>३</sup>

है, जिसमें उसको सूरतसिंह का कनिष्ठ भाई लिखा है—

तस्माच्छ्रीगजसिंहमूपतिमहाराजान्ववायोभ्यभू-  
त्तस्मात्सूरतसिंहइन्द्रविभवो राठौडवंशैकभूः ।  
तद्भ्राता सुरतानसिंह इति यः...कनिष्ठो भवत्  
तज्जा पद्मकुमारिक्रियमतुलां श्रीभीमसिंहप्रिया ॥ २४ ॥

सुलतानसिंह के पुत्र गुमानसिंह और अलैसिंह के बीकानेर जाने पर महाराजा  
रत्नसिंह ने गुमानसिंह को बणेशर और अलैसिंह को आलसर की जागीर दी, जिसके  
वंशज बीकानेर राज्य के दूसरे दर्जे के राजवियों में हैं और राजवी हवेलीवाले  
कहलाते हैं ।

( १ ) मोहकमसिंह के वंशजों के पास साँईसर का ठिकाना है और राजवी  
हवेलीवाले कहलाते हैं । उनकी गणना दूसरे दर्जे के राजवियों में है ।

( २ ) जोधपुर में अजबसिंह के लोहावट की जागीर थी । वहां से वह जयपुर  
गया, जहां उसे जागीर मिली । अजबसिंह का पुत्र फतेसिंह और उसका दुलहसिंह  
हुआ । देशदर्पण में लिखा है कि वि० सं० १६१७ में बणेशर के राजवी पन्नेसिंह  
के एक पुत्र को दुलहसिंह ने निःसंतान होने से दत्तक लिया था ।

( ३ ) .....अथास्मिन् शुभसंवत्सरे १८४४ वर्षे शाके १७०६  
प्रवर्त्तमाने मासोत्तमे मासे वैशाखमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ अष्टम्यां परतो  
नवम्यां बुधवासरे.....महाराजाधिराजमहाराजश्रीराजसिंहजीवर्मा  
एकेन परिचारकेन सह दिवं प्राप्तः.....

महाराजा राजसिंह के स्मारक लेख से ।

महाराजा का देहांत

( ई० स० १७८७ ता० २५ अप्रैल ) को महाराजा  
राजसिंह का देहांत हो गया ।

( १ ) महाराजा राजसिंह की मृत्यु के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार से लिखा मिलता है—

कर्नल टॉड का कथन है कि उसके भाई सूरतसिंह की माता ने उसे विष दिया था ( टॉड, राजस्थान; जि० २, पृ० ११३८ ) ।

डॉ० जेम्स बर्जेस लिखता है—‘उस ( राजसिंह ) की तेईस दिन पीछे ज़हर से मृत्यु हुई ( क्रोनोलोजी ऑफ् मॉडर्न इंडिया; पृ० २५६ ) ।

मरहटों ( सिंधिया ) के जोधपुर के खबरनवीस कृष्णाजी ने अपने स्वामी के नाम के ता० ५ जून ई० स० १७८७ ( आषाढ वदि ४. वि० सं० १८४४ ) के पत्र में लिखा है—

‘‘‘‘‘राजसिंह के गद्दी बैठने के अनन्तर उसके छोटे भाइयों में से सुलतान-सिंह उसे मरवा देने का उद्योग करने लगा । इस कार्य की पूर्ति के लिए उसने मूलचंद भडिया ( चरदिया ) से मिलकर षड्यन्त्र रचा । मूलचंद ने रसोड़े के अफसर के नाम इस आशय का एक पत्र लिखा कि यदि वह विष देकर राजसिंह का अंत करने में सफल हुआ तो सुलतानसिंह गद्दी बैठने पर उसे पच्चीस हजार की जागीर देगा । इसका क़ौल-क्रार हो जाने पर वैशाख सुदि ८ को रसोड़े के दारोगा ने राजसिंह के भोजन में विष मिला दिया । एक पहर बाद विष का प्रभाव ज्ञात होने पर राजसिंह ने मूलचंद को कैद करने की आज्ञा दी । रसोड़े का दारोगा भी भागने के प्रयत्न में था, परन्तु वह पकड़ लिया गया । तब उसने मूलचंद के हाथ का पत्र महाराजा के पास पेश कर दिया । इस घटना की जांच हो ही रही थी कि इसी बीच में राजसिंह का देहांत हो गया । उसकी मृत्यु के बाद सुलतानसिंह प्रधान रामसिंह के पास गया, पर उसने यह कहकर उसे बिदा कर दिया कि मैं तेरा मुख देखना नहीं चाहता । तब सुलतानसिंह जोधपुर के स्वामी विजयसिंह के पास गया । राजसिंह को विष देने के अपराध में मूलचंद तो कैद कर क़िले में रख दिया गया तथा रसोड़े का दारोगा तोप से उड़वा दिया गया ।

पार्सनिस्; इतिहास संग्रह [ मराठी ]; जि० ६, पृ० ११३-४ ।

दयालदास, कर्नल पाउलेट, कविराजा श्यामलदास और मेघसिंह आदि महाराजा राजसिंह का देहावसान क्षय रोग से होना लिखते हैं ।

ऐसी स्थिति में उपर्युक्त कथनों में कौनसा कथन ठीक है, इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । महाराजा राजसिंह की विष प्रयोग से मृत्यु होना बीकानेर में लोक-प्रसिद्ध बात नहीं है ।

अपनी अनन्य भक्ति के कारण उसके साथ उसके विश्वासपात्र-सेवक मंडलावत संग्रामसिंह ने उसकी चिता में प्रवेशकर अपने प्राणों का विसर्जन कर दिया ।

### महाराजा प्रतापसिंह

दयालदास की ख्यात में लिखा है कि राजसिंह के एक पुत्र प्रतापसिंह था, परन्तु वह छः वर्ष की अवस्था में शीतला निकलने से मर गया<sup>१</sup>

टॉड और प्रतापसिंह

( गद्दी पर नहीं बैठा ) । इसके विपरीत अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से पाया जाता है कि वह राजसिंह की मृत्यु होने पर बीकानेर का स्वामी हुआ था । टॉड लिखता है—  
“राजसिंह के दो पुत्र प्रतापसिंह तथा जयसिंह<sup>३</sup> थे । उसकी मृत्यु होने पर सूरतसिंह की संरक्षकता में प्रतापसिंह बीकानेर की गद्दी पर बैठाया गया । राज्यकार्य संभालने के साथ-साथ जब सूरतसिंह का प्रभाव बीकानेर के सरदारों पर जम गया तो उसने राज्य दबा बैठने का अपना विचार उनके सामने प्रकट किया और उनमें से अधिकांश को जागीरें आदि देकर अपने पक्ष में कर लिया । कुछ सरदार उसके विपक्ष में भी रहे, परन्तु जब उसने नौहर, अजीतपुर, सांखू आदि पर आक्रमण किया उस समय वे सब के सब अपने-अपने स्थानों में शांत बैठे रहे । अनन्तर उसने बीकानेर के स्वामी प्रतापसिंह का भी अंत करने का निश्चय किया, परन्तु इस कार्य में उसकी बड़ी बहिन बाधक हुई । उसके रहते कृतकार्य होने की

( १ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६५ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७३ । महाराजा राजसिंह के स्मारक लेख ( देखो ऊपर पृ० ३६२, टिप्पण संख्या ३ ) में भी एक सेवक के उसके साथ जल मरने का उल्लेख है । संग्रामसिंह के वंशजों के अधिकार में बीकानेर राज्य के अन्तर्गत सीलवे का ठिकाना है ।

( २ ) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६५ ।

( ३ ) जयसिंह का क्या परिणाम हुआ यह पता नहीं चलता । यदि वास्तव में इस नाम का कोई पुत्र था तो यही कहना पड़ेगा कि सूरतसिंह की प्रबलता के कारण उसने कोई बाधा उपस्थित नहीं की ।

संभावना न देख उसने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह नरवर के कछवाहे के साथ कर दिया। उसके विदा होने के बाद ही प्रतापसिंह महलों में मरा हुआ पाया गया। कहा जाता है कि सूरतसिंह ने अपने हाथों से उसका गला घोटा था<sup>१</sup>।

टॉड ने प्रतापसिंह का एक वर्ष तक गद्दी पर रहना लिखा है, परन्तु यह समय अधिक जान पड़ता है। उसने गजसिंह की मृत्यु वि० सं० १८४४ (ई० सं० १७८७) के स्थान में वि० सं० १८४३ (ई० सं० १७८६) में होना लिखा है। संभव है इसीसे यह गलती हुई हो, पर टॉड का कथन निर्मूल नहीं है, क्योंकि सूरतसिंह के समय में वह राजपूताने में विद्यमान था। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों से भी उसके कथन की पुष्टि होती है<sup>२</sup>।

( १ ) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ११३८-४०।

( २ ) पाउलेट लिखता है कि ख्यात ने तो प्रतापसिंह के सम्बन्ध में मौन धारण किया है, परन्तु वह अपने पिता के पीछे जीवित था और सूरतसिंह के हाथों मारा गया ( पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७३ )।

जोधपुर की ख्यात में लिखा है कि सूरतसिंह के गद्दी बैठने के कुछ दिनों बाद विजयसिंह ने उससे कहलाया कि तुम राजसिंह के पुत्र ( प्रतापसिंह ) को गद्दी से हटाकर बीकानेर के स्वामी बने हो, अतएव कुछ रुपये भरो नहीं तो सुख से राज्य करने न पाओगे। तब सूरतसिंह ने कहलाया कि मेरे लिए टीका भेजो ( अर्थात् मुझे राजा स्वीकार करो ) तो मैं तीन लाख रुपये दूँ। अनन्तर जोधपुर से टीका आने पर सूरतसिंह ने रुपये भेज दिये ( जि० २, पृ० २५६ )। किन्तु दयालदास की ख्यात तथा अन्य किसी पुस्तक में बीकानेर से रुपये देने का कुछ भी उल्लेख नहीं है।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि प्रतापसिंह अपने पिता के बाद गद्दी पर बैठा था।

ठाकुर बहादुरसिंह लिखित 'बीदावतों की ख्यात' से भी पाया जाता है कि राजसिंह के बाद प्रतापसिंह बीकानेर के सिंहासन पर बैठा ( पृ० २३६ )।

इन प्रमाणां के अतिरिक्त कृष्णाजी के उपर्युक्त मराठी पत्र (देखो ऊपर पृ० ३६३ का टिप्पण) में भी लिखा है कि राजसिंह का क्रिया-कर्म हो जाने पर प्रतिष्ठित सरदारों ने सूरतसिंह को राजा बनाना चाहा, परन्तु उसके यह कहने पर कि जिस राज्य के लिए मेरे बड़े भाई की ऐसी दशा हुई वह मुझे नहीं चाहिये, उन्होंने राजसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को गद्दी पर बिठा दिया और शासक की बाल्यावस्था होने के कारण सब राज्य-कार्य सूरतसिंह करने लगा।



अतएव यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि प्रतापसिंह राजसिंह के पश्चात् वीकानेर का स्वामी हुआ था और कम से कम पांच महीने उसका राज्य रहा ।

कृष्णाजीका पत्र इस घटना के केवल डेढ़ मास बाद का लिखा हुआ होने से इसपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है । कृष्णाजी जोधपुर से अपने स्वामी के पास समय-समय पर वहां का हाल लिखा करता था, उसी सिलसिले में उसने यह घटना भी अपने स्वामी को लिखी थी । संभव है कि पहले तो सूरतसिंह ने कुछ दिनों तक ठीक तौर से राज्य-कार्य चलाया हो, पर ऐसा जान पड़ता है कि बाद में उसकी नीयत बदल गई, जिससे प्रतापसिंह को मारकर वह स्वयं राज्य का अधिकारी बन बैठा, जैसा कि टॉड ने भी लिखा है ।

उपर्युक्त प्रमाणों के बलपर यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि प्रतापसिंह अपने पिता के बाद वीकानेर का स्वामी हुआ था, किन्तु दयालदास ने यह सारी की सारी घटना छिपा डाली है । सूरतसिंह के पुत्र का आश्रित होने के कारण उस(दयालदास)का ऐसा करना स्वाभाविक ही है । ऐसा ही राज्य के आश्रित व्यक्तियों के लिखे हुए इतिहास-ग्रन्थों में अब तक पाया जाता है । दयालदास राजसिंह की मृत्यु वि० संवत् १८४४ वैशाख सुदि ८ ( ई० स० १७८७ ता० २५ अप्रैल ) एवं सूरतसिंह की गद्दी-नशीनी उसी संवत् के आश्विन मास में होना लिखता है । इन दोनों घटनाओं में लगभग पांच मास का अन्तर है । यदि दयालदास का कथन ठीक माना जाय तो यही कहना पड़ेगा कि इस अवधि में वीकानेर का सिंहासन शासक-विहीन पड़ा रहा, पर ऐसा होना संभव नहीं । इसलिए यह मानना पड़ता है कि इस बीच वीकानेर पर प्रतापसिंह का शासन रहा, जैसा कि टॉड और पाउलेट ने लिखा है । प्रतापसिंह के मृत्यु स्मारक लेख में उसके मरने का संवत्, मास, पक्ष, तिथि आदि नहीं हैं और न उसे महाराजा ही लिखा है । उसमें केवल इतना ही लिखा है—

.....प्रतापसिंघजी देवलोकं प्राप्तः । तस्येयं पादुका छत्रिका स्थापिता । सा चिरं तिष्ठतु ॥

यह स्मारक सूरतसिंह के समय में ही लगाया गया होने से इसमें संवत्, मास, पक्ष आदि नहीं दिये हैं ।

# शुद्धि-पत्र

| पृष्ठ | पंक्ति        | अशुद्ध       | शुद्ध           |
|-------|---------------|--------------|-----------------|
| ५     | १४            | कि           | की              |
| ८     | २७            | ई० स० १८७६   | ई० स० १९१३      |
| ६     | १             | वि० सं० १९३५ | वि० सं० १९६६    |
| १४    | २५            | के           | की              |
| २१    | टि० १, पं० ३  | ददेरा        | दरेरा           |
| २२    | १०            | द्यहं        | द्वयहं          |
| ३८    | २७            | गद्दी        | गद्दी           |
| ४२    | २५            | अन्य         | नगर के भीतर     |
| ४४    | ८             | तीन सौ       | सात सौ          |
| ४५    | ३             | रतनविवास     | रतननिवास        |
| ६२    | २२            | की           | के              |
| ६७    | १०            | गंगानहर      | गंगनहर          |
| ७२    | २             | को           | के लिए          |
| "     | "             | लिये         | लिखे            |
| "     | ५             | उपाधी        | उपाधि           |
| ११३   | ४             | उदयकरण       | उदयकरण का पुत्र |
| १२५   | ४             | वैरसल        | वैरसी           |
| १२७   | ५             | "            | "               |
| १३७   | १४            | उदयकरण       | उदयकरण के पुत्र |
| १६६   | टि० १, पं० ५  | लिया और      | कर              |
| १६७   | टि० १, पं० २  | कामरां       | हुमायूं         |
| १७६   | टि० १, पं० १५ | पृ०          | पत्र            |
| १९०   | १३            | ३८           | ३७              |

| पृष्ठ | पंक्ति       | अशुद्ध      | शुद्ध        |
|-------|--------------|-------------|--------------|
| २०१   | १०           | आश्रय       | समय          |
| २११   | १०           | वंशज        | पुत्र        |
| २१२   | १            | का          | को           |
| "     | १७           | डांडसर      | डांडूसर      |
| २३२   | २            | सुंगलों     | मुगलों       |
| २५४   | ५            | स्वामी      | शासक         |
| २६६   | २२           | भेजा        | भेजा गया     |
| २७५   | ६            | दाराशिकोह   | शुजा         |
| २८५   | १२           | अधिकांश     | कतिपय        |
| ३००   | टि० ३, पं० ३ | महाराणा     | महाराजा      |
| ३०४   | ७            | सरदार आदि   | व्यक्ति      |
| ३११   | टि० २, पं० २ | पृ०         | पत्र         |
| ३१६   | टि० १, पं० २ | १५२         | १५१          |
| ३२२   | २०           | बीकानेर     | वहीं         |
| ३३५   | टि० १, पं० ३ | ६१          | ६०           |
| ३४३   | ६            | करते थे     | करता था      |
| ३४८   | १            | रावल        | राव          |
| "     | ११           | नियुक्ति की | नियुक्ति हुई |
| ३५८   | १            | कद          | कैद          |
| ३६५   | टि० २, पं० ६ | स्वामी      | स्वामी       |

